UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182708

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—556—13-7-71—4,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.08 G723 Accession No. P.G. H1137

Author गोयलीय, अयोध्याप्रसाद

Title शेर-ओ-सुखन. भाग तीन.

This book should be returned on or before the date last marked below.

1981.

शेर-ओ-सुख़न

भाग १

हमने रो-रोके रात काटी है।
आँसुओंपर यह रंग तब आया॥

—अमर लखनवी

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रंथमाला हिन्दी ग्रंथांक—१४

शेर-ओ-सुख़न

भाग १

प्रारम्भसे ई० स० १९०० तककी उर्दू-शायरीका प्रामाणिक
इतिहास, निष्पक्ष आलोचना और इस अवधिमे
हुए प्राय सभी गजलगो शायरोकी श्रेष्ठतम
रचनाओका सकलन और परिचय

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रथम संस्करण ५०००
अगस्त १९५१
मूल्य आठ रुपये

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

मुद्रक
जे० के० शर्मा
लॉ जर्नल प्रेस, इलाहा

परम स्नेही सहृदय

साहू-बन्धु श्रेयासप्रसादजी : शान्तिप्रसादजी !

"आपकी नज़्र हैं ये लालोगुहर थोड़े-से ।
अश्के ख़ूं थोड़े-से और लख़्तेजिगर थोड़े-से ।।"

卐 卐 卐

"तुम सलामत रहो हज़ार बरस ।
हर बरसके हो दिन पचास हज़ार ।।"

—गोयलीय

विषय-सूची

अवतरण

[उर्दू-शायरी पर एक नज़र]

मुस्लिम-शासनसे पूर्व भारतकी राष्ट्र-भाषा अपभ्रंश थी	१९
अपभ्रंशका महान कवि स्वयंभू	१९
तुलसी, सूर, कबीरके प्रथम प्रेरक अपभ्रंश-कवि थे	२०
अपभ्रंशसे पूर्व प्रचलित भाषाएँ	२१
नागरी या हिन्दीका मूलस्रोत अपभ्रंश है	२१
हिन्दी-शब्दके आविष्कारक और उसके प्रथम कवि खुसरो	२२
खुसरोकी पहेलियाँ	२२
मुकरनी	२३
सावनके गीत	२४
दुसुखने	२५
गज़ल	२५
हिन्दी-उर्दू दो भिन्न धाराएँ	२७
उर्दू-फारसीके आम और विशेष शब्द	२८
उर्दूमे फारसी शब्दोकी अधिकताके कारण	२८
फारसीकी नकलके कारण उर्दूकी हानियाँ	३३
उर्दूमे संस्कृतका असफल अनुकरण	३८
उर्दू फारसीकी जूठन है	३८
उर्दू-शायरीमे समयकी आवश्यकतानुसार भाव क्यो नही ?	३९
उर्दू-शायरीकी खूबियाँ	४०

उर्दूकी पाचनशक्ति ४०
हिन्दी कविताके गुण-दोष ४२
उर्दू-शायरीकी जन्म-भूमि दक्षिण ४६
दक्खनी शायरी क्या है ? ४७
उर्दू-शायरीका जन्म ४९

प्रारम्भिक युग

[दौरे मुतक़द्दमीन]

दक्खनी शायर पृ०५३

१. इब्राहीम आदिलशाह ५३
२. मुहम्मदअली कुतुबशाह ५३
३. सुलतान मुहम्मद कुतुबशाह ५४
४. सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह ५४
५ अब्दुलहसन तानाशाह ५४

उर्दूके आदि शायर पृ० ५६

१ वली . ५६
२ दाऊद ५९
३ सिराज ६०

देहलवी शायर पृ० ६२

प्रारम्भिक युगकी उर्दू ६४
वर्तमान युगकी उर्दू ६४
४ फाइज़ ६६
५. आरजू ७१
६ मज़हर ७२
७. हातिम ७४
८ मज़मून ७६
९ आबरू ७७
१० नाजी ७९
११. यकरंग ८०
१२ अहसन ८०
१३ फ़ुग़ाँ ८१

मध्यवर्त्ती युग

[दौरे मुतवस्सतीन]

.मध्यवर्त्ती युगपर सिहावलोकन पृ० ८५-१०१

पूर्वार्द्धयुगके शायर

१४ सौदा १०२
१५ मीर १०७
१६ सोज़ १२०
१७ दर्द १२५
१८. कायम चान्दपुरी १३६
१९ असर १४६
२०. ताबा १५५
२१. यकीन १६३
२२ बेदार १६६
२३ जिया १६९
२४ हसन १७०
२५ बयान १७५
२६ अफसोस १७६
२७ लुत्फ १७७
२८ हसरत १७८
२९ हिदायत १८१
३०. फ़िराक १८२
३१ हज़ी १८३

उत्तरार्द्धयुगके शायर

३२. मुसहफी १८४
३३. इंशा २०४
३४. जुरअत २११
३५ रासिख २२०
३६ हविस २२३
३७. शहीदी २२४
३८ रंगीन २२५

अर्वाचीन युगपर सिंहावलोकन पृ० २३५-२७९

गज़ल . २३५
शायरीपर वातावरण और व्यक्तित्वका प्रभाव २४२
देहलवी और लखनवी शायरीमे अन्तर . २४८
नासिख और आतिश २७४

पूर्वार्द्ध

लखनवी शायर

३९ अख्तर २८०
४० नासिख २९१
४१ आतिश ३११
नासिखके शिष्य
४२ बर्क ३२६
४३ बहर ३२८
८४ आबाद ३२९
४५ वजीर ३३०
४६ रश्क ३३१
८७ महर ३३२
४८ मुनीर ३३३
आतिशके शिष्य
४९. रिन्द ३३५
५०. नसीम ३३६
५१ शरफ ३५६
५२ खलील ३५८
५३ सबा ३५९

लखनऊके नवाब शायर

५४ आसफुद्दौला ३६०
५५ वज़ीरअलीखाँ ३६४
५६ सआदतअलीखाँ ३६५
५७ गाजीउद्दीन हैदर ३६६
५८ नसीरुद्दीन हैदर ३६८
५९ मुहम्मदअलीशाह ३६९
६० अमजदअलीशाह ३६९
६१ वाजिदअलीशाह ३७०

लखनऊकी बेगमात

६२. उमरावमहल ३७३
६३ बदरआलम ३७४
६४. रश्क महल ३७४
६५ हूर बेगम ३७५
६६. शैदा बेगम ३७५
६७ सदर महल ३७६
६८ महलआलम ३७६
६९ इशरत महल ३७७
७० फातिमा बेगम ३७७
७१ हेदरी बेगम ३७७
७२ महबूब महल ३७८
७३ दीदम बेगम ३७८
७४ हिजाब बेगम ३७९

देहलवी शायर

७५ शाहनसीर ३८२
७६ जौक ३८८
७७ मोमिन ४२४
७८ गालिब ४६९
७९ ममनून ५५४
८० आजुर्दा ५५६

उत्तरार्द्ध

लखनवी शायर

८१ असीर ५५७
८२ अमानत ५५९
८३ कल्क ५६०
८४ जकी ५६१
८५ दरख्शां ५६२
८६ तसलीम ५६३
८७ अमीर मीनाई ५६७
८८. जलाल ५९३
८९. निजाम ६०६
९०. जावेद ६१६

देहलवी शायर

ज़ौक़के शिष्य

९१. ज़फर ६१९
९२ आज़ाद ६३२
९३ दाग ६३५
९४ ज़हीर ६९७
९५ अनवर ६९९

मोमिनके शिष्य

९६ शेफ्ता ७००
९७ तसकीन ७०८
९८. नसीम ७०९
९९ सालिक ७११

ग़ालिबके शिष्य

१०० हाली ७१२
१०१ मजरूह ७४३
१०२ ज़की ७४४
१०३. रख्शाँ ७४५

बादशाह और नवाब शायर

दिल्ली दरबार ७४६
लखनऊ दरबार ७४७
हैदराबाद दरबार ७४७
रामपुर दरबार ७४९
टाँडा दरबार ७५३
फर्रुखाबाद दरबार ७५३
अज़ीमाबाद दरबार ७५३
मुर्शिदाबाद दरबार ७५५
टौक दरबार ७५४
अलवर दरबार ७५४

सूचनाएँ--

१—शेरोसुखनके इस प्रथम भागमे प्रारम्भिककालसे अर्वाचीन युग (१९०० ई०)तकके केवल गजलगो शायरोका परिचय दिया गया है। गजलका अर्थ है--इश्किया शायरी। इसलिए गजलोके अतिरिक्त जो महानुभाव इसमे--गीत, नज्मे, रुबाइयाँ, मर्सिये, कसीदे, मसनवियाँ[1] आदि खोजना चाहेगे या दार्शनिक और नीति सबधी[2] अशआर देखना चाहेगे, अथवा राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक प्रश्नोपर विचार विनिमय चाहेगे या किसी नेता आदिकी प्रशस्ति खोजना चाहेगे, तो वे धानके खेतमे बाजरा ढूँडेगे।

२--पुस्तकमे प्राय उन्ही ख्यातिप्राप्त शायरोका उल्लेख किया गया है, जिन्हे कि ऐतिहासिक महत्ता प्राप्त है। ऐसे बहुत-से शायर छूट गये है जो कहनेको तो उस्ताद हुए है, मगर कलाम शागिर्दोसे भी हलका है, अथवा जिनके न तो कलामका नमूना मिलता है, न विशेष परिचय ही। और इससे अधिक समावेशकी पुस्तकके आकारने भी इजाजत नही दी। अनुक्रमणिकामे ऐसे बहुत-से शायरोकी तालिका दी गई है, जिनका एक-एक दो-दो शेर भी दिया जाता तो पुस्तकका कलेवर दुगुना हो गया होता।

३--हमारा मुख्य लक्ष्य उत्तमोत्तम अशआरसे हिन्दी भण्डार-भरनेका रहा है। अत हमने शायरोका सभी तरहका कलाम न देकर हजार-हा अशआरमे-से गिनतीके श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ शेर देनेका प्रयत्न किया

---

[1] प्रसंगवश मसनवीके २-१ शेर आ गये है।

[2] इस तरह के अशआर भी मिलेंगे, मगर आटेमें नमकके समान।

है। इस चयनसे शायरोके समूचे कलामका अन्दाजा नही लगाया जा सकता। हमने सीपी-शख न बटोरकर केवल मोती चुननेका प्रयत्न किया है।

४—उर्दू-शायरीकी गति-विधिका परिचय देनेके लिए तत्कालीन भाषा-सम्बन्धी तथा चारित्रिक उत्थान-पतनके बतौर नमूना कुछ शेर अपनी रुचिके विरुद्ध भी देने पडे है, क्योकि शायरीके इतिहासमे उनका उल्लेख लाजिमी था।

५—शायरोका परिचय अत्यन्त सक्षेपमे यथावश्यक दिया गया है। उनके खानगी झगडो, आचरणो और व्यर्थकी बातोसे गुरेज किया गया है।

६—पुस्तकमे वर्णित—मीर, दर्द, जौक, मोमिन, गालिब, अमीर, दाग और हालीका परिचय शेरोशायरीमे दिया जा चुका था। फिर भी ऐतिहासिकक्रमको बनाये रखनेके लिए इनका प्रस्तुत पुस्तकमे उल्लेख अत्यन्त आवश्यक था। इनके बगैर इतिहास लँगडा-लूला रहता। अत हमने इनका परिचय और कलाम शेरोशायरीसे सर्वथा भिन्न और नवीन दिया है। हाँ, तुलनात्मक विवेचनमे, अथवा प्रसगवश शेरोशायरीमे उल्लिखित कुछ शेर भी आ गये है, किन्तु उनकी सख्या २५-३०से अधिक नही होगी।

७—प० दयाशकर 'नसीम'के अतिरिक्त अन्य किसी हिन्दू शायरका उल्लेख नही हुआ है, जब कि हिन्दुओमे भी हजार-हा शायर हुए है। इसका कारण मुख्य तो यही है कि गजलके लिए जैसी इश्किया-प्रकृत्ति और वातावरण चाहिए, वह हिन्दुओके लिए मुश्किल था। उनमे ज्यादातर फार्सीमे लिखते रहे, कुछ गीता-रामायण आदि धार्मिक ग्रथोको उर्दू-पद्यका रूप देनेमे लगे रहे, कुछ दार्शनिक और आध्यात्मिक शायरी करते रहे। कुछ गजलके मैदानमे उतरे भी तो योग्य उस्तादके अभावमे, उचित प्रोत्साहन एव पब्लिसिटी तथा अनुकूल वातावरण न मिलनेके कारण कामयाब न हो सके। कुछ हुए भी तो उनके कविता-ग्रथ न छप

सके अथवा साम्प्रदायिक मनोवृत्तिके इतिहासकारो और तजकरे नवीसोकी पक्षपात नीतिके कारण ऐतिहासिक महत्ता प्राप्त न कर सके। यही कारण है कि गज़लगोईके मैदानमे एक भी हिन्दू उस्तादकी हैसियतसे मशहूर नही है, न उनके दीवान ही दस्तयाब है। हम चाहते तो १०-२० हिन्दू शायरोका समावेश कर सकते थे, किन्तु इतिहासकी परम्पराको खलत-मलत करना हमने उचित नही समझा। यदि सम्भव हो सका तो कुछ अच्छे हिन्दू शायरोका परिचय किसी पृथक पुस्तकमे देनेका प्रयत्न किया जायगा।

८—अक्सर हर शायरके अन्तमे हमने तारीख दी है, ताकि लेखन-कालका पता लग सके। कई जगह बहुत नजदीकी तारीखे अंकित है। उतने वक्फेमे वह मजमून लिखा ही नही जा सकता। इसकी वजह यही है कि कई-कई मज़मून यथावश्यक और सुविधानुसार लिख लिये गये, परन्तु किसी वजहसे पूर्ण न हो सके और जब पूर्ण हुए तो लगातार होते चले गये और तभी मजमून समाप्तिकी तारीख डाल दी गई। शायरोका कलाम पढ़ा कभी गया, उद्धृत कभी किया गया और परिचय आदि सुविधानुसार कभी लिखा गया। कुछ स्थल सुविधानुसार आगे-पीछे लिखे गये है और उन्हे बादमे क्रमबद्ध कर दिया गया है।

डालमियानगर,
१ जुलाई, १९५१ ई०

—गोयलीय

अहवाले वाक़ई

'शेरोशायरी' प्रकाशित हुई तो एक उर्दू-अदीबने फर्माया—"इसमे कई अच्छे शुअरा रह गये है।" मैने अर्ज़ किया—"कई क्या, बहुत-से रह गये है, मगर मजबूरीका इलाज भी क्या[1]? फर्माइये आप किन-किन शुअराको इसमे लाज़िमी समझते है, ताकि दूसरे ऐडीशनमे घटाया-बढाया जा सके?" जवाब मिला—"मीरके साथ सौदा तो जरूरी थे।" मैने कहा—"उस दौरके सिर्फ दो शायर—मीर-ओ-दर्द—मैने चुने है,

---

[1]इस मजबूरीका स्पष्टीकरण 'शेरोशायरी'में इस प्रकार कर दिया गया था—

"शायरोंकी निश्चित ३१ संख्याका बन्धन न होता और पुस्तकके आकारने इजाज़त दी होती तो और भी कई शायरोंका उल्लेख किया जा सकता था। ३१ शायरोंमें अमुक शायर क्यों नहीं रक्खा गया, यह प्रश्न तो स्वाभाविक है, परन्तु वह किस अध्यायमें, कौनसे शायरके स्थानमें रक्खा जाय, यह बताना कठिन होगा।"

फ़र्माइये आप इनमें-से किसको निकालकर सौदाको रखना चाहते हैं ?" बोले—"इन दोनोंको तो निकालना नामुमकिन है।" फिर बोले—"इस्माइल मेरठी, नून-मीम राशिद, आरज़ू लखनवी भी लाज़िमी थे।" मैंने कहा—"इनका स्थान 'नवप्रभात' 'प्रगतिशील युग' और 'मधुरप्रवाह' में है, आप फर्माएँ वहाँसे किन-किनको हटाकर इन्हें रक्खा जाय।" बोले—"जो हैं वे तो सब लाज़िमी हैं, मगर यह भी जरूरी थे।" मैंने कहा—"बन्दानवाज ! वह भी होते तो अच्छा था, यह भी होते तो मुनासिब था। फिर तो निश्चित ३१ सख्याका बन्धन ही टूट जाता और पुस्तक भी इतनी बोझल हो जाती कि हज़रते इन्सानके उठाये न उठती।" एक उर्दू-अखबारने भी इसी तरहकी राय ज़ाहिर की थी।

इसी तरह एक ख्यातिप्राप्त विद्वानने उलाहना दिया कि "आपने न तो अमुक-अमुक शायरोंका ज़िक्र किया और न महात्मा गांधीपर नज़्में दीं" मैंने पत्रोत्तरमें लिखा—"मैं इनको इस कोटिका शायर ही नहीं समझता कि अपनी पुस्तकमें उनका उल्लेख करता। रही महात्माजी सम्बन्धी नज़्में, सो मैंने पुस्तकमें उर्दू-शायरीका सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है, न कि नेताओंकी प्रशस्ति प्रस्तुत की है।" किन्तु, मुझे इस उत्तरसे सन्तोष न मिला। यूँ किस-किसका समाधान हो सकेगा। क्यों नहीं उर्दू-शायरीका प्रारम्भसे वर्त्तमान तकका इतिहास प्रस्तुत कर दिया जाय। धीरे-धीरे यह विचार जड़ पकड़ता गया और उसकी रूप-रेखा मस्तिष्कमें इस प्रकार आई—

शेरोसुख़न भाग १—प्रारम्भसे १९०० तककी ग़ज़लका इतिहास।
शेरोसुख़न भाग २—१९०१से १९५१ तककी ग़ज़लका इतिहास।
शेरोसुख़न भाग ३—नज़्म और गीतोंका संकलन और परिचय।
शेरोसुख़न भाग ४—उर्दू-शायरोंके बापू।
शेरोसुख़न भाग ५—उर्दू-शायराएँ
शेरोसुख़न भाग ६—उस्तादोंकी इस्लाहें।

रूप-रेखा ऐसी बनी कि समस्त जीवन खपा दिया जाय, तो भी कार्य पूरा न हो सके। अत मन अस्थिर हो उठा। दूसरे जिन कुलियात-ओ-दीवानोके कई लाख पृष्ठ मै कई-कई बार पढ चुका था, उनको फिर पढनेसे जी भागने लगा। लेकिन विधिका विचित्र विधान देखिये कि लाख छटपटानेपर भी मुझे इस काममे जुतना ही पडा।

शेरोशायरी छपते-छपते १३ जनवरी १९४९को मेरा जवान भतीजा चलता बना। भाईसाहब इस सदमेको बर्दाश्त न कर सके और टी० बी०के चक्करमे आ गये। वे तो फरिश्ते थे, मासूम बच्चोकी सुबकियाँ और दुल्हनका बिलखना न देख सके, खुद भी तिल-तिलकर घुलते गये और आखिर कुर्बान हो गये। मगर मै बेहया जीता रहा और गम गलत करनेको फिर इन किताबोमे डूब गया। भाईसाहब एडियाँ रगड-रगडकर दम तोडते रहे और मै शुअराके कलामको पढता हुआ रोता और बिसूरता रहा--

"इन आँसुओकी हकीक़तको कौन समझेगा।
कि जिनमें मौत नहीं, जिन्दगीका मातम है।"

और उसी आलममे यह पहला हिस्सा तैयार भी हो गया। भाईसाहब जब मुझे इसीमे १२-१३ घटे डूबे हुए देखते तो सिहर उठते और मेरे अस्वस्थ शरीरकी चिन्ता उन्हे रुला देती। कभी भाभीसे कहते--"मुझसे तो यही अच्छा, जिसने दु खोसे जूझनेका क्या खूब तरीका निकाला है।" जो मै रोज़ लिखता, उसे बडे चावसे सुनते। पुस्तक उनके सामने प्रेसमे चली गई थी, परन्तु वे इसे मुद्रित न देख सके। भाभी, बहू, बच्चे सब दहाड मारकर रो पडे और मै पत्थर बना सब सहता रहा--

"हजार ऐशकी सुबहें निसार है जिसपर।
मेरी हयातमें ऐसी भी इक शबे गम है॥"

शेरोसुखनकी प्रेसकापी मेरे अनन्य मित्र सुमत साहबने[1] बहुत सावधानीसे देखी है। मैं स्वय उनके पास एक माह रहा हूँ। जो शेर ज़रा भी वजनसे गिरा मालूम दिया, निकाल बाहर किया। जिस स्थलपर तनिक भी सन्देह हुआ, तत्काल मूल ग्रन्थसे मिलान कर लिया। २००-२५०

---

[1]सुमत साहब देहलवी हैं और आजकल होशियारपुर (पंजाब)में फर्स्टक्लास मजिस्ट्रेट हैं। उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी-साहित्यका बहुत अच्छा शौक़ रखते हैं। भारत विभाजनसे पूर्व आप रावलपिण्डीमें मजिस्ट्रेट थे और अदबी हलक़ोंके रूहेरवाँ। अच्छे-अच्छे शायर और अदीब आपके यहाँ महीनो मेहमान रहते थे। आपके ज़मानेमें वहाँ जो पुरलुत्फ सुहबतें और आलीशान मुशायरे हुए, उन्हे लोग भुलाये नहीं भूलते। हिन्दुओ-मुस्लिमोके बीच अब दीवार खडी कर दी गई है, फिर भी उनकी याद लोगोके दिलोसे नहीं मिटती और अदीब-अहबाबके ख़तूत आते ही रहते हैं। जब आप रावलपिण्डीमें 'अंजुमने तरक्कीये उर्दू'के सदर मुन्तखिब हुए तो नवाब 'अच्छन' रामपुरीने लिखा—"इस हुस्ने इन्तखाबपर मैं अंजुमनको मुबारिकबाद पेश करता हूँ; और आपका शुक्रगुज़ार हूँ कि आपने इस खिदमते अदबको अपने ज़िम्मे ले लिया। हक़ीकत यह है कि बुरा-भला शेर कहनेवालोकी तो हिन्दुस्तानमें कमी नहीं है, हत्ताकि हम जैसे नाअहल भी कह लेते हैं। लेकिन शेरका समझना और ज़ौके सलीम रखना, ज़बानका सही ज़ौक़ और फसाहतका लफ्ज़; ये ऐसी चीजें हैं कि ग़ैर शायर तो क्या शुअरा हज़रातमें भी कम पाई जाती है, और मैं बिला तसम्मो यह अर्ज़ करता हूँ कि मैंने यह सब चीजें आपमें कमाहक़ूक़ पाई। आप ही जैसे हज़रात हक़ीकतन उर्दूकी सही मायनेमें खिदमत कर सकते हैं। वर्ना या खालिस फार्सीका नाम उर्दू हो जायगा या खालिस भाषाका; और हमारी उर्दू उस लोचसे जो इन दोनो ज़बानोकी आमेज़िशसे पैदा हुआ है, महरूम हो जायगी।"

मायने स्वय फुटनोटमे लगाये और अनेक उपयोगी सूचनाएँ दी। गालिब-पर दसो फुटनोट उन्होने स्वय लगाये है, २०-२५ शेर भी बढाये है और ३०-४० अशआरके अर्थ भी उन्होने लिखे है और वायदा किया है कि शेरोमुखनके दूसरे भागको लिखनेमे वे भी साझीदार बनेंगे और पुस्तकका एक हिस्सा वे स्वय लिखेगे।

सुमतसाहब अपने इस जिक्रसे जरूर भिन्नाएँगे और ची-ब-जबी होगे। मगर मै भी अपनी आदतसे मजबूर हूँ। मैंने एक पक्ति भी किसीकी उद्धृत की है, तो उसका नाम दे दिया है। फिर मै अपने इस हृदय-सखाका उल्लेख न करता तो मेरे मनका बोझ हलका न होता, और अपनेको घुटा-घुटा-सा महसूस करता रहता।

श्री देवीशरणजी पाण्डेय शास्त्री मेरे लेखनकार्यके साथ-ही-साथ उसकी प्रतिलिपि करते गये, इससे मुझे पुस्तकके शीघ्र प्रस्तुत करनेमे काफी सहायता मिली। अनुक्रमणिका भी उन्होने तैयार की है।

समूची पुस्तकके गैली प्रूफ सुमत साहबने देखे है और मैंने स्वय तीन बार देखे है। श्री रामाधार दुबे 'साहित्य-भूषण'ने भी प्रूफ देखनेमे मुझे काफी सहयोग दिया है। शास्त्रीजी और दुबेजी धन्यवादके भूखे न होकर मेरे आशीर्वादके ही अभिलाषी रहे है, और वह इन्हे सदैव मिलता रहा है।

प्रिय भाई लक्ष्मीचन्द्रजीने इसे अपनी ग्रथमालामे गूँथनेकी कृपा की है, इसके लिए मुझे उनका कृतज्ञ होना चाहिए, परन्तु हमारे परस्पर जिस तरहके आत्मीय सम्बन्ध है, उनको देखते हुए किसने क्या किया, यह जाहिर करना भी मुनासिब मालूम नही होता।

"हवास रहते तो कुछ अर्ज मुद्दआ करता।
वफ़ूरे इश्कमें क्या कह गया खुदा जाने।"

डालमियानगर (बिहार)
१ जुलाई, १९५१ ई०

अ० प्र० गोयली

अवतरण

दुनिया पहुँच रही है कहाँ-से-कहाँ 'शफीक' !
तुम हो शरीके महफिले शेरो-सुखन अभी ।।

[उर्दू-शायरी पर एक नज़र]

उर्दू-शायरी पर एक नज़र

१—मुस्लिम-शासनसे पूर्व भारतकी राष्ट्र-भाषा अपभ्रंश थी
२—अपभ्रंशका महान कवि स्वयंभू
३—तुलसी, सूर, कबीरके प्रथम प्रेरक अपभ्रंश-कवि थे
४—अपभ्रंशसे पूर्व प्रचलित भाषाएँ
५—नागरी या हिन्दीका मूलस्रोत अपभ्रंश है
६—हिन्दी-शब्दके आविष्कारक और उसके प्रथम कवि ख़ुसरो
७—हिन्दी-उर्दू दो भिन्न धाराएँ
८—उर्दूमें फारसी शब्दोंकी अधिकताके कारण
९—फारसीकी नकलके कारण उर्दूकी हानियाँ
१०—उर्दूमें संस्कृतका असफल अनुकरण
११—उर्दू फारसीकी जूठन है
१२—उर्दू-शायरीमें समयकी आवश्यकतानुसार भाव क्यों नहीं ?
१३—उर्दू-शायरीकी खूबियाँ
१४—उर्दूकी याचनशक्ति
१५—हिन्दी-कविताके गुण-दोष
१६—उर्दू-शायरीकी जन्म-भूमि दक्षिण
१७—दक्खनी शायरी क्या है ?
१८—उर्दू-शायरीका जन्म

उर्दू-शायरी पर एक नज़र

मुस्लिम-शासनसे पूर्व बारहवी सदी तक भारतकी राष्ट्र-भाषा अपभ्रंश थी। यह भाषा हिमालयसे गोदावरी, और सिन्धसे ब्रह्मपुत्र तक बोली और लिखी जाती थी। यद्यपि इन प्रान्तोमे बहुत-सी बोल-चालकी भाषाएँ भी थी, परन्तु भिन्न-भिन्न प्रान्त-निवासी एक दूसरेपर अपने मनोभाव इसी भाषामे व्यक्त करते थे। सबकी सम्मिलित भाषा अपभ्रंश ही थी। यह ई० स० आठवी सदीसे १३वी सदी तक प्रचलित रही। वर्तमान हिन्दीकी जननी या मूल अपभ्रंश ही है। इसका दूसरा नाम देशी भाषा भी है।

मुस्लिम-शासनसे पूर्व भारतकी राष्ट्र-भाषा अपभ्रंश थी

महापण्डित राहुल साकृत्यायनने अत्यन्त परिश्रमसे अपभ्रंश कविता-का सकलन किया है। वे लिखते है—"इसे अपभ्रंश इसलिये कहते है कि इसमे सस्कृत शब्दोके रूप भ्रष्ट ही नही, अपभ्रष्ट—बहुत ही भ्रष्ट—है। लेकिन शब्दोका रूप बदलते-बदलते नया रूप लेना दूषण नही, भूषण है। इससे शब्दोके उच्चारणमे ही नही, अर्थमे भी अधिक कोमलता, अधिक मार्मिकता, आती है। 'माता' सस्कृत-शब्द है, उसका मातु, माई, मावो तक पहुँच जाना अधिक मधुर बननेके लिये था। खेद है, कि यहाँ भी कितने ही नीम हकीमोने शुद्ध सस्कृत 'माता'को ही नही लिया, बल्कि उसमे 'जी' लगाकर 'माताजी' बना उसके ऐतिहासिक माधुर्य्यको ही नष्ट कर डाला। अस्तु, यह निश्चित है कि अपभ्रंश होना दूषण नही, भूषण था। बारहवी-तेरहवी शताब्दी तक

अपभ्रंशका महान कवि स्वयम्भू

द्राविड भाषा-भाषी—आन्ध्र, तामिल, कैरल और कर्नाटकको छोडकर भारतके सभी प्रान्तोकी एक सम्मिलित भाषा भी थी। . मराठी, उडिया, बँगला, आसामी, गोरखा, पजाबी, गुजराती आदि आधुनिक भाषाएँ बारहवी-तेरहवी शताब्दीमे अपभ्रशसे अलग होती दीख पडती है। जिस समय (आठवी सदीमे) अपभ्रश-साहित्य पहले-पहल तैयार होने लगा था, उस वक्त बँगला आदि उससे अलग अस्तित्व नही रखती थी।

"अपभ्रश-कवि हिन्दी-काव्यधाराके प्रथम स्रष्टा थे। उन्होने अश्व-घोष, माघ, कालिदास और वाणकी जूठी पत्तले न चाटकर एक योग्य पुत्रकी तरह काव्य-क्षेत्रमे नया सृजन किया है। नये भाव, नये चमत्कार पैदा किये है। नये-नये छन्दोकी सृष्टि करना तो उनका अद्‌भुत कृतित्व रहा है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई-सौ ऐसे नये छन्दोकी उन्होने सृष्टि की है, जिन्हे हिन्दी कवियोने बराबर अपनाया है। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसीके ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे है।

तुलसी, सूर, कबीरके प्रथम प्रेरक अपभ्रंश कवि थे

इन अपभ्रश-कवियोमे स्वयभू सबसे बडा कवि था। वस्तुत यह भारतके एक दर्जन अमर कवियोमे एक था। आश्चर्य्य और क्रोध दोनो होते है कि लोगोने कैसे ऐसे महान कविको भुला देना चाहा। स्वयभूके रामायण और महाभारत दोनो ही विशाल काव्य है। स्वयभूकी भाषाका प्रवाह स्वाभाविक है। उसने खामखवाह दुरूहता लानेकी कही कोशिश नही की। पद्यस्वर बडे ही कर्णप्रिय है। शब्द बिल्कुल नपे-तुले है और रस-परिपाक तो बराबर ऊपर और-और उठता जाता है। उसका कवि-कौशल अत्यन्त श्रेष्ठ है। प्राकृतिक दृश्योका वर्णन करनेमे वह अद्वितीय है। सामन्त-समाजके वर्णनमे उसकी किसीसे तुलना नही की जा सकती। सौन्दर्यके वर्णनमे उसने कमाल किया है। विलापचित्रणमे भी उसे बडी

सफलता मिली है। मालूम होता है तुलसी बाबाने स्वयभू-रामायणको ज़रूर देखा होगा।"[१]

अपभ्रंशसे पूर्व प्रचलित भाषाएँ

ई० पू० १५००से ६०० ई० पू० तक भारतीय भाषा सस्कृत थी। किन्तु ई० स० ५००-६०० पूर्व 'बुद्ध' और 'महावीर'के समयमे सस्कृत-का स्थान पाली और प्राकृतने ग्रहण किया। पालीका प्रसार ई० सन्के पूर्व तक रहा, किन्तु प्राकृत ईसाकी छठी शताब्दी तक प्रचलित रही। सस्कृत, पाली, और प्राकृतमे परस्पर भेद होते हुए भी बहुत कुछ समानता है। "असमानता केवल यही है कि सस्कृतके क्लिष्ट उच्चारणको सरल बनाकर पालीने तद्भव शब्दोकी रचना प्रारभ की। उसके भारी-भरकम व्याकरण-कलेवरको कम किया। शुद्ध सस्कृत बोलनेके लिये जहाँ छ हजारसे ऊपर सूत्र-वार्तिकोको याद रखनेकी जरूरत थी, वहाँ पालीने ८००-९०० सूत्रोसे ही कार्य निकाला और प्राकृतने तद्भव या उच्चारणके सरलीकरण कार्य्यको और जोर-शोरसे किया। अपभ्रशने असाधारण परिवर्तन किया। उसने ढाँचा ही बदल दिया। अपभ्रश, सस्कृत, पाली, प्राकृतसे अत्यन्त भिन्न हो गई और हिन्दीसे अभिन्न।"[२]

नागरी या हिन्दीका मूलस्रोत अपभ्रश है

यही अपभ्रश फिर नागरी और आगे चलकर हिन्दी कहलाई। 'नगर' या 'नागर' जातिके लोग 'मानसरोवर'के निकट 'हाटक' स्थानसे निकलकर पहल 'नगरकोट'मे बसे। फिर धीरे-धीरे सारे भारतमे फैल गये, यहाँ तक कि कूर्ग और बगालमे भी फैल गये। यह अपभ्रश बोलने मे अत इनके नगर-कोटके निकासके कारण इसकी भाषा 'नागरी' भी कहलाई।

---

[१] हिन्दी-काव्यधाराकी भूमिका पृ० ५-५२

[२] हिन्दी-काव्यधाराकी भूमिका पृ० ८-९

पृथ्वीराज चौहानकी पराजयके बाद जब मुस्लिम आक्रमणकारियोंने लूटमार, डाकेज़नीके बजाय यहाँ साम्राज्य स्थापित करके स्थायी रूपसे रहना प्रारम्भ किया तो विजेता और विजित एक दूसरेकी भाषासे भिज्ञ होने लगे। काम चलाऊ शब्दोका आदान-प्रदान होने लगा, परन्तु दोनोकी भाषा सयुक्त न होनेके कारण बडी असुविधा रहती थी। आखिर खिलजियोके शासन काल—(ई० स० १२९०-१३३०)मे 'अमीर खुसरो''ने

हिन्दी-शब्दके आविष्कारक और उसके प्रथम कवि अमीर खुसरो

'खुसरो' ईसाकी तेरहवी सदीमे मु० पाटियाली, ज़िला एटामे पैदा हुए थे और खिलजी-शासनमे कई ओहदोंपर मुमताज़ रहे। गयासुद्दीन बलवन बादशाह इनकी बडी इज्ज़त करता था। 'तूतियेहिन्द' इनकी उपाधि थी। ये फारसीके बहुत बडे शायर हुए है, सगीतके भी अत्यन्त मर्मज्ञ थे। इन्हीने वीणासे सितारका आविष्कार किया है। कई पक्के गाने भी ईजाद किये है। इन्हीने सबसे पहले फारसी-मिश्रित कविताएँ लिखी। औरतोके लिये गीत और बच्चोके लिये पहेलियाँ, मुकरनियाँ, आदि लिखी। युवको-युवतियोके लिये दो-सुखने दोहे भी लिखे। बाज़ शेर ठेठ हिन्दीमे भी लिखे। उनकी भाषाका चमत्कार देखिये—

पहेली—

तरवरसे इक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया।
बापका उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया॥

आधा नाम पितापर प्यारा बूझ पहेली मोरी।
अमीर खुसरो यूं कहे अपना नाम नबोली॥

उत्तर—निम्बोली

यानी तरवरकी तिरियाने अपने बापका नाम आधा (नीम)

ऐसी मिली-जुली भाषाका सूत्रपात किया, जिसे हिन्दू-मुस्लिम सरलतासे व्यवहृत कर सके।

बताया। नीम फ़ारसीमे आधेको कहते है और भारतमे नीम एक पेड होता है, और अपना नाम नबोली कहकर पहेलीमे जवाब भी दे दिया है और आधा नाम नीम-बोली कहकर सीधी-सादी बातको पहेली भी बना दिया। इसी तरहकी दो पहेलियाँ और भी दर्ज की जाती है—

फ़ारसी बोली आईना, तुर्की सोच न पाईना।
हिन्दी बोलते आरसी, आये मुंह देखे जो उसे बताये॥

उत्तर—आईना (दर्पण)

बीसोंका सर काट लिया।
ना मारा ना खून किया॥

उत्तर—नाखून

मुकरनी—

सगरी रैन मोहि संग जागा, भोर भई तब बिछुड़न लागा।
उसके बिछुड़त फाटे हिया, ए सखि! 'साजन' ना, सखि! 'दिया'॥

उत्तर—दिया (दीपक)

इसमे 'साजन' और 'सखी' के बीचमे 'ना' डालकर भूल-भुलैयामें डाला है। 'ना' को साजनके साथ रखा नही कि सखीको दियाका जवाब मिल गया।

सरब सलोना सब गुन नीका। वा बिन सब जग लागे फीका॥
वाके सरपर होवे कोन। ऐ सखि 'साजन' ना, सखि! 'लोन'॥

उत्तर—लोन (नमक)

जिस मेल-जोलकी भाषाका ख़ुसरोने सूत्रपात किया था उसका उन्होने स्वय नाम-सस्करण 'हिन्दी' 'हिन्दवी' किया।—

वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागें वाके बोल ऐ सखि 'साजन' ना, सखि ! 'ढोल'॥

उत्तर—ढोल

सावनके गीत—

जो पिया आवन कह गय अजहुँ न आये, स्वामी हो।
आवन कह गये आये न बारह मास॥

जिन स्त्रियोके पति देशमे ही है, वे फिर सावनमे क्या गाएँ ? उनके लिए भी लिखा। नई नवेली ससुरालमे गीत गा रही है—

अम्मा मेरे बाबाको भेजियो री कि सावन आया।
बेटी तेरा बाबा तो बूढा री कि सावन आया॥

अम्मा मेरे भाईको भेजियो री कि सावन [illegible]।
बेटी तेरा भाई तो बाला री कि सावन [illegible]

अम्मा मेरे मामाको भेजियो री कि सावन आया।
बेटी तेरा मामा तो बाँका (छैला) री कि सावन आया॥

सीधे-सादे शब्दोमे पीहर जानेकी उमगको, और माके न बुला-सकनेकी मजबूरीको, कैसे हृदयग्राही शब्दोमे व्यक्त किया है, कि यही गीत विरदेजुबान (कण्ठस्थ) हो गये।

एक बार 'अमीर खुसरो' कही जा रहे थे। मार्गमे प्यास लगी तो पनिहारियोको कुएँ पर पानी भरते देख उनसे पानी पिलानेको कहा, तो पनिहारी उन्हे पहचान गई। चारो पनिहारियो ने अपना एक-एक शब्द—खीर, चर्खा, कुत्ता और ढोल दिया और ज़िद पकड़ गईं कि जब तक

यानी अपभ्रंश भाषा जो नागरी भी कहलाने लगी थी और दिल्ली, मेरठके इलाकोंमें जिसे खड़ी बोलीका रूप दिया जाने लगा था। 'अमीर

इन पर पहेली नहीं कहे जायगी वे पानी नहीं पिलायेंगी। आखिर खुसरो ने खीजकर कहा—

'खीर' पकाई जतनसे 'चर्खा' दिया जला।
आया 'कुत्ता' खा गया, तू बैठी 'ढोल' बजा॥
ला पानी पिला॥

दुसुखने—

गोश्त क्यों न खाया, डोम क्यों न गाया ? उत्तर—गला न था।
जूता क्यों न पहना, समोसा क्यों न खाया ? उत्तर—तला न था।
अनार क्यों न चखा, वजीर क्यों न रखा ? उत्तर—दाना न था।

दुसुखने फारसी-उर्दू—

सौदागर चे मे बायद ? बूचेको क्या चाहिये ? उत्तर—दो कान
(सौदागरको क्या चाहिये) (अर्थ दुकानमें हैं और दो कानमें भी)
तिश्नारा चे मे बायद ? मिलापको क्या चाहिये ? उत्तर—चाह
(प्यासेको क्या चाहिये) चाह के मायने कुआँ और प्यार दो होते हैं।
शिकार ब चे मे बायद करद ? कुव्वते मग्जको क्या चाहिये ?
उत्तर—बादाम

(शिकार किस चीजसे करना चाहिए ? मस्तिष्कशक्तिको क्या चाहिये ?)
बादामका अर्थ 'जालके साथ और मेवा भी है।

ग़ज़लका नमूना—

जहाले मसकीं मकुन तग़ाफुल दराये नैना बनाये बतियां।
कि ताबे हिजरां नदारम ऐ जां ! न लेहो काहे लगाय छतियां॥

प्राकृत'से बिलावास्ता था। यह भाषा जिसे मगरबी (पश्चिमी) हिन्दी कहना बजा है ज़बाने उर्दूकी अस्ल माँ[1] समझी जा सकती है।"[2]

आमतौरपर 'उर्दू' फारसीकी एक शाख समझी जाती है, परन्तु यह धारणा भ्रामक है। वास्तवमे 'उर्दू' हिन्दी-खडीबोलीकी ही एक विरासत है जिसे रग-बिरगे फूलोसे अलंकृत किया गया है। 'उर्दू'मे अरबी-फारसीकी अधिकताके निम्न कारण थे—

उर्दूमें फ़ारसीकी अधिकताके कारण

१—शासक अरबी-फारसी भाषा-भाषी थे।

२—फारसी राज्य-भाषा होनेके कारण हिन्दू भी पढनेको विवश हुए और शासकोकी भाषा होनेके कारण फारसी-शब्दोको अधिक-से-अधिक व्यवहृत करनेमे उसी प्रकार गर्वका अनुभव करते थे, जिस प्रकार वर्तमानमे अधिकतर व्यक्ति अग्रेजी-शब्दोके उच्चारणमे शान समझते है, और बेमलाल अग्रेजी-बाहुल्य भाषाका प्रयोग करते है।[3]

३—शासक अपने साथ बहुत सी—वस्त्र[4], भोजन[5], फल-

---

[1] 'माँ' नहीं 'नानी' लिखना चाहिये। माँ तो अपभ्रश है और अपभ्रंशकी जननी प्राकृत है।

[2] तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० १।

[3] जैसे—एक डाक्टर चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, कुछ इस तरहकी ज़बान बोलेगा—'मैं कैलकटासे थर्सडेको स्टार्ट होकर फ्राइडेको मौर्निङ्ग ट्रेनसे इलाहाबाद पहुँचा। वहाँ पेशेण्टको देखा, वह होपलेस कण्डीशनमें था. फिर भी प्रसक्रिप्शन लिखना पड़ा।"

[4] लबादा, कुरता, क़बा, चोगा, आस्तीन, गिरेबान, पायजामा, इज़ार, रूमाल, शाल, दुशाला, तकिया, गावतकिया, बुर्क़ा, आदि।

[5] दस्तरख़्वान, चपाती (हिन्दीमें रोटी कहते थे, रोटी हिन्दी शब्द है जो उर्दूनें भी अपना लिया है), शीरमाल, बाक़रख़ानी, पुलाव, ज़र्दा

मेवा[1] आदि ऐसी नई वस्तुएँ लाए जो यहाँ पहले होती ही न थी। इसलिये उन वस्तुओंके मूल शब्द ज्यो-के-त्यो बोले जाने लगे। जिस प्रकार कि अंग्रेज़ीके—रेलवे, पोस्टआफिस, डाक्टरी, इंजीनियरिंग, बिजली, साइन्स, मशीनरी, फैक्टरी, फर्नीचर, राजनीति, शासन, फैशन, युद्ध आदि सम्बन्धी कई हज़ार शब्द जाने-अनजाने ज़बानपर चढ़ गये हैं और अशिक्षित भी अनायास ही प्रयोगमे लाते रहते हैं।

४—कई हज़ार ऐसे शब्द जो राज्य-भाषा-भाषी होनेके कारण बार-बार प्रयुक्त होते थे, ज़बानपर इस तरह रवाँ हो गये कि उनके हिन्दी शब्द सर्वसाधारणको सूझ नही पडते हैं और प्रयत्न करनेपर ही हिन्दी पर्यायवाची शब्द याद आते हैं।[2] और-तो-और शतरंज (चतुरंगिनीसे

क़लिया, कोरमा, मुतंजन, तुरंजन, फिरनी, हरीरा, लौज़, मुरब्बा, फालूदा, गुलाब, बेदमुश्क, ख़्वान, तबक़, तश्तरी, रकाबी, कफगीर, चमचा, नानबाई, हलवाई, आदि।

पिश्ता, शहतूत, बेदाना, ख़ुबानी, अजीर, नाशपाती, अनार, फ़ालसा, चिलगोज़ा, आदि।

जैसे—कमर, दुआ, बीमारी, तकलीफ, तबियत, मिज़ाज, दूकान, मकान, बाज़ार, बन्द, महल, देहात, फैसला, अमीर-ग़रीब, आबादी, बरबादी, बहार, तक़ाज़ा, काग़ज़, कलम, दावात, ज़िक्र, सिपाही, मालिक, इज्ज़त, आबरू. याद, क़द, तेज़, सुस्त, ख़रीदार, माल, दारोग़ा, नज़राना, शिकायत, हौसला, बला, ऐब, होश-हवास, होशियार, मस्त, सरकार, दरबार, जुलूस, क़ौल-क़रार, जादू, परहेज़, बदज़बान, बयान, रंगीन, रगरेलियाँ, मज़बूत, प्याला, किस्सा, शौक, बदनाम, रोशनी, नशा, मज़ाक़, मौसम, फ़स्ल, मामला, रिश्ता, शोरग़ुल, आबत, आमदनी, दीवार, दरवाज़ा, तमाशा, सैर, नोक, नक़्शा, परदा, बरामदा, मैदान, चादर, मसनद, बिस्तर, इरादा, नीयत, तूफान, ताज़ा, पेशा, फ़र्श, जायदाद, दलाल,

चतुरग) भारतीय आविष्कार होनेपर भी बिल्कुल 'बी पर्शियन' दीख पडने लगी। उसका राजा 'बादशाह', मत्री 'वज़ीर' हस्ती 'फील' या

वकील, नकल, अस्ल, मनहूस, परीशान, परी, पलग, पासग, पुल, पेच, पेशगी, पैदावार, बराबर, बर्फ, बगल, रेशम, मायने, सादा, बदनाम, आम, ख़ास, दीवानखाना, तूल-तवील, गुजाइश, आसार, पैरवी, रिहाई, रसाई, तारीख, पता, जिगर, रज, अमीन, सरदार, फुर्सत, रुख़सत, मज़दूर, शर्त, मेज़, तख्त, शऊर, महकमा, रियासत, ख़ज़र, मखमल, चिकन, हरकत, रुतबा, नकाब, नाज़क, फौलखाना, कद्र, पजा, मालूम, सलाह, मशवरा, मुहर, वास्ते, इलज़ाम, मुकाबला, शहर, पसन्द, दिलचस्प, शहीद, मुहल्ला, जर्राह, नमूना, इत्र, रोगन, काफी, अर्सा, तनाव, मददगार, ज़बानी, वज़न, पिजरा, नहर, रफ्तार, कमरत, परवरिश, दबदबा, दगा-बाज़, नसीहत, ग़लतफहमी, बहाना, हीला-हवाला, मलाल, पोशाक, जोश-खरोश, पुर्ज़ा, गुमराह, बदला, तब्दीली, गारत, शर्बत, कब्ज़, मामूली, कस्बा, तसल्ली, ज़बरदस्ती, रईस, हैरानी, लिफाफा, गश, पहलवान, चुस्त, चालाक, मुर्दा, लाश, कफन, चीख, इमारत, रद्दी, बालिग, यानी, तबला, सितार, कैंची, करामात, किराया, बदमाश, दावा, मुहावरा, कारखाना, लिहाफ, शाबाश, गबन, पानदान, शोकीन, माजरा, जल्लाद, नाश्ता, गनीमत, गुलदस्ता, मसविदा, जहाज़, ऐलान, ऐयारी, ख़फा, रिश्वत, बग़ैर, चश्मा, ऐनक, सदमा, मोम, मीनाकारी, नक़्श, नौकर, विलायत, चुगली, मवेशी, हौज, बनपशा, ज़ोरा, ज़ुकाम, मर्दाना, जनाना, क़लई, मरहम, अमानत, शेख़ी, सुख़न, चर्ख़ी, दरकार, जिल्द, दस्तकारी, आतशबाज़ी, मालामाल, दर्ज़ी, मुकदमा, पैरवी, यकतरफा, मुनादी, चापलूस, हजामत, बज़ाज़, बस्ता, कमीना, गप, बिसाती, तरस, बारात, चन्दा, दहेज, लतीफा, लकवा, लुच्चा, नाग़ा, बुरादा, मकर, कसरत, पुल, हर्जाना, जुर्माना, चेचक, वगैरह।

'हाथी', अश्व 'अस्प' (घोडा), रथ 'रुख', और पदाति 'पियादा' बन बैठा। और बिसातको पहले क्या कहते थे, यह हमे स्वय याद नही आ रहा है। इसी तरह यहाँ घुडसवारीका प्राचीन रिवाज था, परन्तु इसमे भी ऐसा

अरबी-फारसीके बहुत-से शब्द अर्थ-परिवर्तन करके उर्दूमे लिये गये। जैसे--

फीलसोफ--यूनानी शब्द है। जिसका अर्थ हकीम होता है, किन्तु उर्दूमे तेज, तर्रार, फरेबी, मक्कार, बदबातिनको कहते है।

ख़सम--अरबी शब्द है जिसका अर्थ शत्रु है, किन्तु उर्दूमें देखिये कितना प्राणप्यारा 'शौहर' अर्थ हुआ है।

तमाशा-सैर--अरबीमें रफ्तारके अर्थमे आता है। उर्दूमे जुदा ही लुत्फ देता है।

इख़लास--अरबीमे खालिस करनेको कहते है। उर्दूवाले प्यार, मुहब्बत, इख़लास एक मायनोमे इस्तेमाल करते है।

ख़ैरात--अरबीमें नेकियो और उर्दूमे दानके लिये आता है।

तकरार--अरबीमें दोबारा कहने या काम करनेके लिये प्रयुक्त होता है, उर्दूमें झगडेके लिये।

ख़ातिर--अरबी-फारसीमे दिल या खयालके मौकेपर बोलते है, उर्दूमें आदरके लिये।

रोजगार--फारसीमें जमानेको, उर्दूमे आजीविकाको कहते है।

दाई--फारसीमे मासी (माँकी बहन)को और उर्दूमे बच्चा जनानेवाली या दूध पिलानेवालीको कहते है।

पतग--फारसीमे रोशनदानको और उर्दूमे परवानेको तथा हिन्दीमें कनकौवेको कहते है।

परचम--फारसीमें पहाडी गायोके बाल और दुमको, उर्दूमे झण्डेको कहते है।

कायाकल्प किया कि देखते ही बनता है । सवार, साईस, अस्तबल, जीन, जीन-पोश, लगाम, तग, नाल, बाग, सब ऐसा भेष बदलकर आये कि सूरत पहचानी नही जाती ।

५--यह आश्चर्यकी बात है कि उर्दूका प्रारम्भ गद्यसे न होकर पद्यसे हुआ । गोया बच्चीने बोलनेसे पहले गान अलापा । प्रारम्भके सभी कवि अभारतीय और फारसीके मँजे हुए शायर थे । अत वे अधिक-से-अधिक फारसी और कम-से-कम उर्दू-हिन्दीका व्यवहार उसी प्रकार करते थे जिस प्रकार वर्तमानमे अगरेज अग्रेजी-हिन्दीका समिश्रण करके बोलते है ।

६--उर्दूके प्रारम्भिक शायर चूँकि सब अभारतीय थे, और शासक जातिके थे, अत स्वभावत उन्हे अपनी सस्कृतिपर गर्व और यहाँकी अच्छी-से-अच्छी बातसे चिढ या नफरत होना लाजिमी था । इसीलिये उन्होने देशी भाषाके शब्दोके बजाय अधिक-से-अधिक फारसी-अरबी शब्दोका समावेश किया । छन्दकी बहरे भी फारसीकी चुनी और उपमा, उदाहरण और अलकार भी फारसीसे ही उठा लिये । उन्हे नौशेरवाँ बादशाहके समक्ष भारतके सूर्यवशी, कुरुवशी न्यायी शासक सुझाई ही न पडे । हातिमकी सखावतके आगे उन्हे कर्ण, मोरध्वज, हरिश्चन्द्र, दधीचि

पिशवाज--फारसीमे मुसाफिर या महमानके स्वागतको और उर्दूमे उस लिबासको कहते है, जिसे पहनकर वेश्या महफिलमें नृत्य करती है ।

दबंग--फारसीमें पस्त-फितरत (कायर)को और उर्दूमे बारौब और दिलेरको कहते है ।

दंग--फारसीमें अहमकको और उर्दूमें हैरतजदा हो जाने या आश्चर्यान्वित होनेको कहते है ।

कमरा--फारसीमें उस स्थानको कहते है जहाँ रातको चौपाये बाँधे जाते हो और उर्दूमें मकानके एक विशेष स्थानको कहते है ।

सब घटिया दिखाई दिये। उन्हे सीता-राम, नल-दमयन्ती, उर्मिला-लक्ष्मण, दुष्यन्त-शकुन्तलाके प्रेम-विरहसे लैली-मजनूंके इश्कमे ज्यादा सोजोगुदाज़ मालूम दिया। सौन्दर्यमे यूसुफके आगे राधा-मोहन, द्रौपदी, उत्तरा सब फीके जचे। और-तो-और, भीम, अर्जुन, जयद्रथ, कीचक, रावण, कुम्भकर्णको न जगाकर सोहराबोरुस्तमको कब्रसे खींच लाये। सावित्री, अनुसूया, अजना-जैसी पतिव्रता नारियोंसे अधिक आकर्षण उन्हे व्यभिचारिणी तुर्कीमे मिला। कोयल, पपीहेकी हूक उनके हृदयमे हल-चल क्या खाक मचाती? जबकि उनके हाथोपर बुलबुल बैठी रहती थी और घरोमे मुर्गियाँ कुकडूं-कूं बोलती रहती थी।

७—उर्दूके ये प्रारम्भिक शायर भारतीय भाषा और सस्कृतिसे अनभिज्ञ थे। इसलिये भी अभारतीय शब्द, उपमा, अलकार, उदाहरण अधिक-से-अधिक उर्दूमे समोये गये।

८—शासक फारसीदाँ थे। इसलिये उनपर अपने भावोको व्यक्त करने तथा उन्हे रिझानेके लिये मुसलमानोकी तरह हिन्दू भी अधिक-से-अधिक फारसी शब्द प्रयोग करने लगे और हिन्दू होते हुए भी शायरीमे—अल्लाह, खुदा, कयामत, हश्र, किबलओकाबा, दैरो-हरम आदि हजारो ऐसे शब्द व्यवहृत करने लगे, जो केवल मुस्लिम सस्कृतिसे सम्बन्ध रखते थे और भारतीय सस्कृतिके विरुद्ध होते थे।

परिणाम इसका जो हुआ, वह 'तारीखे अदबे उर्दू' के शब्दोमे पढिये—"इन्ही वजूहातसे यह होनहार बच्चा अपने हकीकी वाल्दैनसे जुदा होकर अपने मसनूई (बनावटी) वाल्दैनकी आगोशे-मुहब्बतमे तरबियत पाता रहा। अस्ल ज़बान-की खूबियाँ जिनमे उर्दूकी इब्तदा हुई थी बहुत कुछ फना हो गई।"[1]

फारसीकी नकलके कारण उर्दूकी हानियाँ

---

[1] तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ८-९

२--फारसी-अरबीके रीतिरिवाज तथा पारिभाषिक शब्दोकी भरमारसे उर्दू वास्तविकतासे हटकर सिर्फ नकलची रह गई।[1]

३--फारसीमे जिन भावोको हजारो शायर प्रकट कर चुके थे, उन्ही उगले हुए भावोको उर्दूमे सँजोनेके लिये होड-सी लग गई। हर शायर बार-बार इन कहे हुए भावोमे नवीनता और चमत्कार लाना चाहता था। सचाई कबतक साथ देती? लाचार झूठका पल्ला पकडना पडा, और फिर ऐसी बेतुकत झूठ बोली और बेपरकी उडाई कि शायरी का नाम ही झूठ हो गया। 'आतिश' जैसो को लिखना पडा--

'आतिश' बुरा न मानियो हक-हक जो पूछिये।
शायर है हम, दरोग[2] हमारा कलाम है॥

४--फारसीकी अन्धी अनुयायी होनेके कारण उर्दूने अप्राकृतिक व्यभिचार (लौंडेबाजी) भी गलेमे बाँध लिया।

५--फारसी-शायरी विलासितामे सराबोर थी। भारतके बादशाह और नवाब भी विलासी थे। अधिकाश उर्दू-शायरोकी आजीविकाके साधन यही लोग थे। अत इनको प्रसन्न करनेके लिये खुशामदाना कसीदे और विलासिताको उभारनेके लिये जो गजले कही गई उनमे चाटुकारी, ऐय्याशी और अकर्मण्यताका समावेश होना लाजिमी ही था। गजलोमे अप्राकृतिक व्यभिचार और बाजारू इश्ककी भरमारसे ही तसल्ली नही हुई। बल्कि 'रेख्ता' कहते-कहते कुछ लोग 'रेख्ती' भी कहने लगे, जिसे हिजडोकी बोली कहा जा सकता है। उस वक्त नवाबो, बादशाहोके चालचलन कैसे थे, आमजनताका झुकाव किस तरफ था--यह रेख्तीके आविष्कारसे भली भाँति जाना जा सकता है, क्योकि साहित्य तो एक दर्पण है, जो अपने सृजन-समयकी जनता और कविके

---

[1] तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ४२

[2] झूठ

भावोंको प्रतिबिम्बित करता रहता है।[1] जब आजीविकाका साधन बादशाहों, नवाबों और रईसोंको समझा जाने लगा तो, उनकी कृपादृष्टि प्राप्त करनेके लिये खुशामदाना कसीदे ही नहीं लिखे गये, अपितु शायर परस्पर कीचड़ भी उछालने लगे। प्रतिद्वन्द्वितामें एक दूसरेको उखाड़ फेकनेका जघन्य-से-जघन्य उपाय करने लगे। यहाँ तक कि जो कला कविता-क्षेत्रमें प्रकृतिकी ओरसे सौन्दर्य भर देनेके लिये बख्शी गई थी, उसका सदुपयोग (?) परस्पर फब्तियाँ कसनेमें होने लगा। ऐसी हालत देखकर 'मुसहफी'को लिखना पड़ा—

बजने शुअरा है या यह मुर्गियों की पाली है ?

इसी प्रतिद्वन्द्विताके कारण उर्दू-शायरीमें 'हिजो'[2]का आविष्कार हुआ। मौ० मुहम्मदहुसेन 'आजाद' लिखते हैं—"एक बार मुसहफी और इशामें हिजो हुई तो **नवाब आसफुद्दौला** लखनऊसे बाहर गये हुए थे। वापिसीपर जब उन्हें इस हिजोबाज़ीका इल्म हुआ तो उन्हें अपनी इस गैरमौजूदगीका बड़ा मलाल रहा। उन्होंने फौरन दोनों बाकमालोंकी हिजो मँगाकर बड़े शौकसे सुनी और दोनोंको इनाम दिया"।[3]

रेख्ती और हिजोपर ही सब्र नहीं हुआ, रंगीन मिज़ाजोंने 'हज़ल'[4] का

---

[1]रेख्तीके आविष्कारक सआदतयारखाँ 'रंगीन' थे। उनका और रेख्तीका परिचय मध्यवर्ती अध्यायमें क्रमानुसार मिलेगा।

[2]हिजोके ईजाद करनेवाले 'सौदा' थे। उनका और हिजो का उल्लेख मध्यवर्ती अध्यायमें क्रमानुसार मिलेगा।

[3]आबेहयात, पृ० २८५

[4]"हज़ल'का एक भी उदाहरण देनेमें हम असमर्थ हैं। इसे सुनकर निर्लज्जता भी दुम दबाकर भाग जाती है। मीर अटल नारनौली, मीर जाफरज़टल, जानी, चिरकीन, उफ़क़, शफीक और मीरग़ुलामहुसेन बुरहानपुरी इस तरहकी गन्द उछालनेमें मशहूर हुए हैं।

कवि अनेकार्थक श्लोक लिखकर अपनी प्रतिभाका परिचय देते रहे है। उसीका अनुसरण उर्दूमे भी करनेका प्रयत्न किया गया परन्तु सफलता नही मिली।[1] इन्ही द्विअर्थक शेरोमे बाज बाज़ शायरने बडी अश्लीलता बखेरी है। शाह हातिमने बडी कोशिश करके इन रग-आमेजियोसे उर्दूको पाक (मुक्त) किया।

उर्दूमें संस्कृतका असफल अनुकरण

मौलाना आजाद उर्दू-शायरोके नकलचीपनसे दुखी होकर फर्माते है—

"ये मज़मून इस कदर मुस्तामल हो गये है कि सुनते-सुनते कान थक गये। वही मुकर्रर (दुहराई हुई) बाते है। गोया खाये हुए बल्कि औरोके चबाये हुए निवाले है। उन्हीको चबाते है और खुश होते है।"[2]

उर्दू फारसीकी जूठन है

उर्दू-शायरी इतनी अविकसित क्यो रही? उसमे राजनैतिक,

---

[1] बानगी मुलाहिजा हो—

तुम देखो या न देखो हमको सलाम करना।
यह तो क़दीम ही से सरपर हमारे कर है॥

'कर' सस्कृतमे हाथको हिन्दीमे महसूलको कहते है और सरके बालोकी जडोमे जो खुश्की हो जाती है, उसे भी कहते है।

नहीं मुहताज जेवरका जिसे खूबी खुदा देवे।
कि आखिर बदनुमा लगता है देखो चाँदको गहना॥

गहना जेवरको भी कहते है और ग्रहण लगनेको भी।

[2] आबेहयात, पृ० ८४

सामाजिक, आर्थिक, क्रान्तकारी, भावनाएँ क्यो नही आई ? प्राकृतिक सौन्दर्य और जीवनको उभारनेवाले सन्देश क्यों नही ? इन

उर्दू-शायरीमें समयकी आवश्यकतानुसार भाव क्यों नहीं ?

५००-६०० वर्षोमे अनेक उलट-फेर, बडे-बडे युद्ध हुए, दुर्भिक्ष पडे, बादशाहते खत्म हुई, कत्लेआम हुए। ताजमहल-जैसा सजीव इश्कका स्मारक खडा हुआ। हीर-राँझा, सोहनी-महिवाल, नूरजहाँ-जहाँगीर-जैसे प्रेमपुजारी आये और चले गये। पद्मिनी-जैसी हुस्नेशोलाख, मज़रेआमपर आई जिसकी लौमे अल्लाउद्दीन झुलस गया। राणा प्रताप-जैसे पानीदार भी हुए। गदर भी हुए कयामते भी आई, परन्तु कही किसीका उल्लख नही मिलता। वही बुलबुल और पिजरा, वही साकी औ शराब, वही महफिलोमाशूक और वही रोना-बिसूरना--

सदसाला दौरे चर्ख था साग़रका एक दौर।
निकले जो मयकदेसे तो दुनिया बदल गई॥

--रियाज़ ख़ैराबादी

उर्दू-शायरीका इतना अविकसित रहनेका कारण यही है कि यह जनताकी शायरी न रहकर दरबारी शायरी बन गई। उर्दू-शायरीकी दिल्ली, लखनऊ, रामपुर और हैदराबाद चार हुकूमते सरपरस्त रही हैं। इन हुकूमतोकी सरपरस्तीसे उर्दू-शायरीका खूब प्रसार हुआ और शायर भी आजीविकासे निश्चिन्त रहे, परन्तु यही सरपरस्ती उर्दू-शायरीके लिये घातक सिद्ध हुई। शायर आजीविकाकी निश्चिन्तताके कारण अकर्मण्य बन गये और इस अकर्मण्यताके कारण आजीविकाकी रक्षाके लिये उन्हे वही बोल बोलने पडे जो उनके आश्रयदाता चाहते थे। इस परतन्त्रताके जीवनपर 'इकबाल'ने कैसी करारी चोट मारी है !

ऐ तायरे लाहूती उस रिज्कसे मौत अच्छी,
जिस रिज्कसे आती हो परवाजमें कोताही ॥[1]

उर्दू-शायरीमे अरबी-फारसी शब्दोकी भरमार न होती और अन्धा-धुन्ध उसके उदाहरणो, अलकारो और भावोकी भर्ती न हुई होती तो उर्दू भारतकी सर्वोच्च भाषा हुई होती। उर्दू-शायरोने शब्दोको इस खूबीसे खरादपर चढाया है, कि उनकी आभा पहले से कही ज्यादा चमक उठी है। महावरोको इस जाँफिशानीसे तराशा है कि दाद देनेको शब्द ढूँढे नही मिलते। बात-बातमे वह गुलकारियाँ की है कि लोग देख-कर सकतेमे आ जाते है। नाजुक खयालीकी ऐसी भीनी और रसभरी फुआरे छोडी है कि सावनी समाँ भी शर्माये। रामोहिरमाँके वे पुरअलम बोल बोले है कि कलेजा मुँहको आने लगता है। कल्पनाकी उडान, विरहका वर्णन, सब इस तरहके जवाहरपारे है कि सीनेमे लगा लेनेको जी चाहता है। उसकी सज-धज, शोखी, अदा, बाँकपन, भावुक हृदयको दीवाना बनाये बगैर नही रहते। उसके जमालियात (प्रेयसी-का रूप-वर्णन)पर लतीफ शेर किसे सिर फोडनेपर मजबूर नही करते ?

उर्दू-शायरीकी खूबियाँ

उर्दू-भाषामे हिन्दीकी तरह बडा गुण ये है कि इसमे दुनियाकी समस्त भाषाओके शब्द तत्सम या तद्भव रूपमे बडी आसानीसे पच-खप जाते है। उर्दूकी सईदी डिक्शनरी (पृ० सख्या १४०६)मे जो शब्द आये है, वे कुल ३२,७०८ है और वे निम्न भाषाओके है—

उर्दूकी पाचनशक्ति

---

[1]ओ अनन्त आकाशमे उडनेकी क्षमता रखनेवाले पक्षी ! इस पिजरेमे रखे भोजनसे मृत्यु श्रेष्ठ है, क्योकि पिजरेमे भोजन तो स्वादिष्ट मिलता है, परन्तु उडनेकी स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है।

अरबी	६३३०
फारसी	५४५५
उर्दू	२४१५
हिन्दी	६०३५
तुर्की-उजबकी	११७
अंग्रेजी	२२६५
संस्कृत	१४२
मलायरी	६६४५
कुल	३२७०४

आवश्यकतानुसार नवीन शब्द भी गढ़ जाते रहे हैं। 'भंगी' 'चूहड़ा' शब्द बहुत अपमानजनक है। ये लोग जितनी कठिन जनताकी सेवा करते हैं, उसको देखते हुए उक्त शब्द उच्च समाजकी कृतघ्नताके द्योतक थे। अकबरने इसे महसूस किया और उसने इनके लिये 'हलालखोर' शब्द प्रचलित किया। जहाँगीरने शराबका नाम 'रामरंगी' और औरंगजेबने आमोंको 'सुधारस' और 'रसनाविलास' नाम दिये। 'नारंगी' और 'सन्तरा' दोनों ही नाम इस फलके लिये मौजूं नहीं, क्योंकि इतना रंगीन होते हुए नारंगी और इतना लतीफ होते हुए भी संग (पत्थर) तरंग बहलाये, यह ज़ौकेसलीमके लिये जेब नहीं। इसलिये मुहम्मदशाहने 'रंगतरा' नाम दिया। मगर यह प्रचलित नहीं हुआ। शाबाशीके काम-पर या खुशीके मौकेपर हार पहनाना कुछ बदशगुन या कर्णकटु-सा मालूम होता था। उसे मुहम्मदशाहने फूल-माला नाम दिया। हजारों हिन्दी-शब्दोंमें अपनी जबानकी आधी पुट मिलाकर उन्हें दूध-मिश्रीकी तरह समरूप कर लिया।[1] और हजारों हिन्दी-उर्दू गंगाजमुनी शब्दोंके मेल-

[1]जैसे—राग-रंग, रंगमें भंग, रंग-रूप, राह-बाट, धन-दौलत

जोलसे हज़ारो ऐसे मुहावरे गढे है, जो जबानमे एक खास चटखारा पैदा कर देते है ।

प्राचीन हिन्दी-कविता नवरसो—१ शृगार २ हास्य ३ करुण ४ रौद्र ५ वीर ६ भयानक ७ वीभत्स ८ अद्भुत ९ शान्तरस— मे विभक्त है ।

हिन्दी कवित.के गुण-दोष

प्राचीन कवियोमे—तुलसी, सूर, कबीर, देव, सेनापति बिहारी, केशव, मतिराम, विद्यापति, भूषण दास, वेनीप्रवीन, जायसी, रहीम खान खाना, काफी प्रसिद्ध है । इनकी अमर रचनाओसे हिन्दीकी बडी श्रीवृद्धि हुई है । नवरसोमे शृगाररस सबसे प्रधान माना गया है और इस रसमे यूँ तो सैकडो कवियोने कौशल दिखलाया है, परन्तु कम-से-कम एक दर्जन ऐसी कृतियाँ भी विद्यमान है, जिनपर हिन्दी-साहित्य गर्व कर सकता है । भारतीय ललना पतिव्रता और सती होती है । इसलिये हिन्दी-कवितामे उसके पति-प्रेम, विरह, लाज आदिका बडा ही सजीव और स्वाभाविक वर्णन मिलता है । वह अपने पतिपर आसक्त होती है । इसलिये उर्दू-शायरीके अनुसार वह आशिक और पति माशूक होता है । अत वह अपने प्रेमी पतिको रिझानेके अनेक उपाय करती है । हिन्दी कवियोने स्त्रियोचित हाव-भावोमे इन सबका निरूपण किया है । इसके विपरीत उर्दू-शायरीमे आशिक स्त्री न होकर पुरुष होता है और माशूक स्त्री या कमसिन छोकरा ! और स्त्री या छोकरे उस आशिकसे नफरत करते है । अपने पास भी नही फटकने देते । इसीसे वह दुखी रहता

हुक़्का-पानी, शाम-सवेरे, जादू-टोना, बोल-बाला, धोगा-मुश्ती, रिश्ता-नाता, खत-पत्तर, पहरेदार, समझदार, चोली-दामन, चिराग़-बत्ती लाज-शरम, दाना-घास, किस्सा-कहानी, बाग-बाडी, ईमान-धरम, देर-सवेर, रीत-रिवाज, दान-दहेज, जात-पाँत, बेटा-दामाद, चिट्ठी-रसाँ, कुरता-धोती, पूंजीपति, वगैरह ।

है, पागल हो जाता है, बदनाम रहता है, रोता है और दर-दरकी ठोकरे खाता है। हिन्दी-कविताकी इस खूबीकी उर्दू-आलोचकोने मुक्तकण्ठसे सराहना की है।

परन्तु इश्किया शायरीकी तरह हिन्दीकी शृगारिक कविता भी धीरे-धीरे अश्लीलताकी चरम सीमाको पहुँच गई, और लोगोन इसमे इतनी गन्द बखेरी कि उसकी दुर्गन्धसे भलेमानस कोसो दूर भागने लगे। शृगाररस-की कविताका श्रीगणेश भारतकी अधोमुखी दशामे हुआ। इसके कवि भी विलासी और खुशामदपसन्द राजाओके आश्रित थे। अत उनको रिझाने-फुसलानेके लिये चाटुकार कवियोने कामुकता, अतिशयोक्ति, आदिका ऐसा बवण्डर उठाया कि सारा हिन्दी-साहित्य एकबारगी धूल-धूसरित हो उठा, और वही सब दोष उर्दू-शायरी-जैसे हिन्दीके शृगार-रसमे भी आ गये। और वह भी अपने मूर्ख मालियोके हस्तकौशल(?) के कारण विकसित होते-होते मुर्झाकर पीली पड गई। एक समय वह भी था जब कवियोके स्वाभिमानी और कलापारगत होनेके कारण राज्य दरबारो और जनतामे भरपूर सम्मान होता था। तभी शायद पद्माकरके मुँहसे यह गर्वोक्ति प्रस्फुटित हुई होगी--

इन्द्रपद छाँड़ि, इन्द्र चाहत कवीन्द्र पद।
चाहैं इन्द्ररानी, कविरानी कहिवाइवो॥

परन्तु जब कविता आत्म-साधना न रहकर पेट-साधना बन गई और कवि कुकरमुत्ताकी तरह ठौर-ठौर उपजने लगे तो वे कुत्तोकी तरह गली-गली मारे-मारे फिरने लगे। कहीसे दुतकारे जानेपर एक कवि तो खीझकर बकने लगता है--

घरते कढे न, कवि आये सुनि द्वार, ऐसे
पाजिनके मुखमे पेसाब करि देनो है॥

और एक कवि तो इतने अपमानित हुए कि वे पेशाब करना भी गुनाह समझते है --

"ऐसनके द्वारे कबौं मूतन न जाएँगे"

मालूम होता है ये कवि शायद अमृतधारा मूतते थे। अश्लीलताके साथ उर्दूकी तरह पुनरुक्ति-दोष, भावापहरण, वेपरकी उडान, झूठके अम्बार और असम्भवताकी भीड लग गई, जिससे हिन्दी शृगार कविता हतप्रभ हो गई। वह केवल पोथियोमे दबकर रह गई। सूर्पणखाका रूप लेकर जनता तक पहुँचनेका उसे साहस नही हुआ।

हिन्दी-भाषामे वह पाचनशक्ति रही है कि इसने सस्कृतके ४०,००० शब्दोको तत्सम और तद्भव रूपमे उदर-गह्वरम रख लिया। अरबी-फारसी, पुर्तगाली, तुर्की, ईरानी और अग्रेजीके भी कितने ही हजार शब्द पचा लिये। प्रान्तीय भाषाओके लिये तो इसके दर सदैव खुले रहे है। एक जीवन-सन्देशदायिनी भाषाको इससे अधिक और सुविधा चाहिये भी क्या ?

परन्तु खेद है कि हिन्दुओकी तरह हिन्दीकी पाचनशक्ति भी अब नष्ट हो चुकी है। हिन्दुओने ग्रीक, शक, हूण, आदिको अपनाकर आत्मसात कर लिया और अब मालम भी नही होता कि ये अपनाये हुए लोग कौन-कौन है ? किन्तु पाचनशक्ति बिगडी तो पीछेके आक्रमणकारियोको न भगा ही सके न अपना ही सके। इस अनुदारताका दुष्परिणाम जो भारतको भोगना पडा वह मरकर भी भारतवासी नही भूलेगे।

यही अनुदार मनोवृत्ति हिन्दीमे भी आ गई है। तद्भव शब्दोके बजाय तत्सम शब्दोका प्रचलन आरम्भ हो गया है। दूसरी भाषाओके वे शब्द भी जो दूध-मिश्रीकी तरह घुल-मिल गये थे, मुँहमे उँगली देकर वमन किये जा रहे है। आवश्यकतानुसार शब्दोका सृजन दूषण नही भूषण है, परन्तु अभ्यस्त शब्दोकी चोटी पकडकर निकालना और नवीन रगरूटोकी भर्ती करना भी कहाँतक उपयुक्त है, यह भविष्य ही

बता सकेगा। हम तो 'हफीज़'के इन बोलोपर आशिक हैं—

'हफीज़' अपनी बोली मुहब्बतकी बोली।
न उर्दू, न हिन्दी, न हिन्दोस्तानी॥

हिन्दीमें हजारो शब्दोकी सृष्टि हो रही है, कृपया इन चन्द शब्दोका मतलब तो बताइय—

वाष्पवाहकयान[1], द्विचक्रअश्वरथ[2], लोहपथगामिनी-विश्रामस्थल[3], मार्गव्ययप्रदानपत्रिका[4], यात्राप्रमाणपत्रदायक[5], कर्णपुर[6], विश्रामकेन्द्र-स्थल[7], अवरुद्धस्थल[8], ताम्बूल तथा तमालपूगीफलशाखा-विचूर्ण-विक्रेता[9], द्विताम्रमुद्रा[10], रसालकेदलीफलविक्रेता[11], द्विदशकेदलीफल[12], प्रतिशर्परी रसाल, भारवाहक[13], गतिशून्य[14], गमनागमनसूचकअरुणलौहस्तम्भ[15] समयसूचिका[16], गोधूमचूर्ण[17], करपट्टिका[18], सूर्यप्रकाशवस्त्र[19], क्रयशाला[20], बहित्ररथ[21], लिपिक[22], प्रव्याजि[23], वज्रचूर्ण[24]।

---

[1]इञ्जन, [2]इक्का, तागा, [3]स्टेशन,
[4]टिकट, [5]बुकिंगक्लर्क, [6]कानपुर,
[7]जकशन, [8]प्लेटफार्म, [9]पानवाला;
[10]अधन्नी, फल बेचने वाला, [11]केले एक दर्जन,
[12]एक टोकरी आम, [13]दुली; रुकना (ट्रेनका स्टेशनपर
रुकना); [14]सिगनल, [15]टाइमटेबुल,
[16]गेहूँका आटा, [17]बाटी, [18]रक्तवस्त्र या पीताम्बर;
[19]दुकान; [20]मोटरकार, [21]क्लर्क;
[22]प्रीमियर; [23]सीमेण्ट।

उर्दू-शायरीकी जन्म-भूमि

यह भी एक आश्चर्यकी बात है कि जिस दिल्लीको उर्दूपर इस कदर नाज़ और फख्र है और जो दिल्ली मुसलिम-शासकोंकी चहेती रही है,

दक्खनी शायरी क्या है ?

उसके बतन (औरस)से उर्दूका जन्म न होकर दकनसे हुआ है। इसका मुख्य कारण यह था कि दिल्लीमें गो फारसी-शायर अच्छे-अच्छे मौजूद थे, लेकिन देशी जबानसे परिचित न थे। हालाँकि फारसी राज्य-भाषा घोषित हो जानेके कारण फारसी शब्द हिन्दुओंमें धीरे-धीरे प्रचलित होने लगे थे। यहाँ तक कि सूर, तुलसी, कबीर, नानक आदिकी रचनाओंमें भी यत्र-तत्र फारसी शब्दोंकी पुट मिलती है। मुसलमानोंमें देशी भाषाके शब्द रूढ होने लगे थे। बाबर हिन्दमें नया-नया आता है वह भी अपने शेरमें—रोती (रोटी) मोती, कुज (कुछ), और मुजको (मुझको) जैसे हिन्दी-शब्द लाता है। हुमायूँके शासन-कालमें मलिक मुहम्मद जायसीकी पद्मावत इस बातकी साक्षी है कि मुसलमानोंमें देशी भाषाका प्रचलन किस हद तक हो गया था, और अकबरके युगमें तो हिन्दीके सैकड़ों शब्द फारसीके सरकारी रुक्कों और दैनिक व्यवहारमें व्यवहृत होने लगे थे। अकबरकी हिन्दू-मुस्लिम-प्रेमकी भावनाने हिन्दुओंमें फारसी और मुसलमानोंमें हिन्दीके लिये काफी आकर्षण उत्पन्न किया। यहाँ तक कि अकबरी युगमें फारसी-शायर भी अपनी रचनाओंमें हिन्दी-शब्दोंका समावेश करने लगे। जैसे—हार, चमेली, राग, धोबी, तमोली, गुडहल, मौलसिरी, वगैरह। दिल्ली और उसके इर्द-गिर्द फारसी-हिन्दी मिश्रित भाषाका कुछ-कुछ प्रचार हो चला था, परन्तु वह साहित्यिक रूप नहीं ले पाई थी। इसी साहित्यिक भाषाका जन्म दकनमें हुआ।

दिल्लीसे इतनी (१०४३ मील) दूर दकनमे उर्दूके जन्म लेनेका कारण यह था कि यहाँ मुस्लिम-शासनका सूत्रपात ही हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यमे हुआ। बहमन वशका प्रथम मुस्लिम-शासक हसन' गग् नामक ब्राह्मणका इतना श्रद्धालु और विनम्र भक्त था कि जब (सन् १३४७ ई०मे) वह बादशाह बना तो वह कृतज्ञता-स्वरूप 'गगू' ब्राह्मणकी स्मृतिको अमर रखनेके लिये अपने नामके आगे गगू बिरहमन लिखने लगा। जिसका अपभ्रश बहमन हो गया। फिर इस वशके सभी शासक बहमन कहलाये। एक मुसलमान और वह भी विजेता, फिर भी अपने वशको बिरहमनसे ख्याति-दिलाये कितना अनूठा स्वामिभक्ति और हिन्दू-मुस्लिम प्रेमका परिचायक है!

हसन बादशाहने केवल गग् ब्राह्मणका नाम ही अपने वशके साथ नही जोडा, अपितु उसे मालमत्री बनाकर शासनाधिकारमे भी सम्मिलित किया और तभीसे ब्राह्मणोको मालमन्त्री पद दिये जानेका रिवाज-सा चल पडा। पहले मुल्की हिसाब फारसी लिपिमे लिखा जाता था, अब हिन्दी भाषा और हिन्दी-लिपिमे लिखा जाने लगा। हिन्दुओकी शासन-विभागमे नियुक्ति होनेसे देशी भाषाकी बडी उन्नति हुई। परिणाम इसका यह हुआ कि हिन्दू-मुसलमानोमे प्रेम-भाव बढने लगा। वे एक दूसरेकी सस्कृति, आचार-व्यवहार, वषभूषा, खान-पान और बोल-चालसे परिचित होने लगे। इब्राहीम आदिलशाहने अपने राजकीय कार्यके लिये

'हसन' एक दरिद्र अफगान था, जो ३० वर्षतक 'गगा' ब्राह्मणके यहाँ खेतोमें कार्य करता रहा। एक दिन हसनको खेतमे कुछ गडा हुआ धन मिला। यह धन उसने अपने मालिकको दे दिया। ब्राह्मण उसकी ईमानदारीसे इतना प्रसन्न हुआ कि दिल्ली बादशाहके दरबारमे जहाँ इसकी बहुत कुछ प्रतिष्ठा थी, उसने कह-सुनकर उसे सवारोंका सरदार बनवा दिया। यही हसन अवसर पाकर बादशाह बन बैठा।

हो गई। फौजी लश्करोंमें जा-जाकर फौजियोंसे दीदे लड़ाने लगी तो इसे सब बाज़ारू, लश्करी (उर्दू) कहने लगे।

हिन्दू-मुस्लिम-मिलापके फलस्वरूप जिस शायरीका जन्म हुआ, उसमें प्रेम, इश्क-विरहका वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक, अकृत्रिम, सीधे-सादे ढंगपर किया जाता था। इस नवोत्पन्न भाषाके पास शब्दोंका भण्डार बहुत कम था, होता भी तो सुरक्षित रखनेका तब शऊर भी क्या हो सकता था? इस नवोत्पन्न शायरीने आँखें खोलीं तो देशी भाषाओंके गीत थिरकते देखे। लामुहाला इसने भी वही नकलो-हरकत शुरू की। परन्तु रक्तमें फारसियतका अंश भी था। वह असर रंग दिखाये बिना न रहा। और यह बच्ची अपनी हमजिन्स सहेलियोंको प्यार करनेकी बजाय छोकरोंके साथ खेलने लगी।[1] फिर भी सत्संगतके कारण इश्कके इज़हारमें स्वाभाविकता बनी रही। अतः माशूकके लिये तुर्कीहूरके बजाय सजन, पिया, बुलबुलके बजाय पपीहाका प्यार किया। रीति-रिवाज भी स्थानीय बने। स्थानीय ही अलंकारोंसे अलंकृत हुई।

यही कारण है कि इस ३०० वर्षकी सतजालकी शायरीको उर्दू-इतिहासकारोंने उर्दू-शायरी तस्लीम नहीं किया है। इसे वह शायरीका बीजारोपण समझते हैं, और यही कारण है कि इन तीन सदियोंकी विशाल शायरीका कहीं भी किसीने उदाहरण नहीं दिया। कितने खेद और दुःखकी बात है कि यह हिन्दु-मुस्लिम संस्कृतिके ऐक्यका साकार उदाहरण इन मज़हबी दीवानोंके ताअस्सुबके कारण नज़रोंसे ओझल हो गया और नहीं कहा जा सकता कि उसका कुछ अंश कहीं सुरक्षित भी है या सब दीमकों, चूहोंके पेटमें चला गया।

२० जून १९४९

---

[1] यानी हिन्दी-कवितामें स्त्रीका पतिसे और पतिका स्त्रीसे प्रेम वर्णन किया जाता था, परन्तु उर्दूके आशिकने स्त्रीसे इश्क न करके छोकरोंसे किया। इसीको 'अमरद परस्ती' कहते हैं।

प्रारम्भिकयुग

[दौरे मुतक़द्दमीन]

यह सोचते ही रहे और बहार ख़त्म हुई।
कहाँ चमनमें नशेमन बने, कहाँ न बने!

—असर लखनवी

पूर्वार्द्ध

दक्खनी शायर

आदिल और कुतुबशाही शासन-काल ई० स० १५८० से १६८६ तक

उत्तरार्द्ध

उर्दूके आदि शायर

औरंगजेब शासन-काल १६८६से मुहम्मदशाह शासन-काल १७४८ तक

दक्खनी शायर

१ इब्राहीम आदिलशाह
२ मुहम्मदअली कुतुबशाह
३ सुलतान मुहम्मद कुतुबशाह
४ सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह
५ अब्दुलहसन तानाशाह

उर्दूके आदि शायर

१ वली
२ दाऊद
३ सिराज

देहलवी शायर

४ फाइज
५ आरजू
६ मजहर
७ हातिम
८ मजमून
९ आबरू
१० नाजी
११ यकरंग
१२ अहसन
१३ फुगाँ

यद्यपि दक्खनी शायरोंका परिचय और उनकी शायरीके नमूने उर्दू-लश्करोंके ताल्लुककी वजहसे दस्तयाब नहीं हैं फिर भी जिनको उन्होंने उर्दू-शायरीके प्रारम्भिक शायरोंमें समझकर उल्लिखित किया है, उनका संक्षिप्त परिचय और उनकी शायरीका एक-एक दो-दो नमूना बतौर बानगी पेश किया जाता है।

१—इब्राहीम आदिलशाह—यह बीजापुरकी आदिलशाही हुकूमतमें पाँचवाँ बादशाह (ई० स० १५७९-१६२६) हुआ है। यह ९ वर्षकी उम्रमें सिंहासनारूढ हुआ। इसे संगीतका बहुत अच्छा ज्ञान था। हजारों संगीतज्ञ इसने राजधानीमें एकत्र किये और 'नवरसमंजरी' एक ग्रंथ भी संगीतपर लिखा। यह स्वयं गीत लिखता था और उन्हें गाता भी था। क्योंकि इसे हिन्दी गीतोंमें रुचि थी इसीलिये गीतोंमें दक्खनी हिन्दी-शब्द भी फारसीके साथ मिले होते थे। यही गीत धीरे-धीरे फारसी-छन्दोंमें आनेपर उर्दूकी प्रथम शायरी समझे गये। परन्तु अफसोस कि इनकी कविताका नमूना कहीं भी नजर नहीं पड़ा। अतः नहीं कह सकते इनकी भाषा कैसी थी।

२—मुहम्मद कुली क़ुतुबशाह—यह गोलकुण्डाकी क़ुतुबशाहीका पाँचवाँ बादशाह (ई० स० १५८०-१६१२) था। यह बड़ा रंगीन और गुणज्ञ था। इसने 'भागमती' नामक हिन्दू ललनासे शादी की और प्रेम-स्मारक-स्वरूप गोलकुण्डा राजधानीके समीप भागनगर बसाया। जो वर्तमानमें हैदराबाद कहलाता है। यह बहुत अच्छा शायर था। फारसी ज़बानके अलावा मुल्की ज़बानमें भी शेर कहता था। इसकी रचना 'सनीमेकुलियात' मौजूद है। अब्दुलमा नियाज फतहपुरी लिखते हैं—"सनीमेकुलियातके देखनेसे मालूम होता है कि जब अकबरी अहदमें फारसी और भाषाने सिर्फ बोलचालकी सूरत अख्तियार करनेके अलावा कोई और शक्ल अख्तियार नहीं की थी, ठीक उन्हीं दिनों यह बादशाह इस नई ज़बानमें शायरी कर रहा था।'[1]

नमूना— **पियाहूँ हजरतके हित आबेकौसर।**
तो शाहां ऊपर मुझ कलसकर बनाया॥

इसके बाद इसी वंशमें निम्न तीन बादशाह और हुए हैं वे तीनों ही शायर थे।

---

[1] **इन्तक़ादियात भाग २, पृ० ८२-८३**

३—सुलतान मुहम्मदकुतुबशाह—(ई० स० १६११-१६२५)के कलामका नमूना—

पिया साँवला मन हमारा भुलाया।
नजाकत अजब सब्ज रगमें दिखाया॥
साकिया! आ, शराबेनाब कहाँ?
चन्द्रकी प्यालीमें आफताब कहाँ?

४—सुलतान अब्दुल्लाकुतुबशाह—(१६२५-१६७८ ई०)की शायरीका नमूना—

ऐ परी पैकर! तेरा मुख आफताब।
देखता हूँ नूर है या मुझमें ताब॥
तिरी पेशानीपर टीका झमकता।
तमाशा है उजालेमें उजाला॥

५—अब्दुलहसन तानाशाह—की शायरीका नमूना—

किस दर कहाँ कौं जाऊँ मुझदिलपें भल बझराट है।
इक बात किये होंगे सजन यौं जो ही बाराबाट है॥

बिजापुर और गोलकुण्डेके शासक स्वय शायर और कलाविद थ, अत वे शायरो और कलाकारोका आदर भी खूब देते थ। जवाहरातकी कद्र जौहरी ही कर सकते है, भीलनी नही।

हजारो साल नरगिस अपनी बेनूरीपें रोती है।
बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर पैदा॥

—इकबाल

अत इन दोनो सल्तनतोमे उत्साह मिलनपर जनताम भी शायर हुए। गोलकुण्डा सल्तनतमे इब्ननिशाती, गवासी, वाहबी, तहसीन कुतबी, तबई, शाहमलिक, अमीन और बिजापुरमे नूरी शाही, मिर्जा

रस्मी, नुसरती, हाश्मी, दौलत, आजिज़, बहरी, वली दक्खनी, वज्दी, आज़ाद, मशहूर शायर हुए हैं। इन सबने मसनवियोंकी ओर अधिक ध्यान दिया और प्रस्तुत पुस्तकमें ग़ज़लका उल्लेख हो रहा है। मसनवियोंके सिर्फ एक-एक, दो-दो नमूने देनेमें ही पुस्तक भर जाय, इसलिये यहाँ उससे गुरेज़ किया जाता है और कभी अवसर मिला तो उनकी मौलिक प्रकाशित-अप्रकाशित रचनाओंकी खोज करके नमूने देनेका प्रयत्न किया जायगा और तभी विस्तारसे दक्खनी शायरीपर भी प्रकाश डाला जायगा। यहाँ तो क्रम बनाये रखनेके लिये उल्लेख मात्र कर दिया है। इस प्रकार प्रारम्भिक युग (दौरमुतकद्दमीन) का पूर्वार्द्ध युग समाप्त होता है।

१

वली

[ई० स० १६६८-१७४४]

शम्स उद्दीन 'वली' औरगाबाद दकनके रहनेवाले थे। ये दो बार दिल्ली गये। उर्दू-इतिहासकार इन्हींको उर्दूका प्रथम शायर मानते हैं। अमीर खुसरोने जिस भाषाको जन्म दिया था और जिसे शाहानेदकनने पाला था, उसी बच्चीको इन्होंने अरबी-फारसीके परिधानमे लपेटकर मलकये हिन्द देहलीकी गोद दे दिया। सबसे प्रथम वलीने अमीर खुसरो-की ईजादकर्दा भाषामे हिन्दी-शब्दो, मुहावरो, उपमाओं, अलकारो और उदाहरणोका बहिष्कार प्रारम्भ किया। दूसरे शब्दोमे यूं कहिये कि अमीर खुसरोके बनाये हुए मगमपर तास्सुबका बाँध बाँधकर वलीने एक अलग नहर निकाली।

औरगज़ेबने (ई० स० १६८६म) जब दक्षिणकी सल्तनतोंको समाप्त किया और औरगाबादको अपना केन्द्र बनाया तो बिजापुर और गोल-कुण्डाके शायर भी वही पहुँच गये। वहाँ दिल्ली और ईरानके फारसी शायरोंकी सुहबतमे शायरीमे परिवर्तन होने लगा। वली प्रथम बार १७०० ई०मे औरगज़ेबके शासनकालमे दिल्ली गये। वहां शाह गुलशनसे इनका परिचय हुआ जो प्रतिष्ठित और वयोवृद्ध शायर थे। वलीसे हिन्दी-बाहुल्य शेर सुनकर इन्होने वलीको फारसी लफ्ज़ोके इस्तेमालकी तरगीब दी। दूसरी बार वली दिल्ली मुहम्मदशाहके शासनकाल ई० स० १७२४मे गये और अपने साथ 'कलामेरेख्ता' भी ले गये, जिसकी वहाँ काफी

शुहरत हुई। दिल्ली-यात्राके बाद वलीके कलाममें फारसीयत बढ़ती गई और हिन्दी-शब्द बहिष्कृत होते गये। जो वली दिल्ली जानेसे पूर्व लिखा करता था —

'तेरे आनेकी बाट ऊपर बिछाये हूँ मैं अँखियांको।'

दिल्लीसे वापिस आनेपर ऐसे बोल बोलने लगा—

सहर है सरवे गुलजबींकी सदा।

वलीकी उर्दू-शायरीके नमूने—

दिल छोड़के यार क्योंकि[1] जावे ?
जलमी है शिकार क्योंकि जावे ?

अजब कुछ लुत्फ रखता है शबेखिलवतमें[2] दिलबरसे।
सवाल आहिस्ता-आहिस्ता जवाब आहिस्ता-आहिस्ता॥

खूबरू खूब काम करते हैं।
इक निगहमें गुलाम करते हैं॥

याद करना हर घड़ी तुझ यारका।
है वजीफा[3] मुझ दिले बीमारका॥

बेवफाई न कर खुदासूं डर।
जग हँसाई न कर खुदासूं डर॥

जिस वक्त ऐ सरीजन ! तूं बेहिजाब[4] होगा।
हर जर्रा तुझ झलकसूं जूं आफताब होगा॥

---

[1]क्योकर, [2]एकान्तरात्रिमे,
[3]हसीन, रूपवान, [4]पाठ करना,
[5]बेपर्दा।

मुझको हुआ है मालूम ऐ मस्ते जामे खूनी ।
तुझ अंखड़ियोंके देखे आलम खराब होगा ।।

लिया है जबसूं मोहनने तरीक़ा खुदनुमाईका[1] ।
चढ़ा है आरसीपर तबसे रंग हैरत फिजाईका ।।

ऐ 'बली' ! रहनेको दुनियामें मुक़ामेआशिक़[2] ।
कूचयेजुल्फ है या गोशयेतनहाई[3] है ।।

जिन्दगी जामेऐश[4] है लेकिन ।
फायदा क्या अगर मुदाम[5] नहीं ।।

---

[1]अपने प्रकट करनेका, [2]प्रेयसीकी लटें, सुखका प्याला, [3]एकान्त कोना, [4]प्रेमियोंका स्थान, [5]स्थायी ।

२

दाऊद

मिर्ज़ा दाऊद औरंगाबादके रहनेवाले और वलीके समकालीन थ। एक छोटा-सा दीवान इनकी यादगार है।

रात दिन है पुकारमें 'दाऊद'।
ज्यूं पपीहा 'पिया, पिया' तुम बिन॥

मेरा अहवाल चश्मेयारसे पूछ।
हक़ीक़त दर्दकी बीमारसे पूछ॥

ऐ जाहिदां ! उठाओ जबींको[1] ज़मीनसे।
जो सरनविश्त[2] है उसे कां तक मिटाओगे ?

—इन्तक़ादियात, भाग२, पृ० ८६

---

[1]मस्तकको, [2]भाग्यमे लिखा।

३

सिराज

सैय्यद सिराजुद्दीन 'सिराज' भी औरंगाबाद-निवासी थे। ये बारह वर्षकी उम्रसे ७ साल तक उन्मत्तावस्थामे मारे-मारे फिरे।

शहेबेखुदीने[1] अताकिया[2] मुझे अब लिबासेबरहनगी[3]।
न खिरदकी बखियागरी रही न जुनूंकी परदादरी रही॥

चली सिम्तेग़ैबसे इक हवा कि चमन सरूरका[4] जल गया।
मगर एक शाखेनिहालेग़म[5] जिसे दिल कहे सो हरी रही॥

नज़रेतग़ाफुलेयारका गिला किस ज़बांसे बयाँ करूँ।
कि शराबेसदकदहे आरज़ू खुमेदिलमें थी सो भरी रही॥

वह अजब घडी थी कि जिस घडी लिया दर्सनुस्खये इश्क का[6]।
कि किताब अक्लकी ताकपर ज्यूं धरी थी त्यूं ही धरी रही॥

---

[1] 'दीवानगी रूपी बादशाहने
[2] दान किया
[3] नग्नतारूपी पोशाक
[4] अक्लकी,
[5] अन्तरिक्षकी आरजू
[6] 'आनन्दका
[7] 'रंजकी टहनी
[8] 'प्रेयसीकी उपेक्षा-दृष्टिकी
[9] 'शिकायत,
[10] अभिलाषारूपी शराब
[11] 'दिलके बदलेमें
[12] प्रेमशास्त्र
[13] 'आनन्दपर।

तेरे जोशे हैरते हुस्नका असर इस कदरसे अयाँ[1] हुआ।
कि न आइनेमें जिला रही न परीकी जल्वागरी[2] रही॥

—अदबे-उर्दूसे

शुक्रे अल्लाह, इन दिनो तेरा करम होने लगा।
शेवयेजौरोसितम[3] फिलजुमला[4] कम होने लगा॥

मुद्दतसे गुम हुआ दिले बेगाना ऐ 'सिराज'!
शायद कि जा लगा है किसी आइनाके हाथ॥

—इन्तकादियात भा० २, पृ० ८८

इसी दौरमें आजिज, यार, महरूम, ईमा, दाग, रंगीन, महदी, अजीज महर, पनाह, रजा ईरकी महताब, शरफत शहीद, जिया काजिम मल्लिला, नजम, हमदम, दद हशमत, हाजी कादर फख्र, कद्र वगैरह शायर हुए है, जिनका उल्लेख करना यहाँ व्यर्थ है। वही सब पुराने ढगकी शायरी है। मालमातके लिये इस ढगके तीन शायरोका उल्लेख ऊपर कर ही दिया है।

---

[1]प्रकट, जमत्कार [2]सौन्दर्य चमत्कार

[3]अत्याचार करनेकी बात [4]आखिरकार।

देहलवी शायर

वलीकी रेख्ता-शायरीका दीवान दिल्ली पहुँचा तो वहाँ धूम मच गई। कहनेको दिल्ली मुस्लिम शासनकी राजधानी थी। भारतके ख्याति प्राप्त लोग यहाँ रहते थे। फारसीके अच्छे-अच्छे शायर यहाँ विद्यमान थे, परन्तु रेख्ता-शायर कोई न था। विधिका विचित्र विधान देखिये कि जो दिल्ली उर्दूकी प्रामाणिकताके लिये सनद समझी जाती है, उस दिल्लीमे उर्दूका जन्म न होकर दक्षिणमे होता है, और वहाँसे यह बच्ची अमानतन लेकर यहाँ परवान चढाई जाती है और बडी जाँफिशानीसे सँवारकर इस तरह नोक-पलक निकाले जाते है कि जो देखता है लहालोट हो जाता है।

गरज यह कि वलीके रेख्ता-कलामको देखकर अहले दहलीके दिलोमे भी रेख्ता कहनेका जौक-शौक हुआ और यहाके फारसी शायर भी मुँहका जायका बदलनेको फारसी शेर कहते-कहते दो-चार रेख्ता शेर भी कहने लगे, परन्तु मुहम्मदशाह रगीले (ई० स० १७१९) से पूर्व कोई खास रेख्ता-शायर देहलीमे नही हुआ। मुहम्मदशाह रँगीलेकी रगीली तबियतने जब रग पकडा तो इसके यहा गवैयो और शायरोके झुण्ड इकट्ठे होने लगे।

कुदरतका करिश्मा देखिये कि इधर मुस्लिम सल्तनतका सितारा डूब रहा था और उधर शायरीका आफताब आसमानमे चढ रहा था। उर्दू-शायरीका प्रारम्भ ही सल्तनतके जवालमे हुआ है, इसलिये जवालके वक्त सल्तनतमे ऐय्याशी, काहिली वुजदिली वगैरह जो ऐब आगए थे, वे सब

---

[1] इस समय दिल्ली विलासिताके रगमे डूबी हुई थी। हुस्नोइश्ककी शायरीका बाजार गर्म था। शूर-वीर और विद्वानोके स्थानपर दरबारमे भाँड और मीरासी सुशोभित हो रहे थे। बादशाहसे लेकर रैयत

शायरीसे भी चिमट गय। इस युगमे जो मशहूर शायर हुए हैं, उनका अत्यन्त सक्षिप्त परिचय और कलामका नमूना इस अध्यायमे दिया गया है।

ध्यान रहे यह उर्दू-शायरीका प्रारम्भिक युग है। वह कहाँ और कैसे पैदा हुई, उसने किस प्रकार आँखे खोली, कैसे घुटनियों चली, यही सब इस दौरमे देखनेकी चीज़ हैं। ज़बान किस तरह पैदा होती है, किस तरह बढती है, प्रारम्भमे क्या-क्या खामियाँ रहती है, और फिर वह किस प्रकार सँवरकर अपने पराये को आकर्षित करती है, यही भाषित करनेके लिये अत्यन्त सक्षपम इस युगके कवियोका परिचय और उनकी शायरीके नमूने दिये हैं। इस युगकी शायरी बहुत हल्की और अविक-

---

तक सब ऐशो-आरामसे मस्त थ। सभीकी आँखोंमे विलासिताका मद छाया हुआ था। दीन-दुनियाकी किसीको चिन्ता नहीं थी। इन्हीं दिनोमे उचित अवसर जानकर नादिरशाहने (ई० स० १७३९मे) हिन्दुस्तानपर आक्रमण कर दिया। लाहौरके शासकने इस आक्रमणकी सूचना मुहम्मदशाहको भेजी, तब वहाँ शराबका दौर चल रहा था। शराब पीकर हरएक बदमस्त था। सन्देश सुनकर एक दरबारीने हसकर कहा—"अजी हुजूर! असल बात तो यह है कि लाहौरवालोके मकान इतने ऊँचे हैं कि उन्हे बहुत दूरकी सूझती है। न कोई नादिरशाह है, न उसकी इतनी हिम्मत ही है कि वह हुजूर-जैसे शाहका सामना कर सके। दूसरे बोले—'अमाँ, आता है तो आने भी दो, हम तो जनानेमे हो लेगे।' तीसरे बोले—'हम भी तो देखे नादिरशाह कैसे लडता है वह बहरेतवील गाऊँ कि बज्दम न आजाय (बेहोश न हो जाय) तो मेरा ज़िम्मा!' इसी तरह सबने ही-ही-हू-हू करते हुए आक्रमणकी बातको टाल दिया और लाहौरके शासकका सन्देश-पत्र शराबमे घोलकर पी लिया गया। आखिर मुहम्मदशाहको अपनी अकर्मण्यताके कारण नादिरशाहके हाथ बन्दी होना पडा। लालकिलेपर उसका अधिकार हो गया और दिल्लीमे कत्लेआम हुआ।

सित है, इसीलिये हमने इसका अधिक उल्लेख करनेसे परहेज़ रक्खा है। आजके उन्नतिशील युगमे इस शायरीकी कद्र भी क्या ? क्रम बनाये रखने-के लिये नाम मात्रका उल्लेख कर दिया है। उर्दू-शायरीने जिस युगमे जितनी अधिक उन्नति की है। हम उतने ही परिमाणमे उत्तरोत्तर अगले युगोमे उसका उल्लेख करेगे।

इस प्रारम्भिक युगमे बहुत-से ऐसे शब्द आये है जो वर्त्तमानमे कानोमे खटकते है और अब उनका प्रयोग नही होता, परन्तु प्रारम्भमे होता था। ठुमुक-ठुमुक कर चलने और गिरनेवाली बच्चीसे और आशा भी क्या की जा सकती थी ?

प्रारम्भिक युगकी उर्दू	वर्त्तमान उर्दू
मू, से, सेती	से
भीतर	अन्दर
क्	का
मुझदिल	मेरादिल
हमनकूँ	हमका
माहन, मरीजन, पी, पीतम	माशूक
जगमे	दुनियामे
आझवाँ	आम
भवाँ, पलकाँ	भवे पलके
तुझ लबकी सिफत	तेरे लबकी सिफत
नैन	आख
नाईं	तरह, मिसाल
दहन	दहन
जग	जहान, दुनिया
उठावा	उठाया
मिरा	मरा

बचन	कलाम
यूह	यह
नित	हमेशा
मुख	मुँह
तस्वी	तसवीह
सही	सहीग्र
बिगाना	बेगाना
क्योकि	क्योंकर
तुझ यारका	ऐ हबीब तेरा
तुझ अँखडियाँ	तेरी नज़रे
तुम बिन	तुम्हारे बगैर
मीता (मित्र)	दोस्त
चित्रकारी	मुसव्वरी
नैन मिलाय गया	नज़र मिला गया, लडा गया
पलक	मिजगाँ
किसू, कभू	किसी, कभी
कहियो	कहना
न जानूं	न जाने
जागा	जगह
जाहिदाँ	जाहिदो
यूं, वूं	इस तरह, उस तरह

उर्दू-शायरीके प्रारम्भिक युगसे ही इश्क अप्राकृतिक हो जाता है। अमरदपरस्ती (लौंडेबाजी)का मर्ज बढता जाता है। यहाँ तक कि उसे शायरीमे खुल आम फख्रिया बयान करते है। हमने दो-एक शायरोके केवल एक-एक शेरका नमूना दिया है, ताकि मालूम हो कि उस वक्त इन लोगोके चाल-चलनका धरातल कैसा था।

४

फ़ाइज़

न जाने कितने ऐसे गुमनाम शायर ससारके उदरगह्वरमे छिपे पडे है, जिनपर ऐतिहासिकोकी दृष्टि तक नही पडी । उनमे बहुतोके तो दीवान ही मुरत्तिब होनेकी नौबत न आई और किन्हीके दीवान मुरत्तिब या मुद्रित भी हुए तो जननातक न पहुँचकर पुस्तकालयोमे रखे-रखे दीमकोके केवल क्रीडास्थल बने रहे ।

'शेरोसुखन'कम्पोज हो जानके बाद एक ऐसे ही गुमनाम शायर'फाइज'-का पता हमे 'आजकल' उर्दू (अगस्त १९५०)मे प्रकाशित जनाब मस-ऊदहसन साहब रिजवीके खोजपूर्ण लेखसे विदित हुआ। उसी शोधखोजपूर्ण लेखसे 'फाइज'का सक्षिप्त परिचय और कलाम साभार दिया जा रहा है ।

नवाब सदरुद्दीन मुहम्मदखाँ बहादुर 'फाइज' दिल्लीके रईसोमेसे एक थे, जो कि औरगजेब बादशाहके अन्तिम समयसे मुहम्मदशाहके शासनकालतक मौजूद थे। सम्भ्रान्त कुलमे उत्पन्न होनेके अतिरिक्त स्वय भी अच्छा व्यक्तित्व रखते थ । तत्कालीन शिक्षा-दीक्षामे पारगत थे और वाईस पुस्तकोके रचयिता थ । फारसी और उर्दू दोनो जबानोमे शायरी करते थे । 'फाइज' उपनाम था। उत्तरी भारतके जिन उर्दू शायरोका हाल अबतक मालूम हुआ है सम्भवत उनमे 'फाइज से पुराना कोई नही है ।

बाज लोग शाह 'हातिम'का दिल्लीका प्रथम शायर करार देते है, परन्तु उनकी यह धारणा ठीक नही है । हातिमकी शायरीकी शुरुआत-का उल्लेख दो जगह मिलता है । एक 'दीवानजादह हातिम'के दीबाचेमे, दूसरे मुसहफीके 'तजकरयेहिन्दी'म । इन दोनो बयानोपर गौर करने से मालूम होता है कि हातिम हि० स० ११२८मे फारसीमे शेर कह रहे थे ।

मगर जब 'वली'का दीवान हि० स० ११३२मे देहली आया और उनका कलाम हर तबकेमे मकबूल हुआ तो हातिमने 'नाजी' 'मजमून' और 'आबरू'-के साथ उर्दूमे शेर कहना शुरू किया। फाइज अपना कुलियात (दीवान) जिस-मे उर्दू दीवान भी शामिल है हि० स० ११२८मे पूर्ण कर चुके थे। इससे यह नतीजा निकलता है कि फाइजका कुलियात सम्पूर्ण हो चुकनेके एक साल बाद हातिमने फारसीमे और पाँच साल बाद उर्दूमे शेर कहना शुरू किया।

गुलाम मुस्तफाखाँ 'यकरंग' भी हातिमके हमअसरोंमे शुमार किये जाते है, मगर मालूम होता है वे हातिमसे बहुत पहले उर्दूमे शेर कहने लगे थे। फाइजने अपनी एक गजलके मक्ते (उपनामवाले शेर)मे यक-रंगका एक मिसरा तजमीन कर दिया है (यकरंगके मिसरेपर गिरह लगाई है) इससे प्रकट होता है कि यकरंगकी गजल पहलेसे मौजूद थी, और उसी गजलपर फाइजने गजल कही है।

रिजवी साहबको फाइजकी ३२ कृतियोंका अभीतक खोज मिला है, जिनमे २० तो वे स्वयं देख चुके है। फाइजके फारसी दीवानमे सम्भवत बीस हजार शेर थे, किन्तु वर्तमानमे चौदह हजारके करीब मिलते है। फारसीके इसी दीवानमे फाइजका उर्दू-कलाम भी शामिल है परन्तु अनुमानसे मालूम होता है कि उनका उर्दू-दीवान फारसीसे अलग भी प्रकाशित हुआ था। तारीखे अदबीयात हिन्दी और हिन्दुस्तानी के लेखकने लिखा है कि फाइजका हिन्दुस्तानी-दीवान गजलों, कसीदों और छोटी मसनवियोंपर मुश्तमिल है।

'फाइज वली दक्खनीके समकालीन थे। उनके वर्तमान उर्दू-गजलों-के नुसखेमे केवल ३३ गजलें मिलती है। उनमे १६ गजलें ऐसी जमीनोंमे है जो वलीके दीवानमे भी मौजूद है। वलीका दीवान हि० स० ११३२मे दिल्ली आया, परन्तु फाइज उससे चार वर्ष पूर्व ११२८मे दीवान मुरत्तिब कर चुके थे। इससे जाहिर होता है कि वली फाइजकी गजलोंपर गजल कहते रहे या वलीकी गजल दीवान छपनेसे पूर्व भी दिल्ली पहुँचती रही

और उन्हीपर फाइजन गजले कही। यहाँ चन्द गजलोके कुछ तुलनात्मक अशआर दिये जा रहे है—

वली— ऐ शोख ! तुझ नयनमें देखा निगाह कर-कर।
आशिकके मारनेका अन्दाज है सरापा॥

फाइज— तिर्छी निगाह करना, कतराके बात सुनना।
मजलिसमें आशिकोकी अन्दाज है सरापा॥

गमजह, निगह, तगाफुल, अँखियाँ सियाह चचल।
यारब ! नजर ना लागे अन्दाज है सरापा॥

वली— जिसे इश्कका तीर कारी लगे।
उसे जिन्दगी जगमें भारी लगे॥

न छोरे मुहब्बत दमेमर्गतक।
जिसे यारजानीसूँ यारी लगे॥

न होवे उसे जगमें हरगिज करार।
जिसे इश्ककी बेकरारी लगे॥

हर इक वक्त मुझ आशिकेजारकूँ।
पियारे तेरी बात प्यारी लगे॥

'वली'कूँ कहे तू अगर यक बचन।
रकीबोके दिलमें कटारी लगे॥

फ़ाइज— तिरी गाली मुझ दिलकूँ प्यारी लगे।
दुआ मेरी तुझ मनमें भारी लगे॥

तिरी क़द्र आशिककी बूझे सजन।
किसी साथ अगर तुझकूँ यारी लगे॥

भुला देवे वोह ऐशोआराम सब।
जिसे जुल्फसें बेक़रारी लगे॥

नहीं तुझ-सा और शोख़ ऐ मन-हरन !
तिरी बात दिलकूँ नियारी लगे ॥

भवाँ तेरी शमशीर-ओ-ज़ुल्फाँ कमन्द ।
पलक तेरी जैसे कटारी लगे ॥

वही कद्र 'फाइज़की' जानें बहुत ।
जिसे इश्कका ज़ख्म कारी लगे ॥

वली— ख़ूबरू ख़ूब काम करते हैं ।
यक निगहमें गुलाम करते हैं ॥

देख ख़ूबाँको वक्त मिलनेके ।
किस अदा सूँ सलाम करते हैं ॥

कमनिगाहीमे देखते हैं वले ।
काम अपना तमाम करते हैं ॥

दिल ले जाते हैं ऐ 'वली' मेरा ।
सरवेकद जब ख़िराम करते हैं ॥

फ़ाइज़— जब सजीले ख़िराम करते हैं ।
हर तरफ कत्लेआम करते हैं ॥

मुख दिखा, ख़ूब बना, लिबास सँवार
आशिकोंको गुलाम करते हैं ॥

यह नहीं नेक तौर ख़ूबाँके ।
आशनाईको आम करते ह ॥

ख़ूबरू आइना हैं 'फाइज़'के ।
मिल सभी राम-राम करते हैं ॥

अन्तमे हम चन्दशेर फाइजके पद्य देते हैं, जिनमे हिन्दी-शब्दो, हिन्दी-उपमाओका उन्होने व्यवहार किया है—

ख़ाकसेती सजन उठाके किया ।
इश्क तेरेने सरबुलन्द मुझे ।।
सूरजका जलानेकूँ जिगर ज्यूँ दिले 'फाइज' ।
ऐ नार ! तू क्यो धूपमे सर खोल खडी है ।।
तुझ बदनपर जो लाल सारी है ।
अक्ल उसने मेरी बिसारी है ।।
ओढनी ऊदीपर किनारी जर्द ।
गिर्द शबके सूरजकी धारी है ।।
कनकसूँ सफादार है वह बदन ।
कँवल डालसे हाथ, गुलसे चरन ।।
केलेके गाभेसे मुलायम दो हात ।
देखके मुरझाते थे केलेके पात ।।
रगसूँ है पैरहन सब गुलसे लाल ।
नैन है रगी कँवलसे अज गुलाल ।।
नैन दो कँवल और दो गुल है गाल ।
कली चम्पेकी नाकको है मिसाल ।।
तिरछी नजरोसे देखना हंस-हँस ।
मोर-सी चाल तुझ न्यारी है ।।
जूडा नहीं गेद है कन्हैयाकी ।
या सहसनागनी है दरियाकी ।।
हरइक पनहारिन वाँ इक अपछरा थी
कुएँके गिर्द इन्दरकी सभा थी ।।
दिलफरेबीकी अदा उसकी अनूप
रूपमे थी राधिकासूँ भी सरूप ।।
२२ सितम्बर १९५०

५

आरज़ू

[१६८६—१७५६ ई०]

सिराजुद्दीन 'आरज़ू' शेख़ हमामुद्दीनके साहबज़ादे थे। 'मीर' तकी-जैसे अमर शायरका कहना है कि "इस ज़मानेमें इनसे बढ़कर कोई मुहक्कक और शायरेशीरीज़बान न था।' 'मीरहसन' इन्हें अमीर खुसरोके बाद हिन्दोस्तानका सबसे बड़ा शायर समझते थे। आरज़ू आगरेके रहनेवाले थे, मगर दिल्ली रहने लगे थे। नादिरशाह द्वारा दिल्ली-में कत्लेआम किये जानेके बाद यह लखनऊ चले गये थे। वहाँ १७५६में इन्तकाल कर गये, परन्तु लाश देहलीमें दफनाई गई। इनकी १५ कृतियाँ बताई जाती हैं। इन्होंने फारसीमें ही लिखा है। उर्दूमें चन्द शेर लिखे हैं।

आता है हर सहर उठ तेरी बराबरीको।
क्या दिन लगे हैं देखो खुरशीदेखावरीको॥

उस तुन्दखू सनमसे जबसे लगा हूँ मिलने।
हर कोई मानता है मेरी दिलावरीको॥

---

[1] प्रातःकाल, [2] सूर्यको, [3] बड़िमाग।

६

मज़हर

[१६९८–१७८१ ई०]

शमशुद्दीन जानजानाँ 'मजहर' मिर्जा जानके बेटे थ, और मालवेमे पैदा हुए थे। देहली रहते थे। उर्दूके मशहर शायर हुए है। शहरमे ताजिये निकल रहे थे इनके मुँहसे अनायास निकल गया– "बारह सौ बरस बाद इस कदर शोरोगल और मातम करना और लाग्ज और बाँसके ढाँचोका इस कदर अहतराम करना खिलाफेअक्ल है।" यह सुनते ताजियेदारोने गुस्से भरकर एक राजे दो मजहबी दीवानोंको आकर उन्हे भी हमन-हमनके पास भेज दिया। मजहर उस दौरके न सिर्फ बहतरीन बल्कि प्रामाणिक शायरोमे थे।

चले अब गुलके हाथोमे लुटाकर कारवाँ[1] अपना।
न छोडा हाय! बुलबुलने चमनमे कुछ निशाँ अपना॥

यह हसरत रह गई किस-किस मजेसे जिन्दगी करते।
अगर होता चमन अपना, गुल अपना, बागबाँ अपना॥

गरचे इलतफके[2] काबिल यह दिलेजार न था।
लेकिन इस जोरोजफाका[3] भी सजावार न था॥

---

[1]काफिला, मुसाफिरतम माल-असबाब, [2]कृपादृष्टिके,
[3]अत्याचारोंका।

ख़ुदाके वास्ते इसको न टोको।
यही इक शहरमें क़ातिल रहा है॥
लोग कहते हैं मरगया 'मज़हर'।
फिलहक़ीकतमें कर गया 'मज़हर'॥

जो तूने की सो दुश्मन भी नहीं दुश्मनसे करता है।
ग़लत था जानते थे तुझको जो हम महर्बां अपना॥

—आबेहयातसे

७

शाह हातिम

[१६९९–१७९१ ई०]

जहरुद्दीन 'हातिम' शेख फतहउद्दीनके बेटे थे और दिल्लीमे जन्मे थे। सिपाही पेशा थे। दो दीवान छोड गये है।

जबसे तेरी नजर पडी है झलक।
तबसे लगती नही पलकसे पलक।
हिज्रकी[1] जिन्दगीसे मौत भली।
कि जहाँ सब कहें विसाल[2] हुआ॥

—इन्तकादियात भाग २, पृ० ९४

यारका मुझके[3] इस कदर [illegible]।
शोख, जालिम है और सितमगर है॥

आबेहयात[4] जाके किसूने पिया तो क्या?
मानिन्दे खिज्र जगमे अकेला जिया तो क्या?
सरको पटका है कभू, सीना कभू कूटा है।
हमने शबे[5] हिज्रकी दौलतसे मजा लूटा है॥

—आबेहयात, पृ० ११७

---

[1]विरहकी, मिलन, (मृत्युमे आलिगन),
[2]अमृत, [3]रातको
[4]विरहकी।

जिन्दगी दर्देसर हुई 'हातिम' !
कब मिलेगा मुझे पिया मेरा ?

सितमसे तेरे मैं जाता हूँ फिर न कहियो तू ।
कि आश्नाईका 'हातिम' निबाह भी न किया ॥

तुम कि बैठे हुए इक आफत हो ।
उठ खडे हो तो क्या कयामत हो !

मुफलिसी और दिमाग ऐ 'हातिम' !
क्या कयामत करे जो दौलत हो ?

—इन्तकादियात भा० २, पृ० १७५

८

मज़मून

[लगभग १७४५ ई०]

शेख शरफुद्दीन 'मजमून' अकबराबादके रहनेवाले और सिपाही पेशा थे। एक दीवान छोड गये है। खान 'आरज़'के शिष्य थे। सौदाने इनका जमाना देखा था।

ख़त[1] आगया है उसके, मिरी है सफेद रीश।
करता है अब तलक भी वोह मिलनेमें शाम-सुबह॥

हँसी तेरी पियारे फुलझडी है।
यही गुचेके दिलमे गुल झडी है॥

—आबेहयात, पृ० १०३

मेरा पैगामेवस्ल ऐ कासिद!
कहिया सबसे उसे जुदा करके॥

चला कश्तीमे आगेसे जो वह महबूब जाता है।
कभी आँखें भर आती है कभी दिल डूब जाता है॥

—इन्तकादियात भा० २, पृ० ६४

---

[1]यह शेर अमरदपरस्ती (लौंडेबाजी)से सम्बन्धित है। यानी 'मजमून'के माशूकके मुँहपर बाल (खत) आ गये है और खुदके सफेद दाढी है। मगर इश्कका वलवला मौजूद है। रस्सी जल चुकी है, मगर बल बाकी है।

६

आबरू

पर गये।

[लगभग १७५० ई०]

गोसे

शाह मुबारिक 'आबरू' अपना कलाम खान 'आरजू'को दिखाया करते थे। ये अपने ज़माने में रेख्ताके प्रामाणिक शायर समझे जाते थे। इस युगमे इख़लासको विश्वास और धड़को सरकी तुकमे समझते थे। रदीफ़की कुछ ज़रूरत ही न थी। मुहावरोंको शेरमे लानेकी बड़ी कोशिश करते थे। इनकी मिर्जा जानजानाँ 'मजहर'मे खूब चश्मके रहती थी।

पलगको छोड खाली गोदसें उठ गये सजन मीता।
चित्रकारी लगी खाने हमनको घर हुआ चीता॥

लगा दिल यारसे उसको क्या काम 'आबरू' हमसे।
कि ज़ालमी इश्कका फिर माँगकर पानी नहीं पीता॥

नैनसे नैन जब मिलाय गया।
दिलके अन्दर मेरे समाय गया॥

मत क़हर सेती हाथमें ले दिल हमारेको।
जलता है क्यूं पकड़ता है ज़ालिम अंगारेको॥

—आबेहयातसे

चमनसे भूल।
.य हाथ-पाँव फल॥

.र गया अगर फरहाद।
पत्थरसे सर पटकती है॥

.ाल 'आबरू'का था न जाऊँगा उस गली।
होकरके बेकरार देखो आज फिर गया॥
--इन्तकादियात भा० २, पृ० ९२

---

[1]मृदु पवनकी।

१०

नाजी

सैयद मुहम्मदशाकिर 'नाजी' युवावस्थामे इन्तकाल कर गये। इनका दीवान मोजूद है। तेज मिजाज और शोख थे। राहचलतोंसे झगडा मोल ले लिया करते थे। हजल ज्यादा कहते थे।

जिसने देखे तेरे लबेशीरी[1]।
नजर उनकी नही शकरकी तरफ ॥

छोडते कब है नक्दे दिलको सनम।
जब ये करते है प्यारकी बाते ॥

न टोको यारको कि खत[2] रखाता या मुंडाता है।
मेरे नशेकी खातिर लुत्फसे सब्जी बनाता है ॥

—आबेहयात, पृष्ठ १०४

न सैरेबाग, न मिलना, न मीठी बाते है।
यह दिन बहारके ऐ जान ! मुफ्त जाते है ॥

आज तो 'नाजी' सजनसे करले अपना अर्ज हाल।
मरने जीनेका न कर बिसवास होना हो सो हो ॥

—इन्तकादियात भा० २, पृ० ६२

---

[1]मधुर आठ।

नाजीका माशूक भी लडका है। वह कभी खत (मुंहके बाल) रखता है कभी मुंडाता है।

११

यकरंग

मुस्तफाखाँ 'यकरग' मिर्जा मज़हर जानजानाँके शिष्य थे।

न कहो यह कि यार जाता है।
मेरा सब्रोकरार जाता है॥

सुनता ही नहीं है बात किसीकी तू ऐ सजन!
तुझको तेरा ग़रूर न जानूं करेगा क्या?

इन्त० भा० २, पृ० ९३

पारसाई और जवानी क्योके[1] हो।
एक जागा[2] आग पानी क्योके हो॥

जुदाईसे तेरी ऐ सन्दली रग।
मुझे यह जिन्दगानी दर्देसर है।

—आबेहयात, पृ० १०७

१२

अहसन

मुहम्मद अहसन भी इसी युगमे हुए है—

तरस तुझको नहीं ऐ शोख! इतनी क्या है तरसाई।
तेरे दीदारको मैं दीदयेतरसूं[3] खडा तरसूं॥

—आबेहयात, पृ० १०४

---

[1]क्योकर, [2]स्थानपर, [3]अश्रुपूर्ण नेत्र लिए।

१३

फ़ुग़ाँ

अल्लामा नियाज़ फतहपुरी उस युगके गजलगो शायरोंमें अशरफ-अलीखाँ 'फ़ुग़ा'को तरजीह देते है। ये अहमदशाह बादशाहके दूध-भाई (बादशाहका दूध पिलानेवाली धायके लड़के) और 'नदीम के शिष्य थे। लतीफे-गो भी थे। इनके यहाँ व्यथा-वेदनाका अंश पाया जाता है जो उस युगके अन्य शायरोंमें नहीं था।

ख़त दीजियो छिपाके मिले वह अगर कहीं।
लेना न मेरे नामको ऐ नामाबर[1] कहीं॥

बाबर तुझे अगर नहीं आता तो देख ले।
आँसू ढलक गये कहीं, लरते जिगर कहीं॥

ईज़ा, 'फ़ुग़ा'के हकमें यहाँतक रवा नहीं!
ज़ालिम! यह क्या सितम है? ख़ुदासे भी डर नहीं॥

क्या हाल पूछते हो 'फ़ुग़ा'का, सुना नहीं?
ख़ानाख़राब इश्कने दुनियासे खो दिया॥

मुझसे जो पूछिये तो बहरहाल शुक्र है।
यूँ भी गुज़र गई मिरी यूँ भी गुज़र गई॥

—इन्त० भा० २, पृ० ६५

---

[1] विश्वास, [2] तक़लीफ़

[3] जायज।

क्या तू शबेफिराकमें[1] जीता रहा 'फुगा'।
यों तक गुमा[2] न था तेरे सब्रोकरारका॥

दिलबस्तगी कफसमें यहाँतक मुझे हुई।
गोया मेरा चमनमें कभी आशियाँ[3] न था॥

—इन्त० भा० २, पृ० १७८

२६ जन १९४९ ई०

[1] विरहरात्रिमें, [2] खोया गया, [3] घोंसला।

मध्यवर्त्तीयुग

[दौरेमुतवस्मितीन]

थमते-थमते थमेगे आस ।
रोना है कुछ हँसी नहीं है ।।

—मीर

पूर्व द्व

उर्दू महत्वा (प्राणप्रतिष्ठापक) शायर

शाहआलम बादशाह दिल्ली

नवाब आसफउद्दौला लखनऊ

उत्तरार्द्ध

ममत्वरे और जिन्दादिल शायर

नवाब सआदतअलीखां लखनऊ

मध्यवर्त्तीयुगपर सिंहावलोकन

पूर्वार्द्धयुगके शायर

१४ सौदा
१५ मीर
१६ सोज
१७ दर्द
१८ काइम चान्दपरी
१९ असर
२० नाबा
२१ यकीन
२२ नजीर
२३ जिया
२४ ममन
२५ बयान
२६ अफसोस
२७ लुत्फ
२८ हसरत
२९ हिदायत
३० फिराक
३१ रजा

उत्तरार्द्धयुगके शायर

३२ मसहफी
३३ उशा
३४ जरअत
३५ नासिख
३६ हविस
३७ शहीदी
३८ रंगीन

मध्यवर्तीयुगपर सिंहावलोकन

यह मध्यवर्तीयुग मुगल-शासनका राहु-युग और उर्दू शायरीका सुवर्ण-युग है। इसी युगमें एक ही समय और एक ही स्थान (किला मुअल्ला)में मुगल सल्तनत पर्दियां रगड़-रगड़कर दम तोड़नेपर मजबूर हो रही है और उसमें शायरी (कविता रूपी दुल्हिन) सजी-सजियायी उस लाशका वधू बनी हुई है और तारीफ यह है कि जो 'तमाशे जनाजा पढ़न आय है वही दुल्हिनका डोला सजा रहे हैं। या यों कहिये कि जो प्राणप्रतिष्ठापक पूर्व-शायरीमें जान डाल रहे हैं वही मुगल सल्तनतकी इस हालतनजअ (मृत्युसमयकी अवस्था)पर आंसू बहा रहे हैं। एक ही घरमें मौत पीटने और शादियानेकी सदाएं आ रही हैं।

यह युग मुगलशासनके अस्ताका होते हुए भी उर्दू-शायरी की उन्नतिका सवेरा बना युग है। इसी युगके पहले में मीर दर्द सौदा आदि साज—जैसे रूपरंग (उर्दू शायरीमें जान डालनेवाले शायरोंका समाज है। ये लोग अपनी शायरीकी कद्र मिलते पाते रहे कि अर्वाचीन युगके अमर कलाकार जौक, गालिब, मोमिन, शेफ्ता और आतश-जैसे उस्तादोंने भी उनकी वाहवाही की और उनकी कलाको हमेशा मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा दी है।

जो उर्दू शायरी सभा, दरबारों तक रही थी और तवायफोंके कोठोंकी शोभा बढ़ाती थी उसे उस्तादोंने गिर और मदरसा, खानकाह, खानकाहों और जवानोंमें फैलाया। मिर्जा मजहर जानेजानां, ख्वाजा मीर दर्द, मुसहफी, मीर सोज, मीर असर, मीर तकी मीर, सौदा, जुरअत, इंशा, नासिख, आतश, नासिख, मोमिन, शेफ्ता, जौक, जफर, जहीर, बहादुर शाह जफर, दाग, अमीर मीनाई, बेखुद, सीमाब, रियाज, असगर, फानी, हसरत, जिगर, शकील, मजाज, फैज, मखदूम, सरदार जाफरी, अली सरदार जाफरी, कैफी आजमी, साहिर लुधियानवी, मजरूह सुल्तानपुरी, जां निसार अख्तर, कैफ भोपाली, राही मासूम रजा, बशीर बद्र, निदा फाजली, अहमद फराज, शहरयार, वसीम बरेलवी, मुनव्वर राना, राहत इंदौरी, इकबाल अशहर, नवाज देवबंदी, मंजर भोपाली, अदीम हाशमी, शीन काफ निजाम, अनवर जलालपुरी, अनवर शऊर, अनवर जलालपुरी, अनवर शऊर, अनवर जलालपुरी, अनवर शऊर

वह हिन्दवीके बजाय तुर्की हूर[1] मालूम होने लगी। कुछ लोगोने इसकी सज-धज और निखारपर माथा पीट लिया, मगर ज्यादातर इसके जोबनके उभार, कयामतकी चाल, शोखीभरी हँसी, बाँकी चितवन और अल्हड जवानीपर शैदाई होकर इसके कूचेमे दीवानावार चक्कर काटने लगे।

इन उस्तादोकी करिश्मासाजियोकी बदौलत उर्दू-शायरी नये-नये लिबास और जेवरातसे आरास्ता होकर अजीब-अजीब अन्दाजसे पहलू बदलने लगी[2]। दिन-दूना, रात-चौगुना शबाब बढने लगा, निखार आने लगा।

इसी दौरमे मीर, दर्द, सौदा और सोज—जैसे सिद्धहस्त उस्तादोके अतिरिक्त नौजवाँ शायरोमे कायम, असर, हसन, यकीन, ताबा, बयाँ, मीर जिया और बेदार प्रथम श्रेणीके शायर हुए है।[3]

---

[1]यानी मीर, दर्दने अपने कलामसे हिन्दी शब्द निकालने शुरू किये, तथा इस युगके शायरोने सईदी, हाफिज, नासिरअली, जलाल, असीर, बेदिल, और तालिब वगैरह फारसी शायरोका अनुसरण करते हुए उनके रगमे कहना शुरू किया। फारसीसे नई बहरो, उपमाओ, उदाहरणो, और अलकारोको भी माँग लिया। बहुतसे शब्द बहिष्कृत कर दिये। मतलब ये है कि इस दौरमे उर्दू-शायरीपर फारसियतका पूरा गलबा हो गया और वह बिल्कुल ईरान-ओ-तुर्कके कालिबमे ढल गई।

तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ११४

[2]अर्थात् मीरने—वासोख्त (वह नज्म जिसमे माशूकके जौरोजफा और आशिकके रजोमलाल नफरतोबेजारीका इजहार हो), मुसल्लस, मुरब्बअ (तीनपदी, चौपदी कविता) और सौदाने कसीदा और हिजो ईजाद की।

[3]"जिस तरह मीरने गमेहस्तीकी टीसोको राहतआफरीन बनाया, दर्दने गमेइश्कको एक नया जलाल बख्शा, उसी तरह इन लोगोने इश्कमे

हमने उक्त सभी शायरोंके चुने हुए शेर देनेका प्रयत्न किया है। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण दीवान इनके ऐसे ही जवाहरपारोंसे भरे हुए होंगे। नहीं, उनमें बहुत हल्के शेर भी हैं और उनमें भावोंकी पुनरावृत्ति भी।[1]

इस युगके उत्तरार्द्धमें मुसहफी, इंशा और जुरअत—जैसे रंगीन और जिन्दादिल शायर हुए हैं, क्योंकि यह लोग मीर, दर्दके बुढ़ापेमें जवाँ थे इसलिये इनकी हर चीज़ जवाँ है। इनकी शायरीमें शोखी और चुलबुलापन है। इनकी जबान रसीली और चाल कयामतखेज है। मीर-दर्द बुजुर्ग थे, वे फिर भी पुरानी वजह-कतअके लोग थे। ये जवाँ ठहरे और पुरानी बातोंमें बगावत करना जवानोंका स्वभाव ठहरा। इसलिये उन्होंने हर पुरानी बात तर्क कर दी। पुरानी जबान नये साँचेमें ढाल दी। बहुत-से हिन्दी-शब्द अव्यवहृत कर दिये। और तो और,

---

एक नई शान पैदा की, और उसे एक जुदागाना मसलक (नवीन मार्ग) बनाकर पेश किया। बगैर इनको पढ़े हमारा उर्दू-गजलका मुतालआ (अध्ययन) नामुकम्मिल रह जाता है। इनकी सबसे बड़ी खूसूसियत ये है कि ये लोग इश्के हकीकी (ईश्वरीय प्रेम) और इश्के मजाजी (कामुक-प्रेम) में तफरीक (अलहदगी) महसूस नहीं होने देते। इनके यहाँ इश्क, इश्क है।"

तनकीदी हाशिये पृ० ६३-६४

[1] "इस दौरके शायरोंके कलाममें पस्तखयालातके साथ बुलन्द खयालात और सकीफ (बहदे, छिछोरे, तंग) अल्फाजके साथ शानदार और फसीह अल्फाज मिले-जुले हैं। इनकी गजलोंमें शुतुरगुर्बगी (शुतुर मुर्गकी एक टाँग नीची एक ऊँचीकी तरह) बुलन्दी और पस्ती पुराने तजकरे नवीसोंको दिखाई दी है।

तारीखे अदब उर्दू पृ० ११६

देहलीकी दाखिली[1] शायरीको तलाक देकर लखनऊकी खारजी शायरी को घरमे डाल लिया। तात्पर्य्य यह, कि जो चाहा और जैसे भी चाहा इन उत्तरवर्ती शायरोने लिखा। पुरानी पाबन्दियाँ सब हटाकर फेक दी।

यह वह युग था जब देहली बरबाद हो रही थी। मुगलिया सल्तनत का चिराग टिमटिमा रहा था और अवधका नवाब स्वतन्त्र हो गया था। भूखे मरते क्या न करते? सभी नामवर शायर आजीविकाकी तलाशमे दिल्ली छोडकर लखनऊ चले आये थे। नवाबको नई-नई स्वतन्त्रता मिली थी। फैजाबादसे हटकर अवधकी राजधानी लखनऊ बन चुकी थी। नवाबको नई सल्तनत और स्वतन्त्र अधिकारोका नशा था। धन-वैभव उसके आँगनमे किलकारियाँ मारते थे। विलासिता उसके पाँवोमे लोटती थी। शेरो-सुखनका शौक था। अत एक-एक करके 'दर्द को छोडकर 'मीर से लेकर प्राय अधिकतर शायरो ने लखनऊका अपना रगस्थली बना लिया। पूर्वार्द्ध युगके शायर तो लखनऊ पहुंचनेपर भी देहलीके दाखिली रगमे ही सराबोर रहे, परन्तु इस भोग-विलासकी चमक-दमकमे उत्तरार्द्धके शायर चौधिया गये और इन्होने लखनऊका खारजी रग धीरे-धीरे अपना लिया।

इस खारजी रगके प्रथम आविष्कारक 'हसरत' थे। इन्होने अमरद-

---

[1] दाखिली और खारिजी शायरी क्या है? देहलवी और लखनवी शायरीमे क्या अन्तर है? यह सब अगले अध्यायमे विस्तारसे मिलेगा।

[2] 'जाफरअलीखाँ 'हसरत'ने सबसे पहले लखनऊका एक अलहदा रग कायम करके अमरदपरस्ती (छोकरबाजी)की तरफसे शायरोकी तवज्जहका हटाया। 'जुरअत' जिनकी बेबाक उरयानियाँ (नग्न कविताएँ) मशहूर है हसरतके ही शागिर्द थे। इस वक्ततक दिल्लीकी

परस्तीकी लानतमे तो लोगोका मन हटाया, परन्तु शुद्ध और स्वाभाविक प्रेमका मार्ग न बताकर बाजारू शायरीके कूएँमे धकेल दिया—खाईमे निकालकर कूएँमे डाल दिया।'

शायरीने महबूबकी निसाई हैसयतका मुतअय्यन नही किया था (अर्थात् स्त्रीको प्रेयसी न समझकर छोकरीको माशूक, हबीब अथवा प्रेम-पात्र समझा जाता था) जिस तरफ देखिये वही सब्जये खत (मूँछका नवीन रूआँ) नजर आता था।'

इन्तकादियात भा० २ पृ० १८८

' इस वक्त लखनवी मुआशरत (रहन-सहन वातावरण) मे शाहिदाने बाजारी (सुन्दरी वेश्याओ) के साथ ताल्लुकात पैदा करना आम बात थी। इसलिए कघी, चोटीसा भी जिक्र हुआ। चोली और महरम (औ ताके सीनबन्द) का भी बयान होने लगा। जो नि-निहाजुफितरती मीलान काबिलेकद्र था। लेकिन इस मिर्जामिलम उरयानियाँ (नग्नता) इतनी बढ गई कि आखिरकार दहलवी रगतगज्जुलकी तवाफत बिल्कुल पसेपुश्त डाल दी गई और जज्बात (भावो) का रुख हद दर्जा पस्तीकी तरफ माइल हो गया। इसकी एक और शायरीके नमूनेका एक छिनआ मुलाहिजा हो—

चोली मसकी, बन्द हैं टूटे, सरके बाल परीशाँ हैं।
इस बिगडे आलमपै तेरे लाख बनावट कुर्बाँ है॥

कपडे बदनके मले-दले हैं, बल्कि बदन सब मला-दला।
शबके बासे फूलोका आलम किससे कहे हम, हैराँ है॥

मुँह उतरा है, गाल है नीला, पलकें झुकीं, आँखोमें खुमार।
नामेलूदा बिगडे आलमपर जमा अदाएँ पिनहाँ है॥

इस उत्तरार्द्धमे उर्दू-शायरीको सबसे बडी हानि यह पहुँची कि उसका गठबन्धन विलासी नवाबोसे हो गया। पूर्ववर्ती शायर भी बादशाहो-नवाबोसे पुरस्कृत होते थे। उपहार और नियमित शुल्क भी पाते थे। परन्तु वे कीचडमे कमलकी तरह दरबारोसे अलिप्त रहते थे। न कभी उन्होने आत्मप्रतिष्ठा और स्वाभिमानमे[1] बाल आने दिया और न अपनी स्थिति वेतनभोगियो-जैसी होने दी। जब जी चाहा अपनी इच्छानुसार कलाम कहा। न किसी रईसके समयकी पाबन्दीमे रहे और न उनके आदेशपर कुछ लिखना ही पसन्द किया। हाँ, जश्नेपैदाइश, शादी, राजगद्दी वगैरहके मौकोपर बतौर नेकशुगन या मुबारिकबाद देनेके खयालसे कसीदे और सेहरे ज़रूर लिख दिया करते थे।

परन्तु इशा-जुरअतके युगमे पुरानी आन पानी हो गई, और उर्दू-शायरी खालिस दरबारी शायरी हो गई। दरबारी गठबन्धनसे शायरोकी ज़ाहिरा इज्ज़त खूब बढ गई और वे गुलछर्रे भी उडाने लगे, परन्तु उनका व्यक्तित्त्व बिल्कुल समाप्त हो गया। व्यक्तित्त्व यहाँतक समाप्त हुआ

सच कहो 'हसरत' पास रहे थे रात बना जिससे यह रंग।
इस कम्बख़्तकी सुहबतसे बेज़ार जहाँके क़ुर्बां है॥

यह सच है कि हसरतके यहाँ यह रग बहुत ज्यादा नही है, लेकिन इस इब्तदाकी कोई इन्तहा भी होनी थी, जिसे जुरअतने पेश किया और फिर रफ्ता-रफ्ता रिआयते लफ्ज़ी, इबहामगोई, ज़नानापन, फहाशी, उरयानी, सूकयाना तर्ज, बेहयाई, और बेगैरतीकी वबा नासिख और उनके शागिर्दोंकी बदौलत इतनी आम हुई कि लखनऊ स्कूल आजतक इसकी वजहसे बदनाम है।"

—इन्तकादियात भा० २ प० १८८-८९

[1]देखिए, लेखककी 'शेरो-शायरी' नामक पुस्तकमे—मीर, सौदा, ग़ालिब, और मोमिनके स्वाभिमानके उदाहरण।

कि इशाके मुंह हुए सरपर नवाबने चपत जड़ दी, और इन्शाकी बेगैरती देखिये कि नवाबसे इस बेअदबीका जवाब तलब करनेकी बजाय भाँडपन-की बात करके इस अपमानका हंसीमें धोकर पी गया। मुसहफी जैसा उस्ताद शाइरोंसे सदा नाममात्रका बादशाह 'शाहआलम' के पुत्र 'सुलेमां' के पीठ पीछे मार्के की व्यंग्यमें फबती समझता था—

तख्तेताऊसपै जब हावे सुलेमां का जुलूस।
मारूंगा हाथमें बालहुमाका लेके लूं॥

एक दिन इशा नवाबके साथ बैठकर खाना खा रहे थे। तरकारीमें घबराकर पगड़ी उतारकर रख दी। सिर मुंडा हुआ देखकर नवाबने चुपकेसे एक चपत जमा दी। इशाने टोपी सरसे रखते हुए कहा— सच है बड़े-बूढ़े बचपनमें कहा करते थे कि नंगे सर खाना खानेमें शैतान चपत मारा करता है। सो आज वह साबित हुआ।"

—आबेहयात पृष्ठ २८८

इशाने बड़ा माकूल जवाब दिया, परन्तु प्रश्न तो यह है कि नवाब-का साहस ही चपत मारनेका क्या हुआ? इसलिये कि नवाब इशाके व्यक्तित्वको तौल चुके थे।

सुलेमान शाहआलम (द्वितीय) बादशाहके तीसरे बेटे थे। गुलाम कादिरकी बगावतके बाद दिल्ली छोड़कर लखनऊ चले गये थे। नवाब आसफुद्दौलाने छ हज़ार रुपया मासिक नियत कर दिया था। सन् १८३७ ई० में इनकी मृत्यु हुई। यह शायरोंके बहुत बड़े सरपरस्त थे। स्वयं भी अच्छे शायर थे। साहिबेदीवान हुए हैं। प्रारम्भमें शाहहातिम फिर मुसहफी और इशाके शिष्य रहे। देहलीसे जो भी बाकमाल शायर लखनऊ जाता था पहले इनके यहाँ हाज़िर होता था।

—तारीखे अदबे उर्दू पृ० २४३

रानीमे परिवर्त्तित हो गई। जो जितना अधिक चापलूस" जालिया, साजिशी,

---

'इशाकी चापलूसीका यह आलम था कि वह पैसेकी खातिर मँगतोसे भी ज्यादा गिर जाता था। एक नमूना देखिये—

'दिल्लीमे अगर्चे बादशाह उस वक्त फकत बादशाहेशतरज थे।' मगर इशा अपना मतलब हजार तरहसे निकाल लिया करते थे। मसलन जुमेरातका दिन होता तो बाते करते-करते दफअतन खामोश होते और कहते कि—"पीरोमुरशद ! गुलामको इजाजत है ?"

बादशाह कहते—"खैर बाशद, कहाँ ?"

इशा—"हुजूर ! आज जुमेरात है गुलाम नबीकरीम जाये। शाहे-दीनोदुनियाका दरबार है कुछ अर्ज करे।"

बादशाह—'भई, हमारे लिये भी कुछ अर्ज करना।"

इशा—"हुजूर ! गुलामकी और आरजू कौन-सी है ? यही दीनकी आरजू, यही दुनियाकी मुराद।"

यह कहकर फिर खामोश होते। बादशाह कुछ और बात करने लगते। एक लमहेके बाद फिर यह कहते कि—"पीरोमुरशद ! फिर गुलामको इजाजत हो।" बादशाह कहते कि, "है, भई इशा ! अभी तुम गये नही ?"

इशा कहते—"हुजूर ! बादशाहेआलीजाहके दरबारमे गुलाम खाली हाथ क्योकर जाय ? कुछ नजरोनियाज (पूजा-भेट), कुछ चिरागी (दिया-बत्ती) को तो मरहमत हो।" बादशाह कहते—"हाँ भाई' दुरुस्त-दुरुस्त, मुझे तो खयाल ही नही रहा।" जेबमे हाथ डालते और कुछ रुपये निकालकर देते। मीर इशा लेते और एक-दो फिकरे दुआके कहकर फिर कहते—"हुजूर ! दूसरी जेबमे दस्तेमुबारिक जाय तो फिदवीका काम चले, क्योकि वहाँसे फिरकर भी तो आना है।" बादशाह कहते कि

चुगलखोर,[1] ज़बांदराज़, और भांड होता, उतना ही नज़रे इनायत पानेका हकदार होता। इस आपाधापीके कारण एक दूसरेपर गन्द भी उछाली जाने लगी और वह यहांतक बढ़ी कि होलीके भड़वे भी मात खा गये।

इशा और मुसहफीकी छेड़छाड़ इस दौरकी शायरीपर बदनुमा धब्बा है। यह छड़-छाड़ दरबारतक ही सीमित रहती तो भी ग़नीमत थी। नवाबोंको सांडो, बटेरो, तीतरो और मुर्गोंकी लड़ाइयां देखनेका तो शौक था ही। अगर जानवरोंकी तरह हज़रते इन्सान और वह भी किबलओंकाबा शायर लड़ने लगें तो कहना ही क्या? फिर तो इस शौकमें चार चांद लग गये। दरबारोंमे चोंच लड़ाते-लड़ाते बाज़ारोंमें निकल पड़े। शायर शायर तो आपसमे लड़े ही। जुरअत भांडमे भी उलझ गये।

चूरन, चना ज़ोर गरम बेचनेवाले, खयालिये, लावनिये, तुर्रे,-कलगी-बाज़ और झूलनेवाज़, तो एक दूसरेके बोलका जवाब देकर निहायत संजीदगीके साथ चुप हो जाते थे, परन्तु हमारे इन शायरे-आज़मोंको इतनेसे सन्तोष कहां? हर शायर, हर नीच-से-नीच उपायसे अपने अन्न-दाता नवाबको प्रसन्न रखना चाहता था। अत ये शायर ज़नाने वेष भी धारण करने लग। परस्पर कमीने वार भी करने लगे। अश्लील-से-

---

"हां भई सच है, सच है। भला वहांसे दो-दो खजूरें तो लाकर किसीको दो। बालबच्चे क्या जानेंगे कि आज तुम कहां गये थे।"

आबेहयात, पृ० २६४

[1] अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको नीचा दिखानेके लिये इशाने बादशाहसे कह दिया कि अमुक लोग आपकी ग़ज़लका मज़ाक उड़ाते हैं। इससे प्रति-द्वन्द्वियोंको बड़ा सदमा पहुंचा।

—आबेहयात, पृ० २२४

अश्लील कलाम भी कहने लगे। गरज पेटके लिये आत्मा तो बेच ही दी थी, जाहिरा इज्जत-आबरू भी बेच दी।

जब शायरोंकी यह हालत हो गई तो उनके कलाममें अमरत्व कहाँसे और कैसे आता? परिणाम इसका यह हुआ कि—

१—गजलसे मतानत, पुख्तगी, संजीदगी, पाकीजगी, जाती रही। भाव और विचार उच्चकोटिके न रहकर निम्न श्रेणीके रह गये, और भविष्यकी उन्नतिमें एक बड़ी खाई बन गई।

२—शरकी आत्मा नष्ट कर दी गई और उसके निर्जीव शरीरको अधिक-से-अधिक सजाया गया।

३—माशूक अबसे खुल्लम-खुल्ला वेश्या या छिनाल औरत समझी जाने लगी।

४—कामुकताका प्रचार बढ़कर और बढ़ावा दिया जाने लगा, क्योंकि तत्कालीन नवाब और रईस ऐसे ही इश्क और कलामको पसन्द करते थे और ऐसे ही शायरोंको पुरस्कृत करते थे।

५—शायरीमें रूहानियत और तसव्वुफका रंग कतई जाता रहा।

इस उत्तरार्द्ध युगमें मुसहफी जरूर ऐसे शायर हुए हैं, जिनपर उर्दू शायरी नाज करती है। ये देहलवी और लखनवी शायरीके दोराहेपर खड़े हैं। इनकी अन्तरात्मा देहलवी दाम्पिनी रंगमें गजल कहलवाती थी, परन्तु लखनऊ आनेके बाद इशा-जुरअत जैसे जबर्दराजोंसे पाला पड़नेके बाद अपनी आजीविका बनाये रखनेके लिये लखनवी रंगमें भी रोते-पीटते कहनेको बाध्य होते थे। नवाबके यहाँसे इतना अल्प वेतन मिलता था कि ये अपनी गजलें बेचा करते थे। उस वक्त लोगोंके पतनका यह हाल था कि शायरीसे कोसों दूर हैं, परन्तु दूसरोंसे गजलें लिखवाकर अपने उपनामके साथ मुशायरेमें पढ़ते थे और नकली शायर बनकर अपने शौकको यूँ पूरा करते थे। ऐसे ही नकली शायरोंके हाथ मुसहफी अपनी गजलें बेचा करते थे। मुशायरेके मिसरा तरहपर सैकड़ों शेर लिखकर

रख लेते थे और ये बोगस शायर अपने मनपसन्दके शेर ख़रीद ले जाते थे। जो बचते थे, उन्हे मुसहफी मुशायरेमे पढ दिया करते थे। बाज़ दफा तो इनके पास ऐसे फुसफुसे शेर रह जाते थे कि दाद भी न मिलती थी, और ये गज़ल फाडकर फेक देते थे।

ऐसे ही बचे-खुचे शेरोमे मुसहफीके आठ दीवान भरे हुए है, और इस कूडेकरकटमे भी वह अनमोल हीरे-मोती छिपे रह गये है कि मुसहफीके समकालीन शायरोके यहाँ उनका शानो-गुमान भी नही। काश ! यह दिल्ली ही रहे होते और लखनऊ न जाते। लखनऊ जाने और इशा जुर-अतके झमेलोमे फँसनेसे मुसहफी बहक गये, और इससे उर्दू-शायरीकी बडी हानि हुई। मुसहफी-जैसे-शायरसे ऐसे अशआर निकलना उसकी नैतिक मृत्यु है—

नै उन्सके ख्वाहाँ है, नै प्यारके भूखे है।
हम लोग है बाज़ारी, दीवारके भूखे है॥

इसी दौरमे मियाँ रगीन हुए, उन्होने रेख्ता कहते-कहते रेख्ती ईजाद कर डाली।

रेख्ती क्या है ?

'आशिक' चाहनेवालेको और जिसे चाहा जाय उसे 'माशूक' कहते है। जो ईश्वरको चाहते है वे भक्त आशिक है और उनका माशूक ईश्वर है। स्त्री अपने पति-प्रेममे लीन है तो वह आशिक और पति उसका माशूक है। कोई युवक किसी कुमारीमे प्रेम करता है तो वह युवक आशिक और वह कुमारी उसकी माशूक है। यह चाहत या प्रेम यदि दुतर्फा हो, तब तो कहने ही क्या ? परन्तु अक्सर ऐसा नही होता। चाहनेवाला ग़रज़मन्द होता है। उसे अपने माशूकका प्यार प्राप्त करने, उसे रिझाने अथवा बसमे करनेकी अभिलाषा होती है और अक्सर माशूकोको

इन बातोंकी परवाह नही होती। इसीलिये आशिक अपने माशूक़की प्राप्तिके लिये सभी सम्भव-असम्भव उपाय काममे लाते है।

ध्रुव और प्रह्लादने अपने माशूक ईश्वरका जलवा देखनेके लिये घोर तप किया और अनेक कष्ट सहे। मीरा अपने मोहनको रिझाने मेवाड़से नगे पाँव मथुरा-बृन्दावन पहुँची। पार्वतीने महादेवकी कामनामें घोर तपश्चर्य्या की। जुलेखा जैसी मलिका अपने ही जरखरीद गुलाम-यूसुफको रिझानेमें दर-दरकी भिखारिन बन गई। शकुन्तला मानापमान-की चिन्ता किये बिना ही दुष्यन्तकी खोजमें कहाँ-से-कहाँ जा पहुँची। मजनूंने लैलीके लिये जगलोंकी जीवन भर खाक छानी। फरहादने शीरीं-के लिये पहाड काटते-काटते प्राण दे दिये। सोहनी-महिवाल, हीर-राझा की प्रेम-गाथाएँ प्रसिद्ध हैं। और न जाने कितने असख्य आशिक़ोने अपने माशूक़ोकी प्राप्तिके लिये कष्ट सहे हैं, प्राण न्योछावर किये है, और भविष्यमें न जाने कितने करते रहेंगे।

स्त्री मन, वचन, कायसे अपने पति-प्रेममें लीन रहती है। उसकी कृपा-प्राप्तिके लिये हर सम्भव उपाय करती है। उसे ईश्वर समझकर पूजती है। पतिके अतिरिक्त पर-पुरुषकी स्वप्नमें भी कामना नही करती। पति-दर्शनकी अभिलाषा दिन-रात बनी रहती है। पति-वियोग असह्य हो उठता है। उसके विरहमें तारे गिन-गिनकर रातें काटती है। तिनके चुन-चुनकर दिन गुजारती है।

और पुरुष ? यदि वह सयमी और शीलवान है और उसे मन-पसन्द स्त्री मिली है, तब तो वह भी अपनी स्त्रीके प्यारको आदर देता है, अन्यथा अपनी स्त्रीकी उपेक्षा करना, उसे विरह ज्वालामें जलाना, परकीयासे प्रेम करके उसे सन्ताप देना, बाधा डालनेपर अत्याचार करना, पुरुषका अदना-सा काम है।

स्त्रियाँ स्वभावतः लजालु, शीला, कोमल होती हैं, उनका हृदय पति-प्रेमसे ओत-प्रोत होता है, और पुरुषोमें ये गुण उतनी अधिकता लिये हुए

नही होते । इसीलिये सस्कृत और हिन्दी-कवियोने स्त्रीको आशिक और पुरुषको माशूककी सज्ञा देकर अपनी अनोखी सूझ और परिष्कृत बुद्धिका परिचय दिया है। इससे सस्कृत और हिन्दी कवितामे इतनी स्वाभाविकता आ गई है कि अन्यत्र इसकी मिसाल मुश्किलसे-ही मिलेगी। और अरबी, फारसी, उर्दू-शायरीमे तो चिराग लेकर ढूँढनेपर भी यह चीज नही मिलेगी।

इसके विपरीत उर्दू-शायरीका आशिक स्त्री न होकर पुरुष होता है, और माशूक पुरुष न होकर बीस प्रतिशत स्त्री और अस्सी प्रतिशत कमसिन छोकरे होते है । प्रथम तो यही अप्राकृतिक है कि पुरुष पुरुषको चाहे । इस दूषित मनोवृत्तिमे जनताका कितना पतन होता है, और कितने सक्रामक रोग घर कर लेते है, लिखनेकी आवश्यकता नही, और जब स्त्री या छोकरेको माशूक तस्लीम कर लिया गया तो उनमे उन सब अवगुणोकी भी कल्पना कर लेनी पडी जो माशूकमे होते है ।

माशूक अक्सर अपने आशिककी उपेक्षा करता है । अन्यको चाहतकी दृष्टिसे देखता है । इसीलिये उर्दू-शायरोने माशूकको शोख, हरजाई, बदज़बान, उद्दण्ड, जालिम, बेवफा-जैसे अनेक विशेषणोसे अलकृत किया है। उर्दूका माशूक आशिककी परछाँईसे भी दूर भागता है । घरमे न घुस आये इसलिये पहरेदार रखता है । आशिक पत्र भेजता है तो जवाब नही देता है । ज्यादा तग आ जाता है तो पत्र-वाहकको ही मार डालता है । उर्दूका माशूक इतना बाज़ारू होता है कि भरी महफिलमे दूसरोसे आँखे लडाता है । अपने तथा कथित आशिकको धक्के देकर निकलवा देता है । आशिक महफिलसे निकाल दिये जानेपर भी अपनी हरकतोसे बाज़ नही आता । माशूकके कूचेमे दीवानावार फिरता है । उसकी खिडकीके नीचे पडे रहने और मरनेपर वही समाधि पानेमे जीवन-की सार्थकता समझता है । वहाँ कब्र न बन सके तो अपने जनाज़ेको उसी कूचेसे होकर कब्रिस्तान तक ले जानेको कह मरता है । मरनेके उपरान्त भी कब्रपर फूल चढाने, चिराग जलानेको माशूक आये यही अभिलाषा

बनी रहती है। यहाँतक कि महशरमे जब अल्लाहमियाँ सबके पुण्य पापका न्याय करेंगे, तब भी माशूक सामने हो। यही मनोकामना उर्दूके आशिककी बनी रहती है।

स्त्रियाँ जो स्वभावत सकोची, लज्जावती, सुशील, दयालु, ममतामयी, और स्नेहशील होती है, उनको माशूककी कल्पना करके पुरुषोचित दुर्गुणोसे लादना, उर्दू-शायरोको भी खटकता था, परन्तु सशोधनका कोई उपाय नही था। उर्दू-शायरीका निर्माण-ही इस प्रकार हुआ है कि उसमेसे यह दोष निकाला नही जा सकता।

कुछ नासमझ और मनचले लोगोने हिन्दीकी इस विशेषताका अनुकरण करना चाहा भी तो वे सफल न हुए। उल्टा मुँहके बल औधे गिर पडे, और उनका यह दुस्साहस उर्दू-शायरीका कलक बनकर रह गया। उन्होने स्त्रीको आशिक तो बना दिया परन्तु वे स्त्रियोचित लज्जा, शील, उसमे स्थापित न कर सके और माशूकके ज्यो-के-त्यो अवगुण उसमें रहने दिये। परिणाम इसका यह हुआ कि आधा तीतर आधा बटेर, न औरत न मर्द। जनानो, हीजडोकी शायरी बन गई जिसमे भले आदमी कोसो दूर भागते है। यही जनानी शायरी 'रेख्ती' कहलाती है।

रेख्तीके आविष्कारक तो 'रगीन' समझे गये है परन्तु इनके गहरे मित्र 'इशा' भी कभी-कभी रेख्ती कहते थे। सबसे बडे रेख्तीगो मीर-यारअलीखाँ 'जान' साहब समझे जाते है।

हजल

इसी दौरमे हजल भी ईजाद हुई। इसके अश्लील रूपकी ओर हम पहले सकेत कर चुके है, इसका उल्लेखतक करनेकी हम अपनेमे क्षमता नही पाते।

अब हम ऐसे शब्दोकी तालिका दे रहे है जो इस युगमे व्यवहृत होते थे और वे उत्तरोत्तर शायरो द्वारा अव्यवहृत होते गये।

मध्ययुगमे प्रचलित	वर्तमान रूप	मध्ययुगमे प्रचलित	वर्तमान रूप
ते	तूने	रल	मिल
नित	हमेशा	तनक	जरा
टुक	जरा	मिरे	मेरे
तिधर	उधर	नगर	शहर
मत, ने	न	कने	पास
एको	एक	तुम	आप
लोहू	खून	आइयाँ	आये
कहो हो	कहते हो	दिखलाइयाँ	दिखलाई
हमपास	हमारे पास	बास	बू
लागा	लगा	वे	वह
नदान	नादान	बसतियाँ है	रहते है
ओर	तरफ	तरसतियाँ है	तरसते है
तईं	लिये	बेपरवाइयाँ	बेपरवाही
माटी	मिट्टी, खाक	आइयाँ	आई, आये
विरह	हज्र	मैला	गन्दा
अखडियाँ	आँखे	जिन्होके	जिनके
पडियाँ	हो पडी	इन्हूँ	इन्हे
बुलबुलाँ	बुलबुलें	मे जब	मैंने जब
महबूबाँ	महबूब	ऐधर	इधर
सेती, से	से	पौन (पवन)	हवा
दीखियो	देख	कैधर	किधर
बीका	बाँका	मुखडा	मुँह
कबलग	कबतक	हम ईजाद किया	हमने ईजाद किया
तूँ	तू	खोलियाँ	खोला

मुझमे	मुझे	बोलियाँ	बोली
तूने	तूने	जानूँ हूँ	जानता हूँ
जूँ	ज्यों	पिण्डा	जिस्म
उन्नने	उसने	सभूँ	सभी
जिन्नने	जिसने	ठौर	जगह
जियो	जी	तिसपै	उसपर
तुझकूँ	तुझको	जो मै	जो मैंने

इन शब्दोके अतिरिक्त मियाँ, जूँ रेंगती, बीच, छिपाई-जैसे और सैकडो शब्द प्रचलित थे, जो इस युगकी शायरीमे यत्र-तत्र मिलते है। इस युगमें हिन्दीके शब्द उत्तरोत्तर अव्यवहृत किये गये और अनेक भोण्डे और करख्त शब्द या तो बदल दिये गये या सानपर चढाकर सौम्य बना लिये गये।[1]

१७ अगस्त १९४५

---

[1] "इस जमानेमे भी वही पुरानी तरकीब—हिन्दी अलफाज तर्क करने और उनकी जगह फारसी और अरबी अलफाज दाखिल करनेकी—बराबर जारी रही। इसमे शक नही कि बाज हिन्दी और भाषा लफ्ज जो खारिज किये गये बदनुमा और सकील (कठिन) जरूर थे और नज्मकी सनफे-नाजुक उसकी मुत्तहमल नही हो सकती थी। मगर उनके एक कलम निकाल दिये जानेसे देशी जबानकी तरकीबोको सख्त नुकसान पहुँचा। ऐसे जवाहररेजे जो सस्कृत और प्राकृतके खजानोसे जबानें उर्दूके कब्जेमें एक अर्सेदराजसे चले आते थे, फारसियतके गलबेसे अब खारिज हो गये। कदीम उर्दू-शायर सस्कृत और हिन्दीसे नावाकिफ थे। इसीलिये उन्होने हिन्दी अलफाजकी कोई कद्र नही की।"

—तारीखेअदबे उर्दू, पृ० २७।

पूर्वार्द्ध युगीन उर्दूके प्राणप्रष्ठिापक शायर--

१४

सौदा

मिर्ज़ा मुहम्मदरफी 'सौदा'के पिता मुहम्मदशफी काबुलसे देहली आये थे। सौदा देहलीमे ही उत्पन्न हुए। प्रारम्भमे सुलतान कुलीखाँ दाऊदके और बादमे शाह हातिम[1]के शिष्य हुए। शाहआलम बादशाह इन्हे अपना कलाम दिखाया करते थे, परन्तु अनबन हो जानेसे सौदाने उनके यहाँ जाना छोड दिया था। यह वह युग था जब कि देहली उजड रही थी और अवध सल्तनत बहारपर थी। सौदा भी घबराकर पहले फ़र्रूखाबाद और बादमे नवाब आसफुद्दौलाके शासनमे लखनऊ पहुँचे। ये ७० वर्षतक जीवित रहे। मीरके प्रतिद्वन्द्वी समझे जाते थे, परन्तु इनकी गज़लोमे वह सोज़ोगुदाज कहाँ जो मीरके यहाँ पाया जाता है। फिर भी इसमे शक नही कि सौदाका मर्तबा शायरीमे बहुत बुलन्द नज़र आता है।

मसनवी, क़सीदे, गज़ल, मर्सिये, तर्जीहबन्द, मुखम्मस, रुबाई, किते, हिजो सभी कुछ तो इन्होने लिखा है, लेकिन गज़लमे सफल नही हुए। हाँ, कसीदे और हिजोमे अपना उदाहरण नही रखते। मसनवियोमे भी भावोकी सरलता और मधुरताकी आवश्यकता है। इसीलिये गज़लकी तरह मसनवियोमे भी मीरके मुकाबिलेमे कामयाब नही हुए।

---

[1]शाह हातिमका उल्लेख प्रारम्भिक युगमे सातवे नम्बरमे हो चुका है।

कैफियते चश्म उसकी मुझे याद है 'सौदा'।
साग़रको मेरे हाथसे लीजो कि चला मैं॥

समझके रखियो कदम दश्तेख़ारमें[1] मजनूं।
कि इस नवाहम 'सौदा' बरहनापा[2] भी है॥

फिक्रे मआ़श[3]-ओ-इश्केबुतां,[4] यादेरफ़्तगां[5]।
इस ज़िन्दगीमें अब कोई क्या-क्या किया करे?

किसकी मिल्लतमें गिनूं आपको[6] बतला ऐ शेख़!
तू मुझे गबरू कहे गबरू[7] मुसलमां मुझको॥

'सौदा'! ख़ुदाके वास्ते कर किस्सा मुख़्तसिर।
अपनी तो नींद उडगई तेरे फसानेसे॥

यह तो नहीं कहता हूँ कि सचमुच करो इन्साफ।
झूठी भी तसल्ली हो तो जीता ही रहूँगा॥

होती नहीं है सुबुह न आती है मुझको नींद।
जिसको पुकारता हूँ वह कहता है "मर कहीं"॥

पैग़ाम्बरने देर लगाई तो है, वले[8]।
धडके है दिल कि यह न कहे "रात हो गई"॥

क्या ज़िद है मेरे साथ ख़ुदा जाने, वगर्ना।
काफ़ी है तसल्लीको मेरे एक नज़र भी॥

---

[1]जगलमे, [2]नगेपाँव, [3]आजीविकाकी चिन्ता;
[4]माशूकोसे इश्क, [5]स्वर्गस्थोकी स्मृतियाँ, [6]स्वयको,
[7]काफिर [8]लेकिन।

आशिक़की भी कटती है क्या ख़ूब भली रात।
दो-चार घड़ी रोना दो-चार घड़ी बातें॥

'सौदा'! जो तेरा हाल है इतना तो नहीं वोह।
क्या जानिय तूने उसे किस आनमें देखा?

नसीम भी तेरे कूचेमें और सबा भी है।
हमारी ख़ाकमें कुछ देखिये रहा भी है॥

जुर्म है उसकी जफाका कि वफाकी तक़सीर।
कोई तो बोलो मियां! मुंहमें ज़बां है कि नहीं?

नीचे हम 'मीर' और 'सौदा'के चन्द शेर आबेहयातसे दे रहे हैं। उनसे मीर और सौदाका मर्तबा मालूम होगा।

मीर— हमारे आगे तेरा जब किसूने नाम लिया।
दिले सितमज़दाको हमने थाम-थाम लिया॥

सौदा— चमनमें सुबह जो उस जगजूका नाम लिया।
सबाने तेग़का मौजेरवांसे काम लिया॥

मीर— गिला मैं जिससे करूं तेरी बेवफाईका।
जहांमें नाम न ले फिर वह आशनाईका॥

सौदा— गिला लिखूं मैं अगर तेरी बेवफ़ाईका।
लहूमें ग़र्क़ सफीना[1] हो आशनाईका॥

दिखाऊंगा तुझे जाहिद! उस आफतेदींको[2]।
ख़लल दिमागमें है तेरे पारसाईका[3]॥

---

[1]नाव, [2]धर्मच्युत करनेवालेको,
[3]सयमी और सदाचारी होनेका।

मीर— चमनमें गुलने जो कल दावयेजमाल[1] किया।
जमालेयारने मुंह उसका खूब लाल किया॥

सौदा— बराबरीका तेरे गुलने जब ख़याल किया।
सबाने मार तमाँचा मुंह उसका लाल किया॥

मीर— एक महरूम चले 'मीर' हमीं दुनियासे।
वर्ना आलमको ज़मानेने दिया क्या-क्या कुछ॥

सौदा— सौदा! जहाँमें आके कोई कुछ न ले गया।
जाता हूँ एक मैं दिलेपुरआरजू[2] लिये॥

मीर— रात सारी तो कटी सुनते परीशाँगोई[3]।
'मीरजी'! कोई घड़ी तुम भी तो आराम करो॥

सौदा— 'सौदा'! तेरी फरियादसे आंखोमें कटी रात।
अब आई सहर[4] होनेको, टुक तो कहीं मर भी॥

मीर— मत रंजकर किसीको कि अपने तो ऐतक़ाद[5]।
दिल ढायकर जो काबा बनाया तो क्या हुआ?

सौदा— काबा अगर्चे टूटा तो क्या जाएगम है शेख़!
यह क़िसरेदिल[6] नहीं कि बनाया न जायगा॥

मुईन, हाशिम, माहिर, अमानी, उम्मीद आदि सौदाके शिष्य थे।

हिजो—सौदा बडे गुस्सेल थे। ज़रा किसीसे नाराज़ हुए नही कि चट 'हिजो' कहने लगे। आज़ाद लिखते है—"उनका 'गुचा' एक नौकर था। हर वक्त खिदमतमे रहता था और साथ कलमदान

---

[1]सौन्दर्य का दावा, [2]अभिलाषासे ओत-प्रोत,
[3]व्यथा और परेशानियोकी दास्तान, [4]सुबह,
[5]विश्वास, [6]हृदयमन्दिर।

लिये फिरता था। जब किसीसे बिगडते, फौरन पुकारते—'अरे गुचा ! ला तो कलमदान ज़रा, मै इसकी खबर तो लूं। यह मुझे समझा क्या है ?' फिर शर्मकी आँखे बन्द और बेहयाई-का मुंह खोलकर वोह-वोह बेनुकत सुनाते थे कि शैतान भी अमान मांगे। आलिम, जाहिल, फकीर, अमीर, नेक, बद—किसीकी दाढी इनके हाथसे नही बची। इस तरह पीछे पडते थे कि इन्सान जानसे बेजार हो जाता था। मगर इन्हे भी अहलेकमालने छोडा नही। इनका कहा इन्हीके दामनमे डाला है। 'फिदवी' शायरने 'सौदा'की शानमे यह हिजो कही है—

कुछ कट गई है पेटी कुछ कट गया है डोरा ।
दुम दाब सामनेसे वह उड चला लटूरा ॥
भडुआ है, मसखरा है, सौदा उसे हुआ है ॥

एक बार कयामुद्दीन 'उम्मीदवार' सौदाके पास शागिर्द होने आये। उपनाम सुना तो मुसकराये और ये हिजो कही—

है फैजसे किसीके शजर उनका बारदार।
इस वास्ते किया है तखल्लुस 'उम्मीदवार'' ॥

जब औरत 'गर्भ'से होती है तो दिल्ली-ज़बानमे उसे उम्मीदवार कहते है। 'कायम' हिजो सुनकर बडे झेपे और तखल्लुस बदल लिया। एक बार एक पठानकी शानमे हिजो कही तो उसने इनकी कमर पकडकर हज़ारो गालियाँ दी और सीनेपै पेशकब्ज़ रख दी। खुदा-खुदा करके जान बची। उस दिन इन्हे मालूम हुआ कि किसीकी बुराई करनेकी सज़ा क्या है ?

२८ जून १९४९ ई०

---

[1]आबेहयात, पृ० १५४।

१५

मीर

जब किसीने कहा कि—"फारसी शायरोमे फिरदौसी और अनवरी दुनियाए-शायरीके पैगम्बर है, तो एक सुखनसजने पूछा—और 'हाफिज़ ?' फौरन जवाब मिला—"वह तो खुदायेसुखन था।"

प्रसिद्ध आलोचक मजनूं गोरखपुरी आगे लिखते है—"उर्दू-शायरी भी अपना एक खुदा रखती है, और वह 'मीर' कहलाता है। कोई तज़करानवीस (उर्दू-शायरीके इतिहास-लेखक या समालोचक) या कोई शायर ऐसा नही मिलेगा, जिसने मीरके खुदाये सुखन होनेसे इन्कार किया हो।'[1]

'शेरो-शायरी'मे उर्दूके जिन ३१ अमर कलाकारोका उल्लेख किया गया है, उनमे सबसे पहला आसन हमने 'मीर'को दिया है। १४ पृष्ठोमे इनका जीवन-परिचय और सम्पूर्ण दीवानसे चुनकर ५१ शेर दिये है। केवल क्रम जारी रखनेके लिये यहाँ उनका उल्लेख पुन किया जा रहा है, और 'शेरो-शायरीसे' भिन्न उनका सक्षिप्त परिचय और कलाम दिया जा रहा है।

मीर आगरेमे उत्पन्न हुए, परन्तु जवानीकी चौखटपर पाँव रखते ही देहली आ गये और अपने रिश्तेदार 'खान आरज़ू'से शायरीमे मशवरा लिया करते थे। अल्लामानियाज़ फतहपुरीके शब्दोमे—"दोस्त-दुश्मन सबने इनको गज़लका खुदा तस्लीम किया है। और हकीकत ये है कि

---

[1] तनकीदी हाशिये, पृ० ६

उर्दू-शायरी कितनी ही जदीद फतूहात (वर्तमान विजय) हासिल करले, लेकिन वह उस मुमलिकत (शहन्शाही) मे कोई फातिहाना कदम नही रख सकती जो 'मीर'के कब्जेमे आ चुकी है। जबानकी हलावत (साहित्यिक माधुर्य्य), आशिकाना उफ्तादगी (प्रेमासक्तिकी नम्रता), वालिहाना रबूदगी (प्रेमासक्तिकी शोचनीय रुग्णावस्था)—कौन-सी ऐसी चीज है जो 'मीर'की गजलोमे नही पाई जाती। और अब किसमे हिम्मत है जो उनमे कोई इजाफा (सशोधन, परिवर्द्धन) कर सके।'"

'मीर' जीवन-पर्यन्त दुःख और कष्ट भोगते रहे। शायद इसीलिये उनके कलाममे इतनी व्यथा और पीडा भरी हुई है। फर्याया भी है—

किस-किस तरहसे उम्रको काटा है 'मीर'ने ?
तब आखिरी जमानेमें यह रेख्ता[2] कहा ॥

हमको शायर न कहो 'मीर' कि साहब हमने।
दर्दोगम कितने किये जमा तो, दीवान किया ॥

दिल्लीने जब भरण-पोषणमे काफी असुविधाओंका सामना करना पडा तो मीर लाचार होकर नवाब आसफुद्दौलाके शासनकालमें लखनऊ चले गये और वहाँ ३०० रु० मासिक वृत्ति नवाबसे मृत्युपर्यन्त पाते रहे। अबेहयात आदिके लेखकोने मीर और सौदाको समकालीन माना है, परन्तु अल्तामा नियाज फतहपुरीका मत है कि सौदाकी मृत्युके दो वर्ष बाद मीर लखनऊ पहुँचे थे।[1]

---

[1]इन्तकादियात भाग २, पृ० १०६

[2]स्मरण रहे कि उस समय उर्दू-शायरीका 'रेख्ता' नाम प्रचलित था।

[1]इन्तकादियात भा० २, पृ० १०१

इस दौरमें इलाही ! मुहब्बतको क्या हुआ ?
छोड़ा वफाको इसने, मुहब्बतको क्या हुआ ?

लगा न दिलको कहीं, क्या सुना नहीं तूने ?
जो कुछ कि 'मीर'का इस आशिक़ीमें हाल हुआ ॥

हमारे आगे तेरा जब किसूने नाम लिया ।
दिलेसितमज़दहको हमने थाम-थाम लिया ॥

मिरे सलीक़ेसे मेरी निभी मुहब्बतमें ।
तमाम उम्रमें नाकामियोंसे काम लिया ॥

आग थे इब्तदाये इश्क़में हम ।
अब जो हैं ख़ाक इन्तहा है यह ॥

हम जानते तो इश्क़ न करते किसूके साथ ।
ले जाते दिलको ख़ाकमें इस आरज़ूके साथ ॥

फिरते हैं 'मीर' ख़्वार कोई पूछता नहीं ।
इस आशिक़ीमें इज़्ज़ते सादात भी गई ॥

जाता हूं आसमां लिये कूचेसे यारके ।
आता हूं जी भरा दरोदीवार देखकर ॥

लेते ही नाम उसका सोतेसे चौंक उठ्ठे ।
है ख़ैर 'मीर' साहब ! कुछ तुमने ख़्वाब देखा ?

किस तरहसे मानिये यारो कि यह आशिक़ नहीं ।
रंग उड़ा जाता है, टुक चेहरा तो देखो 'मीर'का ॥

कुछ नहीं सूझता हमें उस बिन ।
शौक़ने हमको बेहवास किया ॥

कभू जायगी जो उधर सबा[1], तो यह कहियो उससे कि बेवफा !
मगर एक 'मीर' शिकस्तापा[2] तेरे बागेताजामें खार था ॥

सहरगह ईदमें दौरेसुबू था ।
पर, अपने जाममें तुझ बिन लहू था ॥
जहाँ पुर है फसानेसे हमारे ।
दिमागेइश्क हमको भी कभू था ॥

अब तो जाते है बुतकदेसे 'मीर' ।
फिर मिलेंगे अगर खुदा लाया ॥

फूल, गुल, शम्शोकमर[3] सारे ही थे ।
पर हमें उनमें तुम्हीं भाये बहुत ॥

क्यो न देखूँ चमनको हसरतसे ।
आशियाँ था मिरा भी याँ परसाल ॥

किसूसे दिल नहीं मिलता है या रब !
हुआ था किस घडी उनसे जुदा मैं ?

अब देखें आह ! क्या हो ? हम वे जुदा हुए हैं ।
बेयारो बेदयारो[4] बेआशना हुए हैं ॥

एक बीमारेजुदाई हूँ मैं आप ही, तिसपर—
पूछनेवाले अलग जानको खा जाते हैं ॥

जब नाम तेरा लीजिये तब चश्म भर आवे ।
इस जिन्दगीकरनेको[5] कहाँसे जिगर आवे ॥

---

[1] हवा, [2] थका हुआ, [3] चाँद-सूर्य,
[4] अपने वतनसे दूर, [5] जीवित रहनेके लिये ।

मुझीको मिलनेका ढब कुछ न आया ।
नहीं तक़सीर[1] उस नाआशना की ॥

दिल गया, रुसवा हुआ, आखिरको सौदा[2] हो गया ।
इस दो-रोज़ा ज़ीस्तमें[3] हमपर भी क्या-क्या हो गया ॥

फोड़ा-सा सारी रात जो पकता रहेगा दिल ।
तो सुबहतक तो हाथ लगाया न जायगा ॥
याद उसकी इतनी ख़ूब नहीं 'मीर' ! बाज़ आ ।
नादान फिर वह दिलसे भुलाया न जायगा ॥

मुहब्बत है या कोई जीका है रोग ।
सदा मैं तो रहता हूँ बीमार-सा ॥

इश्कका घर है 'मीर'से आबाद ।
ऐसे फिर खानुमाँ ख़राब कहाँ ?

हम तेरे इश्कसे तो वाकिफ नहीं, मगर हाँ ।
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे है ॥

फिरते हो 'मीर' साहब सबसे जुदे-जुदे तुम ।
शायद कहीं तुम्हारा दिल इन दिनो लगा है ॥

उम्रभर कूचयेदिलदारसे[4] जाया न गया ।
उसकी दीवारका सरसे मेरे साया न गया ॥

दिल कि दीवारका कातिलके बहुत भूका था ।
इस सितमकुश्तासे दो ज़ख़्म भी खाया[5] न गया ॥

---

[1]दोष, [2]उन्माद, [3]ज़िन्दगीमें, [4]माशूककी गलीसे ।
[5]जब दो ज़ख़्म है तो उनकी क्रिया 'खाये न गये' होनी चाहिये थी परन्तु उन दिनो एकवचन क्रियाका भी रिवाज था ।

मस्जिदमें इमाम आज हुआ आके वहांसे।
कलतक तो यही 'मीर' खराबातनशीं[1] था ॥

शरीफ़ेमक्का रहा है तमाम उम्र ऐ शेख़ !
यह 'मीर' अब जो गदा[2] है शराबखानेका ॥

अब तो वफ़ाओ-महरका मजकूर[3] ही नहीं।
तुम किस समेंकी कहते हो, है ये कहांकी बात ?

इश्क़ करते हैं उस परीरूसे।
'मीर' साहब भी क्या दिवाने हैं ?

कुछ तुम्हीं मिलनेसे बेज़ार हो मेरे, वर्ना।
दोस्ती नग नहीं, ऐब नहीं, आर नहीं ॥

तब थे सिपाही, अब हुए जोगी, आह जवानी यूं काटी
ऐसी थोडी रातमें हमने क्या-क्या स्वांग बनाये हैं ?

हाले बद गुफ़्तनी[4] नहीं मेरा।
तुमने पूछा तो महरबानी की ॥

ख्वाह मारा उन्हींने 'मीर'को या आप मुआ।
जाने दो यारो ! जो होना था हुआ, मत पूछो ॥

जाता है यार तेग़बकफ[5] ग़ैरकी तरफ़।
ऐ कुश्तयेसितम[6] तेरी ग़ैरतको क्या हुआ ?

परीशां कर गई फ़रियादे बुलबुल।
किसूसे दिल हमारा भी लगा था ॥

---

[1]शराबखानोंमें पडा रहता था। [2]भिखारी;
[3]जिक्र, [4]कहनेके योग्य, [5]तलवार लिये हुए;
[6]अत्याचारोके आदी।

सरज़द हमसे बेअदबी तो वहशतमें भी कम ही हुई।
कोसो उसकी ओर गये पर सजदा हर-हर गाम[1] किया॥

किसका क़िबला, कैसा काबा, कौन हरम है, या अहराम[2]?
कूचेके उसके बाशिन्दोने सबको यहींसे सलाम किया॥

याँके सफेद-ओ-सियहमें हमको दख़्ल जो है सो इतना है।
रातको रो-रो सुबह किया और दिनको जूं-तूं शाम किया॥

ख़ूब किया जो अहलेकरमकी ख़ूका[3] कुछ न ख़याल किया।
हम जो फकीर हुए तो हमने पहले तर्क सवाल किया॥

चाहतका इज़हार किया सो अपना काम ख़राब हुआ।
इस परदेके उठ जानेसे उसको हमसे हिजाब हुआ॥

तुरबते 'मीर'पर चले तुम देर।
इतनी मुद्दतमें वाँ रहा क्या ख़ाक?

'मीर' उठ बुतकदेसे काबा गया।
क्या करे जो ख़ुदा ख़राब करे॥

कुछ ज़र्द-ज़र्द चेहरा, कुछ लाग़िरी[4] बदनमें।
क्या इश्क़में हुआ है ए 'मीर'! हाल तेरा॥

चमनका नाम था सुना वले[5] न देखा हाय!
जहाँमें हमने क़फस ही में ज़िन्दगानी की॥

हो गई शहर-शहर रुसवाई।
रे मेरी मौत! तू भली आई!!

---

[1]कदम-कदमपर, [2]उपासना गृह,
[3]आदतका, [4]निर्बलता,
[5]लेकिन।

हर जिन्सके[1] ख्वाहाँ[2] मिले बाजारे जहाँमें।
लेकिन न मिला कोई खरीदारे मुहब्बत॥

'मीर' साहब! जमाना नाजुक है।
दोनो हाथोसे थामिये दस्तार[3]॥

हंगामा[4] मेरी नाश[5] पै तेरी गलीमें है।
ले जाएँगे जनाजाकशाँ[6] याँसे कब मुझे?

क्या 'मीर' है यही जो तेरे दरपै खड़ा था।
नमनाक चश्मो[7] खुश्कलबो[8] रंग जर्द था॥

एक दिन मैंने लिखा था उसको अपना दर्देदिल।
आजतक जाता नहीं खामाके[9] सीनेसे शिगाफ॥

पहुँचा तो होगा समएमुबारिकमें[10] हाले 'मीर'।
इसपर भी जीमें आवे तो दिलको लगाइये॥

तलवारके तले ही गया अहदेइम्बसात[11]।
मर-मरके हमने काटी है अपनी जवानियाँ॥

क़ासिद जो वाँसे आया तो शर्मिन्दा मैं हुआ।
बेचारा गिरियानाक[12] गिरेबाँदुरीदा[13] था॥

गदाशाह दोनों है दिलबाख्ता[14]।
अजब इश्कबाजीका दस्तूर है॥

---

[1]वस्तुके, [2]खरीदार, [3]पगडी,
[4]शोरोगुल, [5]अर्थी, [6]अर्थी उठानेवाले;
[7]डबडबाई आँखे, [8]सूखेसे ओठ, [9]कलमके,
[10]मुबारिक कानोमे, [11]खुशीका जमाना; [12]रोता हुआ,
[13]फटे वस्त्र; [14]बदहवास।

आबलेकी-सी तरह टीस लगी फूटी भी।
दर्दमन्दीमें कटी सारी जवानी इसकी॥

इश्क़ आदममें नहीं कुछ छोड़ता।
हौले-हौले कोई खा जाता है जी॥

फरहादोक़ैस जिससे मुझे चाहो पूछ लो।
मशहूर है फक़ीर भी अहलेवफाके बीच॥

अल्लाहरे अन्दलीबकी आवाज़े दिलख़राश[1]।
जी ही निकल गया जो कहा उसने 'हाय गुल'॥

चाहें तो तुमको चाहें, देखें तो तुमको देखें।
ख्वाहिश दिलोकी तुम हो, आंखोकी आरज़ू तुम॥

हमने अपनी-सी की बहुत लेकिन।
मरज़ेइश्क़का[2] इलाज नहीं॥

मुसलसिल[3] रोते ही रहिये तो बुझे आतिशेदिल[4]।
एक-दो आंसू तो और आग लगा जाते हैं॥

डूबे-उछले हैं आफताब हनूज़[5]।
कहीं देखा था उसको दरियापर॥

मस्ती शराबकी-सी है यह आमदेशबाब।
ऐसा न हो कि तुमको जवानी नशा करे॥

मीरजी! राज़ेइश्क़ होगा फाश[6]।
चश्म हर लहज़ा[7] मत पुरआब[8] करो॥

---

[1] हृदयबेधक, [2] प्रेमरोगका, [3] बराबर,
[4] हृदयकी आग, [5] अभीतक [6] प्रकट,
[7] हर समय, [8] अश्रुपूर्ण।

बैठने दे है कौन फिर उसको।
जो तेरे आस्तांसे उठता है॥

बेखुदी पर न 'मीर'के जाओ।
तुमने देखा है और आलममें[1] ॥

फुरसतमें यक नफ़सके[2] क्या वर्देदिल सुनोगे।
आये तो तुम व लेकिन वक़्तेअख़ीर आये॥

रात तो सारी गई सुनते परीशांगोई[3]।
'मीर'जी कोई घड़ी तुम भी तो आराम करो॥

तुम छेड़ते हो बज़्ममें मुझको तो हँसीसे।
पर मुझपै जो हो जाय है, पूछो मेरे जीसे॥

किसकी मस्जिद, कैसे मयख़ाने, कहाँके शेख़ोशाब[4]।
एक गर्दिशमें तेरे चश्मे सियहके सब ख़राब॥

मुझसे लेने लगे है इबरत[5] लोग।
आशिक़ीमें यह एतबार हुआ॥

ज़ुल्म हुए है क्या-क्या हमपर, सब्र किया है क्या-क्या हम।
आन लगे है गोर[6] किनारे उसकी गलीमें जा-जा हम॥

इश्क़ किया है उस गुलका या आफत लाये सरपर हम।
झाँकते उसको साथ सबाके[7] सुबह फिरे है घर-घर हम॥

हम न कहा करते थे तुमसे "दिल न किसूसे लगाओ तुम।
जी देना पड़ता है इसमें, ऐसा न हो पछताओ तुम॥"

---

[1]स्थितिमें, [2]पल भरमें, [3]दुख-गाथा।
[4]युवकवृन्द, [5]सबक, [6]कब्र,
[7]हवाके।

बिलकी नहीं बीमारी ऐसी जिसमें हो उम्मीदेशफ़ा[1]।
क्या सम्भलेगा 'मीर' सितमकश, वह तो मारा ग़मका है ॥

बहार फिराया गलियों-गलियों सर मारे दीवारोंसे।
क्या-क्या उनने सलूक किये हैं शहरके इज्जतदारोंसे ॥

अब फ़ायदा सुराग़से[2] बुलबुलके बाग़वां!
इतराफ़ेबाग़[3] होंगे पड़े मुश्तेपर[4] कहीं ॥

हम देखें तो देखें उसे, फिर परदा बहतर है, यानी—
और करें नज्जारा उसका हमको यह मंजूर नहीं ॥

खतका जवाब न लिखनेकी कुछ वजह न जाहिर हमपै हुई।
देरतलक क़ासिदसे पूछा, मुंहमें उसके जवाब नहीं ॥

यूं नाकाम रहेंगे कबतक जीमें है इक काम करें।
रुसवा होकर मारे जावें, उसको भी बदनाम करें ॥

जिसने सर खींचा दयारेइश्क़में[5] ऐ बुलहविस[6]!
वोह सरापाआरजू[7] आखिर जवां मारा गया ॥

दर्दमन्दोंसे तुम्हीं दूर फिरा करते हो कुछ।
पूछने वर्ना सभी आते हैं बीमारके पास ॥
बूएगुल आती है बादेसुबहगाहीसे[8] मुझे।
निकली है बेदर्द हो शायद किसी घायलके पास ॥

---

[1]रोगसे मुक्त होनेकी आशा, [2]तलाशसे खोजसे,
[3]बागके चारो ओर; [4]मुट्ठीभर पक्ष,
[5]प्रेममार्गमे, [6]विषयासक्त,
[7]अभिलाषाकी मूर्ति, [8]प्रात.कालीन समीरसे।

कभू 'मीर' उस तरफ़ आकर जो छाती कूट जाता है।
ख़ुदा शाहिद है अपना तो कलेजा लोट जाता है॥

अगर्चे अब तो ख़फा हो लेकिन मुएगयेपर[1] कभू हमारे।
जो याद हमको करोगे प्यारे, तो हाथ अपने मला करोगे॥

बन जो कुछ बन सके जवानीमें।
रात तो थोडी है बहुत है स्वांग॥

हस्ती अपनी हुबाबकी[2]-सी है।
यह नुमायश सराबकी[3]-सी है॥
नाजुकी उसके लबकी क्या काहिये?
पखडी इक गुलाबकी-सी है॥
बार-बार उसके दरपै जाता हूँ।
हालत अब इज्तराबकी[4]-सी है॥
मैं जो बोला, कहा—"कि यह आवाज़—
उसी ख़ानाख़राबकी-सी है"॥

तुम्हें तो जुहद-ओ-रिआपर[5] बहुत है अपने ग़रूर।
ख़ुदा है शेख़जी! हमसे भी गुनहगारोंका॥
दिलके वीरानेका क्या मज़कूर[6] है।
यह नगर सौ मर्तबा लूटा गया॥

वसीयत 'मीर'ने मुझको यही की।
कि सब कुछ होना, तू आशिक़ न होना॥

---

[1]मर जानेपर,
[2]बुलबुलेकी,
[3]मृगमरीचिकाकी;
[4]बेचैनीकी,
[5]छलपूर्ण भक्ति उपासना पर,
[6]ज़िक्र।

यह भी तुरफा माजरा है कि उसीको चाहता हूँ।
मुझे चाहिए है जिससे बहुत अहतराज[1] करना॥

कभू तो दैरमें हूँ मैं, कभू हूँ काबेमें।
कहाँ-कहाँ लिये फिरता है शौक़ उस दरका॥

बहुत रोनेने रुसवा कर दिखाया!
न चाहतकी छुपी हमसे अलामत॥

अब्दुलरसूल निसार, मियाँ गुलबन, मुहम्मद मुहसन, मजनूं, मुश्ताक, बिन्दराबन, राकिम, शकीबा, वगैरह 'मीर'के शिष्य थे। किन्तु इनमें एक भी मीरकी प्रतिष्ठाके अनुकूल न हुआ। होता भी कहाँसे? मीर जैसी व्यथा-वदना हर किसीके हिस्सेमे कहाँसे आती? और जबतक आह-पीडा, व्यथा-वेदना अपनी निजी सम्पत्ति नही, तब दूसरोसे उधार लेनेपर वे भाव कहाँ आ सकते है? हृदयगत भावो और बनावटी भावोंमें पृथ्वी-आकाशका अन्तर होता है। अपने घरमे आग न लगाकर दूसरोकी लगाई आगसे तापनेके क्या मायने?

कबिरा खडो बजारमें लिये लुकाटी हाथ।
जो घर फूंके आपुनो चले हमारे साथ॥

३० जून १९४९ ई०

---

[1]बचाव, परहेज।

१६

सोज़

इस दौरके तीसरे शायर सैय्यद मुहम्मदमीर 'सोज़' थे। ये पहल 'मीर' उपनाम रखते थे, परन्तु मीर तकीका उपनाम भी 'मीर' होनेके कारण इन्होंने अपना फिर 'सोज़' उपनाम रख लिया था। आबेहयातमे लिखा है कि 'मीर' इन्हे चौथाई शायर मानते थे, मगर यह बात गलत है। मीरने इनका वर्णन अत्यन्त सुन्दर शब्दोमे किया है। 'सोज़' दिल्लीमें उत्पन्न हुए। ४० वर्षकी आयुमे दिल्ली छोडकर फर्रुखाबाद और मुर्शिदाबाद रहकर अन्तमे लखनऊ पहुँचे और नवाब आसफुद्दौलाके काव्य-गुरु हुए।

"मीर सोज़की जबान अजीब मीठी ज़बान है, और हकीकतमे ग़ज़लकी जान है। मालूम होता है गुलाबका फूल हरी-भरी टहनीपर कटोरा-सा धरा है और सब्ज-सब्ज पत्तियोमे अपना असली जोबन दिखा रहा है। सोज़के कलाममे मुहावरोकी सफाई और ज़बानका लुत्फ हमेशा ज़र्बुल-मिसल (दृष्टान्तस्वरूप) रहा है। उनके शेर ऐसे मालूम होते है जैसे कोई चाहनेवाला अपने चहीते अज़ीज़मे बैठा बाते कर रहा है*।"

---

*इन्तकादियात भा० १, पृ० १०७

एकबारी धकसे होकर दिलकी फिर निकली न सांस ।
किस शिकारन्दाजका[1] यह तीरे बेआवाज है ।।

दो दिनकी यह जीस्त[2] 'सोज' साहब !
जिस तरह निभे तुम अब निबाहो ।।

मैं काश उस वक्त आँखें मूँद लेता ।
यह मेरा देखना मुझको बला था ।।

जिसका तू आइना हुआ होगा ।
उसने क्या-क्या सितम सहा होगा !

लोग कहते हैं मुझे यह शख्स आशिक है कहीं ।
आशिकी मालूम लेकिन दिल तो बेआराम है ।।

मेरा जान जाता है यारो बचा लो ।
कलेजेमें काँटा गडा है निकालो ।।
न भाई मुझे जिन्दगानी न भाई ।
मुझे मार डालो, मुझे मार डालो ।।
खुदाके लिये ऐ मेरे हमनशीनो[3] !
वह बाँका जो जाता है उसको बुला लो ।।
अगर वह खफा होके कुछ गालियां दे ।
तो दम[4] खा रहो, कुछ न बोलो न चालो ।।
न आवे अगर वह तुम्हारे कहेसे ।
तो मिन्नत करो घेरे-घारे मना लो ।।

---

[1]अचूक निशानेबाजका, [2]जिन्दगी ।
[3]पडोसियो, साथियो, [4]दम साध लो, चुप रहो ।

कहो—'एक बन्दा तुम्हारा मरे है।
उसे जानकन्दनसे[1] चलकर बचा लो॥
जलोकी बुरी आह होती है प्यारे!
तुम उस 'सोज़'की अपने हक़में दुआ लो॥

की फरिश्तोंकी[2] राह अबने बन्द।
जो गुनह कीजिये सवाब है आज॥

अहले ईमां 'सोज़'को कहते है काफिर हो गया।
आह, या रब! राज़े दिल उनपर भी ज़ाहिर हो गया॥

तड़पती क्यो है ऐ बुलबुल! कमाल इतना तो पैदा कर।
कि तेरा अश्क जिस जा गिर पडे गुलज़ार पैदा हो॥

बुलबुल कहीं न जाइयो ज़िनहार[3] देखना।
अपने ही मनमें फूलके गुलज़ार देखना॥

एक दिल था जानेमन! उसकी बिसात*?
तूने लूटा 'सोज़' लोटे है पड़ा॥

तू मनए गिरिया[4] न कर मुझको नासहे बेदर्द!
नहीं है अब तो मेरे अख्तियारमें रोना॥

---

[1]मृत्यु- पीडासे, देवताओंका मार्ग तो बादलोंने रोक लिया;
[2]कभी भी, हरगिज़ [3]रोनेसे मना।

*इसी मज़मूनका सीमाब अकबराबादीका यह शेर भी कितने ग़ज़बका है—

दिलकी बिसात क्या थी निगाहे जमालमें।
यह आईना था टूट गया देख-भालमें॥

तू रोज़े वस्लमें ऐ 'सोज़'! अपने आँसू पोछ।
अभी बहुत है तुझे हिज्रे यारमें रोना॥

थरथराता है अबतलक ख़ुरशीद[1]।
सामने तेरे आ गया होगा॥

ऐ 'सोज़'! अज़्मे[2] कूचये क़ातिल न कर अबस[3]।
तू एक भी बता दे कि वाँ जाके आ सका॥

जिनको नित देखते थे अब उनका।
देखना ही ख़यालोख़्वाब[4] हुआ॥

रातको नींद है न दिनको चैन।
ऐसे जीनेसे ऐ ख़ुदा! गुज़रा[5]॥

सोज़! अब भी रहा है कुछ बाक़ी।
छोड़ दे अब सरायेफानीको[6]॥

जनाज़ेवालो! न चुपके क़दम बढ़ाये चलो।
उसीका कूँचा है, टुक करते 'हाय-हाय' चलो॥

ग़म है या इन्तज़ार है, क्या है?
दिल जो अब बेक़रार है, क्या है?

सर ज़ानू[7]पै हो उसके और जान निकल जाये।
मरना तो मुसल्लिम[8] है, अरमान निकल जाये॥

—इन्तक़ादियात, भा० १ से

---

[1]सूर्य, [2]इरादा,
[3]व्यर्थ; [4]सपनेकी बात,
[5]बाज़ आया, [6]असार ससारको,
[7]जघापै, [8]अवश्यमेव।

सोज़ने एक दीवान छोडा है। जिसमे गज़लोके अतिरिक्त मसनवी, रुबाइयाँ और मुखम्मस भी है। तारीखे अदबे उर्दूके लेखकके शब्दोमें—"सोज़का अन्दाज़ेकलाम निहायत साफ, सादा, और बेतकल्लुफ है। ज़बान मीठी और गज़लके वास्ते निहायत मौज़ूं है। लुत्फेज़बान, मुहावरो-की सफाई और बेसाख्तापनमे उनका कलाम अपना आप नज़ीर है। तकल्लुफे फिज़ूल, मुबालिगे, तशबीहात (उदाहरण) से पाक-साफ है। सादगी और सफाईमे मीर तकी तो अलबत्ता उनके मुकाबिल है, मगर सौदा बहुत पीछे है। मगर मीर साहबके यहाँ ज़बानेलुत्फके साथ मज़मून और जज़बात (भावो) का जो लुत्फ है वह सोज़के यहाँ बहुत कम है। उनके कलाममें मीरो-सौदाकी तरह फारसी लफ्ज़ और फारसी तरकीबो-की भी कसरत नहीं। सीधे-सादे हिन्दी लफ्ज़ बेसाख्तगी (अनायास) से बाँधते है। मालूम होता है कि बात कर रहे है।"

सोज़के पढनेका अन्दाज़ भी खूब था। तरन्नुममे पढते थे और पढ़ते हुए इस तरहके हावभाव प्रदर्शित करते थे कि स्वय मज़मूनकी सूरत बन जाते थे। आबेहयातमे लिखा है कि जब यह कितआ पढा—

गये घरसे जो हम अपने सवेरे।
सलाम अल्लाहख्वाँ साहबके डेरे॥
वहाँ देखे कई तिपले परीरू[1]।
अरे रे-रे, अरे रे-रे, अरे रे॥

तो चौथा मिसरा पढते-पढते ज़मीनपर गिर पड गया परीज़ादोंको देखकर दिल बेकाबू हो गया।

३ जुलाई १९४९ ई०

---

[1] कमसिन सुन्दरियाँ।

१७

दर्द

ख्वाजा मीर 'दर्द' का उल्लेख हम 'शेरा-शायरी'में कर चुके है और उनके चुने हुए ५१ शेर भी उसमें दिये जा चुके है। यहाँ क्रमको जारी रखनेके लिये कुछ और नवीन अशआर चुनकर दिये जा रहे है।

मीर दर्द मुहम्मदनासिर 'अन्दलीब'के पुत्र थे। दिल्लीमें उत्पन्न हुए, वहीं परवरिश पाई और ३२ वर्षकी आयुमें अपने पिताकी दरगाहमें गद्दीनशीन हुए और मृत्युपर्यन्त दिल्ली ही रहे। संगीतकलाका अच्छा अभ्यास था। हफ्तेवार राज महफिल भी जमती थी। बड़े-बड़े संगीतज्ञ निःशुल्क सम्मिलित होते थे। मुशायरे भी मासिक कराते थे। कभी-कभी बादशाह भी आते थे।

निज़ाम फतहपुरीके शब्दोंमें— दर्दका दीवान बहुत मुख्तसिर है, लेकिन जितना भी है जामेमुहब्बत है। यह एक साहबेदिल दरवेश थे। इनके कलामकी खूबीका इज़हार अल्फाज़में मुमकिन नहीं, लेकिन दिमाग जरूर महसूस करता है।"[1]

दर्दने कभी किसीकी चालूमीमें न कसीदा कहा और न किसीकी बराईमें हिजो लिखी।

आबेहयातमें मो० आज़ादका यह लिखना कि "मीर इन्हें आधा शायर समझते थे' मनगढ़न्त और निजी कल्पना है। दर्दके व्यक्तित्व और शायराना अज़मतका 'मीर' भी अहतराम करते थे। अपने फारसी

---

[1] इन्तक़ादियात भाग २, पृ० १०६

तज़किरेमे मीरने 'दर्द'के सम्बन्धमे जो लिखा है उसका हिन्दी अनुवाद निम्न प्रकार है—

"दर्दकी कविता गूढ मन्तव्यको सरल और स्पष्ट रूपसे व्यक्त करती है। उसकी लिपि कागज़पर इस प्रकार सुन्दर प्रतीत होती है, जैसे भोर-बेलामे फैली हुई प्रेयसीकी जुल्फे। उसकी कल्पनाशक्ति पूर्णरूपसे विकसित है, और भावनाके उद्यानमे मृदु-पगसे चहलकदमी-सी करती प्रतीत होती है। उसकी कविताके शब्द मानो उद्यानके फूल है। उसके विचारोके फूलोको तोडनेवालेकी टोकरी सहज भर जाती है। वह रेख्ताका महान कवि है। कला-कुशल, मृदुभाषी, महमानवाज और सच्चा स्नेही है।"*

दर्दका दीवान अत्यन्त सक्षिप्त है। उसमेसे कुछ नमूने यहाँ दिय जाते है—

---

*दीवाने उर्दू, ख्वाजा मीर दर्द, पृ० ४

झुकता नहीं हमारा दिल तो किसी तरफ यों।
जीमें समा रहा है अज़बस[1] ग़रूर तेरा॥

मदर्सा, या दैर था, या काबा या बुतखाना था।
हम सभी महमान थे, वां तू ही साहिबखाना था॥
भूल जा, खुश रह, अबस[2] वे साबक़े[3] मत यादकर।
'दर्द' यह मज़कूर क्या है, आइना था या न था॥

शरर और बर्क़की-सी भी नहीं यां फुर्सतेहस्ती।
फ़लकने हमको सौंपा काम जो कुछ था शिताबीका[4]॥
मैं अपना दर्ददिल चाहा कहूँ जिस पास आलममें।
क्यां करने लगा क़िस्सा वोह अपनी ही खराबीका॥

गर्चे वोह खुरशीदरू[5] नित है मिरे सामने।
तो भी मयस्सर[6] नहीं भरके नज़र देखना॥

मिसलेनगीं जो हमसे हुआ काम, रह गया।
हम रूस्याह जाते रहे, नाम रह गया॥
साक़ी मेरे भी दिलकी तरफ टुक निगाह कर।
लबतिश्ना[7] तेरी बज़्ममें यह जाम रह गया॥

की तो थी तासीर आहेआतशी[8]ने, उसको भी।
जबतलक पहुँचे ही पहुँचे राखका यों ढेर था॥

---

[1]बहुत, [2]व्यर्थ,
[3]घटनाएँ, [4]जल्दीका,
[5]सूर्य जैसी आभावाला; [6]प्राप्त, [7]प्यासा,
[8]अग्निरूपी आहने।

हिर्स[1] करवाती है रूबाह बाजिग़ा[2] सब वर्ना यां।
अपने-अपने बोरियेपर जो गदा[3] था शेर था॥
अश्कने मेरे मिलाये कितने ही दरियाके पाट।
दामनेसहरामें वर्ना इसकदर कब घेर था॥

काम यां जिसने जो कि ठहराया।
जबतलक होवे, आप ही काम आया[4]॥
बेतरह कुछ उलझ गया था दिल।
बेवफाईने तेरी सुलझाया॥
आंसू कबतक कोई पिये जावे।
इस मुहब्बतने जो बहुत खाया॥
दुश्मनीमें सुना न होवेगा।
जो हमें दोस्तीने दिखलाया॥

मूरिदेकहर[5] तो यां हम हो हैं।
और किसपर यह करम[6] कीजियेगा॥

बावजूदे[7] कि परोबाल न थे आदमके।
वां यह पहुँचा कि फरिश्तेका भी मक़दूर[8] न था॥

हाल मुझ ग़मज़देका जिस-तिसने।
जब सुना होगा रो दिया होगा॥

अन्दाज़ वो ही समझे मिरे दिलकी आहका।
जख्मी जो हो चुका हो किसीकी निगाहका॥

---

[1]तृष्णा,
[2]लोमडी जैसी हरकत यानि छल फरब,
[3]सन्यासी,
[4]आप ही समाप्त हो गया,
[5]अत्याचारके पात्र,
[6]कृपा,
[7]यद्यपि,
[8]सामर्थ्य।

सौ बार देखीं मैंने तिरी बेवफाइयाँ।
तिसपर भी नित ग़रूर है दिलमें निबाहका॥

कुछ है ख़बर तुझे भी कि उठ-उठके रातको।
आशिक तेरी गलीमें कई बार हो गया॥
बैठा था ख़िज्र आके मेरे पास एकदम।
घबराके अपनी ज़ीस्तसे[1] बेज़ार हो गया॥

तुमने तो एक दिन भी न इधर गुज़र किया।
हमने ही इस जहानसे आख़िर सफर किया॥
जिनके सबबसे दैरको[2] तूने किया ख़राब।
ऐ शेख़! उन बुतोंने मेरे दिलमें घर किया॥

जूं चाहिए उस तरह बयाँ हमसे न होगा।
कर अपने दहनसे ही तू वस्फ़[3] अपनी कमरका॥

ठहर जा टुक बातकी बात ऐ सबा!
कोई दममें हम भी होते हैं हवा॥

तुझमे कुछ देखा न हमने जुज़जफा[4]।
पर, वोह क्या कुछ है? कि जीको भा गया॥
फिरती है मेरी ख़ाक सबा दरबदर लिये।
ऐ चश्मेअश्कबार[5] यह क्या तुझको हो गया॥

वाइज़[6]! किसे डराइये योमेहिसाबसे[7]।
गिरया[8] मेरा तो नामयेऐमाल[9] धो गया॥

---

[1]ज़िन्दगीसे, [2]मन्दिरको, [3]तारीफ,
[4]क्षणभरको, [5]अत्याचारके अतिरिक्त, [6]अश्रुपूर्ण नेत्र,
[7]उपदेशक, [8]यमराजके न्यायसे, [9]आँसू, रोना,
[10]दुष्कर्मोंकी तालिका।

तुझीको यहाँ जलवा फ़रमा न देखा।
बराबर है दुनियाको देखा न देखा॥

अपना तो नहीं यार मैं कुछ, यार हूँ तेरा।
तू जिसकी तरफ होवे, तरफदार हूँ तेरा॥

कुढ़नेपै मेरे जी न कुढा, तेरी बलासे।
अपना तो नहीं गम मुझे, ग़मख्वार हूँ तेरा॥

तू चाहे न चाहे मुझे कुछ काम नहीं है।
आज़ाद हूँ इससे भी, गिरफ़्तार हूँ तेरा॥

तू होवे जहाँ मुझको भी होना वहीं लाज़िम।
तू गुल है मेरी जान तो मैं ख़ार हूँ तेरा॥

है इश्क़से मेरे ही तेरे हुस्नका शुहरा[1]।
मैं कुछ नहीं पर, गर्मियेबाज़ार हूँ तेरा॥

जबतक है दिलके शीशेमें रग इम्तियाज़का।
है ऐ परी! तभी तईं आईना नाज़का॥

फैला है कुफ़्र यां तक काफिर! तेरे सबबसे।
शमएहरम[2] भी दे है मायेपै अपने टीका॥

अपनी आंखो उसे मैं देखूं।
ऐसा भी कभू ख़ुदा करेगा॥

अहले ज़माना आगे भी थे और ज़माना था।
पर अब जो कुछ है यह तो किसूने सुना न था॥

किसूसे क्या बयां कीजे उस अपने हालेअबतरका[3]।
दिल उसके हाथ दे बैठे जिसे जाना न पहचाना॥

---

[1]प्रसिद्धि, [2]भेदभावका,
[3]मस्जिदका दीपक, [4]शोचनीय अवस्थाका।

नज़र जब दिलपै की देखा तो मस्जूदेखलायक[1] है।
कोई काबा समझता है कोई समझे है बुतखाना॥

कुछ कशिशने तेरी असर न किया॥
तुझको ऐ इन्तज़ार देख लिया॥
तिश्नगी[2] और भी भड़कती गई॥
जूं-जूं मैं आंसुओंको अपने पिया॥

मरना ही लिखा है मेरी किस्मतमें अजीज़ां[3]!
गर जिन्दगी होती तो यह आज़ार[4] न होता॥

नासह! मैं दीनोदिलके तईं अब तो खो चुका।
हासिल नसीहतोसे जो होना था हो चुका॥
ज़ाहिद किया करे है वज़ू गो कि रोज़ोशब।
चाहे कि दिलसे धोए कुदूरत,[5] सो धो चुका॥

मुहब्बतने हमको समर[6] जो दिया।
सो यह है कि सब कामसे खो दिया॥

आईनेकी तरह ग़ाफिल! खोल छातीके किवाड़।
देख तो है कौन बारे[7] तेरे काशानेके[8] बीच॥

हंस कब्रपै मेरी खिलखिलाकर।
यह फूल चढ़ा कभी तो आकर॥

और तो छूट गये मरके भी ऐ कुंजेकफस[9]!
एक हम ही रहे हर तरह गिरफ्तार हनूज़[10]॥

---

[1]विश्वका पूज्य, [2]प्यास, [3]मित्रो, [4]रोग;
[5]मनका मैल, [6]फल, [7]सौभाग्यसे, [8]मनमन्दिरके;
[9]बन्दीगृह, [10]अभीतक।

सैयाद ! अब रिहाईसे क्या मुझ असीरको ?
फिर किसको जिंदगीकी तवक्को[1] बहारतक ॥

यारब ! दुरुस्त गो न रहूँ तेरे अहदपर[2] ।
बन्देसे पर न हो कोई बन्दा शिकिस्ता दिल ॥

अपने मिलनेसे मना मत कर ।
इस बिन बेअख्तियार है हम ॥

हमें तो बाग तुझ बिन खानयेमातम[3] नजर आया ।
इधर गुल फाडते थे जेब, रोती थी उधर शबनम ॥

गुल अब तो मिले हैं हँसके लेकिन !
बुलबुल ! यह चुभेंगे खार जी में ॥
यूँ पास बिठा जिसे तू चाहे ।
पर जगह न दीजो यार जी में ॥

हस्ती है जबतक हम है इसी इज्तराबमें[4] ।
जूं मौज आ फँसे हैं अजब पेचोताबमें ॥

जालिम ! जफा जो चाहे सो कर मुझपै तू वले ।
पछतावें फिर तू आप ही ऐसा न कर कहीं ॥
फिरते हो सज बनाये तो अपनी इधर-उधर ।
लग जाये देखियो न किसीकी नजर कहीं ॥

यावरी देखिये नसीबोंकी !
दोस्त भी हो गये मेरे दुश्मन ॥

---

[1]आशा, [2]आदेशपर,
[3]शोकगृह, [4]चक्करमें,
[5]करिश्मा ।

हमारी इतनी ही तक़सीर है कि ऐ ज़ाहिद !
जो कुछ है दिलमें तेरे हम वोह फाश[1] करते हैं ॥

अश्कसे मेरे फकत दामनेसेहरा नहीं तर।
कोह भी सब हैं खडे ता-ब-कमर[2] पानीमें ॥

आह ! परदा तो कोई मानएदीदार[3] नहीं।
अपनी ग़फलतके सिवा कुछ दरोदीवार नहीं ॥

ज़िन्दगी जिससे इबारत है सो वोह ज़ीस्त कहाँ।
यूं तो कहनेके तईं कहिये कि हाँ जीते हैं ॥

सूरतें क्या-क्या मिली हैं ख़ाकमें।
हैं दफीना हुस्नका ज़ेरेज़मीं ॥

आगे ही बिन कहे तू कहे है—"नहीं-नहीं"।
तुझसे अभी तो हमने वे बातें कही नहीं ॥

बेवफाईपै उसके दिल मत जा !
ऐसी बातें हज़ार होती हैं ॥

देख मेरे ज़ोफको[4] कहने लगा रोकर तबीब —
"कोई दममें यह भी उसकी नातवानी[5] फिर कहाँ" ॥

हरदम बुतोकी सूरत रखता है दिल नज़रमें।
होती है बुतपरस्ती अब तो ख़ुदाके घरमें ॥

अफसोस अहलेदीदको गुलशनमें जा नहीं।
नरगिसको गो कि आंख है, पर सूझता नहीं ॥

---

[1]प्रकट, [2]कमरतक,
[3]देखनेमे बाधक, [4]निर्बलताको,
[5]चिकित्सक, [6]निर्बलता।

ऐ दर्द ! रफ़्ता-रफ़्ता किया आपको भी गुम ।
इस राहमें चला था मैं किसके सुराग़को ?

जिस तरहसे सुबहको होता है बेरौनक़ चिराग़ ।
देख तुझको उड गया गुलशनमें गुलका रंगो-बू ।।

चमकते हैं सितारोंकी तरह सूराख़ सीनेके ।
छुपाया गो कि जूं ख़ुरशीद मैंने दाग़ेपिनहाँको[1] ।।

नहीं शिकवा मुझे कुछ बेवफाईका तिरी हरगिज़ ।
गिला तब हो अगर तूने किसीसे भी निबाही हो ।।

मुझे यह डर है दिलेज़िन्दा तू न मर जाए ।
कि ज़िन्दगानी इबारत है तेरे जीनेसे ।।
बसा है कौन तेरे दिलमें गुलबदन ऐ 'दर्द' !
कि बू गुलाबकी आई तेरे पसीनेसे ।।

मत इबादतपै भूलियो ज़ाहिद !
सब तुफ़ैलेगुनाहेआदम है ।।

बन्द अहकामेअक्लमें रहना ।
यह भी एकनोअकी[2] हिमाक़त है ।।
एक ईमान है बिसात अपनी ।
न इबादत न कुछ रियाज़त है ।।

मेरे अहवालपै न हँस इतना ।
यूं भी ऐ महर्बान ! पडती है ।।

---

[1]छुपे हुए दागोंको,
[2]बुद्धिके आज्ञापालनमें,
[3]एक प्रकारकी ।

दिल बुरा होता है कोई तुझसे, पर यूं ही अबस[1] ।
हम सदा ग़ैरोसे मिलना सुनके घबराया किये ॥

कभू रोना, कभू हँसना, कभू हैरान हो रहना ।
मुहब्बत क्या भले-चंगेको दीवाना बनाती है ।

यां कौन आइना है तेरा किसको तुझसे रब्त ?
कहनेको यह भी लोगोंके इक बात रह गई ॥
बाजी बदी थी उनने मेरी चश्मेंतरके साथ ।
आखिरको हार-हारके बरसात रह गई ॥

नामनाकिए-बेहूदा[2] रोनेको डुबोती है ।
गर अश्क बजा टपके आंसू नहीं मोती है ॥

मनअ़सहबा[3] न कर मुझे ऐ शेख !
मयपरस्तोके हक़में दारू है ॥

हम इतनी उम्रमें दुनियासे हो गये बेज़ार ।
अजब है खिज़्रने क्योंकर के ज़िन्दगानी की ॥

उसके तईं भी दुस्तरेरज़ टुक तू मुंह लगा ।
मैं जानूं फिर यह ज़ाहिद अगर घरको मुंह करे ॥

५ जुलाई १९४९

---

[1]व्यर्थ ; [2]व्यर्थका शोक, [3]मद्यनिषेध ।

१८

क़ायम चान्दपुरी

शेख कयामुद्दीन 'कायम' चाँदपुर ज़िले बिजनौरके रहनेवाले थे, परन्तु मुलाज़मतके कारण दिल्लीमें रहने लगे थे। पहले हिदायतुल्लाहसे कवितामें मशोधन लेते थे। उनसे बिगड़नेपर मीर दर्दसे और उनसे भी बिगाड़ हो जानेपर सौदासे मशविरा लेने लगे। आजादके शब्दोंमें—"कायम फन्नेशेरमें कामिल थे। इनका दीवान हरगिज़ मीर और मिर्ज़ाके दीवानसे नीचे नहीं रख सकते।" मजनूं गोरखपुरी लिखते हैं कि—"शेफ्ताको छोड़कर अक्सर तज़किरे नवीसोंने कायमके कलामकी बुलन्द पायगी (श्रेष्ठता) तस्लीम की है। 'मुसहफी' उनकी पुख्तगीए कलामके कायल हैं। मीर हसन उनके तर्ज़का फारसी गज़लगो 'तालिब आमिली' का तर्ज़ बताते हैं। करीमुद्दीन उन्हें शायरे खुशगुफ्तार बुलन्दमर्तबा, मौजूंतबा, आलीमिकदार लिखते हैं। इस तज़किरा नवीसका खयाल है कि जो लोग 'कायम' को 'सौदा'से बहतर समझते हैं वे सच्चे हैं। राय लक्ष्मीनारायण साहब 'शफीक' दक्खनीने कायमके ज़हनेसलीम और फिक्रेमुस्तकीमको माना है, और अपने चमनिस्तानें शुअराम इनकी लताफत और मलाहतकी पूरी-पूरी दाद दी है[1]।"

कायम और उनके समकालीन अमर, नाबाँ, यकीन, बयान, बेदार इस युगके प्रथम श्रेणीके शायर कहे जाने चाहिएँ। सौदा तो कसीदे और

---

[1] तनकीदी हाशिये, पृ० ६५

हिजोके उस्ताद थे, गजलमे मीर और दर्द जैसा रुतबा नही रखते। इस-लिये उक्त शायरोकी सौदासे तो तुलना करनी ही व्यर्थ है। इनकी तुलना मीरोदर्दसे की जा सकती है। इनके कलाममे भी मीरोदर्द-जैसी भावोकी स्वच्छता, भोलापन, भाषाकी सरलता, पवित्रता, मिठास पाई जाती है। फिर क्या कारण है कि मीरो-दर्द तो आसमाने शायरीपर चमक रहे है और ये पुस्तकालयोके आलोमे धरे टिम-टिमा रहे है।

देशके उत्थान-पतनमे शायरोका बहुत बडा हाथ होता है। वे चाहे तो अकर्मण्य और परतन्त्र जनतामे उत्साह, उल्लास, उमग नव-चेतना लाकर उसे परतन्त्रताकी बेडियाँ काटनेको प्रस्तुत कर दे, अथवा चाहे तो स्वतन्त्र और समृद्धिशाली देशको परतन्त्रता और अकर्मण्यताके दल-दलमे गिरा दे। शायर पशुओको मनुष्य और मनुष्योको पशु बनाने-की क्षमता रखते है। उनकी वाणीमे अमृत और विष दोनो होते है। जहाँ वे राणा प्रतापके डगमगाते पाँवोको अगदका बल प्रदान कर सकते है, शिवाजी-जैसे साधनहीनको औरगजेब जैसे शाहनशाहसे भिडा सकते है, वहाँ वे शाहआलम बादशाहको निरीह बनाकर उसकी आँखे निक-लवा सकते है, वे बहादुरशाह बादशाहको दया-पात्र बनाकर बन्दी होनेको लाचार कर सकते है वे बेगमातको नादिरशाहके सामने नाचनेको प्रस्तुत कर सकते है। वे लखनवी नवाबोको जनखा बना सकते है। पगुको पर्वतपर चढा सकते है, गूंगको वाणी दे सकते है। मूगोको सिहोसे, कबूतरो-को बाजोसे भिडा सकते है। और वे वीरोको कायर बना सकते है सिहो-को कुत्तोके साथ भोजन करनेको तैयार कर सकते है। वे स्वर्गको नरक और दोजखको बहिश्त बनानेकी क्षमता रखते है।

जो शायर देश-समाजमे उत्साह नवजीवन, चेतना फूंकते है, उन्नतिके नवीन मार्ग खोजते है, बल-विक्रम भरते है, विकारी मानवोका कायाकल्प करते है, निराश और उद्यमहीनोमे आशा और कर्मवीरताके भाव लाते है, वही शायर चिरजीवित रहते है। इसके विपरीत जो शायर व्यथा,

आह, निराशा, रुदन, विलासिता, अकर्मण्यता आदिका दूषित वातावरण उत्पन्न करते हैं, वे थोड़े काल जीवित रहते हैं और समाप्त हो जाते हैं।

जीवनको उभारनेवाले तत्त्व प्राचीन उर्दू-शायरीमे है ही नही। उसका जन्म ही मुगलिया सल्तनतके पतनकालमे होता है। अत उसमें भी वे सब दोष आ गये है, जो किसी देशकी पतनोन्मुख स्थितिमें होते है। उर्दूके काबिलेनाज़ शायर मीरोदर्दके यहाँ भी व्यथा, वेदना, आह, रुदन, निराशा, लाचारी, तडप, पाई जाती है। इनका लक्ष्य ही हुस्नो-इश्ककी शायरी है। बकौल मजनूं गोरखपुरी—"मीरोदर्दके यहाँ गिनतीके ऐसे अशआर निकलेगे जिनमे ज़िन्दगीकी नाकामियो और मायूसियोका बयान न हो; मगर यह बयान अमूमन एक पिन्दार (गर्व) और अहसासे विकार (इज्ज़तके भावो) के साथ होता है। उनकी सुपुर्दगीमें एक फातहाना अन्दाज़ होता है, और हम उनको पढकर थोडी देरके लिये अपनी सतहसे बुलन्द और बरतर हो जाते है। बरखिलाफ 'कायम', 'असर' वगैरह हमारी तलखी और बेज़ारीको पहलेसे कही ज्यादा बढा देते है। वह गमको राहतफिज़ा बनाना नही जानते। यही वजह है कि हम ज्यादा देरतक उनकी शायरीके मुत्तहमल (साथ) नही रह सकते।"[1]

कायमके यहाँ उनके समकालीन—अमर, ताबाँ, यकीन, बयान, बेदारकी निस्बत तलखी और मायूसी कम, सजीदगी और मतानत अधिक पाई जाती है।

मजनूं गोरखपुरी लिखते है—"कायमको अधेड उम्रका शायर कहना शायद बेजा न होगा। मुख्तलिफ शायर उम्रके मुख्तलिफ दौरके लिये होते है। जवानीके शायरोमें उस हैजान (जोश) और इज़्तराब (तड़प) की फरावानी (अधिकता) होती है, जिसको जवानीसे ताबीर करते

---

[1]तनक़ीदी हाशिये, पृ० ६८

है। इस दौरके शायरोमे—असर, यकीन, और तावाँ इसकी बहतरीन मिसालें है। पढ़नेवालोके दिलोमे इनका कलाम एक तपिश और बैचैनी पैदा कर देता है। इनके यहाँ उस तवाजुनका बहुत कम पता चलता है जो जवानीकी दोपहर ढल जानके बाद होता है। इनका काम सिर्फ तड़पना और तडपाना है। 'बयान' इस दौरसे गुजर चुके है, और जिन्दगीके दश्तमें क़दम रख चुके है। इस दौरकी शायरी अमूमन यादकी शायरी होती है। यानी शायर माजी (भूतकाल)की यादमें ठडी साँस भर-भरकर रह जाता है। उसकी सर्द आहोमें तासीर और तास्सुरात (प्रभाव, असर), सोजोगुदाज (व्यथा, तडपन), तो बहुत होती है; मगर वह न खुद तडपता है, न दूसरोको तडपाता है। यह याद महज बुढ़ापेकी याद नही होती बल्कि इस यादके अन्दर एक गर-मजोशी, एक वालिहाना (आशिकाना) अन्दाज, एक वारफ्तगी (दीवानगी, मस्ती), होती है, जिसके आसार बुढापेमें बहुत कम रहते है। इस यादकी बहतरीन मिसालमें 'बयान'का यह शेर पेश किया जा सकता है --

पियो शराब जवानो ! कि मौसमे गुल है।
हमें भी याद वह अहदे शबाब आता है॥

मीरोदर्द बुढापेके शायर है। जब कि इन्सानके अन्दर इन्तहाई सजीदगी, इन्तहाई मतानत और इन्तहाई बरगजीदगी आ जाती है कायम अधेड उम्रके शायर है और उनके अक्सर अशआर इस यादेगरमके बहतरीन नमूने है।'[1]

---

[1]तनकीदी हाशिये, पृ० ७३

दर्देदिल कुछ कहा नहीं जाता।
आह, चुप भी रहा नहीं जाता॥

काबा अगर्चे बिगडा तो क्या जाए गम है शेख़ !
कुछ किसरे दिल नहीं कि बनाया न जायगा॥

क़िस्मतको देख टूटी है जाकर कहाँ कमन्द।
कुछ दूर अपने हाथसे जब बाम रह गया†॥

बेदिमाग़ीसे न उसतक दिलेरजूर[1] गया।
मर्तबा इश्कका याँ हुस्नसे भी दूर गया॥

मुझे इस अपनी मुसीबतसे है फराग कहाँ ?
किसीसे चाहूँ कि मुहबत रखू, दिमाग़ कहाँ ?

वे दिन गये कि उठाता था बारे निकहते गुल[2]।
है बेदिमाग़िये दिल[3] इन दिनो गिराँ[4] मुझको॥

फलक जो दे तो ख़ुदाई भी अब न ले 'क़ायम'।
वे दिन गये कि इरादा था बादशाहीका॥

---

†आश्चर्य है कि यही शेर ह-ब-ह सौदाके दीवानमें भी मिलता है। यह शेर आमतौरपर यूं मशहूर है।

क़िस्मत की ख़ूबी देखना टूटी कहाँ कमन्द।
दो-चार हाथ जब कि लबेबाम रह गया॥

[1]दुखी, कुम्हलाया हुआ, [2]अवकाश,
[3]फूलोंकी सुगन्धिका भार, [4]दिलका चिडचिडापन,
[5]भारस्वरूप।

समझके शीशयेदिलको पटकियो ऐ बुतेमस्त !
बजाये बादा[1] लहू है इस आबगीनें में ॥*

यह जानता मैं नहीं हूँ कि दिल है क्या 'कायम' ?
पर इक खलिश-सी रहे है मुदाम सीनेमें ॥

दिल गँवाना था इस तरह 'कायम' !
क्या किया हाय तूने खानाखराब[2] !

ले गया खाकमें हमराह अपना दिल 'कायम' ।
शायद इस जिन्सका यां कोई खरीदार न था ॥

न दिल भरा है न अब नम रहा है आँखोमें ।
कभू जो रोये थे, खूं जम रहा है आँखोमें ।
मुआफकतकी[3] बहुत शहरियोसे मैं, लेकिन ।
वही गजाल[4] अभी रम रहा है आँखोमें ॥

किसे गुलगश्तेगुलशनकी हविस है ।
असीरोका जिगरपर दाग़ बस[5] है ॥
न पूछो मुझसे गुलशनकी हकीकत ।
बरस गुजरे कि मैं हूँ और कफस है ॥

---

[1]शराब, [2]खालमे, [3]सदैव,

*कुछ-कुछ इसी मजमूनमे लडता हुआ किसीका एक शेर और याद आया ।

हमारे शीशयेदिलको सम्भलकर हाथमें लेना ।
नजाकत इसमें इतनी है नजरसे जब गिरा टूटा ॥

[1]अभागे, [2]वस्तुका, [3]मेल-जोल बढाया,
[4]मृगनयनी, [5]पर्याप्त ।

अब तो नै गुल न गुलसितां है याद ।
उसी मुखडे की हर जनां है याद ॥
आह ! ए पीरेचर्ख !! 'कायम' नाम ।
यां जो रहता था, इक जवां, है याद ?

हविस है इश्ककी अहलेहवाको,[1] हम तो मियां !
सुनेसे नाम मुहब्बतका जर्द होते हैं[2] ॥

क्यो न रोऊँ मैं देख खन्दयेगुल[3] ।
कि हँसे था वोह बेवफा भी यूं ही ॥

कोई मुख्तार कहो या कोई मजबूर हमें ।
हम समझते हैं जहांतक कि है मक़दूर[4] हमें ॥

न कर ग़रूर तू मुनअम[5] ! कि एक गर्दिशमें ।
फकीरका-सा पियाला है ताजेशाहीका ॥

'क़ायम' क़दम सम्भालके रख कूएइश्कमें[6] ।
यह राह बेतरह[7] है मिरी जान ! देखना ॥

'कायम' आता है मुझे रहम जवानीपै तेरी ।
मर चुके हैं इसी आज़ारमें[8] बीमार बहुत ॥

बहारे उम्र है 'क़ायम' कोई दिन ।
इसे ज्यूं गुल पिण्डरे काट हँसकर ॥

खुश्कोतर फूंकती फिरती है सदा आतिशेइश्क[9] ।
बचियो इस रजसे ऐ पीरोजवां, सुनते हो ?

---

[1]शेखीबाजोंको, [2]पीले पड जाते है; [3]फूलोकी मुस्कराहट,
[4]सामर्थ्य, [5]धनिक, [6]प्रेमपथमे,
[7]भूलभुलैया; [8]रोगमें, [9]प्रेम-अग्नि ।

हमसे मिले न आप तो हम भी न मर गये।
कहनेको रह गया ये सुख़न, दिन गुज़र गये॥

फिरे ज़माना जहाँतक है हमसे या न फिरे।
किसूके फिरने न फिरनेसे क्या, ख़ुदा न फिरे॥

एक जागहपै नहीं है मुझे आराम कहीं।
है अजब हाल मेरा, सुबह कहीं, शाम कहीं॥

घुल गया आपी-आप कुछ 'कायम'।
क्या बला इस जवानपर आई?

बरगे गुचा बहार इस चमनकी सुनते थे।
पै ज्यो ही आँख खुली मौसमे ख़िज़ाँ देखा॥

न कहते थे तुझे 'क़ायम' कि दिल किसीको न दे।
मज़ा कुछ इसका भला तूने ऐ मियाँ! चक्खा?

कब मैं कहता हूँ कि तेरा मैं गुनहगार न था।
लेकिन इतनी तो अक़ूबतका[1] सज़ावार न था॥

एवज़तरबके[2] गुज़िश्तोका[3] हमने ग़म खींचा[4]।
शराब औरोने पी और ख़ुमार[5] हम खींचा॥

पल मारते करे है इशारोसे मुत्तहम[6]!
टुक इस सितमज़रीफका बोहतान[7] देखना॥

---

[1]दण्ड, कष्टका, [2]ख़ुशीके बदले,
[3]भूतकालका अथवा अपने स्वर्गासीन इष्टजनोका, [4]दुख माना,
[5]नशेके उतारकी अवस्था, जो नशेबाज़को बडी अरुचिकर होती है;
[6]अपराधी, [7]दोषारोपण।

गो तग़ाफ़ुलसे[1] मेरा काम[2] हुआ।
पर भला तू तो नेक नाम हुआ॥

सेहतका जोमें चाव न आज़ारकी[3] हविस[4]।
नागुफ़्तनी[5] है कुछ तेरे बीमारकी हविस॥

सीखे हो किससे सच कहो प्यारे यह चाल-ढाल।
तुम इक तरफ चलो हो तो तलवार इक तरफ॥

किस बातपर तेरी मैं करूँ एतबार हाय!
इकरार इक तरफ है तो इन्कार इक तरफ॥

आमादये सोख़्तन[6] हूँ इक बार।
ऐ बर्क़![7] मेरे भी आशियाँ[8] तक॥

तेरे दामन तलक ही पहुँचूँ—और
ख़ाक होनेसे कुछ मुराद नहीं॥

आशिक न था मैं बुलबुल! कुछ गुलके रगोबूका।
इक उन्स हो गया था इस गुलसिताँसे मुझको॥

एक हमीं ख़ार थे आँखोमें सभीके सो चले।[9]
बुलबुलो! ख़ुश रहो अब तुम गुलोगुलज़ारके साथ॥

हमनशीं[10]! ज़िक्रेयार कर कुछ आज।
इस हिकायतसे जी बहलता है॥

ज़ालिम! ख़बर तो ले, कहीं 'क़ायम' ही यह न हो।
नालाँओमुतज़रब[11] पसेदीवार[12] है कोई॥

---

[1]उपेक्षासे, [2]मैं नष्ट हो गया, [3]रोगकी,
[4]अभिलाषा, [5]न कहने योग्य, [6]जलनेको आतुर,
[7]बिजली, [8]घोंसला, निवासस्थान, [9]साथी,
[10]चीखता और तड़पता, [11]दीवारके पीछे।

रोज़ोशब[1] है हालते-अजामे-मयनोशी[2] मुझे।
किसकी आँखोंने दिया पैग़ामेबेहोशी मुझे?

आना है तो आ वगर्ना प्यारे।
हम आपसे[3] आज जा रहे हैं॥

आप जो कुछ करार करते हैं।
कहिये, हम एतबार करते हैं॥

चलिये 'क़ायम' कि रफ्तगाँ[4] अपना।
देरसे इन्तज़ार करते हैं॥

—तनक़ीदी हाशिएसे।

वह है कौन दिन कि तेरे लिये मुझे तुझ गलीमें गुज़र नहीं॥
है यह क्या सितम कि तुझे सजन! मेरी अब तईं भी खबर नहीं॥

ग़ैरसे मिलना तुम्हारा सुनके गो हम चुप रहे।
पर सुना होगा कि तुमको इक जहाँने क्या कहा?

ज़ालिम तू मेरी सादा दिलीपै तो रहमकर।
रूठा था आप तुझसे मैं और आप मन गया॥

बुतोंकी दीदको जाता हूँ दैरमें 'क़ायम'!
मेरा कुछ और इरादा नहीं, खुदा न करे॥

—इन्तकादियात भा० २ से

२५ जुलाई १९४९ ई०

---

[1]दिनरात,
[2]शराबके नशेकी-सी अवस्था,
[3]अपनी जानसे जा रहे हैं अर्थात् मर रहे हैं,
[4]स्वर्गस्थ।

१६

असर

ख्वाजा पीरमुहम्मद 'असर' दर्दके छोटे भाई थे। प्रथम श्रेणीके शायर और सगीतमे पारगत थे। समवेदनशील हृदय रखते थे। ईश्वर भक्त फकीर थे। दर्दके बाद यही मसनदे दरवेशीपर आसीन हुए। 'ख्वाबोखयाल' मनसवी उनकी श्रेष्टतम कृति है। खेद है कि उनका जीवन-परिचय इससे अधिक नही मिलता। असरके बडे भाई ख्वाजा-मीर 'दर्द' सम्भवत. असरके कविता-गुरु थे।

मजनूं गोरखपुरीके शब्दोमे—"असरने अपनी तमाम उम्र गज़ल-गोईमें लगादी। इश्क और वारदातेइश्क उनका मौज़ूए सुखन (कविताका विषय) था और फिर उन्होने जिस सादगी और सहूलियत, जिस दर्दमन्दी और दिलसोज़ीके साथ इन वारदातेइश्कको बयान किया है, वह उनको एक जुदागाना असलूबका मालिक माननेमे मजबूर करते है।"[1]

"असरको जज़्बात (भावो)की पुख्तगीके साथ ज़बानकी पुख्तगी भी वैसी ही नसीब हुई। वे आपबीतीको जगबीती बना देते है। मुआमलातेइश्कको ऐसी वरजस्तगी और बेतकल्लुफीसे बयान करते हैं कि हर एक यही समझता है कि मेरे दिलकी बात कही गई है। जो बातें वे कहते है दिलको मोह लेती है।"[2]

"असर सूफी थे, ज़ाहिद थे, इबादतगुज़ार थे, लेकिन कलामके

---

[1] तनकीदी हाशिये, पृ० ६७

[2] तनकीदी हाशिये, पृ० ६६

तेवर बताते हैं कि वे इस मंजिलपर किस रास्तेसे पहुँचे हैं[1] और किन खतरातेइश्कसे उनको गुज़रना पड़ा है।"

"कहते हुए डरता हूँ कि कहीं बेअदबी न हो। वर्ना शायद इससे इनकार करना इन्साफ न हो कि असरकी ज़बानमें 'मीर'से ज़्यादा तल्खी, तंज़ और घुलावट मौजूद है।"[2]

गर हम ही हम हैं आह! तो हम-हम कभू नहीं।
और तू ही तू है सब कहीं तो हम कहाँ नहीं?

दिलन मुझसे 'असर' किया सो किया।
क्या कहूँ? महरबान अपना है॥

जो सज़ा दीजे है बजा मुझको।
तुझसे करनी न थी वफा मुझको॥
वही मैं हूँ 'असर' वही दिल है।
अब ख़ुदा जाने क्या हुआ मुझको॥

बेवफा तेरी कुछ नहीं तक़सीर।
मुझको मेरी वफा ही रास नहीं॥

कभी दोस्ती है कभी दुश्मनी।
तेरी कौन-सी बातपर जाइये॥

सर्फेग़म,[1] हमने नौजवानी की।
वाह, क्या खूब ज़िन्दगानी की॥

---

[1] साफ कहिये कि 'असर' भी 'मोमिन'की तरह काबेको गये मगर 'कूएबुतां होकर'।

[2] तनक़ीदी हाशिये, पृ० ११४

[1] ग़मकी भेंट।

आहके साथ दिल निकल न गया।
आह ! ऐ आह !! यह खलल न गया ॥

इतना बतलाओ, रामगलत, प्यारे !
कौन-सी तेरी बातपर कीजे ॥

कर दिया कुछ-से-कुछ तेरे गमने।
अब जो देखा तो वह 'असर' ही नहीं ॥

दिलेपुरइज़्तराबने[1] मारा।
इसी खानाख़राबने मारा ॥

दिलजलोंका है दिलकी लाग इलाज।
आगके जूँ जलेका आग इलाज ॥

आह सारा है यह जहान ग़लत।
दोस्तीका है यां गुमान गलत ॥

जो किसीका कभू न यार हुआ।
वही किस्मतमे यार अपना है ॥

बेवफाई वोह गो हज़ार करे।
यां वफा ही शुआर[2] अपना है ॥

कुछ न पूछो निपट ही मुश्किल है।
औरके हाथमें मेरा दिल है ॥

राहपर उनको लगा लाये तो है बातोमें।
और खुल जाएँगे दो-चार मुलाकातोमें ॥

जब कि तेरा खयाल लाता हूँ।
सारी बातोंको भूल जाता हूँ ॥

---

[1]व्यथित हृदयन, [2]स्वभाव।

तू न आया वले[1] 'असर'के तईं ।
मरते-मरते भी इन्तज़ार रहा ॥

शमा परवानेको जलाती है ।
साथ, पर उसके आप जलती है ॥
जीते जी तक ब-हसरतो अफ़सोस[2] ।
सरको धुनती है हाथ मलती है ॥

जीमें अपने जो है सो है प्यारे ।
फायदा क्या तुझे जतानेसे ॥

राह तकते ही तकते हम तो चले ।
आइये भी कहीं जो आना है ॥
कभू मेरा भी कहना मानियेगा ।
जो कहा तूने, मैंने माना है ॥

अगर ऐसा ही अब सताइयेगा ।
ग़ैर जीता मुझे न पाइयेगा ॥
दिल हरइकसे लडाते फिरते हो ।
आँख तो हमसे भी लडाइयेगा ॥
'असर' इतना तो इल्तमास[3] करूँ ।
हर किसूको दग़ा न खाइयेगा ॥
जानतक दो जिसे कि चाहो तुम ।
दिलको टुक देखकर लगाइयेगा ॥

बस[4] हो या रब ! यह इम्तहान कहीं ।
या निकल जाय अब ये जान कहीं ॥

---

[1]लेकिन, [2]अभिलाषा और खेदसहित,
[3]प्रार्थना, [4]समाप्त ।

क्या कहूँ दिलकी मैं परेशानी।
दिल कहीं, मैं कहीं, ध्यान कहीं॥

देखता ही नहीं वोह मस्तेनाज़।
और दिखलाऊँ हालेज़ार किसे॥
ख़ूब देखे 'असर'ने क़ौलोक़रार।
अब तेरे क़ौलपर क़रार किसे॥

काम अपना 'असर' तमाम हुआ।
इस दिले नाबकारके हाथो॥

कभू करते थे महरबानी भी।
आह! वोह भी कोई ज़माना था॥
क्या बताएँ कि इस चमनके बीच।
कहीं अपना भी आशियाना था॥
होशियारोसे मिलके जानोगे।
कि 'असर' भी कोई दिवाना था॥

देखना टुक 'असर'से नज़रें मिला।
क्या हुए थे क़रार आँखोमें॥

हाल अपने पै मुझको आप 'असर'।
रहम बेअख़्तयार आता है॥

—तनक़ीदी हाशियसे

'असर' कीजिये क्या, किधर जाइये।
मगर आप ही से गुज़र जाइये॥
बेवफ़ाईपै तेरी जी है फ़िदा।
क़हर होता जो बावफ़ा होता[५]॥

---

[५]'चकबस्त'ने भी इसी मज़मूनको ख़ूब बाँधा है—

पहले सौ बार इधर-उधर देखा।
जब तुझे डरके इक नजर देखा'॥

—इन्तक़ादियात, भा० २, पृ० ११०

पूछ मत हालेदिल मिरा मुझसे।
मुज़्तरिब हूँ मुझे हवास नहीं॥

बेवफा तेरी कुछ नहीं तक़सीर।
मुझको मेरी वफा ही रास नहीं॥

यूँ ख़ुदाकी ख़ुदाई बरहक है।
पर 'असर'की हमें तो आस नहीं॥

तुझ सिवा कोई जलवागर ही नहीं।
पर, हमें आह! कुछ ख़बर ही नहीं॥

दर्देदिल छोड़ जाइये सो कहाँ?
अपने बाहर तो याँ गुज़र ही नहीं॥

तेरी उम्मीद छुट नहीं सकती।
तेरे दरके सिवाय दर ही नहीं॥

हाल मेरा न पूछिये मुझसे।
बात मेरी तो मोतबर ही नहीं॥

हज़ारों जान देते हैं बुतोंकी बेवफाईपर।
अगर इनमेंसे कोई बावफा होता तो क्या होता॥

'मीरने क्या खूब फर्माया है—

देख लेता है वोह पहले चार सू अच्छी तरह।
चुपकेसे फिर पूछता है 'मीर' तू अच्छी तरह॥

ऐसेके ख़ैरख़्वाह हुए हम कि जिसको आह !
बदख़्वाहमें है फ़र्क न कुछ ख़ैरख़्वाहमें ॥

ग़म ही दिखलाती है सदा किस्मत ।
वाह अपनी बनी है क्या किस्मत ॥
जिसकी ख़ातिर सभी हुए दुश्मन ।
न हुआ दोस्त वह ही, या किस्मत !

तू ही बता बनेगी युं ही बात किस तरह ।
बिलफ़र्ज़ दिन कटा, पै कटे रात किस तरह ?

तुझसे न था जो कुछ कि गुमां सो यकीं हुआ ।
जो तुझसे था यकीं सो अब उसका गुमां नहीं ॥

यूँ तो क्या बात है तेरी लेकिन ।
वोह न निकला जो था गुमां दिलको ॥
बेगुनाहोंसे दिलको साफ़ करो ।
नहीं तकसीर, पर मुआफ़ करो ॥

तू मेरी जान गर नहीं आती ।
ज़ीस्त होती नज़र नहीं आती ॥
कीजे नामहर्बानी ही आकर ।
महर्बानी अगर नहीं आती ॥
हालेदिल मिस्ले शमअ रोशन है ।
गो मुझे बात कर नहीं आती ॥
नहीं मालूम दिलपै क्या गुज़री ।
इन दिनों कुछ ख़बर नहीं आती ॥
दिन कटा जिस तरह कटा लेकिन ।
रात कटती नज़र नहीं आती ॥

—निगार, जनवरी १९५०

अमरकी मसनवीका नमूना––

कुछ न खुलता था क्या मरज़ है उसे।
आहोज़ारीसे क्या गरज़ है उसे॥
किस लिये ज़ार-ज़ार रोवे है।
किस लिये ढाढ़ें मार रोवे है॥
किस लिये बेहवास रहता है।
किस लिये यूं उदास रहता है॥
यूं जो सूखे है, क्या उसे दिक है?
या किसी शख्सपर यह आशिक है?
हाल पूछो तो खैर रोने लगे।
और उलटे खफीफ होने लगे॥
बिन कहे आप ही आप बकता है।
बात पूछो तो मुंहको तकता है॥
एक तो उसके जोरने मारा।
और यारोके गोरने मारा॥
आह यारब! किधर निकल जाऊं?
दोस्त, दुश्मनको मुंह न दिखलाऊं।
दिन कहां चैन, रात खवाब कहां?
बिन तेरे आये दिलको ताब कहां?
नहीं आती है इन्तज़ारसे नींद।
उड़ गई है खयाले यारसे नींद॥
मुन्तज़िर तेरा बस कि रहता हूं।
'कौन है' हर सदापे कहता हूं॥
कोई हो, ले उठू मैं तेरा नाम।
'आ भी ज़ालिम' हुआ है तकियाकलाम॥

हाथसे अपने बात जाती है।
कहीं आ चुक, कि रात जाती है॥

क़हर है गरमियोंकी दोपहरें।
दिलपै क्या-क्या गुज़रती है लहरें॥

सख़्त दूभर है, जाड़ेकी रातें।
और उसकी हज़ारहा बातें॥

अब न दिन ही कटे न रात कटे।
किस तरह अरसये हयात कटे॥

—तनक़ीदी हाशियेसे

३१ जुलाई १९४९ ई०

२०

ताबाँ

मीर अब्दुलहई 'ताबाँ' इतने हसीन और नमकीन थे कि लोग इन्हें यूसुफेसानी कहा करते थे। गोरे बदनपर स्याह लिबास खूब खिलता था। तत्कालीन चारित्रिक पतनका यह हाल था कि मज़हर, मीर, सौदा, जैसे ख्यातिप्राप्त उस्ताद भी इनपर मरते थे और सर्वसाधारणमे तो न जाने कितने इनके तीरेनज़रके घायल थे। लौंडेबाज़ी शायरीमे मन बहलावका साधन नही थी, अपितु वह पहले लोगोके व्यावहारिक जीवनमें घर कर चुकी थी। तभी हृदय-सरोवरके विकार काईरूपमे इस घिनौने ढगपर काग़ज़पर आने लगे थे। यहाँतक कि बादशाहने जब इनके सौन्दर्य-की गन्ध पाई तो वह भी अपनी मान-मर्यादाको भूलकर इन्हे देखनेके लिये बेचैन हो उठा, और जुलूसका बहाना बनाकर इनके मकानके आगेसे गुज़रा और जी भरकर देखनेकी नीयतसे वहाँ हाथी ठहरवाकर पानी पीकर आगे बढा। फाटक हब्शखाँसे जो रास्ता लाहौरी दर्वाज़ेकी तरफ निकलता है, उसी फाटकपर 'ताबाँ'का कमरा था और इस रास्तेसे कभी शाही जुलूस नही निकले थे, क्योकि यहाँ तो शहरकी फ़सील (प्राचीर) थी और फसीलके बाहर-बाहर कौन ऐसा बावला होगा जो अपना जुलूस निकलवायेगा? परन्तु बादशाहके तो दिलोदिमागपर हुस्नपरस्तीका भूत सवार था। कौन-सी बात उपयुक्त है, और कौन-सी नही, यह सोचने-समझनेका उसे तब होश ही कहाँ रहा होगा।[1]

---

[1] विषयासक्त चित्तानां गुणः को वा न नश्यति।
न वैदुष्यं, न मानुष्यं नाभिजातं न सत्यवाक॥
—वादीभसूरि

'तावाँ'पर जहाँ अनेक जान फिदा किये हुए थे, वहाँ वह खुद भी एक सुलेमान छोकरेको दिल दे बैठे थे। माशूक भी किसीपर आशिक हो, तभी उसे आशिकोके हृदयमे सुलगनेवाली आगका ज्ञान होता है। आशिकोकी उपेक्षा करने, उन्हे विरह-अग्निमे जलाने-सतानेमे कितना कष्ट होता है, यह माशूक तभी जान सकता है, जब उसका भी दिल किसी पर आये। बकौल 'गालिब'—

आशिक हुए है आप भी इक और शख्सपर।
आखिर सितमकी कुछ तो मकाफात चाहिए॥

मालूम होता है 'तावाँ' अमफल प्रेमी रहे, या सुलेमानने अन्ततक मुहब्बत नही निभाई। 'तावाँ' कफेअफसोस मलते हुए कहते है—

सुलेमाँ! क्या हुआ गर तू नजर आता नहीं मुझको।
मेरी आँखोकी पुतलीमें तेरी तसवीर फिरती है॥

तावाँ शराब बहुत पीते थे। हर वक्त नशेमे चूर रहते थे। अल्हड जवानी, कयामत ढानेवाला हुस्न, गदराया हुआ जोबन और फिर नशेमे चूर! बकौल दाग—

इस अदाका कहीं जवाब भी है?

तावाने लोगोके समझाने-बुझानेपर शराब छोडी भी तो एक सप्ताहमे इस दुनियासे कूच कर गये[1]। उनकी इस जवान मौतपर सारे दिल्ली शहरने शोक मनाया।

(विषयासक्त मनुष्योंके कौन-से गुण नष्ट नही होते? न उनमे विद्वत्ता रहती है, न मनुष्यता रहती है, न स्वाभिमान रहता है और न सत्य वचन ही रहता है।)

[1]शायद इसीलिये कि जन्नतमे कौसरपर बैठकर मनमानी पियेगे।

वह घबराकर जनाज़ा देखने बाहर निकल आये ।
किसीने कह दिया मय्यत जवाँ मालूम होती है ॥

—अज्ञात

ताबाँकी इस जवाँ मौतपर उर्दू-शायरीके हर नज़रेनवीसने आँसू बहाये है । मीर' जैसे बद्दिमाग़ने भी जो शाज़ोनादर ही किसीकी प्रशसा करते थे, लिखा है—

दाग़ है ताबाँ अलीउल रहमताका दिलपै 'मीर' ।
हो निजात उसको, बिचारा हमसे भी था आश्ना ॥

ताबाँ किसके शिष्य थे ? इसपर लोग एकमत नही है । शेफ्ता इन्हे 'सौदा'का शिष्य लिखते है । 'गुलशनेहिन्द' और 'गुलज़ारेहिन्द'के लेखक इन्हे 'मजहर' और 'सौदा' दोनोका शिष्य बताते है । मुसहफी इन्हे 'शाहहातिम' और मुहम्मदअली 'हशमत'का शिष्य प्रमाणित करते है । मीरने भी 'हशमत'को ताबाँका उस्ताद तस्लीम किया है । स्वय ताबाँ भी हशमतके प्रति इस प्रकार श्रद्धाका परिचय देते है—

परस्तिश क्यो न दुनियामें करें हम उसकी ऐ 'ताबाँ' ।
हमारा किबला हशमत, दीन हशमत, रहनुमा हशमत ॥

ताबाँके कलाममे मजहर और हातमका रग झलकता है, परन्तु सौदाकी कोई खूसियत नही पाई जाती । ताबाँ इतने रूपवान और सजीले थे कि जो उन्हे देखता था गरवीदा हो जाता था । यही कारण है कि हर उस्ताद इन्हे अपना शिष्य बनानेको उत्सुक रहता था, किसी

न वहाँ कोई ज़ाहिद होगा न नासेह । न नये रगरूट होनेकी झिझक । ताबाँ जैसे पियक्कडपर यह फब्ती कौन कस सकता था ?

जिनको पीनेका तरीक़ा न सलीक़ा मालूम ।
जाके कौसरपै यकायक वोह पिऐंगे क्योकर ?

बहाने ताबाँकी मुलाकातके लिये लालायित रहता था। सौदा, हातिम, मज़हर, मीर, सभी ताबाँकी कविता-सशोधन करनेमें गौरव और सुख समझते थे। मज़हर तो भरी महफिलमे ताबाँकी शोखियो और बेअदबियोसे प्रसन्न होते थे। और लोगोकी नज़रे बचा-बचाकर इन्हीको घूरते रहनमे जीवन सफल समझते थे। ताबाँके कलामकी प्रशसा यूँ तो सभीने की है, परन्तु मीर जैसे खुदाये-सुखनने भी तारीफोतोसीफके दरिया बह दिये है। "नौजवाँ बामज़ाक', 'बिसयार खुश फिक्र', 'शायरेखुशज़ाहिर', गरज़ कि क्या-क्या नही कहा है। मीरका किसीकी ज़बानेरगीको बर्गेगुल (फूलोकी पखडी)से भी पाकीज़ातर (पवित्र, कोमल) बताना कोई मामूली खिराजेतहसीन (कविताकी प्रशसा करना) नही है[1]।"

---

[1]तनकीदी हाशिये, पृ० १३७

अख़गरको[1] छिपा राखमें मैं देख यह समझा।
'ताबाँ' तू तहेख़ाक भी जलता ही रहेगा॥

उड़ाये सबा ख़ाक मेरी अगर तू।
तो कूचेमें उस बेवफा ही के लेजा॥

आश्ना हो चुका हू मैं सबका।
जिसको देखो सो अपने मतलबका॥
हम तो ताबाँ हुए हैं लामज़हब[2]।
मज़हला[3] देख सबके मज़हबका॥

रखता था एक जी सो तेरे ग़ममें जा चुका।
आख़िर तू मुझको ख़ाकमें ज़ालिम मिला चुका॥
बेताबियोंका इश्क़में करता है क्यो गिला।
'ताबाँ' अगर यह दिल है तो आराम हो चुका॥

बेवफाओंसे दिलमें है 'ताबाँ'।
और सब कुछ करूँ, वफा न करू॥

है आरज़ू यह जीमें उसकी गलीमें जावें।
और ख़ाक अपने सरपर मनमानती उड़ावें *॥

---

[1]आगकी चिनगारीको,

[2]धर्महीन,

[3]अज्ञानता,

*एक तरफ 'ताबाँ'की यह आरज़ू है, दूसरी तरफ चकबस्तकी आरज़ू देखिये—

'रख दे कोई ज़रासी ख़ाके वतन कफनमें'

कहते है असर होगा रोनेमे, ये है बातें।
एक दिन भी न यार आया रोते ही कटी रातें॥

सौदामें[1] गुज़रती है क्या खूब तरह 'ताबाँ'।
दो-चार घडी रोना, दो-चार घडी बातें* ॥

मै दिल खोल 'ताबाँ'! कहाँ जाके रोऊँ।
कि दोनो जहाँमें फरागत नही है॥

बयाँ क्या करूँ नातवानी[2] मै अपनी।
मुझे बात करनेकी ताकत कहाँ है?

गम वस्लमें है हिज्रका, हिजराँमें वस्लका।
हरगिज़ किसी तरह मुझे आराम ही नहीं॥

किससे फरियाद करूँ मै कि वोह हरजाई है।
आह इस बातमें मेरी भी तो रुसवाई है॥

गुल ज़मींसे जो निकलते है बरगेशोला[3]।
कौनजाँ सोख्ता[4] जलगा है तहेखाक हनूज़[5]॥

---

[1]उन्मादावस्थामें,

*यह शेर 'सौदा'-जैसे उस्तादके शेरसे हू-ब हू लड गया है। मुशायरोमे गज़ल पढते समय किन्ही दो शायरोका, एक ही मजमून, एक ही जैसे शब्दोमे बाँधना कमालेशायरी समझा जाता है—

आशिक़की भी कटती है क्या खूब भली रातें।
दो-चार घड़ी रोना, दो-चार घडी बातें॥

—सौदा

[2]निर्बलता, [3]आगकी तरह, [4]दिलजला, [5]अभीतक।

मस्त मैं तो हो गया तेरी निगहसे साक़िया !
अब नहीं मुझमें रहा है और पैमानेका होश ॥

आखिर तेरे ग़ममें मर गये हम।
भरना था जो दुख सो भर गये हम ॥

किस-किस तरहसे हमने किया अपना जी निसार[1]।
लेकिन गई न दिलसे तेरे बदगुमानियाँ ॥

जो बेताबी दिलेउश्शाककी[2] बातिल[3] समझते थे।
मेरे सीनेपै आकर इन दिनो वे हाथ धर देखें ॥

हुए हम बुतके बन्दे बिरहमनसे राह[4] करते हैं।
हरमके रहनेवालो, तुमसे इश्क अल्लाह करते हैं ॥

दश्तमें कर चलनेकी तदबीर होना हो-सो-हो।
तोड़ दीवाने तू अब जंजीर होना हो-सो-हो ॥

मौत आजाये कहीं इस दिले शैदाईको।
रोज समझाये कहांतक कोई सौदाईको[5] ॥

आती है बात-बातपर हरदम।
रंजिशें दरम्यान क्या कीजे ?

न जाने क्या तुझे उल्फत थी गुलसे ऐ बुलबुल !
कि अपने जीसे गई, पर चमनसे तू न गई ॥

पटकने दे मुझे सर उसके आस्तानेसे।
खबर करूं हूं मैं अपनी इसी बहानेसे ॥

---

[1]योछावर, [2]आशिकके दिलकी, [3]झूठी,
[4]सजोल, [5]पागलको।

३०

फ़िराक़

हकीम सना उल्लाह 'फिराक' भी दर्दके मशहूर शिष्य थे ।

दिल थामता कि चश्मपर करता तेरी निगाह ।
सागरको देखता कि मैं शीशा सम्हालता ॥

गो दर्देसरए नासेह ! है गर्दिशे पैमाना ।
पर हमको तो सन्दल है ख़ाकेदरे मयख़ाना ॥

असीरोंकी क़सम तुझको, सबा ! सच कह कि गुलशनमें ।
कोई उन हमनवाओंमें[1] मुझे भी याद करता है ?

—दीवानेदर्द

---

[1]साथियोंमे ।

३१

हज़ीं

मीर मुहम्मद 'हज़ीं' मज़हरके शिष्य थे और दिल्ली छोडकर अज़ीमाबादमे नवाब साहबके पास चले गये थे।

हाल ऐ क़ासिद ! मेरा जो कुछ कि तू जाता है देख।
इस तरहसे उससे मत कहियो कि वह महजूब[1] हो॥

कुछ कहा शायद उसने क़ासिदसे।
दिलमें मेरे ओह इज्तराब[2] नहीं॥

हर नसीहत मैं तेरी मानूंगा ऐ नासेह ! पर एक।
दिलबरोके देखनेमें जी मेरा नाचार है॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

१५ अगस्त १९४९ ई०

---

[1]शर्मिन्दा, [2]बेचैनी।

३२

मुसहफ़ी

गुलाम हमदानी 'मुसहफी'के पिता शेख वलीमुहम्मद अमरोहेके रहनेवाले थे, किन्तु मुसहफी युवावस्थामें ही शाहआलम बादशाहके शासन-कालमें दिल्ली आ गये थे। बचपनसे ही शिक्षाकी ओर रुचि थी और शेरोसुखनका स्वाभाविक शौक था। अतः मुसहफी दिल्ली-जैसे शायरीके केन्द्रमें आकर अभ्यास करते-करते अच्छे शायरोंमें गिने जाने लगे। यह मीर, दर्द, सौदा और सोज़ जैसे वयोवृद्ध ख्यातिप्राप्त अनुभवी शायरोंका युग था। अतः मुसहफीपर भी इन सबकी छाप पड़ी। ये भी देहलवी वज़ह-कतहके सोलह आने पाबन्द हो गये। इनकी शायरीमें भी उक्त उस्तादोंका रंग झलकने लगा; परन्तु इन दिनों मुग़लशासनका सूर्य अस्त हो रहा था और दिल्ली उजड़ती जा रही थी। धीरे-धीरे मीर, सौदा, सोज़ वगैरह जैसे बाकमाल उस्ताद दिल्ली छोड़ चुके थे। केवल 'दर्द' अपने पहलूमें दर्द छुपाये पड़े रह गये थे। जब अहले देहली और ख्याति-प्राप्त शायर दिल्ली छोड़नेपर लाचार हो गये, तब मुसहफी तो आखिर परदेशी थे, कबतक टिकते और क्या खाकर दिल्लीमें रहते? मजबूरन इन्हें भी दिल्ली छोड़नी पड़ी।

मुसहफी दिल्लीसे टाण्डा (ज़िला फैज़ाबाद) गये और वहाँ 'कायम' चान्दपुरीके अनुग्रहसे नवाब मुहम्मदयारखाँके दरबारमें मुलाज़िम हुए; किन्तु नवाबी शासनके पतनके बाद इन्हें टाण्डा भी छोड़ना पड़ा। टाण्डेसे लखनऊ गये, परन्तु वहाँ भी न जम सके और दिल्ली वापिस चले आये।

यहाँ भी दुर्भाग्यने साथ न छोडा और इन्हें फिर दिल्ली छोड़कर लखनऊ जाना पडा। सौभाग्यसे इस बार लखनऊमे मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहकी सरकारमें इनकी पहुँच हो गई और धीरे-धीरे इनकी धाक बैठ गई। लखनऊमें इनके अनेक शिष्य हो गये और मिर्ज़ा सुलेमान भी अपना कलाम दुरुस्त कराने लगे। किन्तु—

पिनहाँ था दामेसख्त क़रीब आशियानेके,
उड़ने न पाये थे कि गिरफ़्तार हम हुए॥

'इशा' और 'जुरअत'के पहुँचनेपर फिर इन्हे दुर्भाग्यने आ घेरा। उनकी शोखबयानी, चुलबुली तबियत, मसखरे स्वभाव और भाण्डपनेके सामने इनकी शायरी दबकर रह गई। ढोल-ताशोके आगे बुलबुलके नग्मे किसको सुनाई देते? बकौल 'अकबर'—

तुमसे उस्तादोंमें मेरी शायरी बेकार है।
साथ सारंगीका बुलबुलके लिये दुश्वार है॥

लाचार मुसहफीको भी अपना रग बदलना पडा, और इस पिंजरेके सुग्गेको वह सब बोल बोलने पडे जो पिंजरेवाला और लखनऊका बहुमत चाहता था। जो मुसहफी दिल्लीमे इस तरहके नग्मये पुरदर्द छेडता था—

तेरे कूचे इस बहाने मुझे दिनसे रात करना।
कभी इससे बात करना, कभी उससे बात करना॥

कभू तकके दरको खड़े रहे, कभी आह भरके चले गये।
तेरे कूचेमें अगर आये भी तो ठहर-ठहरके चले गये॥

कुंजे क़फसमें हम तो रहे 'मुसहफी' असीर।
फ़स्लेबहार बागमें धूमें मचा गई॥

वही मुसहफी लखनवी साज़पर इस तरह अलापने लगा—

आया लिये हुए जो वह कल हाथमें छड़ी।
आते ही जड दी पहली मुलाक़ातमें छडी॥

आँखोमें उसकी मैंने जो तसवीर खींच ली।
सुरमेने उसकी चश्मके शमशीर खींच ली॥

जुम्बिशेलबने[1] तेरी, मेरी ज़बाँ कर दी बन्द।
तूने कुछ पढके अजब मुझपै यह मन्तर मारा॥

पानी भरे है यारो! वाँ करमज़ी दुशाला।
लुंगीकी सज दिखाकर सकनीने[2] मार डाला॥
काँधेपै मशक लेकर जब क़दको ख़म करे है।
काफिरका नशयेहुस्न[3] हो जाये है दुबाला॥
दरियाएक़दमें क्योकर हम नीम कद न डूबें।
लुंगीके रगमें जब वाँ ताकमर[4] हो लाला॥

मुसहफीने अपना असली शायराना भेष छोडकर यह बहरुपियेका स्वाँग क्यो भरा? दिल्लीके दाखिली रगमे सराबोर होते हुए भी उसने खारिजी रगसे होली क्यो खेली? इस 'क्यो'का सीधा-सादा जवाब यही है कि दिल्ली उजडनेके कारण, भरण-पोषणके लिये इन्हे लखनऊ जाना पडा, और लखनऊका वातावरण ही उस समय दिल्लीसे विपरीत था। वहाँके नवाब, रईस, ओहदेदार सभी रंगरेलियोमे मस्त थे। बाज़ारी औरतों और छोकरोपर फिदा थे। इसलिये लखनऊकी शायरी भी चूमा-चाटी, कघी-चोटी और बाज़ारू इश्ककी तरफ मुड गई। मुसहफी इस तेज़ बहावमें पाँव जमाये न रह सके और थककर वे भी बह गये। देश-

---

[1]ओष्ठ-कम्पनने, [2]सक्केकी स्त्रीने, [3]सौन्दर्य्यमद, [4]कमर तक।

कालके वातावरणके समक्ष हर कोई नही ठहर सकता। तेज बहावमें पानी काटकर सीधे जानेवाले कितने होते है ?

उस समयकी बात जाने दीजिये, वह तो युग ही ऐसा था। वर्त्तमान उन्नतिशील युगमे भी फिल्म-जगतमे क्या हो रहा है ? जिस प्रकारके अश्लील, कामुक, घिनौने, बेहूदा और ऊल-जुलूल चित्र निर्माण हो रहे है, सभी जानते है। अपना राज्य है, सदाचारी, विवेकशील और सयमी सरकार शासक है। जनता भी काफी शिक्षित और सुरुचिपूर्ण है, फिर भी फिल्मोका ढर्रा बदलता नही।

वही रफ़्तार बेढंगी जो पहले थी, सो अब भी है।

एक भी पूंजीपतिमे यह साहस नही कि इस प्रचलित रुचिके विपरीत चित्रनिर्माणमे पूंजी लगा सके। मुशी प्रेमचन्दके बाद एक भी ऐसा लेखक नही जो चित्रव्यवसाइयोके सकेतपर नाचनेको प्रस्तुत न हो। और ऐक्टर-ऐक्ट्रेसोकी तो बिसात ही क्या ? नामी-से-नामी नायक और नायिका भी कठपुतलीकी तरह निर्जीव बने हुए है। और तो और, सेन्सर भी आँख मूंदकर इन चित्रोको पास करता रहता है।

फिर वह तो वह युग था जब शायर अपनी आत्मा बेचकर नवाबो-रईसोकी कृपा बनाये रखनेके लिये एक दूसरेको नीचा दिखानेका प्रयत्न करते थे। जुरअत और इशा जब लखनऊ पहुँच गये तो मुसहफीसे इनकी छेड-छाड चलने लगी। एक रोज मुसहफीने मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहके जल्सेमे एक गज़ल पढी जिसका मक्ता यह था—

था 'मुसहफी' यह माइलेगिरियाँ[1] कि पसअज़मर्ग[2]।
थी उसकी धरी चश्मपे ताबूतमें[3] उँगली॥

'मुसहफी' गज़ल पढकर चले गये तो ईर्षालुओने इस गज़लकी

---

[1]रोता हुआ, [2]मरनेके बाद, [3]अर्थीमे।

ऐसी अश्लील पैरोडी कही कि पढने-सुननेमे भी हया आती है ।

हाँ मक़्ता अलबत्ता अश्लील नही है—

था मुसहफ़ी काना, जो छुपानेको पसअज़मगं ।
रक्खे हुए था आँखपे ताबूतमें उँगली ॥

मुसहफीको जब इस पैरोडीका इल्म हुआ तो चरागपा हो गये और ६ अशआरकी एक गज़ल कही । जिसके तीन शेर ये है—

मुद्दतसे हूँ मैं सरख़ुशे सहबायेशायरी[1] ।
नादाँ है जिसको मुझसे है दावाएशायरी ॥

फबता नहीं है बज़्मेअमीरानेदहरमें[2] ।
शायरको मेरे सामने गोग़ाए शायरी ॥

इक तुरफा[3] ख़रसे[4] काम पड़ा है मुझे कि हाय !
समझे है आपको वोह मसीहाये शायरी[5] ॥

धीरे-धीरे चख-चख और छेड-छाड बढती गई। अपना-अपना पाण्डित्य प्रदर्शन करनेके लिये कठिन-से-कठिन और विचित्र-से-विचित्र क़ाफिये रदीफोंमे गज़ल कहने लगे और उन्हीमें एक दूसरेपर फब्तियाँ भी कसने लगे । यहाँ हम इस तरहकी ग़जलोंके बतौर नमूना एक-एक दो-दो शेर दे रहे है --

जुरअत—तेरे दौरमें हो मयकश कोई क्या, फलक ! कि तेरी ।
वोह है शक्ल जूं धरा हो क़दहे शराब[6] उलटा ॥

तलब उससे कल जो मयकी तो भरा हुआ ज़मींपर ।
मुझे शोख़ने दिखाकर क़दहे शराब, उलटा ॥

---

[1]कविताके नशेमे चूर, [2]ससारके अमीरोकी महफिलमे,
[3]अजीब, [4]गधेसे, [5]शायरीका अवतार; [6]शराबका प्याला ।

इशा— मुझे क्यों न आवे साक़ी! नज़र आफ़ताब उलटा।
कि पड़ा है आज ख़ुममें[1] क़दहेशराब उलटा॥

अभी झड़ लगावे बारिश, कोई मस्त भरके नारा
जो ज़मींपै फेंक मारे क़दहेशराब उलटा॥

मुसहफी—मेरे हालपर मुग़ाने[2] यह करम किया कि सुन-सुन।
मेरे पीके सरपै रक्खा क़दहेशराब उलटा॥

जुरअत—किसी नुस्ख़ेमें पढ़े था, वोह मुक़ामे दिलनवाज़ी[3]।
मुझे आते जूं ही देखा, वरक़े किताब उलटा॥

इशा— ग़ज़ल और क़ाफियोमें न कहे सो क्योंकि 'इंशा'।
कि हवाने ख़ुदबख़ुद आ वरक़े किताब उलटा॥

मुसहफी—सरेलोह[4] उसकी सूरत कहीं लिख गया था 'मानी'[5]।
उसे देखकर न मैंने वरक़े किताब उलटा॥

जुरअत—मेरे सौ सवाल सुनकर वोह रहा ख़मोश बैठा।
नहीं यह भी कहनेकी जा[6] कि मिला जवाब उलटा॥

इशा— अजब उलटे मुल्क के हैं अजी आप भी कि तुमसे
कभी बात की जो सीधी तो मिला जवाब उलटा॥

मुसहफी—मैं लिखा हूं ख़त तो क़ासिद पै[7] यह होगा मुझपै अहसां।
इन्हीं पांव फिरके तू आ जो मिले जवाब उलटा॥

इशा— यह अजीब माजरा है कि बरोज़े ईदे क़ुरबां।
वह ज़िबह भी करे है वही ले सवाब[8] उलटा॥

---

[1]घड़ेमें, [2]मालिक मधुशालाने, [3]प्रेम करनेका ढंग;
[4]चक्करपर, [5]एक प्रसिद्ध चित्रकार; [6]स्थान;
[7]परन्तु, [8]पुण्य।

मुसहफी— मैं अजब यह रस्म देखी मुझे रोजे ईदे क़ुर्बां।
वही ज़िबह भी करे है वही ले सवाब उलटा ॥

इशा— तोड़ूंगा खुमे बादयेअंगूरकी[1] गरदन।
रख दूंगा वहाँ काटके इक हूरकी गरदन ॥

मुसहफी— सर मुश्कका[2] है तेरा तो काफूरकी गरदन।
ने मुएपरी[3] ऐसे न यह हूरकी गरदन ॥

इशा— तब आलमेमस्तीका मज़ा है कि पडो हो।
गरदनपै मिरी उस बुते मख़मूरकी[4] गरदन ॥

मुसहफी— इक हाथमें गरदन हो सुराहीकी मज़ा है।
और दूसरेमें साकिये मख़मूरकी गरदन ॥

इशा— परतौसे चाँदनीके है सहने बाग़ ठंडा।
फूलोकी सेजपर आ, करदे चिराग़ ठंडा ॥

मुसहफी— पीरीसे हो गया यूं इस दिलका दाग़ ठंडा ॥
जिस तरह सुबह हुइये करदे चिराग़ ठंडा ॥

इशा— मयकी सुराही ऐसी ला बर्फमें लगाकर।
जिसके धुएँसे होवे साक़ी ! दिमाग़ ठंडा ॥

मुसहफी— सरगरमेसैर[5] गुलशन क्या ख़ाक हो कि अपना।
नज़लेसे हो रहा है आपही दिमाग़ ठंडा ॥

यही गज़ले फिर धीरे-धीरे हिजोका रूप लेने लगी। गरदनवाली गज़लमे मगरूरकी गरदन बँधते-बँधते लगूरकी गरदन बँधन लगी। एक दूसरेकी गज़लोमें दोष निकालेजाने लगे। धीरे-धीरे यही गज़ले प्रति-

---

[1]अगूरकी शराबका घडा, [2]कस्तूरीका, [3]परीके बाल, [4]मदोन्मत्तकी, [5]सैर करनेमे व्यस्त।

द्वन्द्विताका थपेडा खाकर हिजोका रूप धारण कर बैठी। मुसहफी बेचारा वयोवृद्ध और शुद्ध कलाकार इशा–जैसे मसखरे और शोख तबियतके सामने कबतक ठहरता? मौलाना आज़ादके शब्दोमे––

"इंशाने बहुत-सी जटिल और फ़हाश हिजो ऐसी कही कि जिनका एक-एक मिसरा हज़ार कमची और चाबुकका तडाका था।"[1]

यह पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता और हिजोबाजी दरबारतक ही सीमित न रही, अपितु यह नवाबी सांड बाज़ारोमे भी घूम-घूमकर लडने लगे। पहले मुसहफीके शिष्य शोहदोका स्वाँग बनाकर बाज़ारोमे इशाकी हिजो कहते हुए उनके घर पहुँचे। फिर इशाने इसके जवाबमे एक बारात निकाली। कुछ लोग हाथियोपर थे, कुछ डडे बजाते हुए हिजो कह रहे थे, कुछके हाथमे गुड्डे-गुडिया थे। दोनोको लडाने जाते थे और यह पढते जाते थे––

स्वाँग नया लाया है देखना चश्मेकुहन।
लडते हुए आये है मुसहफी और मुसहफन[2]॥

इन मार्कोमे मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहने और अधिकाश अमीरोने इशाका साथ दिया, क्योकि इशा अपनी रगीन मिज़ाजी और लखनवी रगमे सराबोर होनेके कारण हर दिल अज़ीज़ बने हुए थे। एक बार तो इन लोगोने शहर कोतवालसे कहकर मुसहफीके जवाबी स्वागको रूकवा भी दिया था। इस हरकतसे मुसहफीको जो आघात पहुँचा, वह उन्होने इस तरह व्यक्त किया है––

जाता हूँ तेरे दरसे कि तौक़ीर[3] नही याँ।
कुछ इसके सिवा अब मेरी तदबीर नहीं याँ॥

---

[1]आबेहयात, पृ० ३२४ [2]मुसहफीकी स्त्री,
[3]इज्जत।

ऐ 'मुसहफ़ी' ! बेलुत्फ़ है इस शहरमें रहना।
सच है कि कुछ इंसानकी तौक़ीर नहीं याँ॥

किन्तु जबर्दस्त मारे और रोने न दे। अत. मुसहफीने तुरन्त मिर्ज़ा शिकोहकी खुशामदमें ४१ शेरोका एक कसीदा पढ़ा। जिसमे अपनेको अत्यन्त तुच्छ और निरीह बताते हुए मिर्ज़ा शिकोहको आस्मानपर बिठाने-का प्रयत्न किया है।

मुसहफी उर्दू-शायरीके दुराहेपर खडे हुए है। वे दिल्ली और लख-नऊकी दो भिन्न धाराओके अकेले प्रतीक है। एक तरफ उन्होने मीर, सौदाका अन्तिम युग देखा था। दूसरी ओर जुरअत और इशाके मार्कोमें हिस्सा ले रहे थे। उनके कलाममें जहाँ मीर, सोज़, दर्द और सौदाकी व्यथा मिलती है, वही इशा और जुरअतकी रगीनियाँ भी।

"मुसहफीका यह दुर्भाग्य था कि उन्हे इशा और जुरअत जैसे भाँडोसे पाला पडा। जहाँतक शायरी और उसकी फितरतका सवाल है, मुसहफी और इशामे कोई मुनासबत नही।"[1]

"मुसहफीके कलाममें उस शोहदेपनका शायबा बहुत कम है, जिसकी जुरअत वगैरहके यहाँ बहुतायत है। इनकी शायरी खालिस शायरी है। इनके अन्दर जितनी नज़ाकतें और लताफते और जितनी रगीनियाँ मिलती है, उनकी ज़बान और तर्ज़अदामे जो सजावट और तरहदारी होती है, वह सब उनके जौकेशायरी और मुतायलेका नतीजा है।... मुसहफी उर्दूके पहले शायर है, जिन्होंने गज़लके अशआरमें रग और फिज़ाका अहसास पैदा किया।"[2]

"मुसहफीके नग्मे अबसे पौने दो सौ बरस पहले हिन्दुस्तानकी फिज़ामे

---

[1] तनक़ीदी हाशिये, पृ० १७८

[2] तनक़ीदी हाशिये, पृ० १६३-१६४

गूंजते थे, पहले दिल्लीसे फिर लखनऊ से। इन्ही नग्मोकी नरम आँच 'आतिश' व दीगर शागिर्दानेमुसहफी-ओ-आतिशकी शोलानवाइयाँ बन गईं। मुसहफीके नग्मोकी पखडियोने वोह दाग बेल डाली कि नासिख और खान्दानेनासिखतक शायरोने उनसे फूल और कलियाँ चुनकर अपने दामन भर लिये। 'अनीस'के मरसियो, सलामो और रुबाइयोमे जबान जिस तरह साँचेमे ढली हुई है, उनके मिसरोकी नरम रवी, बयानकी रगीनी और निखार हमे मुसहफीकी याद दिलाते है। 'शाद' अजीमाबादी-के बहुतसे अशआर और मुतअद्द गजले, सूबे बिहारके वे शायर जो वहाँके मजाकेसुखनके नुमाइन्दे कहे जा सकते है, सब हमे इसी रगे तबीयत, इसी जमालयाती मिजाजकी याद दिलाते है, जिसकी पहली रगारग झलकियाँ मुसहफीने दिखाई थी। 'अमीर' और उनके शागिर्द और शागिर्दोंके शागिर्द तो खान्दाने मुसहफीसे मुत्तलिक है, अगचें कभी ज्यादा कभी कम।"[1]

"मीर और मुसहफीमे वही फर्क है जो दोपहर और गरूबेआफताबके वक्तमे पाया जाता है। जिस तरह शामको अफताबमे सातो रग झल-कने लगते है, उसी तरह रगीनफिजामे वह खारजीयत निखरती और सँवरती है, जिसकी झलक मुसहफीकी शायरीमे मिलती है। अगर हम सगीतके इस्तआरेको काममे लाये तो यूं कह सकते है कि मुसहफीके नग्मोमें वही दिलफरेब कैफियत पैदा हो गई है, जो आवाजमे पत्ती लग जानेसे पैदा होती है।"[2]

"बाज जमीनोमे 'इशा' और 'मुसहफी'की गजले है, मगर इशाकी शोखी और गरमागरमी इतनी बेपनाह चीज है कि 'मुसहफी' दब जाता है, लेकिन यह रग मुसहफीके शायानेशान भी न था, इसलिये वह इशाकी तरह खुल खेलनेसे माजूर था। 'गालिब' और 'अनीस' मामूली

---

[1]अन्दाजे, पृ० ८९, [2]अन्दाजे, पृ० ३९-४०

लोग न थे, लेकिन अनीस, गालिबके अन्दाज़मे एक गज़ल भी नही कह सकते थे, और न ग़ालिब अनीसके अन्दाज़में मरसिये कह सकते थे। इनमेसे कोई एक दूसरेका रग उडाना चाहता तो मुंहकी खाता। गज़ल ही को ले लीजिये। 'गालिब' ज़राफत, शोखी, और तजके बादशाह है; लेकिन 'दाग'के चचल रगमे 'गालिब'से भी गज़ल न होती और 'दाग'से 'गालिब'की शोखी न निभती। इसलिये अगर 'मुसहफी' वोह शोखी व तर्रारी न दिखा सके जो 'इशा'के लिये मखसूस थी, तो हम यह नही कह सकते कि 'मुसहफी' किसी तरह भी 'इशा'से कम थे। यह बात याद रहे कि बडे-से-बडा शायर इसलिये बडा नही है कि वह अपने रगमे लासानी है या निहायत कामयाब है, बल्कि इसलिये भी बडा है कि वह दूसरेके रगमे कहनेसे माजूर है। हकीकी शायरीमे कुछ माज़-रियाँ भी शामिल होती है। शायर बहरूपिया नही होता। 'इशा' और 'मुसहफी'की जो हमतरह गज़ले मिलती है और जिनमे 'इशा' और 'मुसहफी'ने अपने-अपने रगको कामयाबीसे निभाया है, उन्हे देखकर यह कहना पडता है कि 'इशा'की गज़ले अपनी जगहपर है और मुसहफी-की अपनी जगहपर। हरचन्द कि 'मुसहफी'के कलाममे तरन्नुम, सलासत और रगीनी सब कुछ है और ज़बानके मामलेमे भी 'मुसहफी'को 'इशा'-पर तफव्वुक हासिल है और मानवियत (अर्थकी गहराई)मे तो वोह इशासे कोसो आगे है, लेकिन इसको क्या कहा जाय कि सनही बल्कि बाज़ारी जज़्बात भी ज़ोरेबयान और जोशेबयानसे निखर आते है और यही एक आँचकी कसर 'मुसहफी'के बयानको पूरी तरह निखरने नही देती। बात यह है कि 'मुसहफी' और 'इशा'की उन गज़लोका एक साथ फैसला करना ऐसा ही है, जैसा कुदरती फूलों और आतिशबाज़ीके फूलोका मुकाबिला करना। इशाकी शायरी हमारे वजदान (जाननेकी शक्ति)की ज़ाहिरी सतहको ले उडती है, और हममें मुत्तासिर (प्रभावित) होनेकी सलाहियत ही नही रह जाती; लेकिन इस

असरसे बचकर हम अपने दिलकी धडकनोंको इशा और मुसहफीकी हमतरह गज़लोसे हमआहग करने (सुर मिलाने)की कोशिश करें तो 'इशा' साज़बेआहग (बेसुरा साज़) होकर रह जायगा और मुसहफी साज़े व-आहग (सुर मिला हुआ साज़) साबित होगा। इशा हमारे तख़ैय्युली ममाअनत (कल्पना रूपी कानों)को तशफ्फी (सन्तोष) नही बख़शता और मुसहफी सामअनवाज़ी करता (मधुर कविता सुनाता) है।"[1]

"बहरहाल लखनऊकी ज़बान वज़ह करनेमे मुसहफीका खास हिस्सा है। मुसहफी एक खास बातमे तमाम उस्तादोसे बढे हुए है। यानी जो सफाई और रवानी (प्रवाह) उनके कलाममे है, वह मीर, सौदा, जुरअत और इशा किसीके कलाममे नही पाई जाती।"[2]

नियाज फतहपुरीके शब्दोमे—"मुसहफी अपनी हमागीर तबियतके लिहाज़मे सौदा थे, मगर तगज्जुलमे यकीनन सौदासे बुलन्द मर्तबा रखते थे। मुश्किल बहरोमे बगैर किसी तकल्लुफके बहतरीन अश्आर निकालना उनकी खसूसियत थी, और पुरगोई (अधिक कहने)का यह आलम था कि बावजूद हजारो गज़ले फरोख्त कर देनेके आठ दीवान अपने बाद छोड गये है। माना कि हुकूमतेवक्त (तात्कालीन शासको)ने इनकी कद्र न की, लेकिन लखनऊकी शायरी हमेशा इनकी जेरबारे अहसान रहेगी, क्योकि बादके जितने नामवर शायर हुए है, वे सब मुसहफीके शागिर्द या शागिर्दोके शागिर्द थे।"[3]

मुसहफी ७६ वर्षकी आयुमे समाधिको प्राप्त हुए।

---

[1]अन्दाज़े, पृ० ७४-७६

[2]अन्दाज़े, पृ० ८७

[3]इन्तकादियात भा० २, पृ० ११८

देख उसको इक आह हमने करली।
हसरतसे निगाह हमने करली॥

क्या जानें कोई कि घरमें बैठे।
उस शोखसे राह हमने करली।
दी जन्नतमें जबकि 'मुसहफी' जान।
शर्म उसकी गवाह हमने करली॥

कभू तकके दरको खडे रहे, कभू आह भरके चले गये।
तेरे कूचेमें जो हम आये भी तो ठहर-ठहरके चले गये[1]॥

हम तो उस कूचेमें घबराके चले आते हैं।
दो क़दम जाते हैं, फिर जाके चले आते हैं॥
वोह जो मिलता नहीं, हम उसकी गलीमें दिलको।
दरोदीवारसे बहलाके चले आते हैं॥

खींचकर तेग यार आया है।
इस घड़ी सर झुका दिये ही बने[2]॥
यारका सुबहपर है वादये वस्ल।
एक शब और भी जिये ही बने॥

---

[1]होगा किसू दीवारके सायेमें पड़ा 'मीर'।
क्या काम मुहब्बतसे उस आरामतलबको॥

कहता था किसीसे कुछ, तकता था किसीका मुंह।
कल 'मीर' खड़ा था यां, सच है कि दीवाना था॥

[2]अभी हूँ मुन्तज़िर जाती है चश्मेशौक़ हर जानिब।
बुलन्द उस तेग़को होने तो दो, सर भी झुका लेंगा॥

अब तो इस दर्दे दिलकी ताब नहीं।
'मुसहफी' कुछ दवा किये ही बने॥

ख्वाब था, या ख़याल था, क्या था?
हिज्र था, या विसाल था, क्या था?
जिसको हम रोज़े हिज्र समझे थे।
माह था या वो साल था, क्या था?
'मुसहफी' शब जो चुप तू बैठा था।
क्या तुझे कुछ मलाल था, क्या था?

यादे अय्याम बेक़रारिये दिल।
वह भी यारब! अजब ज़माना था॥

हम समझे थे जिसको 'मुसहफी'! यार।
वह ख़ाना ख़राब कुछ न निकला॥

प्यार तो आया था मेरे जीमें रात।
पर मैं तेरी वजहसे डरकर[1] गया॥

चली भी जा जरसे गुचाकी सदा[2] पै नसीम!
कहीं तो काफिलये नौ बहार ठहरेगा॥

हादसे[3] होते हैं ज़मानेमें।
इस क़दर इनक़लाब किस दिन था?

---

[1]डर गया काफी था यहाँ 'कर' व्यर्थ है, परन्तु उन दिनों यह जायज़ था।

[2]कलीके चटखनेकी आवाज़। [3]घटनाएँ,

[4]मसाइब और थे पर दिलका जाना।
अजब इक सानहा-सा हो गया है॥ —मीर

भटका फिरा है तेरी दिल इक अदाका मारा।
कह किस तरफको जाये अब यह ख़ुदाका मारा ?

जुम्बिशेलबने[1] तिरी मेरी ज़बाँ करदी बन्द।
तूने कुछ पढ़के अजब मुझपै यह मन्तर मारा॥

'मुसहफी' कहते हैं राहेइश्कमें मारा पड़ा।
कौन जाने क्या हुई इस बेवतनकी सरगुज़िश्त[2]॥

क्या यारके दामनकी ख़बर पूछो हो हमसे ?
याँ हाथसे अपना ही गिरेबान गया था॥

शमये शबेफिराक बने हम तो 'मुसहफी'।
हम दिलजलोको इश्क़की महफिलसे क्या ग़रज़ ?

वही ठोकर है और वही अन्दाज़।
अपनी चालोसे तू न आया बाज़॥

जिस बयाबाने ख़तरनाकमें अपना है गुज़र।
'मुसहफी' क़ाफिले उस राहमें कम निकले हैं॥

बिन देखे जिसको पलमें आँखें भर आइयाँ हो।
क्या क़हर है जो उससे बरसो जुदाइयाँ हो॥

एक दिन रोके निकाली थी मैं वाँ कुल्फतेदिल[3]।
आजतक दामनेसहरा है गुबारआलूदा[4]॥

मैं तेरे वास्ते सर पटकूँ हूँ दीवारोसे।
चैन किस तरह तुझे खानाख़राब आता है॥

---

[1]ओष्ठ-कम्पनने, [2]हालत।
[3]दिलकी भडास, [4]धूल-धूसरित

दामनकी एक झपकने मदहोश कर दिया है।
मिसले चिराग़ हमको ख़ामोश कर दिया है॥

तुम रात वादा करके जो हमसे चले गये।
फिर तबसे ख़्वाबमें भी न आये, भले गये॥

पुकारता हूँ तुझे 'मुसहफी' जवाब तो दे।
खड़ा रहे यह तेरे आस्ताँपै, या फिर जाय?

हैरान है किसका, जो समन्दर—
मुद्दतसे रुका हुआ खड़ा है॥

तू देखते ही उसको जो दीवाना हो गया।
सच कहियो 'मुसहफी' तेरे क्या जीमें आगई॥

उठने लगे जो वोह मेरी बालींसे[1] वक़्तेनज़अ[2]।
निकला यही ज़बानसे आहिस्ता "क्या चले?"

मुलज़िम तेरी बातोसे हमें आप ही होना।
और तुझको किसी बातमें इलज़ाम न देना॥

ऐ 'मुसहफी'! अफसोस कहाँ था तू दिवाने?
कल उसके तईं हमने अजब आनमें देखा॥

जब कोहोबयाबाँमें जा हमने क़दम मारा।
फरहाद न कुछ बोला, मजनूंने न दम मारा॥

कल उसे मैं ले चला था सैरे गुलशनकी तरफ।
कुछ समझकर साथसे मेरे वह टलकर रह गया॥

---

[1]सिरहानेसे,
[2]मृत्युके वक्त।

'मुसहफ़ी' ! हम तो ये समझे थे कि होगा कोई ज़ख़्म ।
तेरे दिलमें तो बहुत काम रफ़ूका निकला ।।

तू गया प्यारे सफ़रको, छोड़कर मेरे तईं ।
रफ़्ता-रफ़्ता मैं तेरे जीसे बिसरकर रह गया ।।

शबे हिजरां थी, मैं था, और तनहाईका आलम था ।
ग़रज़ उस शब अजब इक बेसरोपाईका आलम था ।।

हुस्न उसका अब समां कुछ और दिखलाने लगा ।
चांद-सा परदेसे वोह मुखड़ा नज़र आने लगा ।।
या वोह आलम था कि कोई उससे वाक़िफ भी न था ।
या यह आलम है कि आलम उसपै मर जाने लगा ।।

कभी जो यूं भी मिले तुम तो महर्बानी है ।
ग़रज़ वह वस्लका वादा तो दरकिनार रहा ।।
मिले न आके कभी 'मुसहफ़ी'से तुम अफ़सोस ।
उमीदवार तुम्हारा उमीदवार रहा ।।

भीगेसे तेरा रगेहिना और भी चमका ।
पानीमें निगारीं[1] कफ़ेपा[2] और भी चमका ।।
जूं-जूं कि पड़ी मुंहपै तेरे मेंहकी बूंदें ।
जूं लालयेतर[3] हुस्न तेरा और भी चमका ।।

दिल ले गया है मेरा वह सीमतन[4] चुराकर ।
शरमाके जो चले है सारा बदन चुराकर ।।

---

[1]चमकीला, [2]तलवा, [3]लालके ताज़ा फूलकी तरह ।
[4]शुभ्रवदनी,

आस्तीं उसने जो कुहनीतक चढ़ाई वक़्ते सुबह ।
आरही सारे बदनकी बेहिजाबी हाथमें ॥

मुझे रहम आये है हसरतपै आह ! उस मुर्ग़े बेपरकी ।
कि उड़ सकता न हो और हो ब-ज़ेरेआशियाँ[1] बैठा ॥

हसरतपै उस मुसाफिरे बेकसके रोइये ।
जो थकके बैठ जाता हो मंज़िलके सामने ॥

तुझे किसने रोक रक्खा तेरे जीमें क्या यह आई ?
कि गया तू भूल ज़ालिम इधर इल्तफात[2] करना ॥

जब कि तू उसमेंसे झाँके है सितारोंकी तरह ।
जगमगाती है तेरे ग़ुरफेकी[3] जाली, क्या ख़ूब ?

हमसायगीपर[4] यारके क्या दिलको ख़ुश करूँ ।
मुझसे तो ह खिंचा[5] वोह हयादार बेतरह ॥

कहाँ तलक फिरें उडते इधर-उधर सैयाद !
तेरे ही नज़्र है अब ले यह मुश्तेपर[6] सैयाद !!

जो हाथ दिलबरोंके दामनको खींचते थे ।
वे खिंचके रह गये हैं कैसे कफनके अन्दर ॥

देखा था एक दिन कहीं उस गुलको बागमें ।
आबादरखे चमन है नसीमो-सबा हनूज़[7] ॥

---

[1] घोसलेके नीचे,
[2] कृपा-कटाक्ष,
[3] खिडकीकी,
[4] पडोसी होनेपर,
[5] नाराज़;
[6] मुट्ठीभर पख;
[7] अभीतक ।

जीमें आता है कि बोसा कफ़ेपाका[1] ले लूं।
रंग होटोंपै तेरे ताज़ा हिनाका ले लूं॥

तुम्हारे वादोपै हमको तो अब नहीं ठहराव।
मगर[2] नया कोई उम्मीदवार ठहरेगा॥

सोया था लिपटकर मैं उस साथ, वले[3] उसने।
पहलूसे मेरे पहलू तासुबह जुदा रक्खा॥

किसीको गर्मिये तक़रीरसे अपने लगा रक्खा।
किसीको मुंह छुपाकर नर्मिये आवाज़से मारा॥

इश्क़से मेरे जो घबराया तो फिर नाचार हो।
आके घर मेरे वोह मुझको आप समझाने लगा॥

अंगड़ाई लेकर अपना मुझपर ख़ुमार डाला।
काफिरकी इस अदाने बस मुझको मार डाला॥

जमनामें कल नहाकर जब उसने बाल बांधे।
हमने भी अपने दिलमें क्या-क्या ख़याल बांधे॥

तू दरको शौक़से रख बन्द पर न इतना भी।
कि आवे जो कोई, वोह होके बदगुमां फिर जाय॥

कहता था वोह शब डालके बाहोंको गलेमें।
गर्दनपै तेरे है कई अहसान हमारे॥

—अन्दाज़से

ओ दामन उठाके जानेवाले।
टुक हमको भी ख़ाकसे उठाले॥

---

[1]तलवेका; [2]शायद, [3]लेकिन।

अब कहाँ हम, कहाँ वोह कुंजेक़फ़स ।
कोई दिन वाँ भी आबोदाना था ।।

मत मेरे रंगे ज़र्दका चर्चा करो कि यों ।
रंग एकसा किसीका हमेशा नहीं रहा ।।

तुझे ऐ मुसहफ़ी ! क्या है ख़बर दर्देमुहब्बतकी ।
न ऐ बेदर्द मेरे सामने ले नाम दरमाँका[1] ।।

सदमे सौ दिलपै हुए हमने न जाना क्या था ।
हायरे ज़ौक़ ! वोह उल्फतका ज़माना क्या था ।।

कहता न था मैं ऐ दिल ! जाना न उस गलीमें ।
आख़िर तू मुझपै आफत ख़ाना ख़राब लाया ।।

फलक गर हँसाता है मुझपर किसीको ।
मैं हँसकर फलककी तरफ देखता हूँ ।।

क्या करें जाके गुलसिताँमें हम ।
आग रख आये आशियाँमें हम ।।

छुपाया तुमने मुंह ऐसा कि बस जी ही जला डाला ।
तग़ाफुलने तुम्हारे ख़ाकमें हमको मिला डाला ।।

हरगिज़ वोह दस्तो बाज़ू हिलते कभी न देखे ।
जो तीर उसने मारा सो बेगुमान मारा ।।

मुहब्बतमें सादिक़ यह अग़यार ठहरे ।
हम इक बात कहकर गुनहगार ठहरे ।।

—तनक़ीदी हाशिये

१० जुलाई १९४९ ई०

---

[1] इलाजका ।

३३

इंशा

[१८१७ ई०]

सैयद इशा अल्लाखाँ 'इशा' इसमें शक नहीं कि बलाके ज़हीन थे, और दुनियाकी ऐसी कोई बात नहीं, जिसे वे शेरमें न कह सकते थे। परन्तु गज़ल जिस चीज़का नाम है, वह उनके हिस्सेमें न आ सकी। भाग्य बेशक बहुत अच्छा था कि नवाब सआदतअलीखाँकी नज़रोंमें चढ़ गये, और मुसहफी-जैसे उस्तादकी कुछ न चली।'

इशा मुर्शिदाबादमें उत्पन्न हुए और शाहआलम बादशाहके शासन-कालमें दिल्ली आये और अपने चातुर्य तथा मसखरेपनके कारण सबपर छा गये। दरबारी और बाहरी शायरोंसे बड़ी नोक-झोंक रखते थे। शाहआलमके मुफलिस होनेपर नवाब आसफुद्दौलाके शासनकालमें लख-नऊ चले गये और वहाँ भी मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह (शाहआलम बादशाहके पुत्र)के दरबारमें प्रभाव जमा लिया। यहाँ मुसहफी-जैसे योग्य उस्ताद पहलेसे विद्यमान थे, परन्तु इशाने इन्हें नीचा दिखाकर इनका स्थान हथिया लिया। और शनैः-शनैः वहाँसे सआदतअलीखाँके दरबारमें पहुँच गये और वहाँ बड़ा गौरव प्राप्त किया, किन्तु नवाबके दिलमें इनकी ओरसे बाल आ गया और अन्त समय इनका अत्यन्त निर्धनतामें व्यतीत हुआ।

इशा विद्वान और चतुर थे, किन्तु खेद है कि उन्होंने अपनी बुद्धि-

---

'इन्लकादियान भाग २, पृ० ११६

बलका सही उपयोग न करके व्यर्थके मसख़रेपन और इधर-उधरकी बातोंमें व्यतीत कर दिया। आज़ादके शब्दोमें इशाकी गज़लोके दीवानमें—"अजब तिलिस्मातका आलम है। ज़बानपर कुदरते कामिल बयानका लुत्फ, मुहावरोकी नमकीनी, तरकीबोकी खुशनुमा तराशे, देखनेके काबिल है, मगर यह आलम है कि अभी कुछ है अभी कुछ है। जो गज़लें या गज़लोमे अशआर बाउसूल हो गये, वे ऐसे है कि जवाब नही, और जहाँ तबियत और तरफ जा पडी, वहाँ ठिकाना नही, गज़लोमे फिर उसूलकी पाबन्दी नही।"[1]

इशा मुशायरेमे या दरबारमे जाते तो एक तरफ आदाबे माकूलियतमे सलाम किया। एक तरफ मुस्करा दिया, एक तरफ मुँह चिडा दिया। कभी दिल्लीके बाँके, कभी आधी दाढी मुडा ली, कभी भवे साफ करा ली। इसमे शक नही कि किसी जलसेमे इशाका आना, भाँडके आनेसे कम न था। मुसहफीने कुछ झूठ नही कहा—

वल्लाह कि शायर नहीं तूं भाण्ड है भड़वे[2]।

---

[1] आबेहयात, पृ० २७१

[2] आबेहयात, पृ० २८३

झिड़की सही, अदा सही, चीनेजबीं[1] सही।
यह सब सही, पर एक 'नहीं'की नहीं सही॥

गर 'नाजनीं' कहनेसे बुरा मानते हो आप।
मेरी तरफ तो देखिये, मैं नाजनीं सही॥

कोई दुनियासे क्या भला माँगे।
वह तो बेचारी आप नंगी है॥

जिगरकी आग बुझे जिससे जल्द वोह शय[2] ला।
लगाके बर्फमें साकी! सुराहिये मय ला॥

नजाकत उस गुलेरानाकी देखिये 'इंशा'!
नसीमे सुबह जो छू जाये रंग हो मैला॥

खयाल कीजिये क्या आज काम मैंने किया।
जब उनने दी मुझे गाली, सलाम मैंने किया॥

दीवार फाँदनेमें देखोगे काम मेरा।
जब धमसे आ कहूँगा "साहब! सलाम मेरा"॥
हमसाये आपके मैं लेना हूँ इक हवेली।
इस शहरमें हुआ गर चन्दे[3] मुकाम मेरा॥
पूछा किसीने मुझको उनसे कि कौन है यह।
तो बोले हँसके "यह भी है इक गुलाम मेरा"॥
महशरकी तिश्नगीसे क्या खौफ सैयद 'इंशा'!
कौसरका जाम देगा मुझको इमाम मेरा॥

---

[1]माथेकी त्यौरी, [2]वस्तु, [3]कुछ दिन।

है जोरे हुस्नसे वोह निहायत घमंडपर।
नामे ख़ुदा निगाह पड़े क्यो न डंडपर॥

यह जो महन्त बैठे है राधाके कुडपर।
औतार बनके गिरते है परियोके झुडपर॥

एक बहुत बडी गजलका नमूना

मैंने जो कहा—हूँ मै तेरा आशिक़े शैदा—ऐ कानेंमलाहत[1]।
फरमाने लगे हँसके "सुनो और तमाशा—यह शक्ल, यह सूरत"?

आये जो मेरे घरमें वह सब राहेकरमसे—मै मूंद दी कुण्डी।
मुंह फेर लगे कहने तआज्जुबसे कि "यह क्या—ऐ तेरी यह ताकत"?

लूटा करें इस तरह मजे ग़ैर हमेशा—टुक सोचो तो दिलमें।
तरसा करे हर वक्त यह बन्दा ही तुम्हारा—अल्लाहकी कुदरत॥

दीवारे चमन फांदके पहुँचे जो हम उनतक—इक ताककी ओझल।
तरसा[2] हो यह फरमाने लगे कूटके माथा—ऐ वाये फ़ज़ीहत!

शब महफिले होलीमें जो वारिद हुआ जाहिद—रिन्दोने लिपटकर।
दाढ़ीको दिया उसकी लगा बजरे फतूना—और बजने लगी गत॥

—आबेहयातसे

गर यार मय पिलाये तो फिर क्यो न पीजिये।
जाहिद नहीं, मै शेख नहीं, कुछ वली नहीं॥

अजीब लुत्फ कुछ आपसकी छेड-छाडमें है।
कहाँ मिलापमें वह बात जो बिगाड़में है॥

---

[1]मनमोहक, [2]डरकर।

ग़ुस्सेमें हमने तेरे बड़ा लुत्फ उठाया।
अब तो अमूमन[1] और भी तक़सीर[2] करेंगे॥

—इन्तक़ादियात, भाग २

"काश! इशाने अपने खास रगको सलीके और करीनेसे निभाया होता और नई राह निकालकर इतना न बहकते तो आज वोह ज़बरदस्त साहबेतर्ज़ होते, क्योकि इशाके मख़सूस रगमें अगर उसे मुस्तकिल तौरपर सलीकेसे बरता जाय तो एक नई किस्मकी गज़लगोईका इमकान है। अगर इशाको अहलेदिल या सजीदा लोगोकी सुहबत नसीब हुई होती, तो बड़ा ज़बर्दस्त शायर होता। मैं कहता हूँ कि इशाको ख़ुद अपनी सुहबत अगर नसीब हुई होती तो वह गज़बका शायर होता। अफसोस कि ख़ुद अपनी सुहबत इशाको उस वक्त नसीब हुई जब वह खत्म हो चुके थे। इशाका फ़ितरीमिलान (स्वाभाविक झुकाव) अहले देहली या सजीदा लोगोके मिज़ाजसे मेल नही खाता था। वह मीर, सौदा, मुसहफीके ज़ुमरेमें शरीक होनेके लिये नही बना था।....'जुरअत' और 'इशा' मुसलसल (क्रमबद्ध) ग़ज़लोके लिये भी खास तौरपर मुनासिब तबियते लेकर आये थे। इशाके चन्द शेर सुनिये, जिनपर मुसहफीको भी तबा आज़माई करनी पडी।

सज गर्म, जबीं गर्म, निगह गर्म, अदा गर्म।
वोह सरसे है ता नाख़ुने पा, नामे ख़ुदा गर्म॥

परतौसे चाँदनीके है सहने बाग़ ठंडा।
फूलोंकी सेजपर आ, करदे चिराग़ ठंडा॥

लेके मैं ओढ़ूं, बिछाऊँ या लपेटूं क्या करूँ?
रूखी, फीकी, सूखी, साखी महरबानी आपकी॥

---

[1]प्राय.; [2]अपराध, बे-अदबी।

"या इशाकी आफताब उलटा, नकाब उलटावाली गज़ल। यह रग ईशासे पहले उर्दू गज़लमे था ही नही। इशाने अपने और अपने रगके साथ बेऐतदाली (अव्यवस्था) यह बरती कि खारजी चीज़ोको मसलन चोटी, दुपट्टा, इज़ारबन्द, चूडियो और जृतियोको ले लिया और अपने मसखरेपनको नक़काली बना दिया"[1]

नवाबसे अनबन होनेके बाद इशाको अनेक दुर्दिनोका सामना करना पडा। उनके स्वभावमें से मसखरापन जाता रहा और हृदय पीडा और व्यथासे भर गया। इशा जब दरबारी मुसाहबतसे दूर हुए तो उनके ऊपर आर्थिक चिन्ताओ और मानसिक वेदनाओका तो पहाड टूट पडा, परन्तु वह सोज़ोगुदाज़ जो तगुज्जुलका प्राण है और बगैर दिल जलाये नसीब नही होता, उन्हे मिल गया। अत इन दिनो इशाने जो लिखा है, वही कलाम उनकी स्मृतिको बनाये रखनेमे सहायक हुआ है। इन दुर्दिनोमें कही गई इस इस गज़लको पढते-पढते कलेजा मुंहको आने लगता है—

कमर बांधे हुए चलनेको यां सब यार बैठे हैं।
बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं॥

न छेड, ऐ निकहतेबादे[2] बहारी, राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियां सूझी हैं, हम बेज़ार बैठे हैं॥

तसव्वुर[3] अर्श[4] पर है और सर है पाये साक़ीपर।
ग़रज़ कुछ और धुनमें इस घड़ी मयख्वार बैठे हैं॥

बसाने नक़्शपाये रहरवां[5] कूएतमन्नामें[6]।
नहीं उठनेकी ताक़त, क्या करें? लाचार बैठे हैं॥

---

[1] अन्दाज़े, पृ० ७२-७४
[2] सुगन्धित वायु,
[3] ध्यान,
[4] आकाश,
[5] मुसाफिरके चरणचिन्होकी तरह,
[6] अभिलाषाओके कूचेमे।

यह अपनी चाल है उफ़्तादगीसे[1] अब कि पहरों तक ।
नज़र आया जहाँपर सायए दीवार, बैठे हैं ।।

कहाँ सब्रोतहम्मुल[2]? आह ! नंगोनाम क्या शै है ?
मियाँ ! रो-पीटकर इन सबको हम यकबार बैठे हैं ।।

नजीबोंका[3] अजब कुछ हाल है इस दौरमें यारो ।
जहाँ पूछो यही कहते हैं, "हम बेकार बैठे हैं" ।।

भला गरदिश फ़लककी चैन देती है किसे 'इंशा' !
ग़नीमत है कि हमसूरत यहाँ दो चार बैठे हैं ।।

१४ जुलाई १९४९

---

[1]निर्बलतासे, [2]सतोष, [3]कुलीन मनुष्योंका ।

३४

जुरअत

शेख कलन्दर अलीबख्श 'जुरअत' के पिता हाफिज अमान दिल्ली-निवासी थे। और इनके पूर्वज बादशाही सल्तनतमे दरबानीका कार्य्य करते थे। नादिरशाही हमलेके बाद ये लोग फैजाबाद आ गये और यही जुरअतका लालन-पालन हुआ। मौलाना आजाद लिखते हैं—

"मियां जुरअतकी खुशमिजाजी, लतीफागोई, मसखरेपनकी हदसे गुजरी हुई थी, और उस वक्तके हिन्दुस्तानके अमीरोको न इससे जरूरी काम था, न इससे ज्यादा कोई नेअमत। मिर्जा कतील, सैयद इशा और शेख जुरअतका यह हाल था कि घरमे रहने न पाते थे। आज एक अमीरके यहाँ, दूसरे दिन दूसरे अमीर आये और सवार किया और साथ ले गये। ४-५ दिन वहाँ रहे। कोई और नवाब आये, वहाँसे वे ले गये। जहाँ जायें, आरामोआसाइशसे ज्यादा ऐशके सामान मौजूद। रात-दिन कहकहे और चहचहे। एक बेगम साहिबाने घरमे उनके चुटकले और नक़ले सुनी। बहुत खुश हुईं, और नवाब साहबसे कहा—"हम भी बाते सुनेगे, घरमे लाकर खाना खिलाओ।" परदे या चिलमने छुट गईं। अन्दर वे बैठी और बाहर जुरअत बैठे। चन्द रोजके बाद खासखास बीबियोका बरायेनाम परदा रहा। बाकी घरवाले आमनेसामने फिरने लगे। रफ्ता-रफ्ता यगानगीकी यह नौबत हुई कि आप भी बाते करने लगी। घरमे कोई दादा, नाना, कोई मामू-चचा कहने लगी। जुरअतकी आँखें दुखनी आईं तो चन्द रोज जोफेबसर (क्षीण-दृष्टि)का बहाना करके जाहिर किया कि आँखे माजूर (बेकार) हो गईं। मतलब यह

था कि अहलेहुस्नके दीदारसे आँखे सेंक पाये। चुनाचे बेतकल्लुफ घरोमें जाने लगे। अब परदेकी जरूरत भी क्या? यह भी कायदा है कि मियाँ-बीवी जिस महमानकी बहुत खातिर करते हैं, नौकर उससे जलने लगते हैं। एक दिन जुरअत सोकर उठे। उन्होने लौडीसे बडे आफताबमें पानी भरनेको कहा। लौडी न बोली, उन्होने फिर पुकारा। लौडीने जवाब दिया कि बीवी जाए जरूर (पाखाने)मे ले गई है। जुरअतके मुँहसे निकल गया—"दीवानी हुई है, सामने तो रक्खा है, देती क्यो नही?" बीवी दूसरे दालानमे थी। लौंडी गई और कहा कि—"यह मुआ कहता है कि मै अन्धा हूँ। यह तो खासा सुझक्का है। अभी मेरे साथ यह वारदात गुजरी।"[1] जुरअतके नकली अन्धेपनका इस तरह भेद खुल गया। लेकिन कुदरतका वरिश्मा देखिये कि फिर ये सचमुच अन्धे हो गये। जुरअतकी जुरअत देखिये कि परदेमें रहनेवाली सुन्दरी युवतियोके सौन्दर्य-पान करनेकी कितनी अजीबोगरीब जुरअत की। मगर कुदरतको परदेवालियोकी यह बेपर्दगी भली मालूम न दी और उसने अन्धा होनेके शौकीन जुरअतको सचमुच अन्धा करके उसकी हृदयगत अभिलाषाओको पूर्ण न होने दिया। हाँ, दिखावटी अभिनयको वास्तविक रूप अवश्य दे दिया।

जुरअतको सगीतका भी शौक था। सितार अच्छा बजा लेते थे। जफरअली 'हसरत'से शायरीमे परामर्श लेते थे। शुरूमे मुहब्बतखाँकी सरकारमे नौकर हुए। बादमे मिर्जा सुलेमान शिकोहके दरबारसे सम्बन्धित हो गये। ये विशेष पढे-लिखे न थे, परन्तु अपनेको मीर-जैसा समझते थे;[2] किन्तु कहाँ मीर और कहाँ जुरअत? चाँद और जुगनू-

---

[1] आबेहयात, पृ० २३८-३९

[2] "एक रोज मुशायरेमे 'जुरअत'ने गजल पढ़ी तो तारीफोंके गुलसे शेरतक सुनाई न दिये। मियाँ जुरअत या तो इस जोशेसरूरमें जो कि

की तुलना ही क्या ? फिर भी जुरअतने मीरकी गज़लोपर गज़ले कहनेकी जुरअत की है।

आबेहयातसे इस तरहके नमूने उद्धृत करके यहाँ दिये जा रहे हैं—

मीर— बुर्क़ेको उठा चेहरेसे वोह बुत अगर आये।
अल्लाहकी क़ुदरतका तमाशा नज़र आये॥

जुरअत— इस परदानशींसे कोई किस तरह बर आये ?
जो ख़्वाबमें भी आये तो मुंह ढांपकर आये॥

मीर— अब करके फ़रामोश तो नाशाद करोगे।
पर, हम जो न होगे तो बहुत याद करोगे॥

जुरअत— हैं किसका जिगर जिसपै यह बेदाद करोगे।
लो हम तुम्हें दिल देते हैं, क्या याद करोगे ?

मीर— मुद्दई मुझको खड़े साफ़ बुरा कहते हैं।
चुपके तुम सुनते हो बैठे, उसे क्या कहते हैं ?

जुरअत— आइनये रुखको तेरे अहले सफा कहते हैं।
उसपै दिल अटके है मेरा, उसे क्या कहते हैं ?

इस हालतमें इन्सानको सरशार कर देता है, या मिज़ाजकी शोखीसे, मीर साहबको छेड़नेके इरादेसे एक शागिर्दका हाथ पकड़कर उनके पास गये और कहा कि—"हज़रत ! अगर्चे आपके सामने गज़ल पढ़ना बेअदबी और बेहयाई है, मगर इस बेहूदागोने जो यावागोई की, आपने समाअत फरमाई ?" मीर साहब त्योरी चढ़ाकर चुप हो रहे। जुरअतने फिर कहा, मीर साहब हूँ-हाँ करके टाल गये। जब जुरअतने ब-तकरार कहा तो मीर साहबने जवाब दिया—"तुम शेर तो कहना नही जानते हो, अपनी चूमा-चाटी कह लिया करो।"

—आबेहयात, पृ० २४१

जुरअत इतने शोख और छिछोरे थे कि शायरोसे ही नही, भाण्डोसे भी उलझ पडते थे। करेला भाण्ड दिल्लीका रहनेवाला था। अपने हुनरमे यकता था। नवाब शुजाउद्दौला उसे दिल्लीसे लखनऊ ले गये थे। एक रोज़ दरबारमे ही उसने जुरअतको नीचा दिखाया। जुरअत चूंकि अन्धे थे, अत वह अन्धेका रूप बनाकर एक हाथमे लकडी लेकर और दूसरे हाथसे टटोलता हुआ अन्धोकी तरह फिर-फिरकर यह शेर पढने लगा—

सनम सुनते हं तेरी भी कमर है।
कहाँ है ? किस तरफको है ? किधर है ?

इस नकलसे जुरअत बहुत बिगडे। उन्होने भी घर आकर भाण्डके लिए हिजो कही। जिसका एक शेर ये है—

अगला भूले बगला भूले, सावन मास करेला फूले।

करेला भाण्डने यह हिजो सुनी तो वह फिर दरबारमें नक़ल करने आया। एक अपने साथीको ज़च्चा बनाया और उसपर भूतका असर बताकर झाड-फूंक करते-करते कहने लगा—'जुरअत है तो बाहर निकल।"

एक रोज़ जुरअत ये मिसरा गुनगुना रहे थे—

उस जुल्फपै फब्ती शबेदैजूरकी[1] सूझी।

दूसरा मिसरा नही लगता था। इतनेमें ही इशा आ गये। उन्होंने मिसरा सुना तो तत्काल बोले—

अन्धेको अंधेरेमें बड़ी दूरकी सूझी।

एक बार नवाब मुहब्बतखांके मुख्तारने जुरअतको जाडेमें

---

[1]काली रातकी।

ोशाक देनेमें मामूली कुछ देर कर दी। जुरअतको इतना सब्र कहाँ ? झट यह हिजो कहकर पोशाक वसूल कर ली।

मुख्तारीपै आप कीजियेगा न घमण्ड।
कहते हैं जिसे नौकरी है बेरे बेअरण्ड॥
सरमाई दिलाइये हमारी वर्ना।
तुम खाओगे गालियाँ जो हम खायेंगे ठण्ड॥

नियाज फतेहपुरीके शब्दोंमें—"जुरअत सिर्फ गजलगो शायर थे और हुस्नोइश्कको उन्होंने बहुत अदना सतहपर आकर बयान किया है। इसीलिए ये एक खास तर्जके मूजिद (आविष्कारक) समझे जाते हैं, जिसमें शोखी, बेबाकी (निर्भयता, उद्दण्डता) बल्कि उरियानी (नग्नता, अश्लीलता)का असर गालिब है *।"

लग जा गलेसे ताब अब ऐ नाजनीं ! नहीं।
है, है, खुदाके वास्ते मतकर "नहीं, नहीं"॥
क्या रुकके बोह कहे है जो टुक उससे लग चलूं।
"बस-बस परे हो, शौक यह अपने तईं नहीं"॥
फुरसत जो पाके कहिये कभू दर्दे दिल सो हाय।
वह बदगुमाँ कहे है कि "हमको यकीं नहीं"॥
आतिश-सी फुंक रही है मेरे तन-बदनमें आह।
जबसे कि रूबरू बोह रश्के-परीं[1] नहीं॥
सुनता है कौन ? किससे कहूँ दर्दे बेकसी[2] ?
हमदम नहीं है कोई मेरा हमनशीं[3] नहीं॥

---

*इन्तक़ादियात, भा० २, पृ० १२०

[1]सुन्दरमुखी; [2]करुण कथा;
[3]पड़ोसी।

आँखोंकी राह निकले है क्या हसरतोंसे जी।
वह रूबरू जो अपने वमेंवापिसीं[1] नहीं॥

याद आता है तो क्या फिरता हूँ घबराया हुआ।
चंपई रग उसका और जोबन वोह गदराया हुआ॥
बेसबब जो मुझसे है वोह शोलारू[2] सरगर्मेजंग[3]।
मैं तो हूँ हैरां कि ये किसका है भड़काया हुआ?
नौकेमिज़गाँ[4]पर विलेपज़मुर्दा[5] है यूँ सरनगूँ[6]।
शाखपर झुक आये है जूं फूल मुरझाया हुआ॥
जाऊं-जाऊं क्या लगाई है, अजी बैठे रहो।
हूँ मैं अपनी जीस्तसे[7] आगे ही उकताया हुआ॥

यह वफा की मैंने तिसपर, मुझे कहते बेवफ़ा हो।
मेरी बन्दगी है साहब, यह मिला खिताब उलटा॥

इस ढबसे किया कीजिये मुलाक़ात कहीं और।
विनको तो मिलो हमसे, रहो रात कहीं और॥

जब यह सुनते है कि हमसाये[8] है आप आये हुए।
क्या दरोबाम पै हम फिरते है घबराये हुए॥

मुझबेकसी-ओ-यास[9] नहीं है कोई जिस जा, है अपनी वोह तुरबत।
अफ़सोस करे कौन बजुज़ दस्तेतमन्ना,[10] हूँ कुश्तये हैरत[11]॥

---

[1]मृत्युके समय;
[2]लड़नेको उद्यत,
[3]मुरझाया दिल,
[4]जिन्दगीसे,
[5]मजबूरी और निराशाके सिवा,
[6]अचम्भेका मारा हुआ।
[7]गुसैल
[8]पलकोंके बालोंपर;
[9]नतमस्तक,
[10]पड़ोसमें;
[11]अभिलाषा रूपी हाथके सिवा;

जो मैंने कहा उससे दिखा मुझको रुख अपना, बस दे न अज़ीयत[1]।
तो क्या कहूँ किस शक्लसे झुंझलाके वह बोला, "तू देखेगा सूरत ?"
दिल देके अजब हम तो मुसीबतमें फँसे हैं, इक परदानशींको।
नै जानेका घर उसके है मक़दूर[2] हमारा, नै रहनेकी ताक़त॥
गर ख़्वाबमें देखे मुझे तो चौंक उठे और, फिर मूँदे न आँखें।
आवाज़ जो मेरी-सी सुने तो वहीं घबरा, खाने लगे दहशत॥

—आबेहयातसे

आये जो मेरे पास तो मुंह फेरकर बैठे।
यह आज नया आपने दस्तूर निकाला॥

ख़ुदा जाने करेगा चाक किस-किसके गरीबाँको ?
अदासे उनका चलनेमें उठा लेना यह दामाँको॥

क्या जानिये कमबख़्तने क्या हमपै किया सहर[3]।
जो बात न थी माननेकी मान गये हम॥

शब उसने तोड़कर मोतीके सुमरन[4] मुझसे गिनवाये।
दिखाया वस्लमें आलम नया अख़्तरशुमारीका[5]॥

चाहकी चितवन मेरी, आँख उसकी शरमाई हुई।
ताड़ ली मजलिसमें सबने, सख़्त रुसवाई हुई॥

—इम्तक़ादियात भा० २से

वह गया उठकर जिधरको मैं उधर हैरान-सा।
उसके जानेपर भी कितनी देरतक देखा किया॥

---

[1]तकलीफ, [2]सामर्थ्य,
[3]जादू; [4]मालाके दाने,
[5]तारे गिननेका।

जुरअतके कलाममे तगज्जुलके अच्छे शेर भी कही-कही नजर आते हैं—

वाँ से आया हूं जवाबे खत कोई सुनियो जरा ।
मैं नहीं हूँ आपमें, मुझसे न समझा जायगा ।।

जब तलक करते रहे मजकूर[1] उसका मुझसे लोग ।
जी में कुछ सोचा किया मैं और दिल धड़का किया ।।

मुल्केदिल मेरा सदा सुनसान ही रहता है आह !
सब नगर बसते हैं या रब ! इस नगरको क्या हुआ ।।

खाक हो जाना दिले सोज़ाँका[2] क्या आता है याद ।
खाक होते देखते हैं, जब किसी अखगरको[3] हम ।।

लोग सब कहते हैं इस बीमारे गमको क्या हुआ ?
जानते हम भी नहीं हैं यह कि हमको क्या हुआ ।।

दिल है जबतक इश्क़ से इन्कार कर सकते नहीं ।
पर, जो वोह पूछे है तो इक़रार कर सकते नहीं ।।

यारो कहो हरबार न कुछ कानमें अपने ।
क्या जानें कि हम बैठे हैं किस ध्यानमें अपने ।।

पड़े हैं बक्तमें जिस शक्सपर निगाह तेरी ।
वोह मुंहको फेरके कहता है "उफ़ पनाह तेरी" ।।

मकतूबाते नियाज, भाग २, पृ० ९९

"जुरअत ग़ज़लगो जरूर थे, लेकिन उनकी गजलसराई तमामतर

---

[1]जिक्र; [2]दग्ध हृदयका;
[3]चिनगारीको ।

ख़ारजी अन्दाज़की थी। उन्होंने ग़ज़लमें एक बिल्कुल दूसरी धुन अख़्तियार की थी—यानी मुआमलाबन्दी और अदाबन्दी। उर्दूमें अन्दाज़, अदा और मुआमलेकी शायरी (Poetry of Behaviour) जुरअतसे शुरू होती है। लखनवी दबिस्ताने शायरीके बानी दरअसल जुरअत थे।'"

१७ जुलाई, १९४९

---

[1]तनक़ीदी हाशिये, पृ० १८०

३५

रासिख़

शेख़ ग़ुलामअली 'रासिख़' अज़ीमाबाद (बिहार) के निवासी थे। ये मुसहफ़ी के समकालीन और उनसे दो वर्ष बड़े थे। प्रारम्भमें इन्होंने मशवरये शेरो सुख़न 'फ़िदवी' से लिया और जब कलाममें पुख़्तगी आगई तो उनसे इसलाह लेना छोड़कर, परोक्षरूपमे 'मीर'के शिष्य बन गये। मीरसे कोई साक्षात् परिचय या पत्र व्यवहार नही था, किन्तु उनका कलाम पढकर उनका अनुसरण करने लगे, उनको अपना उस्ताद मानकर उनके रगमे ग़ज़ल कहने लगे। कलाममे निखार और विकास हुआ तो अपनेको मीरसदृश[1] समझने लगे और मीरकी मृत्युके बाद फ़रमाया—

है 'मीर' गुज़िश्ताके बदल हज़रते 'रासिख़'।
अब उनको सलामत रखे अल्लाह तआला॥

और आगे चलकर तो वे मीरसे अपनी तुलना करना भी कसरे शान समझने लगे थे। हालाँकि कहाँ मीर, कहाँ रासिख़?

'शफ़ाई' और 'नज़ीरी' का है बदल 'रासिख़'।
यह उसका फ़ख़्र नहीं गर 'नज़ीर' 'मीर' हुआ॥

---

[1] प्रोफ़ेसर अताउल्लारहमानने दिसम्बर १९५० के 'निगार' में 'मीर' और 'रासिख़' का तुलनात्मक कलाम दिया है।

ये दो बार आसफुद्दौला और गाज़ीउद्दीन हैदरके शासनकालमे लखनऊ भी गये थे। ७६ वर्षकी आयुमे समाधि पाई।

जब्ते गिरिया[1] तो है, पर दिलमें जो इक चोट-सी है।
क़तरे आँसूके टपक पडते हैं दो-चार हनूज़[2]॥

था जीमें कि दुश्वारिये हिज्र[3] उससे कहेंगे।
पर जब मिले कुछ रज-ओ मुहन[4] याद न आया॥

यूँ मूरिदेजफा[5] इसी तकसीर[6] पर हुए।
अहलेवफा थे हम, यह हमारा क़ुसूर था॥

फ़क़त रज ही हम तो खींचा किये।
ग़लत है कि राहत है मेहनत के बाद॥

दस्तो पा गुमकरदा[7] 'रासिख़' हम तुम्हें पाते हैं आह!
दिल कहाँ खो बैठे साहब! तुम हुए मफ्तूं[8] कहाँ!

आने में सदा देर लगाते ही रहे तुम।
जाते रहे हम जानसे, आते ही रहे तुम!

कुछ न समझे गये किसू से तुम।
बारे इतना तो हमने समझा है॥

फस्ले गुल लाई शगूफे तो बहुत पर तुम बिन।
दिल ही तसवीरके गुंचेकी तरह वा न हुआ[9]॥

---

[1] आँसू रोकना, [2] अब भी, [3] विरहकी कठिनाई,
[4] कष्ट [5] अत्याचारके प्रेरक,
[6] दोष; [7] हाथ पैर खोए हुए;
[8] प्रेमासक्त, [9] खिला नही।

मरना उस बिन कि जीते रहना।
'रासिख़' ! कहो क्या क़रार पाया॥

मत पूछ कुछ मुझ से हाल मेरा।
हैरतज़दा क्या बयाँ करेगा॥

यही कह-कहके मारा अपने बीमारे मुहब्बतको।
"कि तू मरनेसे डरता है, बहुत जी तुझको प्यारा है॥"

नहीं होशवालो पै कुछ हसद मुझे रश्क है तो उन्हीं पै है।
जिन्हें तेरे जलवेके सामने मेरी तरह बेख़बरी रही॥

काश मख़सूसेयकनिगह[1] होती।
क्यों तजल्लीएयार[2] आम हुई॥

१८ दिसम्बर, १९५०

---

[1]एक दर्शकके लिए सुरक्षित,
[2]प्रेयसीकी सौन्दर्य्य-छटा।

३६

हविस

नवाब मिर्ज़ा मुहम्मदतकीखाँ 'हविस' 'मुसहफी'के शिष्य थे। फैज़ाबादके रहनेवाले थे, परन्तु लखनऊमें शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी। इनकी कवितामें 'मीर'की कविता-जैसा आनन्द आता है।

शबले शबे तनहाई[1] किससे कहें हम अपना।
दो-चार घड़ी रोकर बहलाते हैं ग़म अपना॥

आशिक़ तो था 'हविस' कहो दीवाना कब हुआ।
लो उठ गया हिजाब, बड़ा ही ग़ज़ब हुआ॥

आ चुका था साफ मेरे सामने वोह बेहिजाब।
कुछ यूँ ही इक शर्मका परदा-सा हाइल[2] हो गया॥

---

[1]विरहरात्रि काटनेका उपाय,

[2]बीचमें आ गया।

३७

शहीदी

करामतअली 'शहीदी' अब्दुलरसूलखाँके पुत्र और बाँसबरेलीके रहनेवाले थे; किन्तु लखनऊमे अधिकतर रहे। 'मुसहफी'के शिष्य थे। मदीनेकी यात्रामे परलोक सिधारे। इनकी कवितामें भी व्यथा, पीडा काफी पाई जाती है। नातिया (धार्मिक) गज़लें लिखनेमें काफी ख्याति पाई। आशिकाना गज़लें भी खूब कहते थे।

आम है उसके तो अलताफ[1] 'शहीदी' सबपर।
तुझसे क्या ज़िद थी, अगर तू किसी क़ाबिल होता॥

अन्दोहेदायमीमें[2] कटे किस खुशीसे ग़म।
गर मुझको ग़म न हो तरबे गाह-गाहका[3]॥

कर चके नीम निगहपर मेरे दिलका सौदा।
न खरीदो, यह अभी और भी अरज़ां होगा॥

रहम आता है मुझे इस नौजवानीपर तेरी।
ऐ 'शहीदी'! रात-दिनका रंजोग़म अच्छा नहीं॥

१६ जुलाई, १६४६

---

[1]कृपायें; [2]स्थायी दुःखमें,
[3]कभी-कभीकी खुशीका।

३८

रगीन

सम्रादतयारखाँ 'रगीन'के पिता तूरानसे आकर लाहौरमें मुलाजिम हुए। फिर लाहौरसे नौकरी छोडकर दिल्ली आये और यहाँ पेशगाहे सुलतानीसे सात हजारीका पद और महकमुद्दौला ऐतजाद जगबहादुरका खिताब इनायत हुआ। रगीन' सरधनेमे उत्पन्न हुए थे। जवाँ होनेपर लखनऊमें मिर्जा सुलेमान शिकोहकी नौकरीमे चले गये। ये बहुत अच्छे घुड्सवार और सैनिक थे। हैदराबाद दकनमे निजामकी सेनामे तोपखानेके अफसर भी रहे, परन्तु वहाँसे त्यागपत्र देकर स्वतन्त्रतापूर्वक घोडोका व्यापार करने लगे थे। 'इशा'के बडे गहरे मित्र थे।

जवानीकी चौखटपर पाँव रखनेसे पहले ही शायरीमे दामन उलझा चुके थे। 'मीर' जैसे ख्यातिप्राप्त उस्तादका शिष्य बननेकी अभिलाषा थी, किन्तु मीर पुट्ठेपर हाथ कब रखने देते थे ?[1] लाचार 'रगीन

---

[1] 'मीर' साहबके पास १४-१५ बरसकी उम्रमें 'रगीन' बडी शानोशौकतसे गये और ग़ज़ल इसलाह (सशोधन)के लिये पेश की। सुनकर कहा—"साहबजादे ! आप खुद अमीर हैं, अमीरजादे हैं। नेजाबाजी तीरन्दाजीकी कसरत कीजिये। शहसवारीकी मश्क फरमाइये। शायरी दिलखराशी और जिगरसोजीका काम है। आप इसके दरपै न हो।" जब रगीनने बहुत इसरार किया तो फरमाया कि "आपकी तबियत इस फनके मुनासिब नहीं। यह आपको नही आनेका। ख्वाहमख्वाह मेरी और अपनी औकात जाया करनी क्या जरूरी है ?" आबेहयात, पृ० २१।

शाह हातमके शिष्य हुए। फिर मुहम्मदअमान 'निसार'से सशोधन लेने लगे, और शायद 'मुसहफी'से भी कुछ दिनो सशोधन लिया।

रगीनको भ्रमणका अत्यन्त व्यसन था। अत्यन्त रगीन और आशिक मिज़ाज थे। धनी और हसीन भी थे। इसलिए बकौल लेखक तारीखे अदबे उर्दू—"ज़िन्दगी निहायत ऐशोइशरतसे परियोके जमघटमे गुज़ारते थे"।[1] इनकी निम्न रचनाएँ मिलती है—

१—मसनवी दिलपज़ीर—इसमे शाहज़ादा माहेजबी और रानी श्रीनगरकी कहानी दो हज़ार शेरोमे है।

२—ईजादेरगी—यह एक अश्लील मसनवी है।

३—मसनवी मज़हरउलअजायब—इसमे हिकायते है।

४—मजालिसेरगीन—इसमे तत्कालीन शायरोका परिचय है।

५—फरसनामा मुसन्नफ—इसमे घोडोकी पहचान और इलाज है।

६—चार गज़लोंके दीवान—१ दीवानेरेख्ता, २ दीवानेबेख्ता, ३ दीवाने आमेख्ता और ४ दीवाने अगेख्ता। तीसरे दीवानमे हज़लियात (अश्लील कविताएँ) है और शैतानकी प्रशसामे एक कसीदा है। चौथा दीवान रेख्तीका है। इसकी भूमिकामे रगीनने स्त्रियोके विशेष-विशेष मुहाविरे उनके पारिभाषिक शब्दोके अर्थ और बाज़ारी औरतोकी बोल-चालके नमूने दिये है, और फिर रेख्ती गज़ले है।

भाग्यका खेल देखिये कि एक सुलझा हुआ सैनिक तलवार और नेज़ेके हाथ दिखाते-दिखाते किस जालमे फँस गया! जिसके तीर बेखता होते थे, वही बाज़ारू औरतोकी नज़रोसे घायल हो गया! जिसकी आवाज़मे सिहोंकी गरज होनी चाहिए थी, वही ज़नानी बोली बोलने लगा! जिसके जिस्मपर कभी जिरहबख्तर ज़ेब देता था, वही ज़नाने

---

[1] तारीखे अदबे उर्दू, पृ० २३८

लिबासको तरजीह देने लगा। रगीनके शेर क्या थे, मानो कोक शास्त्रके श्लोक थे। भला इसे शेर क्योकर कहिये—

चली वांसे दामन उठाती हुई।
कडको कडेसे बजाती हुई॥

रगीनके मिज़ाजमें रडीबाज़ीसे जो शोहदापन आ गया था, उसने रेख़्ताको छोडकर रेख़्ती इसलिए ईजाद की कि भले आदमियोकी बहू-बेटियाँ पढकर मश्शाक हो और यह उनके साथ अपना मुँह काला करे। भला यह कलाम क्या है?

ज़रा घरको रगींके तहक़ीक करलो।
कि यांसे है कै पैसे डोली कहारो॥

मर्द होकर कहता है—

कहीं ऐसा न हो कम्बख़्त "मैं मारी जाऊँ।"[1]

तारीख़े अदबे उर्दूका योग्य लेखक कहता है—"इस किस्मके शेर जज़्बाते नफ़्सयानी बरअगेख़्ता करने (कामवासना सम्बन्धी विचारोको भडकाने)की ग़रज़से कहे जाते थे, और इसी वजहसे वोह निहायत फ़हाश (अश्लील) और मख़रूबे अख़लाक (चरित्रका नष्ट करनेवाले) और शुरफा (भले मनुष्यो)के कानो तक को नागवार होते थे। ऐसी कुल चीज़े जो औरतोके पढनेके काबिल नही होती, ग़ैरमुहज़्ज़ब (असभ्य) और फ़हाश (अश्लील) होती है। ख़ुदाका शुक्र है कि यह सनके शायरी जमानेके साथ बहुत बदल गई है, और तक़रीबन अब मतरूक (अव्यवहृत) है।

८० वर्षकी आयुमें रगीन परलोक सिधारे।

---

[1] आबेहयात, पृ० ११०

[2] तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० २८

'रंगीन' और 'इशा'का दीवानेरेख्ती अश्लीलताका भडार है। उसमेंसे एक भी शेर देने योग्य नही है, परन्तु प्रसगवश कुछ-न-कुछ उल्लेख करना आवश्यक है। इसीसे बाध्य होकर कुछ नमूने इस तरहके दिये जा रहे है, जिनमें कम-से-कम अश्लीलता है—

अब आठ पहर तुझसे माँगं हूँ दुआ यह मं।
बन्दीको पडे हूका 'रगी'की न चाहतका॥

सोच इसका न हो गर मुझको तो फिर किसको हो?
जानती तू नहीं क्या पाँव है भारी[1] अन्ना॥

आज लश्कर वोह सिधारा यह कहा क्यो अन्ना?
तूने गुल्ली-सी यह क्या छातीमें मारी अन्ना॥

होनी जो होवे सो हो बन्दी मिलेगी शर्ती[2]।
वस्लकी उससे जबाँ अब तो मं हारी अन्ना॥

टके तिसपं मोती है बेरत्न दाने।
यह उस जूतेवालेके सर मार जाना॥

या रब! शबेजुदाई तो हरगिज न हो नसीब।
बन्दीको यं जो चाहं तो कोल्हूमें पेल डाल॥

बाजी! न कर नसीहतेबेजा जले है दिल।
है आग-सी जो सीनेमें उसको कुरेद डाल॥

खुदा जाने कि हाथापाई कर किससे लडी कूका[3]।
कि उसने चूड़ियाँ की अपनी चकनाचूर मेलेमें॥

---

[1]गर्भवती है, [2]अवश्य,
[3]दाईकी लडकी।

छुपके मिल मुझसे दुगाना,[1] तेरे वारी जाऊँ।
मुफ्तमें ऐसा न हो मैं कहीं मारी जाऊँ॥

यह मुनासिब नहीं 'रंगी' कि मैं अपने घरतक।
शहरमें करती हुई नाला-ओ-जारी[2] जाऊँ॥

तू आज न आवे तो लहू पीवे हमारा।
तुझ बिन नहीं कुछ सैर शबेमाहकी, गुइयाँ[3]॥

जुदी उससे भला कबतक रहूँ मैं।
बुरी उससे भला कबतक रहूँ मैं॥

इलाही करे निकले तालूमें गिलटी।
यह जैसी जबाँ तुमने खोली कहारो॥

मुझको रोता देखकर बोली दश[4] "जारी[5] न कर—
तेरे सदके होके मैं मर जाऊँ, जी भारी न कर॥"

जोफने 'रंगी' किया मेरा यह हाल।
दिलमें आकर इश्कका जो घर हुआ॥

फाँसकी मानिन्द दम खटके है आह!
साँस भी लेना मुझे दूभर हुआ॥

१८ अगस्त, १९४९

---

[1]सहेली,
[2]सहेली,
[3]रो नही।
[4]रोती, चिल्लाती,
[5]नौकरानी,

अर्वाचीन युग

[दौरे मुताख़्ख़रीन]

आये भी लोग, बैठे भी, उठ भी खडे हुए ।
मै जा ही ढूँढता तेरी महफिल मे रह गया ।।

—आतिश

कैदे हयात, बन्देगम, अस्ल मे दोनो एक है ।
मौतसे पहले आदमी गमसे निजात पाये क्यो ?

—ग़ालिब

पूर्वार्द्ध

लखनवी शायर

नवाब गाज़ीउद्दीन हैदर और वाजिदअलीशाह
शासनकालीन ई० स० १८१५ से १८५७ तक

देहलवी शायर

बहादुरशाह 'ज़फर' शासनकालीन ई० स० १८३८ से १८५७ तक

उत्तरार्द्ध

ई० स० १८५७ से १९०० तक

अर्वाचीन युगपर सिंहावलोकन

ग़ज़ल, शायरीपर वातावरण और व्यक्तित्वका प्रभाव,
देहलवी और लखनवी शायरीमें अन्तर,
नासिख और आतिश

पूर्वार्द्ध

लखनवी शायर

३९ अख्तर
४० नासिख
४१ आतिश
४२ बर्क
४३ बहर
४४ आबाद
४५ वज़ीर
४६ रश्क
४७ महर
४८ मुनीर
४९ रिन्द
५० नसीम
५१ शरफ
५२ खलील
५३ सबा

लखनऊके नवाब शायर

५४ आसफुद्दौला
५५ वज़ीरअलीखाँ
५६ सआदतअलीखाँ
५७ ग़ाज़ीउद्दीन हैदर
५८ नसीरुद्दीन हैदर
५९ मुहम्मदअलीशाह

६० अमजदअलीशाह
६१ वाजिदअलीशाह
६२-७४ लखनऊकी बेगमात

देहलवी शायर

७५ शाहनसीर
७६ ज़ौक
७७ मोमिन
७८ गालिब
७९ ममनून
८० आजुर्दा

उत्तरार्द्ध

लखनवी शायर

८१ असीर
८२ अमानत
८३ कल्क
८४ ज़की
८५ दरख़्शा
८६ तसलीम
८७ अमीर मीनाई
८८ जलाल
८९ निज़ाम
९० जावेद

देहलवी शायर

९१ ज़फर
९२ आज़ाद
९३ दाग़
९४ शेफ़्ता
९५ तसकीन
९६ नसीम
९७ सालिक
९८ ज़हीर
९९ अनवर
१०० हाली
१०१ मज़हर
१०२ ज़की
१०३ रख़्शा

बादशाह और नवाब शायर

दिल्ली दरबार
लखनऊ दरबार
हैदराबाद दरबार
रामपुर दरबार
टाँडा दरबार
फर्रुखाबाद दरबार
अज़ीमाबाद दरबार
मुर्शिदाबाद दरबार
टौंक दरबार
अलवर दरबार

सिंहावलोकन

गज़ल—

जिस प्रेममे कामवासना निहित हो, उस प्रेमविषयक कविताको गज़ल कहते है। मां-बाप, भाई-बहन, पत्नी-सन्तान और इष्ट-मित्रोसे भी प्रेम होता है, किन्तु ये सब व्यक्ति गज़लके उपयुक्त पात्र नही है। जिस व्यक्तिके देखने-सुनने और स्मरण करनेमे काम-वासना उदित हो, उसके सम्बन्धमे अपने मनोभावोको जिस कवितामे प्रकट किया जाय, केवल उसी कविताको गज़ल कहते है। ईश्वर-भक्ति, देश-प्रेम कौटुम्बिक-स्नेह, आध्यात्मिक या दार्शनिक विचार, प्राकृतिक वर्णन, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक-स्थिति आदिका वर्णन गज़लका विषय नही[1]।

गज़लका शाब्दिक अर्थ है इश्किया अशआर, औरतोसे बाते

---

[1]ग़ल्लाम। नियाज़ फतेहपुरीके शब्दोमे--"जिस मुहब्बतका ताल्लुक गज़लगोईसे है, वोह मस्वसूम है उस जज़्बेसे, जो जिन्सी कशिश व रुझानसे पैदा होता है। मुहब्बत मां, भाई, औलाद वगैरह अहबाबसे भी होती है, लेकिन इसमे से कोई गज़लका मौज़ू नही। इसका ताल्लुक सिर्फ ऐसे फर्दसे होता है, जिससे इन्सानमे जिन्सी हैजान पैदा हो सकता है। बाज़ अहबाबको मैंने कहते हुए सुना है कि अलावा जिन्सी मुहब्बतके एक चीज़ ज़हनी व रूहानी मुहब्बत भी है जिसे Intellectual love कहते है। लेकिन मै इसको महज़ शायरी समझता हूँ, और इसका ग़ज़लगोईसे कोई वास्ता नही। गज़लका ताल्लुक मेरे नज़दीक सिर्फ उन जज़्बाते मुहब्बतसे है, जो इस गोश्त-पोस्तकी दुनियामे गोश्त-पोश्तसे

करना, वह नज़्म[1] जिसमें—वस्ल,[2] फिराक,[3] इश्क,[4] इश्तयाक,[5] हसरत[6] और यासका[7] वर्णन हो। तात्पर्य यह है कि गज़ल उस कविता-का नाम है जिसमें प्रेमी अपने वासना विषयक प्रेमका वर्णन करता है। गज़लकी १९ बहर (छन्द) नियत है। उसका अपना स्वतत्र छन्दशास्त्र है, जिसकी पाबन्दी गज़ल-रचनाके लिए बहुत ज़रूरी है।

काम-वासनामे प्रेयसी या प्रेमप्यारेका मिलन और विरह दो मुख्य तत्त्व है। मिलनमे सफलता, मस्ती, ऐश, सुख, मिलन, धन्यवाद, विरहका उलाहना, प्रतिद्वन्द्वीकी बुराई, आत्म-प्रशसा और भविष्यमें विरह-व्यथासे बचनेके उपाय आदिका वर्णन और विरहके दिनोमें मनकी उत्सुकता, हृदयकी बेकली, अभिलाषाओकी भीड, व्यथा-पीडाकी टीस, निराशा, दु ख, शोक, असमर्थता, उन्माद, रुग्णावस्था, निर्बलता, मृत्यु-आलिंगन आदिका वर्णन रहता है। मिलनके क्षेत्रसे विरहका क्षेत्र व्यापक और विस्तृत है। सुखान्त कथानकसे दुखान्त कथानक अधिक समवेदनशील और हृदयस्पर्शी होता है। इसलिए गज़लगोईका सम्बन्ध अधिकतर विरह, व्यथा, पीडासे ज्यादा होता है। पेयसीके सौन्दर्य्यका वर्णन भी गज़लमें होता है।

इस प्रकार गज़लका क्षेत्र सीमित भी है, और विस्तृत भी। सीमित इसलिए कि 'गज़ल' प्रेम-वासना क्षेत्रके बाहर नही जा सकती और विस्तृत इसलिए कि उस वासनाको प्रकट करनेके साधन-तरीके असीमित है

पैदा होते है, और जिनके पूरा करनेकी तमन्ना हर मुहब्बत करनेवालेक होती है।"

—इन्तकादियात, भाग २, पृ० १६

[1]कविता, [2]सम्भोग, मिलन, [3]विरह, [4]कामुक प्रेम, [5]चाहत, अरमान, [6]अभिलाषा; [7]निराशाका।

अब हम ऐसे कामुक प्रेमीको 'आशिक', उसकी प्रेमासक्तिको 'इश्क' और उसकी प्रेयसीया प्रेम प्यारेको 'माशूक' या, हबीब कहेंगे।

इश्क तो मनुष्य क्या, पशु-पक्षी भी कर सकते है, और उसका इज़हार भी अपनी योग्यतानुसार सभी कर सकते हैं, परन्तु जैसे हर कोई शिल्पकार, चित्रकार, कलाकार नही हो सकता, उसी प्रकार हर मनुष्य गजलगो नही हो सकता। यूं तो अध्ययन और परिश्रमद्वारा प्रत्येक कलामे निपुणता प्राप्त की जा सकती है, किन्तु उसमे कमाल हासिल करनेके लिए व्यक्तिकी प्रकृति, झुकाव, विकास, स्वभाव, निजी रुचि और व्यक्तित्वकी भी आवश्यकता निहायत जरूरी है। महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ पढे हुए हजारो छात्रोमे से कितने उनके समरूप बने? द्रोणाचार्यसे शस्त्रशिक्षा सीखनेवाले कौरवो-पाण्डवोमे से अर्जुनके अतिरिक्त एक भी द्वितीय अर्जुन न बन सका, और एकलव्यका निजी रुझान इस ओर था तो वह द्रोणाचार्यसे शिक्षा प्राप्त किये बिना ही अर्जुन-जैसा शब्दभेदी बाण चलानेमे प्रवीण हो गया।

उस्तादोकी अनुकम्पा, निजी परिश्रम और अभ्याससे अनेक शायर हुए है, और होते रहेंगे। अपने मनोभावोको जो जितने हृदयस्पर्शी, आकर्षक और कलापूर्ण ढगसे व्यक्त करता है, वह उतना ही अधिक सफल, पूर्ण, और बडा शायर होता है। केवल मनके भाव व्यक्त करने और छन्दशास्त्रके नियमानुसार शेर कहनेको शायरी नही कहते। शेरके अन्दर शेरियत, मधुरता, कोमलता और सुन्दरता होना लाज़िमी है। गज़लके शेरोका अन्तरग यदि निष्प्राण और बहिरग असुन्दर है, तो वह गज़लका शेर नही, उसका जनाज़ा है।

एक ही बातको भिन्न-भिन्न शायर अपने निजी ढगसे बयान करते है। वे अपने भावोंकी तूलिकासे कल्पना, उपमा, अलकार, उदाहरण, और शब्दोंके रग भरकर विचित्र-विचित्र रूप देते है। कुछ केवल रेखाएँ खीचकर रह जाते है, कुछ आकार बना पाते है, और उनमे एक-दो विरले

शायर आँखोमे समा जानेवाले और हृदयमे घर करनेवाले मूर्त्तमान भाव चित्रित करते है। आँखोमें समाजानेवाली और हृदयमें घर करने वाली इसी इश्किया शायरीको तगज्जुल या गज़ल कहते है ।

उदाहरणतः—आशिक़ विरह-वेदनामें छटपटा रहा है। उसकी शोचनीय अवस्थाका उल्लेख एक शायर इस प्रकार करता है—

"हाल बेचारेका बहुत खराब है आज"

दूसरा शायर कहता है—

"सहर करना बहुत दुशवार है बीमारे हिजरांका"

तीसरा कहता है—

"हाल उस गमज़देका हमसे तो देखा न गया"

बात तो इस तीसरे शायरने भी वही कही है, परन्तु आशिककी विरह-वेदनाका इतना सवेदनशील व्यथासे ओत-प्रोत वर्णन है कि वज्र-हृदय माशूक भी इस मिसरेको सुननेके बाद आशिकके पास बिना जाये नही रह सकता ।

बीमारेगमको दिन-रात हाय-हाय करते-करते किसी प्रकार नींद आ गई है । परिचर्य्या करनेवाले नही चाहते कि उसकी नींद शारागुलसे उचट जाये । इसी भावनाको 'सौदा' इस तरह व्यक्त करते है—

'सौदा'की जो बालींपै हुआ शोरे क़यामत ।
खुद्दामे अदब बोले—"अभी आँख लगी है ॥"

इसी भावको 'मीर'ने इन दर्दीले शब्दोंमे प्रकट किया है—

सिरहाने 'मीर'के आहिस्ता बोलो ।
अभी टुक रोते-रोते सो गया है ॥

'अभी', 'टुक', 'रोते-रोते', सभी शब्द व्यथासे ओत-प्रोत है । शार

मचानेवालेसे शोर बन्द कर देनेके लिए इससे अधिक नम्रनिवेदन और क्या हो सकता है ? जिसे सुनकर शोर मचानेवाला दमबखुद होकर दयादृष्टिसे बीमारेगमको देखने लगता है और उसके हृदयमे भी सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है। शेर पढ़ते-पढ़ते ऐसा मालूम होता है कि शायरके हृदयमे मातृ-प्रेम उमड आया है और वह अपने नौजवान बेटेकी नीदको उचाट नही होने देना चाहती, क्योकि 'बीमारेगम' अभी-अभी टुक रोते-रोते बमुश्किल सोया है।

मोमिन, मीर, दर्दने एक ही मजमूनको अपने-अपने रगमे इस प्रकार चित्रित किया है—

मेरे तगईरे रगको मत देख।
तुझको अपनी नजर न हो जाये॥

'मोमिन अपने माशूकसे कहते है कि "मेरी यह दयनीय स्थिति तेरे सौन्दर्य्यके कारण हुई है। न मै तुझे देखता न बीमार पडता। अत मेरे इस तगईरे रग (अवस्था परिवर्त्तन)को न देख। अन्यथा स्वय तुझे अपनी नजर लग जायगी। क्योकि अभीतक तो तू अपने सौन्दर्य्य-प्रभावसे अपरिचित है। मुझे देखनेसे तुझे अपनी करिश्मासाजियोका पता लग जायगा और तुझे स्वय अपनी नजर लग जायगी। अपने रूपसे स्वय रीझने और अपनी ही नजर लगनेका भाव बिलकुल अछूता और निराला है। माशूकके सौन्दर्यका बखान और अपनी आसक्तिका उल्लेख बडी कुशलताके साथ किया गया है। परन्तु 'मीर' इसी मजमूनको कैसे सवेदन स्वरमे व्यक्त करते है—

मेरे तगईरे हालको मत देख।
इनकलाबात है जमानेके[1]॥

---

[1]समयका हेर-फेर है।

संसार परिवर्त्तनशील है। इस परिवर्त्तनमें अनेक अनहोनी घोटनाएँ होती रहती है। बादशाह दर-दरके भिखारी,[1] और चोर-डाकू बादशाह[2] बन जाते हैं। इसी भावको मीरने बडे करुण शब्दोमें पेश किया है; किन्तु इस 'तगईरे हाल' का सम्बन्ध माशूकसे नही है। इसमें इश्किया भाव नही आ पाया है। इसीलिए यह शेर तगज्जुल (गजलगोई)से हट गया है। 'दर्द' ने इस कमीको देखिये किस खूबीसे पूरा किया है—

मेरे तगईरे हालपर मत जा।
यूं भी ऐ महरबान! होता है॥

'महरबान'के तनिकसे सम्बोधनने शेरको जो तगज्जुलका रग दिया है, वह शायराना कमालकी बहुत बडी सनद है।

उपेक्षापर तीन शायरोकी मीनाकिगारी देखिये। एक शायर फर्माते हैं—

तेरे करममें कमी कुछ नहीं, करीम है तू।
क़ुसूर मेरा है, झूठा उमीदवार हूँ मैं॥

स्वामि-सेवा और वफादारीमें प्राण होम दिये, परन्तु उसकी ओरसे जो अर्थ या उत्साह मिलना चाहिए था, वह नही मिला। वह अन्य निठल्ले और बेवफाओको तो मालामाल कर रहा है और जो सबसे अधिक उसकी कृपाका अधिकारी है, उसीको उपेक्षित बना रक्खा है; परन्तु

---

[1] जिनके हगामोंसे थे आबाद वीराने कभी।
शहर उनके मिट गये, आबादियाँ बन हो गईं॥
—इक़बाल

[2] खुदाकी शान है नाचीज चीज बन बैठे।
जो बेशऊर थे यूं बातमीज बन बैठे॥
—इक़बाल

उपेक्षित अपने स्वामीपर रोष नही करता। वह उसे कंजूस भी नहीं समझता। वह स्वय अपनेको ही "झूठा उमीदवार" और "क़ुसूरवार" समझकर सन्तोष कर लेता है, और अपनी वफादारी और स्वामि-भक्तिमे बाल नही आने देता। अपने रगका यह बेमिसाल शेर है, किन्तु फ़ानी बदायूनीका शेर मुलाहिज़ा फर्माइये। वे अपने शेरमें कितनी व्यथा बखेरते हैं !

यारब ! तेरी रहमतसे मायूस नहीं 'फानी'।
लेकिन तेरी रहमतकी ताखीरको क्या कहिये ?

आस्तिक कितनी ही शोचनीय स्थितिमें हो। उसका ईश्वरकी दयालुता (रबकी रहमत)मे आशका करना नास्तिकता और घोर अप-राध है। फानी भी उसकी रहमतसे मायूस (निराश) नही है। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि एक-न-एक दिन रबकी रहमत होगी और ज़रूर होगी। लेकिन उसकी रहमतमें जो ताखीर (विलम्ब) हो रही है, उसीसे घबरा-कर फानी अपने रब से इस ताखीरका सबब पूछते हैं। "इस विलम्बसे हमारा क्या हश्र होगा ?" यह परिणाम शब्दो द्वारा घोषित किये बिना ही फानीके शेरसे ध्वनित हो रहा है—

का बरसो जब कृषि सुखानी

और यही एक अच्छे शायरका शायराना कमाल है कि उसके मौन रहनेपर भी मनोभाव स्पष्ट पढ लिये जाएँ। किन्तु उक्त दो शेरोमें भी वही इश्किया रगकी कमी महसूस होती है। माशूकको उपेक्षा ही आशिकके लिये चिन्तनीय है। उसे स्वामी या ईश्वरकी उपेक्षाकी चिन्ता नही। वह तो ईश्वरमे अपने माशूकका जलवा देखता है—

अल्लाह भी मजनूंको लैला नज़र आता है

माशूक ही उसका सर्वस्व है। गालिब अपने शेरमें स्पष्टतः माशूकसे

मुखातिब नही होते है; परन्तु उसीकी उपेक्षाका सकेत इस खूबीसे करते है कि तगज्जुलका बेमिसाल शेर बन जाता है—

हमने माना कि तग़ाफुल न करोगे, लेकिन—
ख़ाक हो जाएँगे हम तुमको ख़बर होनेतक ॥

मिर्जा गालिब अपने माशूकसे मन ही मनमें कहते है कि—'हम यह जानते है कि हमारी दुरवस्थाकी ख़बर पाकर तुम तगाफुल (उपेक्षा, विलम्ब) नही करोगे, हमे देखने अवश्य आओगे, किन्तु तुम्हे ख़बर होनेतक तो यहाँ काम ही समाप्त हो जायगा।" माशूककी उपेक्षाके लिए इस शेरमे जो मिर्जाने भाव भरे है, उनकी दाद देनेको हमारे पास उपयुक्त शब्द नही।

इस तरहके हजारो शेर पुस्तकमे दिये गये है, जिनसे पाठक स्वय तगज्जुलका और शेरकी शेरियत और उसकी बुलन्दी-ओ-पस्तीका अनुमान लगा सकेगे। यहाँ तो चन्द शेर मजमूनके सिलसिलेमे उदाहरण स्वरूप दिये गये है।

शायरी पर वातावरण और व्यक्तित्व का प्रभाव

जिस प्रकार हर शिल्पकार या चित्रकार मुँह बोलती मूर्त्ति या चित्र नही बना सकता, उसी प्रकार हर शायर हृदयस्पर्शी शेर नही कह सकता। शायरीमें तत्कालीन वातावरणके अतिरिक्त शायरके निजी रुझान और व्यक्तिगत प्रकृतिका भी बडा हाथ होता है। यदि केवल विद्वता और वातावरण ही शायरीमें मुख्य कारण होते तो समकालीन मीर-ओ-सौदा, मुसहफी-ओ-इशा, आतिश-ओ-नासिख, गालिब-ओ-जौकके कलाममें एक रूपता पाई जाती, किन्तु एक ही वातावरणमें उत्पन्न हुए उक्त शायरोके कलाममें पृथ्वी-आकाशका अन्तर है। अतः मानना होगा कि देशकी राजनैतिक व आर्थिक स्थिति, सामाजिक रीति-रिवाज और अन्य वातावरणके अतिरिक्त शायर जिन परिस्थितियोंसे गुजरता है, वे सब परिस्थि-

तियाँ और शायरके निजी स्वभावकी विशेषताएँ उसके कलाममे प्रतिबिम्बित होती है, क्योंकि कविका हृदय तो एक दर्पण है जो भिन्न-भिन्न आकृतियोको उनके अस्ल रगमे प्रतिबिम्बित करता रहता है। ससारमें शायरीके अतिरिक्त और जितनी कलाएँ है, उनमे कलाकारका व्यक्तित्त्व छिपा रहता है। चरित्रहीन वैज्ञानिक लोककल्याणकारी और सदाचारी वैज्ञानिक विध्वसकारी विज्ञानका आविष्कार कर सकते है, करते है। कुरूप चित्रकार अपने बनाये चित्रमे ससारका सौन्दर्य्य उँडेल देता है और रूपवान सजीले शिल्पकारसे घिनौनी मूर्त्ति बन जाती है। अर्थात अपने व्यक्तिगत जीवनमे जो वे नही है, वह सब उनकी कलाओसे प्रस्फुटित हो सकता है, किन्तु शायर ऐसा नही कर सकता। उसके लाख प्रयत्न करनेपर भी उसकी शायरीमे उसके हृदयका प्रतिबिम्ब बिना पडे नही रह सकता।

सासारिक चिन्ताएँ और वासनाएँ अधिकाशको सताती है, परन्तु कविका हृदय-दर्पण जैसा स्वच्छ या मलीन होगा, वैसा ही अक्स दिखाई देगा। मानव-हृदयपर कुछ तो अपने चारो ओरके वातावरणका, कुछ घरेलू परिस्थितियोका प्रभाव पडता है और कुछ उसकी निजी विशेषताओका असर पडता है। यह सच है कि परिस्थितियोके कारण श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ मानव दुराचारी एव पतित हो जाते है और कुमार्गरत सुमार्गपर लग जाते है। जो मानव-समूह हमे पतित दिखाई दे रहा है, यदि हम भी उन जैसे वातावरणमे उत्पन्न हुए होते, उन जैसी स्थितियोके बहावमे बहे होते तो बहुत सम्भव है हम भी उन्ही जैसे होते। मनुष्य वातावरण और परिस्थितियोका गुलाम है, परन्तु कुछ ऐसे मानव भी होते है जो प्रतिकूल परिस्थितियोमे भी विचलित नही होते, सीना तानकर खडे रहते है, और कुछ ऐसे भी होते है जिनको बहावसे कितनी ही रक्षाकी जाय, वे किनारेपर खडे हुए भी डूब जाते है। कुछ वेश्याके यहाँ जन्म लेनेपर भी अपने शीलरत्नको बचा लेती है। कुछ महात्मा-पुत्र होनेपर

भी कलकित हो जाते है । कुछ स्वभावत स्टील होने है कि न उनपर आग-पानीका प्रभाव होता है, न लुहारके प्रहारका । और कुछ छुई-मुई होते है, जो हाथ लगाते ही मुर्झा जाते है । इन सबके सस्कार और स्वभाव ही ऐसे होते है । पपीहा प्यासा मर जायगा, परन्तु स्वातिबिन्दुके अतिरिक्त और पानी नही पियेगा । हारिल पक्षी उडता-फिरता मर जायगा, परन्तु पृथ्वीपर पाँव नही रक्खेगा । सिहको भूखों मरना मजूर परन्तु कुत्तोके साथ खाना मजूर नही ।

बकौल खलीलुलरहमान काजमी—"मीर अगर चाहते भी कि अपने ग़मोको भुलाकर मुसकराएँ, तो सौदाकी तरह न तो वह अपनी आँखोपर पट्टी बाँध सकते थे और न अपने सीनेपर पत्थरकी सिल रख सकते थे ।" मीर और सौदा समकालीन और ज़ाहिरा एक ही वातावरणमे उत्पन्न होते हुए भी अपनी निजी परेशानियो और व्यक्तिगत स्वभावके कारण एक दूसरेसे भिन्न थे । इसीलिए उनके कलाममे भी कोई समानता नही मिलती । अपने स्वभावके अनुरूप ही लोग अपनी-अपनी रुचि रखते है । एक ही वातावरणमे उत्पन्न हुए सगे भाइयोमे कोई चित्रकार, कोई कवि, कोई डाक्टर, कोई वकील, कोई नेता और कोई कुमारबाज़ बन जाता है ।

शायरीमे भी निजी रुचिका बहुत बडा हाथ होता है । कोई गज़ल, कोई नज़्म, कोई रुबाई, कोई मर्सिया, कोई कसीदा, कोई मसनवी, कोई नात और कोई हिजो, रेख्ती, हज़ल कहना पसन्द करता है, और इनमे भी भिन्न-भिन्न रुचियाँ । गज़लगो होते हुए भी कुछ आशिकाना दर्दोगम-को उभारते है, कुछ जमालयाती (प्रेयसीके सौन्दर्य्य-विषयक) रग भरते है । एक दूसरेके रगमे दखल नही रखते । 'गालिब' और 'अनीस' अर्वाचीन युगके दो बहुत बडे शायर हुए है, परन्तु दोनोका रग बिलकुल जुदा था । गालिब गज़लगोईमे अपना सानी नही रखते तो अनीस मर्सिया निगारीमे अपना हरीफ (प्रतिद्वन्द्वी) नही रखते । गालिब गज़लके

लिए और अनीस मर्सियाके लिए ही पैदा हुए थे। उनका कुदरती मीलान ही इस ओर था। दोनो महान शायर थे, परन्तु एक दूसरेका रग कुबूल करनेकी कोशिश करते तो मुँहकी खाते।

राणा प्रताप बहुत अच्छे योद्धा थे। वे भाले और तलवारका अचूक वार कर सकते थे, किन्तु कालेखाँकी तरह गोलन्दाज नही हो सकते थे। अर्जुन और भीम दोनो ही रण-विशारद थे, लेकिन अर्जुन गदा और भीम गाण्डीव धनुषपर तबा आजमाई करते तो दोनो ही मुँहके बल गिरते। महात्मा गाधी अहिंसात्मक प्रयोगोसे भारतको मुक्त करानेमे सफल हुए, वे लेनिनके हिसात्मक पथपर चलनेका स्वभाव ही लेकर नही आये थे। चलते तो किसी झाडीमे उलझकर गिर पडते। जो व्यक्तिका स्वभाव और शौक होता है, उसीके अनुरूप कार्य करनेपर सफलता प्राप्त करता है। मजबूरीकी बात दूसरी है। भीमको रसोइया, अर्जुनको नर्तक, शास्त्रीको पुलिस मत्री और शस्त्रोके नाम न जानते हुए भी किसीको रक्षामत्री बनना पडे तो चारा ही क्या है? परन्तु चौखूंटे सूराखमे गोल पेच लगाने जैसी स्थिति ऐसे लोगोकी रहती है। वह अपने कार्यमें कमाल पैदा नही कर सकते। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि शायरीपर देश-काल के वातावरणके साथ-साथ शायरके निजी स्वभाव और रुचिका भी प्रभाव पडता है।

बाज दफा अपने मनोभाव छिपाकर शायरको वह कहना पडता है, जो उससे लोग कहलवाना चाहते है, या वह स्वय अपने असल रूपको छिपाकर दुनियाकी आँखोमे धूल झोकनेको मनके विपरीत कहता है, और किसी हदतक वह अपनी इन करिश्मा साजियोमे कामयाब भी होता है। लेकिन उसके हृदयगतभाव बहुत दिनोतक दबे नही रह सकते। वे तालाबकी काईके समान ऊपरी सतहपर आ ही जाते है। 'गालिब' नही चाहते थे कि उनकी मनोगत पीडाओका किसीको आभास मिले; क्योकि उनका मोटो था—

"दिलमें हजार गम हों, जबींपर शिकन न हो"

इसीलिए हृदय चलनी होनेपर भी वे अपने मित्रोंमें खूब हँसते-हँसाते थे। उनके एक-एक जुमलेपर हँसीके फव्वारे छूटते थे। उनके पत्रोंको पढ़कर लोग अपने गमोंको भूलकर हँसनेपर मजबूर होते थे, परन्तु यह हँसी गालिबके होठोंपर हमेशा नहीं थिरक सकती थी। वे दूसरोंके सामने हँस सकते थे, परन्तु अकेलेमें तो उन्हें अपने रिसते नासूरपर मरहम लगाना ही पड़ता था, जब सूर्यकी तापसे पत्थर पसीज उठता है, तब रजोअलमकी आगसे 'गालिब'का दिल कबतक न पिघलता? वही हृदयकी पिघलन आँखोंमें छलकती है तो आँसू,[1] और कागजपर उतरती है तो सोजोगुदाजकी[2] शायरी नाम पाती है।

उसी रजोगमकी हालतमें मिर्जा गालिब जो टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें खींच देते थे, वही आज हमारे लिए हर्फेसे कुरआन बनी हुई है, और वे उनके बेमनके कहे हुए लफ्जोंके और जुमले इन शायरोंके पारखने भी नहीं ठहरते। जो पपीहाकी पिउ-पिउ और कोयलकी कूकमें व्यथा होती है, उसे सरोद और वायलिन नहीं बता सकते। यह कहना कि गालिबकी शायरीमें यह सोजोगुदाज मुगलिया सल्तनतके जवालसे आया, ठीक नहीं, क्योंकि गालिबके समकालीन जौकको यह सोजोगुदाज नसीब नहीं हुआ। बात दरअस्ल, ये हैं कि गालिबके स्वभावमें ही एक तरहका स्वाभिमान

दिल ही तो है, न संगोखिश्त, दर्दसे भर न आए क्यों?
रोएँगे हम हजार बार, कोई हमें रुलाए क्यों?

—गालिब

हुस्नेफ़रोग़े शमए सुख़न दूर है 'असद'!
पहले दिलेगुदाख़्ता पैदा करे कोई॥

—गालिब

और अहमन्यपना था। उनके इस स्वाभिमान और अहमन्यपनेको बराबर ठेस लगती गई और वे दुनियासे बेज़ार होते गये; और हारकर यह कहनेपर मजबूर हुए—

"रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।"

न गुले नग्मा हूँ, न परदयेसाज़।
मैं हूँ अपनी शिकस्तकी आवाज़॥

हाँ, तो यह कहना कि शायरी पर तत्कालीन वातावरणका ही प्रभाव पडता है, शत-प्रतिशत सही नहीं। हमारा कहना है कि शायरीपर शायरके निजी व्यक्तित्व और स्वभावका भी असर होता है। एक ही समय और एक ही वातावरणमें उत्पन्न शायरोंकी भिन्न-भिन्न रुचि होती है। कुछ भरी बहारमे भी बहारको रोते हैं। कुछ पतझडमें भी गुलशन सजा लेते हैं। मीर-ओ-सौदाके युगमे ही नज़ीर अकबराबादी खुद भी हँसता है और दूसरोंको भी हँसाता है। गालिब-ओ-ज़ौकके शिष्य हाली-ओ-आज़ाद अपने उस्तादोसे भिन्न मार्ग खोज निकालते है।

आँधी-पानीके समय वही केवल घटना नही होती। उस वक्त भी उसके नीचे अनेक कार्य होते रहते है। युद्धकालमें सैनिकोको युद्ध मुख्य घटना प्रतीत हो सकती है, परन्तु तब भी प्रणय-विरह, त्या. सयम आदि न जाने कितने कार्य होते रहते है। एक ही वस्तु चद्को भिन्न-भिन्न रंगोसे बहुरगी दिखाई देती है। एक युवती मरती है तो क. पुरुषोको ससारसे विराग हो उठता है, भोजनभट्ट उसकी तेरहवीके दिन गिनते हैं, महापात्र उसके कफनका मूल्य आँकते है, कुत्ते उसके शरीरको फाड़ खाना चाहते है, और कामुक सोचता है—"कमबख्तने सोने जैसा शरीर मिट्टीमें तो मिला दिया, परन्तु मुझे नही दिया।"

उर्दू-शायरीमें ऐसे शायर बहुत कम हुए हैं, जो जनरुचिके तेज़ बहावमें पाँव जमाये खड़े रह सके हैं। अधिकांश गंगा गये तो गंगादास और

जमना गये तो जमनादास हुए है। हवाका रुख देखकर तो सभी चलते हैं, हवाको अपनी इच्छानुसार चलाये, पुरुषार्थी वही कहलाता है।

अपना जमाना आप बनाते हैं अहले दिल।
हम वोह नहीं कि जिनको जमाना बना गया॥
मर्द वोह है जो जमानेको बदल देते हैं।

तो इस अर्वाचीन युगके पूर्वार्द्धमे लखनवी शायरोमे 'आतिश' ही एक ऐसा शायर हुआ है जो अगदकी तरह पाँव जमाये खडा रहा है। इशा और जुरअत दिल्लीसे जाते ही एक पलको सीधे खडे न रह सके, और लखनवी रगमे सराबोर हो गये। मुसहफी जैसा उस्ताद धारेपर अडा रहा, लेकिन उसकी हिम्मतने भी जवाब दे दिया और वह भी इस रौमें डुबकियाँ खाने लगा। कुछ इस धारेमे पडना नही चाहते थे, परन्तु उसे रोकनेकी क्षमता भी नही रखते थे। वे इस लखनवी खारिजी रगसे किनारा काटकर मर्सियागोईकी राहपर मुड गये। हम इस युगकी शायरीपर प्रकाश डालनेसे पूर्व लगते हाथ देहलवी और लखनवी शायरीमें क्या अन्तर है यह बतला देना आवश्यक समझते है।

देहलवी और लखनवी शायरीमे अन्तर

देहली स्कूलके शायर प्राय आशिकका और लखनऊ स्कूलके शायर माशूकका वर्णन करते है। दूसरे शब्दोमे यूं कहिये कि दिल्लीवाले दाखिली-[1] रगको और लखनऊवाले खारजी[2] रगकी शायरी करते है। दाखिली शायरी दिलकी शायरी और खारजी शायरी दिमागकी शायरी है।

शेरके अन्तरगको परिष्कृत करनेको दाखिली शायरी और उसके बाह्य रूपरगको निखारने, सँवारनेको खारजी शायरी कहते है। दूसरे

---

[1]दाखिली (Subjective) जी, या मन सम्बन्धी।

[2]खारजी (Objective) वस्तु, पदार्थ, बाह्य सम्बधी, बाहरी।

शब्दोंमें यूं कहिये कि शेरकी आत्मा दाखिली शायरी, और उसका बाह्य शरीर खारजी शायरी है।

दिल्लीवाले शेरकी आत्मा यानी उसके अन्तरगको जागृत रखने और परिष्कृत करनेको कलाकी चरमसीमा समझते थे और अहले लखनऊ शेरके बाह्य शरीरको रग-रूप देनेमें कमालेशायरी समझते थे, और इसी अन्तरके कारण दोनो स्कूलोंकी शायरीमें पूरब-पच्छिम जैसा अवधान पड गया था। एक बहुत बडी खाई दोनो स्कूलोके बीचमे खुद गई थी जो दोनोको मिलने नही देती थी।

परन्तु आवश्यक दोनो ही रग जरूरी है। शरीरमे यदि आत्मा न हो तो निर्जीव शरीर किस कामका? प्राणरहित शरीर कितना ही सजाया-सँवारा जाय बदबू दे उठेगा। वह लमहेभरको भी प्यारके योग्य नही रहेगा। उसी तरह आत्मा कितनी ही शुद्ध, पवित्र और उन्नत क्यो न हो, उसका शरीर आगमे झुलसनेसे विकृत और भयावह हो जाता है या कोढसे गलित अथवा अन्य रोगोसे घिनावना और कुरूप हो जाता है तो उसको प्राणोसे अधिक प्यार करनेवाली पत्नी भी देखकर चीख उठेगी। बच्चे पास आते हुए डरेगे। अन्तरग और बहिरग दोनो ही स्वच्छ और मनोज्ञ हो तभी लोग आकर्षित होते है।

दिल्लीवाले कहते है—'जान है तो जहान है।' पहले शेरके अन्तरग-को इतना परिष्कृत करो कि हृदयपर तीरका काम करे। अन्तरगको परिष्कृत करते हुए शेरका बाह्य रूपरग भी जितना मनोज्ञ बनाया जा सके बनाया जाय, परन्तु बाह्य रूप-रग सँवारनेमे इतने लीन न हो जाओ कि शेरकी आत्मा ही छटपटाकर मर जाय और तुम्हे उसकी सुधि भी न आये।

आत्म-शुद्धिके साथ शरीर-शुद्धिकी भी आवश्यकता है। तन शुद्ध होगा तो मन भी शुद्ध रहेगा, और जब मन शुद्ध रहेगा तो मन-मन्दिरमें भावनाएँ भी शुद्ध आयेगी। शरीर रोगी, विकारी, मलीन हुआ तो उसके

अन्दर आत्मा कबतक निर्मल रहेगी ? परन्तु शरीरको सजाने-सँवारनेमे इतनी तल्लीनता भी ठीक नही कि आत्माकी सुध-बुध ही न रहे । या यूँ कहिये कि वेश्याओकी तरह महज शरीरको सजाने-सँवारनेकी खातिर आत्मातक बेच दी जाय तो वह शरीर किस कामका ? अपनी आत्मा और विचारोको पवित्र और उन्नत रखते हुए जितना बाह्य शरीर स्वच्छ और कलापूर्ण रखा जाय वही श्रेयस्कर और उचित है ।

आत्माको विकसित करनेकी धुनमे न तो शरीरकी उपेक्षा ही हितकर है और न शरीरको सजानेके मोहमे फँसकर आत्माको बिसारना ही ठीक है ।

दिल्लीकी दाखिली शायरी हृदयकी शायरी है और लखनऊकी शायरी मस्तिष्ककी शायरी है । यानी देहलवी शायरीके जो हृदयमे होता है वही उनकी नोकेजबाँसे निकलता है । उसमे बनावट और तकल्लुफ नही होती, इसलिए वह शेर दिलपर असर करता है ।

लखनवी शायर अपने हृदयके भावोको दाबकर मस्तिष्ककी सहायतासे सोचकर उसे तकल्लुफ और तसन्नोह (बनावट)का जामा पहनाकर पेश करता है, जो आँखोको भला मालूम देता है, और मस्तिष्क सुनकर घूम जाता है, परन्तु इसका हृदयपर कोई प्रभाव नही पडता ।

दाखिली शायरीमे इश्क प्रधान रहता है । यानी आशिकका गमेहिज्र, रुवाहिशेविसाल, काहीदगी, दीवानगी, नाचारगी, उफ्तादगी, नजअ, जनाजा, कब्र, हश्र, कयामत, नाला, फुगाँ, वगैरहका वर्णन होता है । खारजी शायरीमे हुस्न प्रधान होता है और माशूकके हुस्न, शोखी, हया, आदिका उल्लेख रहता है । दाखिली शायरी व्यथा-पीडाकी शायरी है । उसे सुनकर हृदयसे 'आह' निकलती है । खारजी शायरी भोग-विलासकी शायरी है, जिसे सुनकर मुंहसे 'वाह' निकलती है ।

दिल्ली और लखनऊकी शायरीमे इस अन्तरका कारण यही है कि देहलवी शायरीका विकास मुगलिया सल्तनतके जवालके साथ हुआ । दिल्ली उजड़ रही थी और उर्दू-शायरी परवान चढ़ रही थी । लखनवी

शायरीने आँखें ही तब खोली जब कि हुकूमते अवध दिन-दूने रात-चौगुने शबाबपर थी। मुगलिया सल्तनतके जवाल और दिल्ली उजडनेके निम्न-कारण थे—

औरगजेबने अपनी धर्मान्धता, कूटनीतिज्ञता, असहिष्णुता और कठोर स्वभावके कारण हिन्दू-मुसलमानोंको विद्रोही बना लिया था। उसने अकबरकी समधर्म-समभाव नीतिको ठुकराकर हिन्दुओंके मन्दिरोंको विध्वस किया। उनके धार्मिक कार्य्योंमे हस्तक्षेप किया, उनपर जज़िया-कर लगाया और अनेक तरहसे सताया। अत हिन्दुओंने मुगल सल्तनतके प्रति घृणाके भाव बढते चले गये। औरगजेबने अपनी असहिष्णुता और कठोर स्वभावके कारण मुगल राज्यके स्तम्भ—सेनापतियो, सूबेदारो, और हुक्मरानोमे विद्रोहकी आग प्रज्वलित कर दी। वे सब सल्तनतका जुआ फेकनेकी ताकमे रहने लगे। औरगजेबके शासनकालमे ही राजपूतो, मरहठो और सिक्खोके विद्रोह प्रारम्भ हो गये थे। उसकी आँखें मिचते ही चारो ओर आक्रमण और विद्रोह होने लगे। जो विद्वेष-की आग औरगजेबने सुलगाई थी, वही हवाका रुख पाकर भडक उठी और उसके वशजोंको भस्मसात् करने लगी। उनमे इस बढते हुए आगके प्रकोपको रोकनेकी क्षमता न थी। सल्तनतके रक्षक ही भक्षक बन बैठे। दक्षिण, बगाल और अवधके सूबेदार (प्रान्तपति, गवर्नर) मुगल सल्तनतका जुआ फेककर स्वतत्र शासक बन बैठे। मुगल बादशाह कठ-पुतली बादशाह रह गये। कभी ये सैयद बन्धुओंके इशारेपर नाचते, कभी राजपूतों-मरहठोके रहमपर जीते और कभी अंग्रेजोंकी कृपादृष्टि प्राप्त करनेमे अहोभाग्य समझते। उत्तरोत्तर मुगल बादशाह अत्यन्त निर्बल, असहाय, अकर्तव्य और विलासी होते गये। देशमे चारो ओर अव्यवस्था फैल गई। लूट-मार, डाकेजनी, धोखा-धडी बढती गई। अकाल और भुखमरीने डेरे डाल दिये। नादिरशाह १७३९ ई०मे कत्ले-आम करके दिल्ली लूटकर चलता बना। अहमदशाह दुर्रानीने १७४८से

१७६७ ई०तक ६-१० बार धावे किये। इसे कुछ ऐसा खून मुँह लगा कि बार-बार खूनकी नदियाँ बहानेपर भी इसकी प्यास नही बुझी। १७३७ई० से मरहठोके आक्रमण प्रारम्भ हो गये। दिल्लीवालोको हर वक्त लुट जानेका खटका और कत्ल होनेका धडका लगा रहता था। उन दिनों हिन्दू-मुसलमानोमे कोई जगजू कौम ऐसी न थी, जिसके घोडे दिल्लीमे न दौडा करते हो। दिल्ली शहर घुडदौडका मैदान बन गया था।

मुगल बादशाह इन आक्रमणोसे प्रजाकी रक्षा क्या करते, वे स्वय लुटते और पिटते थे। नादिरशाह इनकी बेगमातको नाचनेपर मजबूर कर गया था। आलमशाह बादशाहकी उसीके गुलाम रहीलाने भरे दरबारमे आँखे निकाल ली थी। मिर्ज़ा शिकोह (शाह आलमके पुत्र) डरकर लखनऊ भाग गये थे। इन दिन-रातके आक्रमण, लूटमार, कत्ल ग़ारतगरी और भुकमरीमे पलकर जो शायरी परवान चढी, उसमे व्यथा-पीडाका होना स्वाभाविक था। बकौल नियाज़ फतहपुरी—"देहलीका शायर एक ऐसा शायर था, जिसने सिवाय महजूरी (विरह-व्यथा)के और कुछ न देखा था, जिसको लज्जत, कामयाबी, बहुत कम हासिल हुई थी, जो गरीब था, बेबस था, मजबूरोनाचार था। इसलिए वह सिवाय इसके कि दिन-रात रोता और हाय-हाय करता रहे और कर ही क्या सकता था? बरखिलाफ इसके लखनऊका शायर वह आशिक था, जिसे वस्ल नसीब हुआ। वह शराब पीता था। जवानीके लुत्फ उठाता था और छेड-छाड उसका रात-दिनका मशगला था।"[1]

दिल्लीकी इस दर्दनाक हालतसे घबराकर और भूखकी ज्वालासे तग आकर जितने भी नामवर शायर थे सब लखनऊ चले गये। केवल 'दर्द' इस उजडे दयारमे शायरीकी शमा जलाये बैठे रहे। देहलवी शायरोको लखनऊ पहुँचनेका आकर्षण यह था कि वहाँके नवाब भी मुगल बाद-

---

[1] रियाज़े रिज़वां-ऐतराफात, पृ० ४४

शाहोकी तरह शायरोका आदर करते थे। उन्हें पुरष्कृत करके उत्साहित करते थे। मासिक वज़ीफे बाँधकर आजीविकाकी चिन्तासे मुक्त कर देते थे। अवधके नवाब जो अभीतक मुगल बादशाहोके नायब समझे जाते थे, स्वतत्र शासक बन गये थे। नवाब गाज़ीउद्दीन हैदरने १८१९ई०मे खुदमुख्तारीका एलान कर दिया था। वे अब बादशाह कहलाते थे और अपना सिक्का चलाते थे। लक्ष्मी उनके आँगनमे छम-छम घूमती थी। ऐश्वर्य और विलासिता उनके महलोंमे आँख-मिचौनी खेलते थे। दरबारोमे राजनैतिक गुत्थियाँ सुलझानेके बजाय शतरजकी चाल सोची जाती थी। अगरेजोके सरक्षणका अभिमान होनेके कारण सैनिक सत्ता नष्ट करके शतरजके मुहरोको मारने-पीटनेमे ही कमालाते जवाँमर्दी समझा जाता था। योद्धाओ और राजनीतिज्ञोके बजाय शायरो, गवैयो, नर्तकियो, भाण्डो और कलाकारोको तरजीह दी जाती थी। दिल्लीके शायरोकी लखनऊमे खूब आवभगत हुई। लखनऊके नवाब उनके साथ बडी इज्जत और मुहब्बतसे पेश आये। उन्हे जागीरे, वज़ीफे और इनाम दिये गये। उनकी नाजुक मिजाजी और बद्दिमागी हँसते हुए बर्दाश्त की गई। बल्कि उनकी इन बातोको उनकी शायरीका कमाल और स्वाभिमान समझकर और भी अधिक सम्मान दिया गया। 'मीर' और 'सौदा' जैसे तुनक मिजाजोको बडी खूबीसे निभाया, परन्तु बादमे यही आदर-सत्कार उर्दू-शायरीके लिये अभिशाप बन गया। मीरोसौदा के बादके शायर, शायर न रहकर भाण्ड, नक्काल, मसखरे और जी हुजूर रह गये। इससे उर्दू-शायरी अपने अस्ल रग अर्थात् देहलवी दाखिली रगसे हटकर लखनऊके खारजी रगमे रँग गई।

लखनऊमे शायरीकी शमा दिल्लीवाले लेकर गये थे। उनके पहुँचनेसे पूर्व वहाँ एक भी अच्छा शायर नही हुआ था। उनके पहुँचनेसे वहाँ शायरीका शौक आवश्यकतासे अधिक बढ गया। मुशायरे मासिक, फिर साप्ताहिक और फिर दैनिक होने लगे। मुशायरोमे एक दूसरे पर फौकि-

यत हासिल करनेकी धुनमे शायरीने खूब परिश्रम करने लगे। इस होड और प्रतिद्वन्द्विताके कारण उर्दू ज़बानकी बडी तरक्की हुई, परन्तु इसी कसरते शौकके कारण लखनऊ मे खारजी शायरीकी बुनियाद पड गई। मौ० खलीलुरहमान काज़मीके शब्दोमे--"खुदमुख्तारीके बाद लखनऊवालोकी ज़हनियत (विचारो)मे बहुत बडा इनकलाब हुआ। उन्होने तहज़ीबी हैसियतसे भी देहलीके असरसे आजाद होना चाहा और वहाँकी हर बुरी-भली चीज़को छोडकर एक नये तर्ज़की बुनियाद डाली। सादगीकी जगह तसन्नोह (बनावट, तकल्लुफ)ने ले ली। लिबास, बोलचाल, आदाबेमजलिस, गुफ्तगूका तरीका, गरज़ हर चीज़मे मरदानेपनकी जगह (जो दिल्लीकी खसूसियत थी), अब नुसवानियत (ज़नानेपन)ने ले ली। इस नुसवानियतने इसलिए और भी तरक्की की कि हुकूमत दिन-ब-दिन फ़ारिगउलबाली (अकर्मण्यता)की तरफ कदम बढा रही थी। अगरेज़ोकी हिफाज़तकी वजहसे फौजकी भी ज़रूरत नही रही थी। निशापुरी और सालारजगी खान्दानके लोग जो वसीका और पेन्शन पाते थे, बिलकुल खानानशीन (महलोमे रहनेको मजबूर) कर दिये गये। उनको औरतोकी सुहबतके सिवा और किसीकी सुहबत ही नसीब न रही। इसका लाज़िमी नतीजा यह हुआ कि उनके लिबास और वज़ह हीमे जनानापन नही आया बल्कि उनकी ज़बान और खयालात भी औरतोके-से हो गये। चूंकि यही लोग लखनऊ शहरके वज़नदार और रईस तसव्वुर किये जाते थे, लिहाज़ा अकसर अवाम (सर्वसाधारण)ने भी इन्हीकी पैरवी शुरू की। यही नुसवानियत लखनऊकी शायरीमे भी राह पाती गई। इसलिये जज़बात (भावो, विचारो)मे गर्मी और पाकीज़गीके बजाय बुज़दिली और सुस्तेपनने ले ली।

"न सिर्फ लखनऊकी तहज़ीबने बल्कि वहाँकी शायरीने भी देहलीके तमाम पुराने निशानात खुरचकर फेंक देनेका तहीया (निश्चय) कर लिया। अहले लखनऊने अब दबिस्ताने देहली (देहली स्कूल)की पाबन्दियोसे

भी आज़ाद होना चाहा। न सिर्फ आज़ाद होना चाहा बल्कि उसे खँगाल-कर पुराने तमाम असरात (प्रभाव) धो डाले। तसव्वुफको यकसर खारिज कर दिया गया। देहलीकी शायरीको तसव्वुफने जहाँ और बहुत-सी चीज़े दी, वहाँ रूहानी (आध्यात्मिक) और वजदानी (समझने और जनानेकी शक्ति) मज़ामीनके साथ जज़बात (भावो, विचारो)की गर्मी और तेज़ीका सरमाया (धन) भी दिया। तसव्वुफ ही के असरसे गज़लमे दाखलियत आई और उससे इश्किया शायरीमे खलूस और तासीर-का इजाफा हुआ।

"शुअराये देहली हुस्नके बयानमे खारजी मुतअल्लकात (माशूकके ज़ाहिरी सम्बन्ध)के बजाय हुस्नके असरको बयान करते थे। इसलिए उनकी शायरी रम्ज़यत[1] भी है और वह इश्किया शायरी-दिलके वारदात (दिलपर गुज़री हुई बातो)के अलावा हयातो कायनात (जीवन तथा ससार)के मसाइल (मामलो)पर भी मुन्तबक (अनुकूल) होती है। लखनऊने तसव्वुफको छोडा तो खारजीयतका धारा ज़ोरोसे बह निकला और शायरी नाम रह गया आज़ाए जिस्मानी (शरीरके अग-प्रत्यग) और उसके मुतअल्लकातके तजज़िए (इन्द्रिय भोग सम्बन्धी अनुभवोके वर्णन)का। जज़बा (भाव) जो शायरीके लिये ज़रूरी है, उसकी अब लखनऊवालोने ज़रूरत न समझी, और शेर कहनेके लिए न किसी तजुरबेकी ज़रूरत या दिलके अहसासात (हृदयके भावनाओ) की। यही वजह थी कि शायरी दिलसे हटकर ज़बानकी तरफ आ गई। इस ज़बानवाली (केवल साहित्यिक) शायरीमे एक और इज़ाफा यह हुआ कि दिल्लीकी सादगी छोडकर अब तसन्नोह (बनावट, कृत्रिमता, तक्ल्लुफ) अख्तयार किया गया, और पेचीदगी ही फनकी बुलन्दीका मियार

---

[1]सकेत, भेद, राज़, नुक्ता, मुआमला, मुराद, पोशीदगी, पेचदार बात, नोक-झोंक, ताने, निशान।

(आदर्श, लक्ष्य) करार पाई। देहलीके मुहावरे, अन्दाजेबयान, सबको तर्क करके जबानकी बाकायदा इसलाह (शुद्धि) की गई और उन सबपर लखनऊकी छाप लगाई गई। शायरीके इस रुजहानने एक मुकम्मिल तहरीक (आन्दोलन) की सूरत अख्तयार करली और इस तहरीकके रहनुमा (नेता) 'नासिख' करार पाये। रियायते लफ्जी (शब्दोकी मुनासबत), मुहावरोका इस्तेमाल, काफियेकी तलाश, मजामीन-की पेचीदगी और तसन्नोह (कृत्रिमता, बनावट, तकल्लुफ) यही चीजें थी, जिनपर मुशायरोमे शायरोको दाद मिलती थी। लखनऊकी शायरी एक पहलवानी और करतब बन गई। यह मुशायरे अखाडे होते थे, जहाँ शायर अपने तमाम दाव-पेचसे मुसल्ला होकर जाता था। जिसने देहलीकी तकलीद (अनुकरण) मे कही सादगी या तसव्वुफकी हदमे कदम रक्खा कि उसपर फौरन कुफ्रका फतवा सादिर हो जाता था।"[1]

सबसे प्रथम 'हसरत' ने जो देहलीके रहनेवाले थे, नवाब आसफुद्दौला-के शासनकालमे लखनऊ पहुँचकर वहाँकी रुचिको शायरीका रूप देकर लखनऊका एक अलहदा जनाना रग कायम किया। तबसे कघी-चोटी, चोली-महरमका बयान भी शायरीमे होने लगा। इन्हीके शिष्य जुरअत थे, जो मुआमलेबन्दी (माशूकके जाहिरा सम्बन्ध या बातचीतका नग्न रूप खीचने)की शायरीके लिये मशहूर हुए[2] है। अभीतक लखनवी रगके शायरोकी बेसिरी फौज थी। उनका कोई सरदार नही था। यह कमी इस युगके शायर 'नासिख' ने पूरी कर दी, और ये सर्वसम्मतिसे खारजी शायरीके मुसल्लिमउलसबूत (प्रामाणिक और अधिकारी) उस्ताद मान लिये गये, और उनके मरनेके बाद भी उन-जैसा मर्तबा खारिजी रगमें अन्य किसी शायरको नसीब नही हुआ।

---

[1] 'निगार' लखनऊ—सितम्बर, १९४८ पृ० १२-१३

[2] हसरत और जुरअतके परिचयके लिये देखिए पृ० १७८ और २११

जहाँ दिल्लीके शायर हृदयगत भावोंका चित्र सीधे-सादे शब्दोंमें मर्मस्पर्शी खींचते थे, वहाँ 'नासिख' और उनके अनुयायी अपना समस्त ध्यान शेरके बाह्य सौन्दर्य्य और शब्दोंकी मुनासबत (रियायत लफ्ज़ो), कारीगरी, हुनरमन्दी अनोखी उपमाओं, विचित्र-विचित्र कल्पनाओं, उदाहरणोंमे लगाते थे। भावोंको साकार रूप देनेके लिये शेर नही लिखते थे अपितु काफियेकी मुनासबतके लिये पहले मौज़ूँ शब्द चुनते थे और उन्ही शब्दोंका जाल-सा बुनकर शेर गढ देते थे।

उदाहरणत —गुलशनपर कहनेको उनका अन्तरग नही चाहता है। उसके प्रति उनके हृदयमे कोई आकर्षण नही है, किन्तु गज़लका काफिया गुलशन है, इसलिए उसका बाँधना आवश्यक हो गया है। अतः गुलशन सम्बन्धी गुल, बुलबुल, गुलचीं, सैय्याद, बागबाँ, आशियाँ और कफस वगैरह शब्द चुनकर और उनको एक दूसरेकी तुलना, उपमा और मुनासबतमे बैठाकर शेरका ढाँचा खडा कर देते थे। दूसरे शब्द कितने ही उपयुक्त और मुनासिब होते, उन्हे नज़रन्दाज़ कर दिया जाता। इस रियायते लफ्ज़ोकी बेइन्तहा पासदारीका नतीजा यह हुआ कि शायरीमेसे सादगी और अकृत्रिमता जाती रही, और तकल्लुफ एव तसन्नोहकी भरमार हो गई। शेरके लिए ऐसे शब्द ढूँढे जाते जो मज़मूनसे किसी न किसी तरफसे ज़ाहिरा सम्बन्ध रखते हो। चाहे वे कितने ही नामुनासिब और बेमौके हो। केवल रियायते लफ्ज़ो शेरकी खूबी और शेरकी उम्दगीका दारोमदार रह गई, और इसकी बलिवेदीपर—"दर्द, असर, जज़बात, सादगी, सलासत, (प्रवाह, कोमलता, मधुरता), फसाहत (खुशबयानी, साफ और शुस्ता कलाम कहनेकी योग्यता), बलागत (उच्च विचारधारा)—सब भेट चढा दिये गये, और इस कमीको अगराक (मुबालगा) और दो राज़कार तशबीहो (अव्यवहृत उपमाओं) ने पूरा किया। इस तर्ज़में कैफियत (वास्तविकता, सही मनोदशा) और सही जज़बात (मनोभाव)की नाज़ुक तहसील (कोमल सम्बन्ध, घुलावट,

एकरसता) नही होती, और वह रूहकी सही अहतजाज (आत्माकी प्रतिक्रिया)की पूरी-पूरी रहनुमाई (प्रतिनिधित्व) नही करती। इसमे रगीन शब्दोका महज एक खुशनुमा घरौदा होता है, जो नजरोको अच्छा मालूम देता है, मगर कभी दिलकश नही होता।"[1]

खारिजी रगके शायरोके पेशेनजर फारसीके शायर 'साइब' और 'बेदिल'का कलाम था। जिसका अध्ययन इन्होने सूक्ष्म दृष्टिसे किया। साइबका ढग था कि शेरके पहले मिसरेमे दावा और दूसरेमे मिसाल होती थी। ये मिसाले कही-कही तो उम्दा और दिलचस्प होती थी, परन्तु अधिकाश बिलकुल साधारण और बेमजे। बेदिलकी शायरीमे नाजुक और बारीक उपमाओ, उदाहरणो तथा नाजुक खयालियोसे काम लिया गया था। मगर उर्दूमे महज वह नकल रह गई और एक अजीब गोरख-धन्धा बन गई। कौआ चला हसकी चाल, मगर वह अपनी भी भूल बैठा।

अब लखनऊकी बदनाम-ओ-रुसवा शायरीके चन्द नमूने मुलाहिजा कीजिये, जो रियायते लफजी, दुमायनी, मुबालगा, उरियानी (नग्न, अश्लील), ईहाम (श्लेष) और रकीक (बारीक) बातोसे लबरेज (परिपूर्ण) है।

नासिख—

— १ —

आज होता है दिला ! दर्द जो मीठा-मीठा।
ध्यान आया है तुझे किसके लबेशीरींका ?

काफिया चूंकि 'शीरी' है, केवल शीरी शब्दकी मुनासबतके लिये पहिले मिसरेमे मीठा-मीठा शब्द ठूंसा गया है।

---

[1]तारीखे अदबे उर्दू, पृ० २६१

— २ —

जो मीठी-मीठी नज़रोसे वोह देखे।
कहूँ आँखोको मैं बादामे शीरीं॥

इस शेरमे 'बादामेशीरी' बाँधना था। अत बादामकी उपमाके लिए आँख और शीरीकी मुनासबतके लिये मीठी नजरोके तीर चलाये गये है।

— ३ —

क्या पड गया है अक्स तेरी चश्मेमस्तका ?
नरगिसकी शाख़ बनगई हर मौज आबमे॥

इस शेरमे 'आब' काफिया बाँधनेके लिये 'चश्मेमस्त'की तलाश की गई, फिर उस 'चश्मेमस्त'के पानीमे 'अक्स' डाला गया, और जब पहले मिसरेमे चश्म आ गई तो उसकी मुशाहबत भला नरगिससे क्यो न दी जाती ? और 'चश्मेमस्त'मे जब पानी मौजूद है तो वह दरियाकी 'मौज'से कैसे खाली रहता ?

— ४ —

दे दुपट्टा तू अपना मलमलका।
नातवाँ हूँ कफन भी हो हलका॥

इस शेरमे काफिया 'हलका' है। चिन्ता हुई क्या चीज हलकी होती है ? दिमागपर जोर देनेसे कफन हलका मालूम दिया। फिर ख़याल हुआ कि कफन क्यो हलका हो ? हाज़िर मिजाजीने फौरन सहारा दिया। आशिक 'नातवाँ' (दुर्बल) है ? इसलिए लाज़मी है कि कफन हलका हो। फिर सोचा गया कफन कौनसे कपडेका हो ? लट्ठा और खद्दर तो भारी होता है, मलमल हलकी होती है। मगर मलमल मोल कैसे लाई जाय ? उसके खरीदनेको तो दाम चाहिए, और आशिकके पास

दाम ढूँढना गोया चीलके घोसलेमे मास तलाश करना है। चट खयाल आया कि क्यो न माशूकका दुपट्टा इस कामके लिये मँगा लिया जाय। दामोकी भी बचत हो जायगी और माशूककी निशानी भी हाथ लग जायगी, और शेर भी नाजुक खयालीका गहवारा बन जायगा।

— ५ —

आतिशे रुखसे आँख सेकते है।
क्या जमिस्ताँमें काम मनकलका॥

आँख सेकनेका मुहावरा बाँधना था, परन्तु सेकनेको तो आग चाहिए। चट 'आतिशेरुख' (कपोलकी सुर्खीरूपी अग्नि) तैयार की गई। परन्तु फौरन ही ख्याल आया कि जब सेकनेकी बात कहनी है तो सर्दी (जमिस्ताँ) और अगीठी (मनकल) जरूर आने चाहिएँ। वर्ना कोई बगैर अँगीठीके या गर्मी बरसातमे सेकनेकी बात समझ लेगा तो बडी हँसी होगी।

— ६ —

देखकर तुझको न हो नाराज क्योकर सब रकीब।
पेश्तर कुत्तोको भुकवाता है जलवा माहका॥

हाथीको देखकर तो कुत्ते भूँका ही करते थे। 'नासिख'को नई कल्पना सूझी तो 'माहके जलवे' (चन्द्रप्रकाश)को देखकर कुत्ते भूँकने लगे; और जब कुत्ते भूँकने लगे तो उनकी उपमा रकीबसे देकर दिलकी जलन शान्त कर ली। रकीब (प्रतिद्वन्द्वी) माशूकके साथ हर वक्त कुत्तेकी तरह दुम हिलाता घूमता रहता है और आशिकसे जलता है। यह सब सूझ-बूझ निराली और अनोखी होनेसे चट शेर मौजूं कर दिया।

— ७ —

बालोका कुछ असर बगले यारमें नहीं।
पड़ता है अक्से जुल्फे सियह फाम दोशपर॥

शायरकी घिनावनी रुचिका नमूना देखिये। फर्माते हैं—'बगलेयार'में जो बाल दिखाई दे रहे हैं, वे सचमुच बाल नही है। वह तो सियहफाम जुल्फोका कन्धेपर अक्स है। इसी जलील खयालको बाँधनेके लिये इन शब्दोकी मिट्टी पलीद की गई है।

— ८ —

मुझको सौदाई बनाया है दिखाकर आँखें।
तुम धतूरेका लिया करते हो बादामसे काम॥

माशूककी आँखोमे ऐसी खूबी है कि जो देखता है, सौदाई हो जाता है। नासिखको खयाल हुआ कि सौदाईपन (पागलपन) तो धतूरा वगैरह खानेसे होता है। बादाम तो मस्तिष्कको ताकत देते है। न कि सौदाई बनाते है। चट बादामकी उपमा आँखोसे दी और सौदाईपनेके लिए धतूरेको रखकर शब्दोकी मुनासबतमें शेर गढ दिया।

— ९ —

तेरी ऐसी उँगलियाँ है इस्तख्वाँ जिसमे नहीं।
पोर-पोर उनकी मगर खुरमाएतरबेखस्ता है॥

उँगलियाँ माशूककी इतनी कोमल है मानो उनमे इस्तख्वाँ (हड्डी) तक नही है, और पोर-पोर छुआरा है। इसी कल्पनाकी खातिर इस ब्यूहकी रचना की गई है।

— १० —

तू वह खुरशीद है, उल्टे जो गुलिस्ताँमें नक़ाब।
चेहरये गुलमें तलव्वुन हो वहीं हरवाँका॥

गिरगिट (हरवाँ) रग बदलता (तलव्वन करता) है। इसी धारणाको लेकर इस शेरकी रचना की गई है। माशूकको सूर्यकी उपमा

दी है और जब सूर्य गुलिस्तांमे अपना जलवा फेंकता है तो फूल खिलते हैं। उसी फूलके खिलनेको गिरगिटका रग बदलनेसे मुशाहबत दी गई है !

– ११ –

तेरे तलवे औरोके मुंहसे सिवा शफ़्फाफ है।
आयना भी इनके आगे साफ झावॉ हो गया ॥

'झावॉ' काफिया बॉधनेके लिये तलवोकी सृष्टि की गई; क्योकि झावेसे पॉव साफ किये जाते है, परन्तु माशूकके तलवोमे मैल कहाँ ? वह तो औरोके मुँह (शायद नासिखके मुँह)से भी शफ्फाफ होते है। जब मुँह आया तो उसके लिये फिर आयना क्यो नही आता ?

– १२ –

हूँ मै आशिक़ अनारे पिस्तॉ का।
हो न तुरबतपै जुज़ अनार दरख़्त ॥

जीते-जी तो माशूकके अनारे पिस्तॉ (स्तनरूपी अनार) छूने नसीब नही हुए। जीते-जी तो हिज्रेयारमे जलते ही रहे। मरनेपर भी क्या जलन शान्त होगी ? अन्दर दिल दहकता रहेगा, और ऊपरसे कब्र धूपमे जलती रहेगी। कब्रपर घरवाले शायद दरख्त लगा दे, इसी खयालसे नासिख वसीयत करते है कि जुज़ अनार (अनारके सिवा) और कोई दरख्त कब्रपर न लगाया जाय, ताकि यारके अनारे पिस्तॉका तसव्वुर बराबर बना रहे और कुछ जीका ताप कम हो सके।

इसी तरहके खारजी अशआर इस युगके ख्यातिप्राप्त चन्द शायरोके हम और दे रहे है। उनकी तशरीहकी आवश्यकता नही। आशा है पाठक अब स्वय इन खारजी रगके अशआरमेसे--रियायते लफ़्ज़ी,[1]

---

[1]शब्दोकी मुनासबत,

इहामगोई,[1] मुआमलेबन्दी,[2] सौकयाना,[3] आमता,[4] बुलहविसी[5] और इब्तज़ाली[6] शेरोको परख सकते है।

आतिश—

— १३ —

बोसेबाज़ीसे[7] मेरी होती है ईज़ा[8] उनको।
मुँह छिपाते है जो होते है मुँहासे पैदा॥

— १४ —

लबेशीरींकी[9] तिरी चाशनी मुमकिन न हुई।
रससे शक्कर हुई शक्करसे बतासे पैदा॥

— १५ —

न फूल बैठके बालाएसरव[10] ऐ क़ुमरी[11]।
चढ़े जो बाँसके ऊपर यह काम नटका है॥

---

[1]दुमायनी,
[2]आशिक-माशूकके परस्परके गुप्त सम्बन्धोका बयान,
[3]बाज़ारी स्त्रियो-सम्बन्धी,
[4]रस्मी, अदना, मामूली,
[5]विषयवासना-सम्बन्धी,
[6]ज़लील, हकीर, आम, कमीने,
[7]चुम्बन लेनेसे, [8]तकलीफ,
[9]मधुर ओठकी,
[10]सरू पेडकी उँचाईपर,
[11]क़ुमरी एक प्रकारकी चिडिया है जो सरूके पेडपर ज़्यादा बैठती है।

– १६ –

यह जानते तो तुम्हें हम न बाँधने देते।
कमरके साथ लपेटेगा नाफ़को पटका॥

– १७ –

बेताब दिलको तसकीं[1] होती है दीदेख़तसे[2]।
वोह बूटी है यह जिससे पारेको मारते हैं॥

– १८ –

किया उस्तादको शागिर्द उस तिपलेपरीरूने[3]।
पढ़ाया रोज़ बिसमिल्लाह् इल्मेइश्क़ मुल्लाको॥

रिन्द––

– १९ –

है अयाँ हालेसग[4] असहाबे क़हफ़[5]।
जानवरकी आदमीयत देखली॥

---

[1]तसल्ली, [2]पत्र देखनेसे,
[3]कमसिन परीने, [4]कुत्तेका हाल,

[5]वे सात शख़्स जो ज़ालिम बादशाह 'दकियानूस' के ख़ौफसे जाकर एक गार (खोह) मे छिप गये। उनके साथ एल कुत्ता भी था, जिसका नाम 'कतमीर' था। भावार्थ यह है कि आदमी, आदमीको सताता है, परन्तु कुत्ता-जैसा जानवर मुसीबतमें काम आता है, और यही उसकी आदमीयत है।

— २० —

सारी रगें हुई हैं तनेज़ारपै[1] नमूद[2]।
नातावतीने जिस्मको मिसतर[3] बना दिया॥

— २१ —

रोनेकी तुझे लहर जो ऐ चश्मेतर आई।
कोसों नज़र आयेगा न टापू न तराई॥

— २२ —

आता है नाम आबारिये[4] कोहकनपै रश्क।
इस मुड़चिरेने फोड़के सर क्या नमूद की!

— २३ —

वोह साथ रखते हैं इस तरह मजमये उश्शाक[5]।
सहाबा[6] साथ लिये जिस तरह रसूल चले॥

— २४ —

क्योकर निभेगी हमसे मुलाक़ात आपकी?
वल्लाह् क्या जलील है औक़ात आपकी॥

---

[1]निर्बल शरीरपर, [2]प्रकट,

[3]वह कागज़ जिसपै सतरें खीचनेको डोरे लगा देते है।

[4]मुझे 'फरहाद'की प्रसिद्धि (नाम)पर ईर्ष्या (रश्क) होती है। इस मुड़चिरेने सिर्फ सर फोड़कर ख्याति प्राप्त कर ली।

[5]आशिकोका दल;

[6]हज़रत मुहम्मद रसूलकी महफिलमे हाज़िर होनेवाले लोग।

— २५ —

हरजाईपनकी आपके कुछ इन्तहा नहीं।
कटता है दिन कहीं तो कहीं रात आपकी ॥

— २६ —

मजनूँको किस कदर सगेलैला[1] अजीज था।
दीवाने हैं जो हम तेरे कुत्तेको 'तू' कहें ॥

— २७ —

खलील—

बगलमें बैठिये दिलकी तरहसे आप आकर।
मैं पाँव पडता हूँ उठिये न दर्देसरकी तरह ॥

— २८ —

वस्लकी शब पलंगके ऊपर।
मिस्ल चीतेके वोह मचलते हैं ॥

— २९ —

क्या लिखूं शोरिशेदिल[2] काग़ज़में।
ताव[3] काकुलकी[4] तरह खाइयेगा ॥

— ३० —

हम क्या क़ुमारेइश्कमें[5] घातें बताएँगे ?
वोह ख़ुद जुआरियोसे भी ज्यादा हैं चालिये ॥

---

[1]लैलीका कुत्ता, [2]दिलकी बेताबी, [3]बल,
[4]जुल्फोंकी; [5]इश्ककी बाजीमे।

– ३१ –

सीनेपै नहीं घाव तेरी तेग़का क़ातिल !
यह दिलमें मेरे नींव मुहब्बतकी पड़ी है ॥

– ३२ –

सबा–

सुबहे शबेविसाल[1] है क्यों नाराज़न[2] न हूँ ?
पड़ती है मोगरी मेरे दिलपर गजरके साथ ॥

– ३३ –

कौन पूछेगा उसे ज़ुल्फेबुताँके[3] सामने ?
ज़ाहिदो ! बिलफर्ज़ दाढीपर ख़ुदाका नूर है ॥

– ३४ –

सन्दल-सी[4] वोह कलाइयाँ अपने गलेमें हो ।
हथफेरियाँ नसीब हों चन्दन-सी रानपर[5] ॥

– ३५ –

रूपपर है यारका बाग़े जवानी देखिये ।
क्या शगूफा लाये सीनेका उभार अबकी बरस ॥

– ३६ –

पैंगामेवस्लपर वोह मेरी बोटियाँ उड़ाएँ ।
दाँतोसे दें जवाब जबाबे सवालका ॥

---

[1]मिलनयामिनीका प्रात काल, [2]आह करना,
[3]प्रेयसीके ज़ुल्फोके समक्ष, [4]चन्दन-जैसी,
[5]जाँघ पर ।

वजीर–

– ३७ –

सब्जये ख़त देखकर हाथोके तोते उड़ गये।
जानवर सबकेमें छूटे, दो कुछ अब सैयादको॥

एकसे छ तक और आठ, ग्यारह, पन्द्रह, सत्ताईस और तीस नम्बरके 'रियायते लफ्ज़ी'के शेर है, क्योकि इनमे केवल शब्दोकी मुनासबत बैठानेके लिए तत्सम्बन्धी शब्दोको चुनकर शेर गढे गये है।

तेईस, चौबीस, पच्चीस और इकत्तीस नम्बरके शेरोंसे बाज़ारी इश्क टपकता है। ऐसे शेरोको 'सौकयाना' शेर कहते है।

चौदह, सोलह, सत्तरह, बाईस, छब्बीस, बत्तीस और चौंतीस नम्बरके शेर अदना और मामूली दर्जेके हैं। ऐसे घटियल शेरोंको 'आमता' कहते है।

अट्ठाईस, तैंतीस, पैंतीस, सैंतीस और उन्तालीस नम्बरके शेरोंसे इन्द्रिय-लोलुपता, अश्लील वासना प्रकट होती है। ऐसे शेर 'बुलहविस' कहलाते हैं।

सात, बारह, तेरह, उन्तीस, छत्तीस और अडतीस नम्बरके शेर ज़लील, हकीर, आम और कमीने विचारोंसे ओत-प्रोत है। ऐसे शेरोंको 'इब्तज़ाल' कहते है।

नौ, दस, अठारह, बीस, इक्कीस नंबर के शेर केवल उपमा, उदाहरणके लिए रचे गये है। इन्हें मुशाहबती इस्तआरिया शेर कहते है।

मुआमलाबन्दीके शेरोंमे माशूककी हरकत, ढग, तौर-तरीके और आशिक-माशूकके गुप्त सम्बन्धोका ज़ाहिरा बयान होता है। बतौर नमूना 'जुरअत'के चन्द शेर दिये जा रहे है—

देखा तो यूँ वोह कहके लगे मुँहको ढाँपने।
"कम्बख्त फिर लगा मुझे नज़रोंमें भाँपने" ॥

जब यह सुनते हैं, वोह हमसायेमें[1] है आये हुए।
क्या दरो-बामपै[2] हम फिरते हैं घबराये हुए!

इस ढबसे किया कीजिये मुलाकात कहीं और।
दिनको तो मिलो हमसे, रहो रात कहीं और ॥

इक वाकिफकार अपनेसे कहता था वोह यह बात—
"जुरअतके जो घर रातको महमान गये हम ॥

क्या जानिये कम्बख्तने क्या हमपै किया सहर[3]।
जो बात न थी माननेकी, मान गये हम ॥"

बाल हैं बिखरे, बन्द हैं टूटे, कानमें टेढा बाला।
जुरअत हम पहचान गये, कुछ दालमे काला-काला ॥

जबतलक करते रहे मज़कूर[4] उसका मुझसे लोग।
जीमें कुछ सोचा किया मैं, और दिल धडका किया ॥

इस तरहके मुआमलेबन्दीके और अशआर मध्यवर्ती युग के अध्यायमें इशा, जुरअत, मुसहफी आदिके कलाममे ढूंढे जा सकते हैं। नुसवानी (जनाने) अशआर भी इसी अध्यायमे हसरतके कलाममे मिलेंगे।

ईहामगोईमे ऐसे शब्द शेरमे चुनकर रक्खे जाते है, जिनके दो अर्थ निकलते है। जैसे—

दुस्तरे दर्ज़ीका सीना देखकर।
जीमें आता है कि मलमल दीजिये ॥

---

[1]पडोसमे, [2]छतपर, दरवाज़ेपर,
[3]जादू, [4]जिक्र।

झूमके पहनो न साहब झूमके।
झूमके ले लेंगे बोसा झूमके॥

इस इहामगोईमे लोगोने बडी गन्द बखेरी है। तहजीब गवारा नही करती कि इस तरहके फोहश-अश्लील शेर दिये जाएँ। उक्त शेर देनेमें ही हम बडे नादिम हो रहे है।

हर जबानकी शायरी उस जबानके बोलने-जाननेवालोका आयना होता है, जिसमे उस देशकी सभ्यता-सस्कृति और विचारधारा-का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है। खारजी शायरीमे इस युगकी लखनवी तहजीब-ओ-तमद्दुनका अक्स साफ दिखलाई पड रहा है। इस खारजी शायरीसे उस जमानेके लिबास, जेवर और शृगारोपयोगी वस्तुओकी अच्छी खासी सूची बन सकती है। उस वक्तके लोगोकी अभिलाषाएं कितनी कुरुचिपूर्ण थी, उनका इश्क कितना जलील और बाजारू था, यह सब उन्हीका कलाम गला फाड-फाडकर बतला रहा है।

इस युगमे शब्दोकी काट-छाँट, नये-नये लफ्जोकी तलाश, अलफाजकी तहकीक और शब्दोकी मुनासबतका बडा खयाल रखा जाता था। खारजी शायरीके आविष्कारक और प्रामाणिक शायर 'नासिख' और उनके शिष्यो, परशिष्योकी बदौलत यह खारजी रग लखनऊ और राम-पुरमे फैल गया। यही लोग उन दिनो भाषाविज्ञ समझे जाते थे। बहर, सहर, मुनीर, जलाल, बर्क, वाजिदअलीशाहु, अख्तर, अमीर, वगैरह उचित और शुद्ध शब्दोके निर्वाचनमे बडा परिश्रम करते थे। "इस छान-बीनका यह नतीजा हुआ कि बहुतसे अलफाज खारिज कर दिये गये और लुगाते शेर (कविताशब्दकोष) बहुत कम रह गये। इस वजहसे जबानमे एक करख्तगी (कडापन, सख्ती) पैदा हो गई, क्योकि जो अलफाज और मुहावरे मुन्तखिबशुदा थे वे सिर्फ मुकर्ररकरदा तरीकोपर

इस्तेमाल किये जा सकते थे। इसकी खिलाफवरजी मायूब (दूषित) समझी जाती थी।"[1]

इस नवीन रगने दिल्ली और लखनऊकी भाषामे भी अन्तर डाल दिया। यानी बहुतसे ऐसे शब्द दिल्लीमे पुलिग बोले जाते है, वे लखनऊमे स्त्रीलिग समझे जाते है, और जो लखनऊमे पुलिग इस्तेमाल होते है, वे दिल्लीमे स्त्रीलिंगमे बोले जाते है। इस रिवाजका प्रचलन 'नासिख'के शिष्य अमीरअली 'अोस्त' 'इश्क'ने किया, और यह भेद तबसे अबतक बराबर बना हुआ है। दिल्लीवाले बुलबुलको स्त्रीलिग और लखनवी पुलिग लिखते है, परन्तु सौदाने देहलवी होते हुए भी बुलबुलको एक जगह पुलिग लिखा है––

सुने है मुर्गे चमनका तू नाला ऐ बुलबुल।
बहार आनेकी बुलबुल खबर लगा कहने॥

लखनवी अक्सर अब भी पुलिग बाँधते है—

करेगा तू मेरे नालोकी हमसरी बुलबुल।
शऊर इतना तो कर जाके जानवर पैदा॥

––सरूर

सैरे चमनको चलिये बुलबुल पुकारते है

––आतिश

लखनऊका यह दौर शायद अर्सेतक कायम रहता अगर दिल्लीमें गालिब और मोमिन न हुए होते। इस दौरकी शायरीकी आलोचना करते हुए अल्लामानियाज़ फतहपुरी फर्माते है––"गालिबने रामपुर पहुँचकर लखनऊकी शायरीको काफी मुतास्सिर (प्रभावित) किया, और आखिरकार लखनऊमे 'जलाल'-जैसे कहनेवाले पैदा हुए, और

---

[1] तारीखे अदबेउर्दू, पृ० २६३

नासिखकी पैदा की हुई बेहूदगियाँ रफ्ता-रफ्ता कम हुईं। नासिखने गज़लगोईको तबाह और बरबाद करनेमे कोई कसर उठा नही रक्खी। लेकिन ज़बानकी तहज़ीब व शाइस्तगीके लिहाज़से नासिखकी खिदमत, बहुत अहम है, क्योकि मीरहसन-ओ-शाहनसीर[1] मीर-ओ-सौदा,[2] मुसहफी-ओ-इशा तकके ज़मानेके तमाम सकील अल्फाज़ और नामानूस मुहावरात इसने तर्क करके जबानको एक सैकलशुदा आयने (दर्पण)की सूरत दे दी। इसलिए जिस हदतक सिर्फ ज़बानको इस्लाहका ताल्लुक है, 'नासिख'की खिदमात निहायत वज़नी नज़र आती है, और इसी निसबतसे देहलीपर लखनऊको तरजीह देनी पडती है। लेकिन तग-ज्जुलके लिहाज़से लखनऊको देहलीसे कोई निसबत नही है, और सिवाय चन्द शायरोके कि उन्होने तो बेशक जज़बात निगारी (हृदय-उद्गारोके स्पष्टीकरण)से काम लिया है। बाकी सबने ज़िला-जुगत ही मे वक्त ज़ाया किया। देहलीमे भी इहामगोई और रियायते लफ्जोकी मिसाले मिलती है, लेकिन बहुत कम, और अगर शाहनसीर और ज़ौकको अलहदा कर दिया जाये तो कोई एक शायर भी ऐसा नही निकलेगा कि जिसने अपनी गज़लगोईकी बुनियाद जज़बातनिगारी (दाखिलियत)पर कायम न की हो।

"लखनवी शायरीका यह बदनुमाँ धब्बा अमीर मीनाईके वक़्ततक रहा। लेकिन उसके बाद शागिर्दोने मोमिन-ओ-गालिबका कलाम फिर मकबूल होने लगा, और खुद अहले लखनऊने भी आखिरकार इसको

---

[1]मीरहसन-ओ-शाहनसीरके ज़मानेमे लोहू, नित, निपट, टुक, जग, हैगा, मिलवाह, मत, कभू, समेत वगैरह, अल्फाज़ कसरतसे इस्तेमाल होते थे। नासिखने इन सबको तर्क कर दिया।

[2]मीर-ओ-सौदाके अहदके अधर, बीच, तईं, करियों, लागा, तुझबिन, फिरे है, मियाँ, सजन खोज, रुलजाना, वले, देवे, वगैरह सैकडो अल्फाज़ोको इसलाह की।

महसूस किया कि शायरी नाम ज़िला-जुगतका नही बल्कि वारदाते कल्ब (दिलकी आवाज़) से बहस करनेका है। सबसे पहले यह अहसास 'जलाल'-को हुआ। उसके बाद जब शुअरायेदिल्लीने रामपुर पहुँचकर लखनवी शायरोको मुत्तास्सिर (प्रभावित) किया तो रफ्ता-रफ्ता वोह तमाम नुक्स-ऐब दूर होने लगे। हत्ता कि इस वक़्त (वर्त्तमान युगमे) कोई एक भी काबिलेज़िक्र लखनवी शायर ऐसा नही है जो दिल्ली स्कूलका पैरो (अनुयायी) नही है। बरखिलाफ इसके, दिल्लीकी हालत यह हुई कि शागिर्दाने ग़ालिबके बाद देहलीमे कोई शायर पैदा नही हुआ, और हुए भी तो 'साइल' और 'बेखुद' इतने अदना दर्जेके कि गरीबोको देहली स्कूलमे तो खैर क्या जगह मिलती, लखनऊ स्कूलने भी न पूछा, और यह दिल्लीकी वोह आखिरी और हकीकी तबाही है कि इसपर जितना भी मातम किया जाय कम है।

"दिल्लीकी सरज़मीनसे सबसे अखीरमे दाग उभरे, लेकिन उनको दिल्ली स्कूलका शायर कहना दुरुस्त नही, क्योकि उनके यहाँ सोज़ो-गुदाज़ बहुत कम पाया जाता है। उन्होने शायरी मे 'जुरअत'की तकलीद (अनुकरण) की। इसलिए उन्हे लखनवी रंगका गज़लगोशायर कहना चाहिए। लेकिन 'नासिख' के दौरका नही, 'जलालो-अमीर'के दौरका, और अगर इनमे कोई फर्क था तो सिर्फ यह कि जिस बाजारू रगकी शायरी दागने की उसके लिये वह पैदा हुए थे, और 'अमीर' उसके भी अहल (योग्य) न थे। रह गये 'जलाल' सो वह यकीनन दागसे बहतर और अमीरसे बदरजहा बहतर कहनेवाले थे। आखिर कुदरत सरज़मीने अवधसे 'जलाल'को पैदा न करती तो 'नासिख'के गुनाहोका कफ्फारा (प्रायश्चित्त) किसी तरह मुमकिन ही न था। बयानकी सफाई, नुदरते बयान, हलावत, मलाहत, इसके यहाँ क्या नही है।"[1]

---

[1] इन्तकादियात, भाग २, पृ० १९९-२०१

वर्त्तमानयुगमे जितने भी शायर है, चाहे वे कहीके भी है, देहलवी रंगमे गजल कहते है। अर्वाचीन युगके लखनवी शायरोमे 'आतिश'का मर्तबा बहुत बुलन्द है। आतिश जिस शायरीके क्षेत्रमे पॉव रखते है उसे पूर्ववर्त्ती और समकालीन शायरोने वीभत्स बना दिया था। बकौल मौ० खलीलुलरहमान काजमी—"इशा, जुरअत, और रगीनने जो सरमाया छोडा था, उसपर दिन-ब-दिन लखनऊका वह रग चढता जा रहा था जो 'अमानत'की इन्द्रसभाके लिए ज़मीन तैयार कर रहा था। सौकयत और इब्तजालने रेख्ता और रेख्तीकी हदोको मिला दिया, और फहाशओ-उरयानी (अश्लीलता व नग्नता)का वोह सैलाब उमड पडा कि जिसको देखकर बकौल आज़ाद—शराफत आँख नीची कर लेती थी"।[1]

नासिख और आतिश—

आतिशकी प्रकृति और स्वभाव जिन तत्त्वोसे बने थे, उनको देखते हुए उनके लिए उपयुक्त क्षेत्र गज़लगोईका था, और सौभाग्यसे यही उन्होने चुना भी। आतिशके अन्दर जो तेवर, वलवला, बॉकपन, मस्ती, उच्च कल्पना, मौलिक उपज और भावना थी, वही उनकी वाणीसे प्रस्फुटित हुई। आतिशकी शायरी भी आतिशी (आग्नेय) है। मौ० मुहम्मद हुसैन आज़ादने मीर-ओ-सौदा, मुसहफी-ओ-इशा, गालिब-ओ-जौककी तरह आतिश-ओ-नासिखको भी एक दूसरेका प्रतिद्वन्द्वी लिखा है; परन्तु वास्तविकता यह है कि न वे सब एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी थे और न आतिश-ओ-नासिख ही एक दूसरेके हरीफ थे। समकालीन होना और एक दूसरेका ईर्षालु होना और बात है और हरीफ या प्रतिद्वन्द्वी होना और बात है। महात्मा गाधीकी अच्छी-से-अच्छी बातसे मि० जिन्ना नफरत करते थे। वे पूरबकी ओर चलते तो ये पश्चिमकी ओर भागते

---

[1]निगार, लखनऊ, सितम्बर, १९४८, पृ० १२

थे। मि० जिन्ना ईर्ष्यालु और विरोधी कहे जा सकते हैं, परन्तु हरीफ या प्रतिद्वन्द्वी नही। प्रतिद्वन्द्विता समान योग्यतावालोमे ही होती है। दुर्योधन अर्जुनका शत्रु तो था, परन्तु प्रतिद्वन्द्वी नही। प्रतिद्वन्द्वी वह भीमका था और अर्जुनका वास्तविक प्रतिद्वन्द्वी कर्ण था। आतिश और नासिख समकालीन हुए है, इस समानताके अतिरिक्त उनमे कोई समानता न थी।

नासिख अमीर थे और लखनवी अमीर उनके साथी और सहायक थे। वे अमीराना जीवन व्यतीत करते थे। उनके जीवनमे अमीराना वजह-कतअ और तकल्लुफ था। वही तकल्लुफ-ओ-तसन्नोह उनकी शायरीमे घुलमिल गया है। नासिख लखनवी खारजी रगके मुसल्लिम-उलसबूत उस्ताद हुए है, और आतिश एक ऐसे वशमे उत्पन्न हुए जो सैनिकवृत्तिको श्रेष्ठ समझता था, और जब सैनिकवृत्तिसे अवकाश ग्रहण करता तो दरवेशी अख्तयार कर लेता था। यही दोनो खान्दानी सिफात आतिशको भी विरासतमे मिली। वे सिपाहियाना बाँकपनसे रहते थे। कमरे तलवार बाँधते थे। मुशायरोमे भी इसी सजधजसे जाते थे, और मन दरवेशका रखते थे। पचास रूपया मासिक वृत्ति नवाबके यहाँसे आती थी। १५ रु० घरखर्चको देकर बाकी सब महमाँ-नवाजी या गरीब-गुरबोमे खर्च कर डालते थे, और अक्सर औकात वृत्ति मिलनेसे पहले ही फकीर हो जाते थे। घर भी टूटा-फूटा-सा किरायेपर ले रखा था। वही बोरिया बिछाये बैठे रहते थे। गरीब-अमीर सब उसीपर आकर बैठते थे। न किसी नवाबकी नौकरी की न किसीकी खुशामदमे कभी एक कसीदा लिखा। न किसीके सामने दस्तेसवाल किया। अपने झोपडेमे बोरियेपर बैठकर फकीराना जिन्दगी व्यतीत की, और स्वभावमे जो खान्दानी सिपहगीरीकी तमकनत थी, वह तम-कनत उम्रभर कायम रखी। यही तमकनत, बाकपन, सूफियानापन और सादगी उनकी शायरीमे है।

नासिख पहलवान और अमीर थे। उनकी शायरीमे भी पहलवानो

जैसे दाव-पेच और अमीरो-जैसा तकल्लुफ, बनावट और बाहरी रख-रखाव मिलता है। आतिश सिपाही और दरवेश थे। इसलिए उनकी शायरीमे भी सिपाहियाना तमकनत और दरवेशी, सादगी पाई जाती है।

नासिख़ और आतिश चूंकि समकालीन थे और एक दूसरेका शायराना रग बिलकुल भिन्न था, कही भी समानता नही थी, इसलिए परस्पर मत-भेद होना स्वाभाविक था। इसी मतभेद और विरोधी स्वभावके कारण कभी-कभी आपसमे नोक-झोक हो जाया करती थी। एक बार नासिख़ मुशायरेमे इतने विलम्बसे पहुँचे कि मुशायरा समाप्त हो चुका था। सभी लोग जा चुके थे। आतिश और उनके शिष्य चलनेको ही थे कि नासिख़को देखकर ठहर गये और उनसे सभ्यताके नाते गज़ल पढनेका अनुरोध किया।

नासिख़ने अपनी गजलका मतला पढा—

जो ख़ास है वोह शरीके गिरोहे आम नही।
शुमार दानये तसबीहमें इमाम नही॥

मतला सुनते ही आतिशके शिष्योके दिल बेचैन हो उठे, क्योकि नासिख़ने इन सबपर उक्त मतलेमे चोट की है। यानी जिस तरह मालाके ऊपरके तीन दाने मालामे शुमार नही, उनसे ऊँचा दर्जा रखते है और वे मालाके साधारण मनके न कहलाकर इमाम कहलाते है। उसी तरह नासिख़ भी खास व्यक्तियोमे है। वे इतने आम नही कि मुशायरेमे पहलेसे आकर गिरोहमे बैठे। गजल पूरी होनेपर आतिशके एक शिष्यने वही तत्काल यह मतला बनाकर सुनाया—

यह बज्म वोह है कि ताख़ीरका[1] मुकाम नहीं।
हमारे गजफ़ेमें बाजिये गुलाम नही॥

---

[1]विलम्बका।

चूंकि नासिख खुदाबख्श खेमादोज़के दत्तके पुत्र थे, और खुदाबख्शके भाइयोने अदालतमे यह साबित करनेका प्रयत्न किया था कि नासिख दत्तक पुत्र नही, खुदाबख्शके गुलाम थे। उसी रवायतकी ओर उक्त मतलेमें इशारा किया गया है। चूंकि नासिखका नाम इमामबख्श था, इसलिए नासिखके मतलेमे 'इमाम' शब्दने दुमायनीका मज़ा दिया था। इसी तरह 'गुलाम' शब्द डालकर उसने भी कमाल कर दिया, लेकिन शिष्य आखिर शिष्य थे, और नासिख इस फनके माने हुए उस्ताद। अत उन्होने भी तुरन्त जवाब दिया और ऐसा जवाब दिया कि जिसका कोई जवाब नही।

जो ख़ास बन्दे है वोह बन्दये अवाम नहीं।
हज़ार बार जो यूसुफ बिके गुलाम नहीं॥

यूसुफ तो पैगम्बर थे। वे मिस्रके बाज़ारमे गुलामोके साथ बेचे गये और गुलामोकी तरह उन्हे खरीदा गया। फिर भी वे गुलाम न कहलाकर पैगम्बर ही कहलाये।

इसी तरह जब आतिशने नासिखकी गज़लोपर मुतवातिर गज़लें कहनी प्रारम्भ की तो नासिखने कुढकर लिखा—

एक जाहिल कह रहा है मेरे दीवांका जवाब।
बू मुसीलमने लिखा था जैसे कुरआंका जवाब॥

आतिशने इस मतलेका जो लाजवाब, जवाब दिया है उसकी दाद नही दी जा सकती।

क्यो न दे हर मोमिन उस मलहदके दीवांका जवाब।
जिसने दीवां अपना ठहराया है कुरआंका जवाब॥

नासिख और आतिश परस्पर शायराना चोटे तो करते थे, परन्तु इशा, मुसहफीकी तरह दरबारो और बाज़ारोंमे नही लड़ते थे, बल्कि एक दूसरेकी ज़ाहिरा पोज़ीशनका खयाल रखते थे। नासिखने आतिशके

विद्रोही शिष्योको न बरगलाकर समझा-बुझाकर आतिशके ही शिष्य बने रहनेकी सीख दी और आतिशने नासिखकी मृत्युके बाद यह कहकर गज़ल ही कहना छोड दिया कि जब सुखनफहम ही उठ गया, तब किसको सुखन सुनाएँ। गोया—

"लज्जते इश्क गई गैरके मर जानेसे"

इस अर्वाचीन युगमे शायरी देहली और लखनऊ स्कूलमे दाखिली और खारिजी नामसे विभक्त हो जाती है। देहलीके शायरोमे इस युगमे गालिब और मोमिन उर्दूके अमर शायर हुए है। लखनवी शायरोमे आतिश का आसन भी बहुत ऊँचा है और उनका शुमार गालिब और मोमिनके बाद बडे फख्रसे किया जाता है। लखनवी शायरोमे मर्सियागोई मे अनीसो-दबीर ऐसे सिद्धहस्त शायर हुए है कि इन सपूतोपर इनका मादरेवतन जितना भी अभिमान करे थोडा है। बकौल नियाज फतहपुरी—"अगर लखनवी दौरे शायरी सिवाय अनीस-ओ-दबीरके किसी और शायर को न पैदा करती तो भी उसके लिए यह फख्र कम न था कि उसने ऐसी दो हस्तियाँ पेश की। गो उनका ताल्लुक भी हकीकतन देहलीसे था।"[१]

देहलीके बादशाहोमे बहादुरशाह जफर और लखनऊके नवाबोमे आसफुद्दौलासे बहतर कोई शायर नही हुआ। इस युगके देहलवी और लखनवी शायरोके सम्बन्धमे आजाद लिखते है—"इस दौरमे दो किस्मके बाकमाल नजर आएँगे। एक वे जिन्होने अपने बुजुर्गोकी पैरवीको दीनो-आईन (धर्म वा कानून) समझा। यह उनके बागोमे फिरेगे। पुरानी शाखे, जर्द पत्ते काटे-छाटेगे और नये रग, नये ढगके गुलदस्ते बना-बनाकर गुलदानोसे ताक-ओ-ईवान सजायेगे। दूसरे वोह आली दिमाग जो फिक्रके दखानसे ईजादकी हवाएँ उडायेगे और बुर्जे आतिशबाजीकी तरह उससे रुतबएआली पाएँगे। इन्होने इस हवासे बडे-बडे काम लिये।

---

[१]इतकादियात, भा० २, पृ० १६०

मगर गजब यह किया कि गरदोपेश जो वुसअते बेइन्तहा (चारो ओर विशाल भूमि) पडी थी, उसमे किसी जानिबसे नही गये। बालाखानो-मेसे बाला-बाला उड गये। बाज बुलन्द परवाज़ ऐसे ओजपर उड जायेगे, जहाँ आफताब तारा हो जायेगा, और बाज ऐसे उडेगे कि उड ही जायेगे। अबतक मज़मूनका फूल अपने हुस्नेखुदादादके जोबन (प्राकृतिक सौन्दर्य्य) से फसाहतके चमनमे लहलहाता था। यह उसकी पखडियाँ लेगे, और उनमे पर व कलमसे ऐसी नक्काशी करेगे कि बेऐनकके दिखाई न देगी। इस खयालबन्दीमे ये साहबेकमाल इस कुदरती लताफतकी भी परवा नही करेगे, जिसे तुम हुस्ने खुदादाद समझते हो।"[1]

पहले हम लखनवी शायरोका परिचय और उनके श्रेष्ठ शेर देगे, फिर देहलवी शायरोपर प्रकाश डाला जायगा।

२० सितम्बर १९४९

---

[1] आबेहयात, पृ० ३३९-४०

३६

अख़्तर

प्रस्तुत पुस्तकमे 'आतिश'तकका परिचय गतवर्ष २७ सितम्बर १९४९को लिखा जा चुका था और पुस्तक जुलाई ५०मे प्रेस भेज दी गई थी कि एक सप्ताह पूर्व मुझे उर्दूके प्रामाणिक आलोचक, ख्याति-प्राप्त शायर 'असर' लखनवीकी जनवरी १९५०मे प्रकाशित 'छानबीन' पुस्तक पढनेका अवसर मिला। उससे मेरी मालूमातमे एक और 'अख्तर' शायरका इज़ाफा हुआ। उक्त पुस्तकसे उनका सक्षिप्त परिचय और कलाम यहाँ साभार दिया जा रहा है।

काज़ी मौलवी मुहम्मदसादिकखाँ 'अख्तर' हुगली बगालेके काज़ी-ज़ादोमेसे थे। अपना असली वतन छोडकर १८१८ ई०मे लखनऊ गये और वहीके हो रहे। शायरीमे मिर्ज़ा कतीलके शिष्य थे और लखनऊ राज्यमे तहसीलदारीके पदपर प्रतिष्ठित थे। नवाब गाज़ीउद्दीन हैदरने इनको मलिकउलशुअराका खिताब दिया था। चूंकि इनकी उम्रका एक बहुत बडा हिस्सा लखनऊमे व्यतीत हुआ था, इसलिए यह स्वय भी अपने-को लखनवी कहते थे और अहले लखनऊ भी इन्हे लखनवी समझकर गर्वका अनुभव करते थे।

अख्तरने मुसहफी, इशा और जुरअतके मुशायरोकी भी धमा-चौकडी देखी और आतिश-ओ-नासिखके भी मार्के देखे। वाजिदअली-शाहने भी इनका आदर सत्कार किया था, किन्तु किसी बातपर रुष्ट हो गये तो इन्हे लखनऊ छोडना पडा। १८५७के विप्लवके पश्चात् इनकी

मृत्यु हुई। 'आबेहयात'से विदित होता है कि नासिखको शुरू-शुरूमें इन्हींसे प्रोत्साहन मिला था।[1]

दिल्ली उजडनेके बाद लखनऊ गुलजार हुआ तो वहाँकी आबो-हवाने कुछ ऐसा रग अख्तियार किया कि जो वहाँ पहुँचा, उसी रगमे सराबोर हो गया। यहाँतक कि मीर तकी 'मीर' जिनका कलाम व्यथा-पीडासे ओतप्रोत है और जो उर्दू-शायरीके खुदाए सुखन कहलाते हैं, लखनऊमे रहते-रहते वहाँके वातावरणसे प्रभावित हुए बिना न रह सके और उनकी जबानसे भी ऐसे शेर निकल गये—

मिलो इन दिनो हमसे एक रात जानी।
कहाँ हम, कहाँ तुम, कहाँ फिर जवानी॥

और इशा, जुरअत, मुसहफी देहलवी होते हुए भी लखनवी रगमें जिस तरह गर्क हुए, उसका ज़िक्र ही क्या? उत्तरोत्तर शायरीका यह बदनुमा दाग बढता ही गया। एक दिन वे थे कि लखनऊको देहलवी शायरीपर ईर्ष्या होती थी। अब नौबत यहाँतक पहुँची कि अहले देहली लखनवी स्कूलका अनुसरण करने लगे। यहाँतक कि देहलीके अमर शायर गालिबो मोमिनने भी शुरू-शुरूमे लखनवी स्कूलके मुसल्लिम-उलसबूत उस्ताद नासिख का अनुसरण करनेका प्रयत्न किया, वह तो खैरियत हुई कि उन्हें सफलता नही मिली और जल्दी ही देहलवी शायरीकी तरफ रागिब हो गये। वर्ना आज उर्दू-शायरीका जो विकृत रूप होता, उसका अनुमान लगानेसे भी हृदय सिहर उठता है, और शाह नसीर-ओ-ज़ौक तो दिल्लीके नासिख कहलाते ही थे।

दिल्लीके सभी शायर दाखिली शायरी करते थे, उनका हर एक शेर दिलसे निकलता था और लखनवी शायर सभी खारजी शायरी करते

---

[1] छानबीन, पृ० १३२।

थे। उनकी शायरीमे बनावट, तकल्लुफ और अश्लीलता भरी रहती थी, यह धारणा भ्रामक है। खारजी शायरीके लिए केवल अहले लखनऊ-पर बोहतान लगाना और उसका आविष्कारक नासिखको घोषित करना उचित नही। लखनऊमे भी आतिश-जैसा गजलगो और अनीस-ओ-दबीर-जैसे मर्सियागो हुए है। वह तो लखनऊका वातावरण ही उन दिनो ऐसा था कि, जो वहाँ पहुँचता था, वहाँकी बोली बोलने लगता था। बकौल अकबर—

मेरे सैय्यादकी तालीमकी है धूम गुलशनमें।
यहाँ जो आज फँसता है, वह कल सैयाद होता है॥

सौदा देहलवी होते हुए भी खारजी रगके शैदा थे। इशा, जुरअत, मुसहफी देहलवी होते हुए भी लखनवी हमाममे नगे कूद पडे। शाह नसीर और ज़ौक दिल्लीमे रहते हुए भी लखनवी खारजी रगका कलमा पढते रहे। फिर नासिख गरीबका ही क्या कुसूर ?

नवाबोके भोग-विलास और उनकी स्वच्छन्द कामुक क्रीडाओके कारण शनै -शनै. लखनऊका वातावरण दूषित होता गया। दाखिली रग धीरे-धीरे मिटता गया और खारजी रग उत्तरोत्तर गहरा होता गया। नासिखसे पहले ही अहले लखनऊ खारजी रगकी तरफ रागिब हो चुके थे। उनसे पूर्व अख्तर इसी रगमे शेर कह रहे थे, और वे मामूली शायर नही, मलिकउलशुअरा थे। इसी रगको नासिखने पक्का कर दिया, और उनके युगमे हर लखनवी शायर इसी रगमे सराबोर हो गया। यहाँतक कि इस रगके छीटे अहले देहलीपर भी जा पडे। नासिखके समकालीन और लखनवी होते हुए भी आतिशने इस रगसे अपना दामन बचाना चाहा, परन्तु बेदाग वे भी न रह सके।

नासिखसे काफी पहले अख्तर खारजी रगमे कह रहे थे। विद्वता-का प्रदर्शन करनेके लिए क्लिष्ट, कर्ण-कटु और अव्यवहृत नये-नये शब्दोका

प्रयोग करनेमे नासिख तो बदनाम है ही, परन्तु ये भी कुछ कम न थे। इनका कलाम भी काफी दुरूह है। इनके कलाममे नित, जाए हैं, मियाँ, सो, प्यारे, बसे है, झमकी, मत, बुताँ, ज्यूँ, ऐसे बहुतसे शब्द मिलते है, जो नासिख-ओ-आतिशने बादमे शायरीसे खारिज कर दिये थे। हम इनके सरल-से-सरल और उक्त शब्दोसे रहित अशआर देनेका प्रयत्न कर रहे है —

ख़ानाआबाद ! इश्कने तेरे,
आह ! किस-किसको दरबदर न किया ॥
हुए जिसकी हवामें ख़ाक, उसने—
ख़ाकपर भी कभू गुज़र न किया ॥

गम नहीं, हमसे अगर सारा ज़माना छूटा ।
पर गज़ब है कि तेरे कूचेका आना छूटा ॥

समझके रखियो कदम बहरेइश्क़में[1] 'अख़्तर' !
निहंगेग़म है यहाँ बेहिसाब दर तहे आब[2] ॥

जान खोई, ख़राब की दौलत ।
दिलपुरइज़्तराब की दौलत ॥
अब्रेरहमतसे रूशनास हुए ।
गिरयए बेहिसाबकी दौलत ॥
वस्लमें भी रहा सकूते बहम ।
डरके बाइस, हिजाबकी दौलत ॥

गो उठ गये तुम पाससे पर ध्यान तुम्हारा ।
जाएगा कहाँ दीदये हैराँसे निकलकर ॥
याँ तक तू ही लाई, न सता अब मुझे वहशत !
मैं और कहाँ जाऊँ बयाबाँसे निकलकर ॥

---

[1]प्रेमरूपी नदीमे;
[2]ससाररूपी समुद्रमे गमरूपी मगर-मच्छ बेहिसाब है ।

मुन्तज़िर[1] यारके बैठे हैं लिये सब सामाँ।
साक़ी-ओ-मुतरिबा[2]-ओ-साग़िर-ओ मीना दरबेश ॥

गर्चे 'अख्तर' चुप है और ताक़त नहीं फरियादकी।
है वले[3] उसकी ज़बाँ आतिश फिशाँ[4] मानिन्दे शमअ ॥

सुहबते अहले हविस हुस्नको खो देती है।
गर हवासे न मिले क्यो हो परेशानिये शमअ ॥

कल सैर देखी मारकये हुस्नोइश्क़में।
था इस तरफ पतग बिचारा उधर चिराग़ ॥
जो दिलजले है जानते है दिलजलोकी क़द्र।
परवाने-सॉ कोई नहीं जलता, मगर चिराग़ ॥

देखा न ज़िन्दगीमें तुझे हमने यार हैफ।
हसरतभरे जहाँसे चले हम, हज़ार हैफ !!

यही गम है दिलको 'अख्तर' कि वह माह महर परवर।
न हुआ कभी करारेदिल बेकरारे आशिक ॥

सौ टुकडे हो गया न सुनी हमने पर सदा।
क्योकर न जीको भाये अदाए शकिस्तेदिल ॥

ध्यान तेरा हमें दमभर भी न भूला हरगिज़।
पर तेरी यादसे अफसोस फरामोश है हम ॥

दो-चार होते है जिस वक़्त उस निगाहसे हम।
तो जाते रहते है बस अपने अख्तियारसे हम ॥

---

[1]प्रतीक्षामे, [2]गायक, [3]लेकिन;
[4]आग झाडनेवाली, शोले भडकानेवाली।

लोग जब सुनते हैं किस्से तेरे दीवानेके।
कैस-ओ-फरहादके अफसाने उठा रखते हैं॥

जान दे बैठें तो देखे न कभी आँख उठा।
ऐसे बेदीदसे हम चश्मेवफा रखते हैं॥

'अख्तर' ! जहाँमें हरकोई रखता है आश्ना।
अपना बजुज़ख़ुदा[1] कोई यार आश्ना नही॥

शिद्दतेग़मसे, हुजूमेदर्दसे, अफसुर्दा हूँ।
मर्गसे कह दो कि मै जीनेसे अब आजुर्दा हूँ॥

ढूँढें कहाँ कि आप ही में पाते हैं तुझे।
नादाँ नहीं कि और कहीं जुस्तजू करें॥
मिलना तू एक बार न मौकूफ हमसे कर।
ता रफ़्ता-रफ्ता हम तेरे हिजराँसे ख़ू[2] करें॥
उश्शाक़की[3] कुबूल नही होती बन्दगी।
जबतक वोह ख़ूनेदिलसे न अपने वजू करें॥

फिराकेयारमें 'अख़्तर' ! सुनाऊँ हाल क्या अपना।
न दिनभर चैन है दिलको, न शबको ख़्वाब आँखोमें॥

ऐ जाँ ! अदमकी[4] राहमें है डर तुझे अबस[5]।
तू साथ मेरे हो ले कि मै राहदीदा[6] हूँ॥

जिगर, ग़ीनओदिल ठिकाने बहुत हैं।
तेरे तीरके याँ निशाने बहुत हैं॥

---

[1]खुदाके अतिरिक्त,
[2]अभ्यास,
[3]आशिकोकी,
[4]परलोककी,
[5]व्यर्थ,
[6]मार्गसे परिचित।

किसीने कही—तुमपै मरता है 'अख्तर'।
कही उसने—ऐसे दिवाने बहुत है॥

वादे ख़िलाफ जिससे हुए लाख, देखना।
बैठा हूँ उसके वादेपर फिर किस यकींसे मैं॥

यह जो कहते हो यारो कि "यारसे मिल, उसे हाल सुना कि वोह होवे ख़िजल"[1]।
करूँ किस तरह उससे बयाँ गमेदिल, मुझे बज़्मतक उसकी तो बार[2] नही॥

इश्कमें दीवश्रोदिल ही नहीं तनहा दुश्मन।
जो उसे प्यार करे है वोह हमारा दुश्मन॥

तू जो चाहे सो कहे ऐ बुतेबदख़ूह! मुझको।
श्राजतक वर्ना किसीने न कही 'तू' मुझको॥
क़त्लका गम नहीं, गम है कि कही इसपर भी।
बेवफा समझे न वोह शोख़ जफाजू[3] मुझको॥

ख़ूँसे श्रालूदा कही दामने जल्लाद न हो।
मुज़्तरब इस कदर ऐ बिस्मिले नाशाद न हो॥

श्राए थे जिस कामको याँ उससे ग़ाफिल हो गये।
ख़्वाबेग़फ़लतमे जो देखा सबको, हम भी सो गये॥

श्रास्ताने हक जब श्रपने वास्ते मौजूद है।
क्यो दरेनवाब श्रो ख़ॉपर[4] जिबहसाई[5] कीजिये॥

गिरकर ज़मीसे फिर न उठे मिस्ले नक्शेपा[6]।
यारब! यह किसके कुश्तयेरफ़्तार हम हुए॥

---

[1]लज्जित, [2]पहुँच; [3]श्रत्याचारी,
[4]श्रमीरो की चौखट पर, [5]नतमस्तक होना; [6]पद चिह्नकी तरह;

आती नहीं सदा भी आहेहज़ींकी अब तो।
ग़ाफ़िल ख़बर ले अपने बीमारे नातवाँकी॥
ऐ उम्रेरफ़्ता ! अब तू आती है याद मुझको।
औकात तेरी मैंने क्या मुफ़्त रायगाँ की॥

जो भूलकर भी याद न उसने किया कभी।
यादश बख़ैर शाद रहे, वोह जहाँ रहे॥

यह दिलबरी, यह नाज़, यह अन्दाज़, यह जमाल।
इन्साँ करे अगर न तेरी चाह, क्या करे ?

क़द्र अपनी इस जहाँमें इन्साँ अगर न समझे।
इन्सान उसको हरगिज़ अहलेनज़र न समझे॥

तू तो सरमस्तेमये नाज़ है क्या इससे तुझे ?
कोई दिलशाद रहे या कोई नाशाद रहे॥
छानते ख़ाक रहे इश्कमें बरसों 'अख़्तर'।
उसने पूछा भी न, "किसके लिये बरबाद रहे"॥

ख़फ़ा नामेसे होता है वोह, कासिद !
मेरा पैगाम तू कहियो ज़बानी॥

यूँ मिला तीरके पैकाँसे तेरे दिल अपना।
मेज़बाँ[1] दौड़के जिस तरहसे महमाँसे मिले॥

अजब ढगकी यह तामीरी ख़राब-आबादे हस्ती है।
कि पस्ती याँ बुलन्दी है, बुलन्दी याँकी पस्ती है॥

---

[1]महमानका स्वागत-सत्कार करनेवाला।

तरद्दुद[1] क्यों तुम्हें ऐ साकिनाने मुल्के हस्ती है।
अदमकी राह सीधी है बुलन्दी है न पस्ती है॥
जहाँके बागमें होगी बहार अगले ज़मानेमें।
हमारे अहदमें इसपर तो वीरानी बरसती है॥
समझ हरएकको हुश्यार हम आये थे याँ 'अख़्तर'!
बचश्मेग़ौर जो देखा तो मतवालोंकी बस्ती है॥

क्या ख़बर सुनाता है यारके न आनेकी।
बात है यह ए कासिद! मेरे जीके जानेकी॥
ख़ू[2] वहाँ नही जाती दमबदम सतानेकी।
याँ रही नही ताकत अब जफा उठानेकी॥
तन जले नही परवा, सर कटे नहीं कुछ ग़म।
सीखे शमअ़ से कोई वजह जी खपानेकी॥

बात वोह सच है जो दुश्मनकी ज़बाँसे हो अदा।
वस्फ़े चश्मेयार पूछो नरगिसेग़म्माज़से॥

जान दी लेकिन न उसके आस्ताँसे उठ सके।
अश्क-साँ[3] जिस जा गिरे हम फिर न वाँसे उठ सके॥

कलक़ है, दर्द है, क़ाहिश है, ग़म है, नातवानी है।
फिराक़े यार है ये या बलाये नागहानी है॥
ख़ुदा जाने अभी क्या-क्या दिखायेगा ग़मेहिजराँ।
रहे हैं अबतलक जीते यह अपनी सख़्त जानी है॥

'अख़्तर'को देख नज़अ़में[4] हमने तो रो दिया।
हसरतसे उसने जानिबेदर जो निगाह की॥

---

[1]सोच विचार, [2]आदत, [3]आँसूकी तरह;
[4]मृत्युकी अन्तिम अवस्थामे।

ख़ाक किस-किस न गली-कूचेकी छानी ए वाए ।
जबसे क़िस्मतने किया दूर तेरे दरसे मुझे ।।

गो शमअका जलना भी है सब ख़ल्कपै रोशन ।
पर सोज़े निहाँको[1] मेरे पाती नहीं वह भी ।।

एक आह जो थी बेकसयेहिज्रमें[2] हमदम[3] !
सो ज़ोफसे[4] अब लबतलक आती नहीं वह भी ।।

बातोमें बना लेवे जो टूटे हुए दिलको ।
यह सहर[5] है, एजाज़[6] है या शीशागरी है ।।

जहाद[7] उसको नहीं कहते कि होवे ख़ून इन्साँका ।
करे जो कत्ल अपने नफ़्सेकाफिरको,[8] वोह गाज़ी है ।।

दिलके दो टुकडे किये मिनकारे बुलबुलकी[9] तरह ।
इश्कने बख़्शा है तब शौक़े ग़ज़लख़्वानी मुझे ।।

रंजो क़लक़ो आहो फुगाँ गिरयाओज़ारी ।
इन सारी बलाओंका बस इक इश्क़ सबब है ।।

अबस[10] है ज़िन्दगी ऐ ख़िज़्र ! जब हमदम न हो कोई ।
हमें ऐसी हयाते जाविदानी[11] ख़ुश नहीं आती ।।

२४ सितम्बर, १९५०

---

[1]अतरगकी जलन को; [2]विरहकी विवशतामे; [3]मित्र, साथी;
[4]निर्बलताके कारण, [5],[6]जादू, [7]धर्म-युद्ध;
[8]विषय-वासनाओ को; [9]बुलबुलकी चोच की; [10]व्यर्थ;
[11]अमर जीवन ।

४०

नासिख़

शेख़ इमामबख़्श 'नासिख़' फैजाबादके ख़ुदाबख़्श खेमादोज़के दत्तक पुत्र थे। अस्ल पिता लाहौरके रहनेवाले थे, और काबुलोकाश्मीरसे बनफशा और केसर लाकर फेरीमे बेचा करते थे। ख़ुदाबख़्श फैज़ाबादीने इन्हे अपनी औलादकी तरह लाड-प्यारसे रखा और अरबी-फारसी पढने-लिखनेका उत्तमोत्तम प्रबन्ध किया। ख़ुदाबख़्शकी मृत्युके उपरान्त उसके भाइयोने नासिख़को धना बतानेका इरादा किया, किन्तु नासिखने नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि "मुझे धन-दौलतसे कोई सरोकार नही, जिस तरह उनको बाप समझता था, आपको समझता हूँ। उनकी तरह आप भी मेरी आवश्यकताओकी पूर्त्ति करते रहे, मुझे और कुछ नही चाहिए"; परन्तु ख़ुदाबख़्शके भाई-बन्द तो इन्हे अपने रास्तेका काँटा समझते थे और सम्पूर्ण धन-दौलत हथियाना चाहते थे। अत. उन्होने नासिख़के भोजनमे विष मिला दिया, किन्तु नासिख़को किसी तरह विषका आभास हो गया, और उन्होने दस-पाँच मित्रोके सामने कुत्तेको भोजनका अश डाला, तो वह तत्काल मर गया। विषसे बचनेपर नासिख़पर इस उज्रके साथ दावा दायर कर दिया गया कि "यह ख़ुदा-बख़्शका दत्तक पुत्र नही गुलाम है।" अन्तमे न्यायालयका निर्णय भी नासिख़के पक्षमे ही हुआ। तब नासिखने चन्द रुबाइयाँ लिखकर जो अपने मनोभाव व्यक्त किये थे, उनमेसे दो यहाँ दी जा रही है—

मशहूर है गर्चे इफ़्तराये अमाम।
पर, करते नहीं ग़ौर ख़वास और अवाम॥

वारिस होना दलीले फरज़न्दी है।
मीरास न पा सका कही कोई गुलाम ॥

कहते रहे अमाम अदावतसे गुलाम।
मीरासेपिदर पाई मगर मैंने तमाम ॥

इस दावये बातिलसे सितमगारोंको।
हासिल यह हुआ कर गये मुझको बदनाम ॥

अवधकी राजधानी लखनऊ बनाये जानेपर नासिख भी फैज़ाबादसे लखनऊ चले आये और वही जीवन पर्यन्त रहे। शायरीमे वे किसीके शिष्य नही थे। फर्माते है—"मीर तकी मरहूम (स्वर्गीय) अभी ज़िन्दा थे। मुझे ज़ौकेसुखनने बेअख्तयार किया। एक दिन अगयार (शत्रुओ)-की नज़रे बचाकर कई गज़ले खिदमतमे ले गया। मगर उन्होने इसलाह न दी। मै दिलशिकस्ता होकर चला आया, और कहा कि मीर साहब भी आखिर आदमी है, फरिश्ते तो नही। अपने कलामको आप ही इसलाह दूंगा। चुनाचे कुछ कहता था और कुछ छोडता था। चन्द रोज़के बाद फिर देखता। जो समझमे आता इसलाह करता और रख देता। कुछ अर्सेके बाद फिर फुरसतमे नज़रसानी करता और बनाता। ग़रज़ मश्कका सिलसिला बराबर जारी था, लेकिन किसीको सुनाता न था। जबतक खूब इत्मीनान न हुआ मुशायरोमे गजल न पढी, न किसीको सुनाई। मिर्ज़ा हाजी साहबके मकानपर मुशायरे होते थे। सैयद इशा, मिर्ज़ा कतील, जुरअत, मुसहफी वगैरह सब शुअरा जमा होते थे। मै भी जाता था। सबको सुनता था, मगर वहाँ कुछ न कहता था। उन लोगोमे जो नमक-मिर्च सैयद इशा और जुरअतके कलाममे होता था, वह किसीकी ज़बानमे न था। गरज़ सैयद इशा और मुसहफीके मार्के भी हो चुके। 'जुरअत' और ज़हूर-अल्लाखाँ 'नवा'के हगामे भी तय हो गये। जब ज़माना सारे वरक

उलट चुका और मैदान साफ हो गया तो मैंने गजल पढनी शुरू की।"[१]

धीरे-धीरे मुशायरोमे रग जमने लगा और नासिख अभ्यास करते-करते स्वय एक अच्छे उस्ताद बन गये और अपने शिष्योकी कविताओका सशोधन करने लगे। कुछ लोगोका कहना है कि प्रारम्भमे 'मुसहफी'से इसलाह लेते रहे, परन्तु किसी शेरके सशोधनपर ऐसा मनोमालिन्य बढा कि 'मुसहफी'ने इन्हे फिर अपने यहाँ नही आने दिया।

नासिखको पहलवानीका भी अच्छा शौक था। १३०० डड रोज़ाना लगाते थे। डील-डौल भी अच्छा लम्बा-चौडा था। चकला सीना, घुटा हुआ सिर, कहरवेका तहमद बाँधते थे। जाडोमे भी तनज़ेबका कुरता पहनते थे। कभी-कभी लखनवी छीटका दुहरा कुरता भी पहन लिया करते थे।

४-५ आदमियोकी जितनी खुराक थी। दो नौकर उनके जूठे बर्तन उठा पाते थे। पाँच सेर वज़नी-शाहजहानीकी खूराक थी। किसीके सामने भोजन न करके एकान्तमे करते थे। रग काला था। कवी हैकल जवान थे। इसलिए इनके प्रतिद्वन्द्वी इन्हे दुमकटा भैसा कहा करते थे। मौ० मुहम्मदहुसैन आज़ाद इनके भोजनभट्टपनेका एक वाकआ लिखते है—

"एक तहसीलदारके यहाँ नासिख मेहमान थे। उन्होने कई किस्मके खास-खास खाने इनके लिये पकवाये। इसलिये वक्ते मामूलीसे कुछ देर हो गई। नासिखने देखा कि हरम सराकी (ज़नानी) ड्योढीसे नौकर अपने-अपने खाने लेकर निकले। बुलाकर पूछा कि ये खाना किसके लिये है? अर्ज़ की हमारा खाना है। फर्माया इधर लाओ। उनमेसे ४-५का खाना सामने रखवा लिया। चाट-पूँछकर बासन हवाले किये।

---

[१]आबेहयात, पृ० ३४५-४६

और कहा कि हमारा खाना आयगा तो तुम खा लेना। मेजबानको खबर पहुँची। इतनेमे वोह आये, यहाँ काम खत्म हो चुका था।"[1]

नासिखको खुदाबख्शकी दौलत मिल गई थी। वह खुशहालीमे जीवन व्यतीत करनेको काफी थी। इसलिए नौकरी करनेकी आवश्यकता ही नही पडी और शायरीकी बदौलत उनकी सर्वत्र आवभगत होने लगी। राजनैतिक षडयन्त्रोसे घबडाकर कुछ दिनो इलाहाबाद चले गये, तो राजा चन्दूलाल वजीरे आजम हैदराबादने बारह हज़ार रुपये भेजकर इन्हे हैदराबाद आनेका निमन्त्रण दिया, परन्तु ये वहाँ नही गये। फिर उन्होने पन्द्रह हज़ार रुपये भेजे और आनेका आग्रह करते हुए लिखा कि "मलिकउल शुअरा (राष्ट्रकवि) का खिताब दिलवा दूँगा। दरबारकी हाज़िरीकी कैद न रहेगी, मुलाकात आपकी खुशीपर रहेगी", परन्तु नासिख हैदराबाद नही गये और वहाँसे आये हुए सत्तार्इस हजार रुपये आवश्यकतानुसार व्यय करते रहे। इसी तरह कई नवाब, रईस, अमीर शिष्य उनकी आवश्यकताओकी पूर्ति करना अपना अहोभाग्य समझते थे। बहुत कम सफर करते थे। फैजाबादसे लखनऊ आ गये थे। यहाँसे केवल इलाहाबाद, बनारस और पटना तक आये गये थे।

स्वाभिमानी इतने थे कि लखनऊके तत्कालीन नवाब गाजीउद्दीन हैदरने अपने वजीरसे कहलवाया कि—"अगर शेख नासिख हमारे दरबारमे आएँ और कसीदा सुनाएँ तो हम उन्हे मलिकउलशुअरा खिताब दे।"

नासिखने सुना तो बिगडकर बोले—"मिर्जा सुलेमान शिकोह[2], बादशाह हो जाएँ तो वे खिताब दे। या गवरमेण्ट इगलिशया खिताब दे। मै नवाबका खिताब लेकर क्या करूँगा?" नवाबके कुपित हो जानेसे

---

[1] आबेहयात, पृ० ३४९

[2] मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह, बादशाह शाहआलमके तृतीय पुत्र थे। रात-दिनके आक्रमणोसे तग आकर लखनऊमे रहने लगे थे।

नासिख़ लखनऊ छोडकर इलाहाबाद तो चले आये, परन्तु नवाबकी खुशा-मद नही की। नवाबकी मृत्यु उपरान्त ही लखनऊ गये। फिर भी कई बार उन्हे राज्याधिकारियोका कोपभाजन होनेके कारण लखनऊ छोडकर इलाहाबाद जाना-आना पडा। मौ० मुहम्मदहुसेन आज़ादने नासिख़के स्वभावके सम्बन्धमे कई घटनाओका उल्लेख किया है—

"नासिख़ खुश अख़लाक थे। मगर अपने खयालातमे इतने महव (तल्लीन) रहते थे कि नावाकिफ शख़्स ख़ुश्क मिजाज या बद्दिमाग समझता था। सैयद महदीहुसेन 'फराग' मरहूम मियाँ बेताबके शागिर्द थे और ज़बाने रेख़्ताके कुहनासाल मश्शाक (पुराने अभ्यासी) थे। वे फर्माते थे कि—एक दिन मै शेख साहब (नासिख़) की ख़िदमतमे गया। देखा कि चौकीपर बैठे नहा रहे है। आस-पास चन्द अहबाब मूढोपर बैठे है। मै सामने जाकर खडा हुआ और सलाम किया। उन्होने फर-माया—क्यो साहब! किस तरह तशरीफ लाना हुआ? मैने कहा कि एक फारसीका शेर किसी उस्तादका है। उसके मायने समझमें नही आते। फर्माया—मे फारसीका शायर नही। इतना कहकर वह और शख़्ससे बात करने लगे। मै अपने जानेपर बहुत पछताया और अपने तईं मलामत करता चला आया।"

२—"एक दिन कोई शख़्स मुलाकातको आये। नासिख़ उस वक़्त चन्द दोस्तोको लिये अँगनाईमे कुर्सियोपर बैठे थे। शख़्स मजकूरके हाथमें छडी थी और इत्तफाकन पॉवके पास एक मिट्टीका ढेला पडा था। वह शगले बेकारीके तौरपर, जैसे कि अक्सर लोगोकी आदत होती है, आहिस्ता-आहिस्ता छडीकी नोकसे ढेलेको तोडने लगे। शेख साहबने नौकरको आवाज़ दी। सामने हाज़िर हुआ। फर्माया कि—मियाँ एक टोकरी मिट्टीके ढेलोकी भरकर इनके सामने रख दो, दिल लगाकर शौक पूरा करे।"

३—"शाहगुलामअज़ीम 'अफज़ल' नासिख़के शागिर्द थे और अक्सर

हाजिरे खिदमत होते थे। एक दिन आप तख्तपर बैठे थे। उसपर सीतल पाटी बिछी थी। अफजल भी उसीपर बैठ गये और उसका एक तिनका तोड़कर चुटकीसे तोडने-मरोडने लगे। शेख साहबने आदमीको बुलाकर कहा—भाई! वह नई झाड़ू जो तुम बाज़ारसे लाये हो, ज़रा ले आओ। उसने हाजिर की। खुद लेकर शाहसाहबके सामने रख दी और कहा—साहबजादे! इससे शगल फरमाइये। फकीरका बोरिया आपके थोडेसे इल्तफात (कृपाओ)से बरबाद हो जायगा। फिर और सीतलपाटी इस शहरमे कहाँ ढूंढता फिरूँगा?"

४—"आगाकल्ब आबिदखाँ फरमाते थे कि—'एक दफे शेख साहबके वास्ते किसी शख्सने दो-तीन चमचे शीशेके तुहफेके तौरपर भेजे। एक अमीरज़ादेने उनमेसे एक चम्मच हाथमे लेकर उसकी तारीफ की। बाते करते हुए चम्मचको ज़मीनसे बजाते रहे। शीशेकी बिसात क्या थी? ठेस ज़्यादा लगी, झटसे दो टुकडे। शेख साहबने दूसरा चमचा उठाकर सामने रख दिया और कहा कि "अब इससे शगल फरमाइये।"

५—"एक रोज़ अपने खानयेबागके बँगलेमे बैठे थे और फिक्रे मज़मूनमे गर्क थे। एक शख्स आकर बैठे। इनकी तबियत परेशान हुई। उठकर टहलने लगे कि यह उठ जाएँ। लाचार फिर आ बैठे, मगर वह (आगन्तुक) न उठे। किसी जरूरतके बहाने नासिख फिर गये कि यह समझ जायेगे। वे फिर भी न समझे। इन्होने चिलमसे चिनगारी उठाकर बँगलेकी टट्टीमे रख दी और आप लिखने लगे। टट्टी जलनी शुरू हुई। वह शख्स घबराकर उठे और कहा कि शेख साहब! आप देखते है यह क्या हो रहा है? इन्होने उनका हाथ पकड़ लिया कि जाते कहाँ हो? अब तो मुझे और तुम्हे जलकर राखका ढेर होना है। तुमने मेरे मजामीनको खाकमे मिलाया है, मेरे दिलको जलाकर खाक किया है। अब क्या तुम्हे जाने दूंगा!"

६—"इसी तरह एक शख्सने बैठकर इन्हे तग किया। नौकरको

बुलाकर नासिखने सन्दूकचा मँगवाया। उसमेसे मकानके कबाले निकालकर उसके सामने रख दिये और नौकरसे कहा—भाई मजदूरोको बुलाओ और असबाब उठाकर ले चलो। इधर वह शख्स हैरान इनका मुँह देखे, उधर नौकर हैरान। आपने कहा—"देखते क्या हो ? मकान पर तो यह कब्ज़ा कर चुके। ऐसा न हो कि असबाब भी हाथसे जाता रहे ?[१]"

नासिख अपने युगके और लखनवी रगके ख्यातिप्राप्त उस्ताद थे। लोग दूर-दूरसे मुलाकातको आते थे, और इनके मुँहसे थोडा-बहुत कलाम भी सुनना चाहते थे, परन्तु नासिख अपना कलाम सहज ही नही सुनाते थे। दीवान सामने रख देते थे, और कह देते थे कि अपनी मनपसन्दके अशआर इसमे देख लीजिये। १०-५ बेमायनी गज़ले बना रखी थी। बहुत आग्रह होनेपर पहले उन्हीके शेर सुनाते थे। श्रोता सुनकर सोचमें पड़ गया तो समझते थे कि वह सुखनफहम (कवितामर्मज्ञ) है और तब उस कविता-पारखीको अपना कलाम सुनाते थे, और यदि ऐसे निरर्थक शेर सुनकर श्रोता वाह-वाह करने लगता, झूमने लगता, तो उसे मूर्ख समझकर इसी तरहके २-४ शेर और सुना दिया करते थे। जैसे—

आदमी मखमलमें देखे मोर्चे बादाममें।
टूटी दरियाकी क़लाई ज़ुल्फ उलझी बाममें॥

तूने नासिख वोह गज़ल आज लिखी है कि हुआ।
सबको मुश्किल यदेबैज़ामें सुखनदाँ होना॥

नासिख सहृदय और मुन्सिफ मिजाज थे। एक बार सैयद मुहम्मदखाँ 'रिन्द'की अपने उस्ताद (आतिश)से अनबन हो गई। 'नासिख' 'आतिश'के प्रतिद्वन्द्वी समझे जाते थे। अत. 'रिन्द'की अभिलाषा थी कि वह 'नासिख'के

---

[१] आबेहयात, पृ० ३६३-६४

शिष्य बनकर 'आतिश'को नीचा दिखाएँ। कोई और होता तो चट पीठ थपक देता और—दुश्मनका दुश्मन अपना दोस्त होता है—इस कहावतके अनुसार रिन्दके पुट्ठेपर हाथ धर देता। परन्तु नासिख़को रिन्दकी यह हरकत पसन्द न आई। फर्माया—"आप दस बरससे ख़्वाजा (आतिश) साहबसे इसलाह लेते हैं। आज उनसे यह हाल है, तो कल मुझे आपसे क्या उम्मीद हो सकती है? अलावा बरआँ आप ख़्वाजा साहबसे कुछ सलूक भी करते (आर्थिक सहायता देते) है। वह सिलसिला क़तअ (बन्द) हो जायेगा। उसका वबाल (पाप) किधर पडेगा?" नासिख़के इस कथनका 'रिन्द'पर इतना प्रभाव पडा कि उन्होने फिर अपने उस्ताद-को मनाकर उनकी कृपा प्राप्त करली।

इलाहाबादमे मुशायरा था। नासिखने अपनी गज़लका मतला पढा—

दिल अब महवे तर-सा हुआ चाहता है।
यह काबा कलीसा हुआ चाहता है॥

एक लडकेने उचककर देखा तो उसकी भोली-भाली शक्ल और उसकी उत्सुकतासे प्रकट होता था कि वह भी कुछ कहना चाहता है, परन्तु सामने आते हुए शर्माता है। लोगोके उत्साह दिलानेपर उसने हिम्मत बाँधकर गज़ल पढी तो पहले मतलेपर ही वाह-वाहकी धूम मच गई।

दिल उस बुतपै शैदा हुआ चाहता है।
ख़ुदा जाने अब क्या हुआ चाहता है॥

'नासिख़'ने भी मुक्त कण्ठसे प्रशसा की और फर्माया—"भाई यह फैज़ाने इलाही (ईश्वरीय अनुकम्पा) है। इसमें उस्तादीका ज़ोर नही चलता। तुम्हारा मतला मतलये आफताब (सूर्यकी तरह ऊँचा और चमकीला) है। मै अपना पहला मिसरा अपनी गज़लसे निकाल डालूँगा।"

शाह नसीरके इस मतलेकी अक्सर सराहना करते थे और कहा

करते थे कि अगर 'नसीर' तखल्लुस न होता तो यह मतला लिखना नसीब न होता।

ख्याले जुल्फेदुतामें 'नसीर' पीटाकर।
गया है साँप निकल, अब लकीर पीटाकर॥

एक बार किसी रईसके यहाँ गये तो उसका हसीन लडका सामने पलगपर लेटा हुआ था। कुछ सोने और जागनेकी मध्यावस्थामे था कि उसकी यह अदा मनको भा गई। फर्माया—

हैं चश्मे नीमबाज,[1] अजब ख्वाबे नाज है।

परन्तु दूसरा मिसरा मनके मुताबिक नही लगा। घर आकर इसी उधेडबुनमे थे कि इनके शिष्य ख्वाजा 'वजीर' आ गये। उनके सबब पूछने और इनके बयान करनेपर सयोगकी बात है कि वजीरके मुँहसे बे-साख्ता निकल पडा—

हैं चश्मे नीमबाज अजब ख्वाबे नाज है।
फित्ना तो सो रहा है, दरेफित्ना बाज[2] है॥

इतना चुस्त और फडकता हुआ मिसरा सुनकर नासिखने 'वजीर'-की अत्यन्त प्रशसा की। वे इस बातको भूल गये कि जो मिसरा मुझसे न लगा वही मेरे शिष्यने लगा दिया। भला यह अपने मनमे मुझे कितना अपूर्ण समझता होगा?

नासिखकी दैनिक चर्य्या इस प्रकार थी—

सूर्योदयसे पूर्व उठकर व्यायाम करके स्नान करते, फिर अपने मित्रो और शिष्योसे मिलते। बारह बजे भोजन करके थोडी देर आराम करते। तीसरे पहर फिर आये हुए मित्रो और शिष्योसे शेरो-सुखनकी चर्चाएँ

---

[1]अधखुली आँख, [2]खुला हुआ।

गरम रहती। अपनी गजल पढते और शिष्योकी गजलोपर इसलाह फर्माते।

नासिख लखनऊ स्कूलके सबसे बडे उस्ताद माने गये है। लखनवी ख़ारजी रगके यही आविष्कारक समझे गये है। तारीखे अदबे उर्दूके विद्वान लेखकके शब्दोमे—"शेख नासिख एक मुसल्लिमउलसबूत (प्रामाणिक) उस्ताद थे, जिनको जबानेउर्दू-फारसीपर कुदरत हासिल थी (अधिकार प्राप्त था)। लखनऊके शायरोमे उनका बहुत बडा असर था। किसी मुहावरे या लफ्जकी सेहतके मुताल्लिक इनका कलाम सनदमे पेश किया जाता था। नासिखके कलाममे यह नुक्स है कि इन्होने अलफाजकी तलाश और जुस्तजूपर जरूरतसे ज्यादा तवज्जह की और बदनसीबीसे कही-कही ऐसे मुगलक और अदक (क्लिष्ट, अनभ्यस्त) अलफाज़ फारसी-अरबी दाखिल किये जो गजलके शायाँ (योग्य) नही है। इसी वजहसे इनका कलाम हुस्नेजाहिरी (बाह्य सौन्दर्य्य) से तो आरास्ता (भूषित) है, मगर दिलचस्पी और तासीरसे ख़ाली है।

"नासिखकी गज़ले शानदार अलफाज और तरह-तरहकी तशबीहात (उपमाओ)का मजमूआ होती है। मगर जज़्बात (भावो) और असरात (प्रभाव)से ख़ाली है। तसन्नोह (तकल्लुफ, कृत्रिमता) इनके कलामका असल जौहर है। तशबीहे अक्सर नई मगर अजीब होती है। हुस्ने जाहिरी बजाय गरज सानवीके इनके यहाँ गरज असली है।[1] जिसका नतीजा यह है कि अलफाज़की मुनासबतकी बहुतायतमे शेरका मजमून खब्त हो जाता है।

"नासिखके कलाममे वही नकाइस (दोष) है जो आमतौरपर उनके

---

[1]अर्थात् कविताके अतरगकी ओर ध्यान न देकर उसके बाहरी रूप-रगको सजानेमे ही अपने कमालकी चरमसीमा समझते थे।

ईजादकरदा तर्जमे पाये जाते हैं। यानी किसी उम्दा खयालका उनके यहाँ पता नही। उनके किसी शेरपर पढनेवालेका दिल नही फडकता। न इसमे किसी किस्मका इनअकास और बारीकनजरी है। अशआर ठस और बेलोच होते है।"[१]

नासिखने उर्दू-शायरीमे निम्न परिवर्तन, परिवर्द्धन किये—

१—अभीतक उर्दूका नाम रेख्ता प्रचलित था। नासिखने रेख्ताके स्थानपर उर्दू नामका प्रसार किया। यह उर्दू नाम लखनऊमे तो चालू हो गया, परन्तु दिल्लीमे बहुत अर्सेतक पुराना नाम रेख्ता ही प्रचलित रहा।

२—इकहरी रदीफोकी गज़ले कही। जैसे—का, को, है, नही, से, ने पर, तक वगैरह।

३—क्रियाएँ—आये है, जाये है, की बजाय आता है, जाता है प्रयोगमे लाये। आइयाँ, दिखाइयाँ, आदि क्रियाएँ तर्क कर दी।

४—अरबी-फारसी शब्दो, उपमाओ, उदाहरणो और अलकारोकी ओर विशेष ध्यान दिया।

५—हिन्दी शब्द अनावश्यक वहिष्कृत कर दिये।

६—शब्दोके शुद्ध और उचित प्रयोगके लिये कठिन नियम बनाये।

७—गजलका क्षेत्र विस्तृत किया।

८—खारजी शायरीका आविष्कार किया।

नासिखने ५० वर्षकी आयुमे लखनऊमे समाधि पाई। उनके तीन दीवान पाये जाते है। इनके बहुतसे शिष्य थे, जिनमे वज़ीर, बर्क, रश्क, बहर, मुनीर, महर, नादर, आबाद, ताहिर, काफी प्रसिद्ध हुए है।

---

[१] तारीखे अदबे उर्दू, पृ० २६८-७१।

किसकी परियाँ ? शहेजन्नात[1] को भी आठ पहर।
है यह हसरत कि सगेकूचए जानाँ[2] होता॥
ख़ूँ रुलाता, वही नासूर बनाकर गरदूँ[3]।
जख़्म भी गर मेरे तनपर कभी ख़न्दाँ[4] होता॥
ऐ अजल[5]! एक दिन आखिर तुझे आना है, वले[6]
आज आती शबेफ़ुरक़तमे[7] तो अहसाँ होता॥
कौन है जो नहीं मरता है तेरे क़ामतपर[8]।
क्यों न हर सरवेचमन[9] क़ालिबेबेजाँ[10] होता॥
ऐ बुतो! होती अगर मेहरोमुहब्बत तुममें।
कोई काफ़िर भी न वल्लाह मुसलमाँ होता॥

लाया वह साथ ग़ैरको मेरे जनाज़ेपर।
शोला-सा एक जेबे कफ़नसे निकल गया॥
अबकी बहारमें यह हुआ जोश ऐ जुनूँ!
सारा लहू हमारा बदनसे निकल गया॥

वाइज़ा! मसजिदसे अब जाते हैं मयख़ानेको हम।
फेंककर ज़र्फ़ेवज़ू[11] लेते हैं पैमानेको हम॥

---

[1]जन्नतके बादशाहको,
[2]प्रेयसीके कूचेका कुत्ता;
[3]आसमान;
[4]मुस्कराता,
[5]मृत्यु;
[6]लेकिन,
[7]विरह-रात्रिमे,
[8]कदपर,
[9]सरोका पेड़;
[10]प्राणरहित;
[11]नमाज़के लिए हाथ-मुँह धोनेवाला बर्तन।

क्या मगस[1] बैठे भला उस शोलारूके[2] जिस्मपर ।
अपने दाग़ोंसे जला देते है परवानेको हम ।।
तेरे आगे कहते है गुल खोलकर बाज़ूए बर्ग[3] ।
"गुलशनेआलमसे[4] है तैयार उड़ जानेको हम" ।।
कौन करता है बुतोके आगे सजदा ज़ाहिदा !
सरको दे-दे मारकर तोड़ेंगे बुतख़ानेको हम ।।
बाँधते है अपने दिलमें ज़ुल्फेजानाँका ख़याल ।
इस तरह ज़ंजीर पहनाते है दीवानेको हम ।।
अक़्ल खो दी थी जो ऐ 'नासिख़' ! जनूनेइश्कने ।
आश्ना[5] समझा किये इक उम्र बेगानेको[6] हम ।।

मिल गया ख़ाकमें पिस-पिसके हसीनोपर मैं ।
क़ब्र पर बोएँ कोई चीज़ हिना पैदा हो ।।
अश्क थम जाएँ जो फ़ुरक़तमें तो आहें निकले ।
ख़ुश्क हो जाये जो पानी तो हवा पैदा हो ।।

जो उस परीसे शबेवस्लमें[7] रुकावट हो ।
मुझे भी एक जनाज़ा[8] हो या छपरखट हो ।।
न मेरे पाँव हों ज़ंजीरके कभी शायक़[9] ।
जो उसके काकुलेपेचाँकी[10] हाथमें लट हो ।।
मजाल क्या कि तेरे घरमें पाँव मैं रक्खूं ।
यह आरज़ू है मेरा सर हो तेरी चौखट हो ।।

---

[1]मक्खी; [2]अग्निके समान चमकदार; [3]पत्तियाँ रूपी बाहे;
[4]संसार रूपी उद्यानसे; [5]अपना मित्र;
[6]ग़ैरको; [7]मिलन-रात्रिमे; [8]अर्थी;
[9]अभिलाषी; [10]ज़ुल्फोंकी ।

हुजूम रखते हैं जाँबाज़ यूँ तेरे आगे।
जुआरियोंका दिवालीपै जैसे जमघट हो॥
लिपटके यारसे सोता हूँ, माँगता हूँ दुआ।
तमाम उम्र बसर यारब! एक करवट हो॥
नसीमेआहके[1] झोंकेसे खोल दूँ दममें।
भिडा हुआ तिरे दरवाज़ेका अगर पट[2] हो॥
जलाओ ग़ैरोंको मुझसे जो गरमियाँ करके।
तुम्हारे कूचेमें तैयार एक मरघट हो॥
मैं जाँ-ब-लब[3] हूँ गला काटो या गलेसे लगो।
जो इसमें आपको मंजूर हो सो झटपट हो॥
करें वोह ज़िक्र ख़ुदा ऐ सनम! भला किस वक़्त?
जिसे कि आठ पहर तेरे नामकी रट हो॥
जो दिलको देते हो 'नासिख़'! तो कुछ समझकर दो।
कहीं यह मुफ़्तमें देखो न माल तलपट हो॥

ख़ाकमें मिल जाइये ऐसा अखाड़ा चाहिये।
लड़के कुश्ती देवेहस्तीको[4] पछाड़ा चाहिये॥
और तख़्तोंकी हमारी क़ब्रमें हाजत नहीं।
ख़ानयेमहबूबका[5] कोई किवाड़ा चाहिये॥

---

[1]स्वासोकी हवासे;
[2]किवाड़;
[3]प्राण कठमे है;
[4]शरीररूपी असुरको;
[5]माशूकके दर्वाज़ेका।

है शबेमहताब[1] फुरक़तमें[2] तक़ाज़ाएजुनूँ[3]।
चादरेमहबूबको[4] भी आज फाडा चाहिये॥
इन्तहायेलाग़रीसे[5] जब नज़र आया न मैं।
हँसके वोह कहने लगे "बिस्तरको झाड़ा चाहिये"॥
कोई सीधी बात साहबकी नज़र आती नहीं।
आपकी पोशाकको कपडा भी आड़ा चाहिये॥
आँसुओसे हिज्रमें बरसात रखिये सालभर।
हमको गरमी चाहिये हरगिज़ न जाड़ा चाहिये॥
मरगया हूँ हसरते नज़्ज़ारये अबरूमें[6] मैं।
ऐनकाबेमें[7] मेरे लाशेको गाड़ा चाहिये॥
मुहतसिबको[8] हो गया आसेब जो तोडा है ख़ुम।
जूतियोसे मयकशो! जिन आज झाड़ा चाहिये॥
जल्द रंग ऐ दीदएख़ूँबाज़[9] अब तारे[10]निगाह।
है मुहर्रम उस परीपैकरको नाडा चाहिये॥
लड़ते है परियोसे कुश्ती पहलवाने इश्क है।
हमको नासेह! राजा इन्दरका अखाड़ा चाहिये॥

—आबेहयातसे

---

[1]चाँदनी रात, [2]विरहमे,
[3]दीवानगीका तकाजा है;
[4]प्रेयसीकी चादर को;
[5]अतीव निर्बलताके कारण,
[6]प्रेयसीके भवोको देखनेकी अभिलाषामे।
[7]क्योकि काबेका महराब भी भवोकी तरह ख़मदार है।
[8]उपदेशकको, [9]रक्तभर नेत्र;
[10]दृष्टिरूपी तागा।

रूएजानाँका[1] तसव्वुरमे[2] जो नज्जारा हुआ।
दिलमें था जो दागेहसरत[3] अर्शका तारा[4] हुआ॥
चश्मेबद्दूर[5]! आज क्या आते नजर है गाल साफ।
सब्जयेख़त[6] क्या ग़ज़ालेचश्मका[7] चारा हुआ॥
पीठ पीछे मेरे बद कहनेसे जाहिद! यह मिला।
पीठपर बारेगुनहका जमअ़ पुश्तारा हुआ॥
जब नहानेको हुआ उरियाँ[8] वोह पुतला नूरका।
हौज़में रोशन बरगे शमअ़ फव्वारा हुआ॥
दोस्तो! जल्दी ख़बर लेना कहीं 'नासिख' न हो।
कत्ल आज उसकी गलीमें एक बेचारा हुआ॥

—तारीख़े अदबे उर्दूसे

सैंकड़ो आहें कि उनपर दख्ल क्या आवाज़का?
तीर जो आवाज दे है, नुक़्स तीरन्दाज़का॥
मानयेसहरानवर्दी[9] पाँवकी ईज़ा[10] नही।
दिल दुखा देता है लेकिन टूट जाना ख़ारका[11]॥

सियहबख़्तीमें[12] कब कोई किसीका साथ देता है।
कि तारीकीमे[13] साया[14] भी जुदा रहता है इन्साँसे॥

---

[1]प्रेयसीका, [2]ध्यानमे, [3]अभिलाषाओका दाग;
[4]आकाशका नक्षत्र, [5]ईश्वर करे, नजर न लगे,
[6]ठोडीके बाल, [7]हिरनरूपी आँखोका चारा (भोजन);
[8]नग्न; [9]जगलोमे भटकना रोकने वाली;
[10]तकलीफ, [11]काँटेका,
[12]अभाग्यरूपी अँधेरेमे; [13]अँधेरेमे,
[14]परछाईं।

फ़ुरक़त क़ुबूल रश्कके सदमे नहीं क़बूल।
क्या आएँ हम ? रकीब तेरी अजुमनमें है ॥
ताब सुननेकी नही, बहरेख़ुदा ख़ामोश हो।
टुकडे होते है जिगर 'नासिख़' ! तेरी फरियादसे ॥
ख्वाब ही में नज़र आता वोह शबेहिज्र कही।
सो मुझे हसरते दीदारने सोने न दिया ॥
मैं ख़ूब समझता हूँ मगर दिलसे हूँ नाचार।
ऐ नासहो ! बे फायदा समझाते हो मुझको ॥
—इन्तकादियात, भा० २

हम-सा कोई गुमनाम ज़मानेमें न होगा।
गुम हो वह नगी जिसपै ख़ुदे नाम हमारा ॥
इश्क़ जब कामिल हुआ, है ऐनेहुस्न[1]।
आगमें पड जाय जो शै, आग है ॥
नही मुमकिन ख़ुमेगरदूँमें[2] ठहरना मेरा।
मस्तिये इश्क़से वोह बादए सरजोश हूँ मैं ॥
झुक-झुकके शीशे मिलते है, हँस-हँसके जामेमय।
यह मयकदा मुकाम नहीं है ग़रूरका ॥
सौदाएहुस्नेग़ैर[3] कहाँ है बरगेगुल[4]।
अपने ही हुस्नपर मै गिरीबॉदरीदा[5] हूँ ॥
हरगिज़ मुझे नज़र नहीं आता वजूदेग़ैर[6]।
आलम तमाम एक बदन है मै दीदा[7] हूँ ॥

---

[1]सौन्दर्य; [2]आस्मान रूपी प्यालेमे;
[3]किसी और के सौन्दर्य पर आसक्ति; [4]फूलकी तरह; [5]फटे वस्त्र;
[6]किसी और का अस्तित्व; [7]आँख।

आलम है महव आइना ख़ानेकी सैरमें।
अपने सिवा किसीके कोई रोबरू[1] नहीं॥

जोशेहुबाबे बादा[2] नहीं ख़ुममें[3] साकिया!
मीनाएआसमाँमें[4] है अख़्तर[5] भरें हुए॥

इश्कको किसके दिलसे लाग नहीं।
कौन-सा घर है जिसमें आग नहीं॥

आये हैं आलमेबालासे सदा—"माँगे सो दूँ"।
इम्तहाँको भी मैं लेकिन कभी साइल[6] न हुआ॥

दम बुलबुलेअसीरका तनसे निकल गया।
झोका जहाँ नसीमका सनसे निकल गया॥

चला अदमसे मैं जबरन तो बोल उठी तक़दीर।
बलामें पड़नेको कुछ अख़्तियार लेता जा॥

इन्सानको इन्सानसे कीना[7] नहीं अच्छा।
जिस सीनेमें कीना हो वोह सीना नहीं अच्छा॥

'नासिख़' है अब आठों पहर मश्क़ेतसव्वुर[8] इस क़दर।
जिस सिम्त[9] करता हूँ नज़र दिलदार आता है नज़र॥

सरपै सोज़ाँ[10] दाग़े सौदा, पाँवमें ज़ंजीरेअश्क[11]।
तेरी महफ़िलमें खड़ी है सूरते दीवाना शमअ॥

रश्कसे नाम नहीं लेते कि सुन ले न कोई।
दिल ही दिलमें हम उसे याद किया करते हैं॥

---

[1]सामने, [2]शराबके बुलबुलोका जोश, [3]शरावके मटकेमे
[4]आसमानके पात्रमे, [5]तारे; [6]याचक;
[7]द्वेष, [8]ध्यानका अभ्यासी; [9]ओर;
[10]जलता हुआ; [11]अश्रु रूपी ज़ंजीर।

पेश्तर नशयेईजादसे बेहोश हूँ मैं।
ख़ुमे गरदूँ भी न था जबसे कि मयनोश हूँ मैं॥
जो बेगुनाह है उनका भी ख़ूँ हराम नहीं।
मुक़ामे इश्क़ है, काबेका यह मुक़ाम नहीं॥
अपनी सूरतपर किया पैदा उसे अल्लाहने।
क्यो सज़ावारेपरस्तिश[1] सूरतेआदम[2] नहीं?

क्योकर कहूँ आरफे ख़ुदा हूँ?
आगाह नहीं कि आप क्या हूँ॥
आईनये दिलमें है तेरा अक्स।
दिनरात मै तुझको देखता हूँ॥
ज़िन्दगी ज़िन्दादिलीका है नाम।
मुर्दादिल ख़ाक जिया करते है?

दौलते दीदार जाये, पर अदब जाने न पाय।
बहरेताज़ीम[3] उठ खड़ा हूँ तुम जो आओ ख़्वाबमें॥
दिल दौडता है कूचये दिलदारकी तरफ।
जबसे नहीं है ताकते रफ़्तार पॉवमें॥
दिल बना आशिकीमें ख़ुदमुख़्तार।
और मजबूर कर दिया हमको॥
साकिने दिल तो हुआ, आँखोंको तरसाता है क्यो?
जिस क़दर दिल साफ है, वैसी निगह भी पाक है॥
वही आशिक़ है जो आलमको मुरक़्क़अ[4] समझे।
हर तरफ पेशेनज़र यारकी तसवीर रहे॥

---

[1]उपासनाके योग्य; [2]मनुष्यकी आकृति;
[3]सम्मानके लिए; [4]चित्र संग्रह।

जान क्या मुफ़्त गई सैदगहे[1] 'आलममें।
नीमजाँ[2] करके मुझे सैदफिगन[3] भूल गये॥

क्या नज़रमें समा गया वोह गुल।
परदये चश्म भी गुलाबी है॥

है मेरा मकसूद[4] हासिल हर जगह।
हर जगह अब मंजिलेमकसूद है॥

तू नज़र आता नहीं लेकिन मुनव्वर[5] बाम[6] ह।
जलवा तेरा भी बरंगे आफ़ताबे शाम है॥

पहरों फिर बात मेरे मुँहसे निकलती ही नहीं।
याद आ जाती है तेरी जो कोई बात मुझे॥

जुनूँ! पसन्द मुझे छाँव है बबूलोंकी।
अजब बहार है इन जर्द-जर्द फूलोंकी॥

पुर है शीशे तो जाम ख़ाली है।
गर्दिशे आसमाँ निराली है॥

सब तरफसे दीदये बातिनको[7] जब यकसू[8] किया।
जिसकी ख़्वाहिश थी वही हरसू नज़र आने लगा॥

वोह नहीं भूलता जहाँ जाऊँ।
हाय, मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?

—छानबीनसे

२० सितम्बर १९५०

---

[1]शिकार स्थलमे [2]अर्द्धमृतक; [3]शिकारी, [4]इष्ट, [5]प्रकाशमान;
[6]ऊपरका कमरा, छत, [7]हृदयकी आखको, [8]एकाग्रचित्त।

४१

आतिश

ख्वाजा हैदरअली **'आतिश'**के पिता ख्वाजा **अलीबख्श** दिल्लीके रहनेवाले थे। मगर यह भी औरोकी तरह दिल्ली छोडनेपर मजबूर हुए। दिल्लीसे नवाब शुजाउद्दौलाके शासनकालमे वे फैजाबाद गये और वही आतिशका जन्म हुआ। बाल्यावस्थामे ही पिताकी मृत्यु हो जानेसे आतिशपर कोई अकुश नही रहा और वे कुसगतिमे पड गये, परन्तु जल्दी ही सँभल गये और **नवाब मुहम्मदअलीकी** मुलाज़मतमे उनके साथ लखनऊ चले गये और जीवन पर्यन्त फिर लखनऊमे ही रहे।

आतिश जब लखनऊ पहुँचे तो वहाँ **जुरअत, इशा** और **मुसहफी**की धूम मची हुई थी। मुशायरोमे आने-जानेसे इनके कवि-हृदयमे भी हिलोर उठने लगी। ये **इशा** और **नासिख**की तरह विद्वान तो न थे, परन्तु प्रकृतिकी तरफसे कवि-हृदय लेकर आये थे। मामूली स्कूली किताबे थोडी-सी पढी थी। मगर पृथ्वीसे स्वय प्रवाहित होनेवाले चश्मेमे और मनुष्य द्वारा निर्मित तालाबमे कोई समानता नही। प्राकृतिक अकृतिम चश्मेकी तरह इनका कवि-हृदय भी कल-कल करता हुआ प्रवाहित होने लगा और **मुसहफी**-जैसा श्रेष्ठ कलाकार सौभाग्यसे गुरू प्राप्त हो गया। अत शायरीके मैदानमे आतिश दिन-दूनी, रात-चौगुनी छलाँगे भरने लगे। अपने उस्तादकी जीवितावस्थामे ही आस्माने शायरीपर चमकने लगे, और अपने अर्वाचीन युगके लखनवी शायरोमे सर्वश्रेष्ठ समझे गये।

जिस प्रकार दिल्लीके शायरोमे **मीर, गालिब, मोमिन** अमर शायर

हुए है और उनकी समानता करनेवाला आजतक कोई शायर नही हुआ, उसी प्रकार **आतिश** भी लखनऊके सर्वश्रेष्ठ शायर समझे जाते है।

आतिश साधारण स्थितिके थे। पचास रुपये मासिक बादशाहने नियत कर दिये थे। उसीमे सन्तोषपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे। जीवनभर न किसीसे एक पैसेकी याचना की और न किसीकी खुशामदमे कभी एक कसीदा लिखा। न किसीकी नौकरी की, न इशा और जुरअतकी तरह अपनी आत्माको बेचा। स्वाभिमानमे कभी बाल न आने दिया। अपनी वज़ह-कतअके पूरे पाबन्द थे। टूटे-फूटे एक किरायेके मकानमे शायरोका यह बेताज बादशाह बोरिया बिछाये बैठा रहता था।

आतिशके जो अमीर शिष्य थे, वे भी आर्थिक सहायता करते रहते थे। मगर इन्होने न तो कभी सहायताके लिए सकेत किया और न अपने गरीब शिष्योसे इन अमीर शिष्योको कभी तरजीह दी। रईस-गरीब सभी उसी बोरियेपर एक साथ बैठते थे।

आतिशकी गजलका एक दीवान मिलता है, जो भाषाकी दृष्टिसे **नासिख**से किसी तरह कम नही और काव्य-कला तथा भावोकी दृष्टिसे कई गुना श्रेष्ठ और मोहक है। इनके शिष्योमे मीर **दोस्तअली खलील**, मीर **वज़ीर**, **अलीसबा**, नवाब **मुहम्मदअलीखाँ**, **रिन्द**, आगाहिज्जो **शरफ**, नवाबमिर्ज़ा **शौक** और प० **दयाशकर नसीम** लखनऊ स्कूलके बहुत मशहूर शायर हुए है।

आतिशकी गज़लोमे कृत्रिमता और बनावट नही मिलती। आम, हलके, ज़लील और कमीने भाव उनके यहाँ नही है। उन्होने व्यर्थकी उपमाओ, अलकारोसे अपने कलामको विकृत नही किया है। उनके शब्द अँगूठीमे हीरेकी तरह जडे हुए नज़र आते है। उनके कलाममे सगीत है, प्रवाह है, कला है, सरलता है, और मुहावरोका यथावश्यक

उपयोग है। आतिशने अपने हृदयगत भावोको मर्मस्पर्शी ढगपर सरल और प्रवाही भाषामे व्यक्त किया है।

नासिख और आतिश दोनो ही इस अर्वाचीन युगमे लखनऊके अत्यन्त ख्यातिप्राप्त शायर ही नही, शायरोके मुसल्लिमउलसबूत उस्ताद हुए है। अपने युगमे तो इनकी तूती बोलती ही थी, वर्तमानमे भी गज़लकी दुनियामे इनकी धाक ज्योकी त्यो बैठी हुई है। यद्यपि वर्तमानमे **नासिख**के कलामकी पूछ नही है, उनका **खारजी रंग** शायरीसे वहिष्कृत हो गया है और अब लखनवी या देहलवी शायर खारजी रगमे गजल नही कहते है, परन्तु उस अर्वाचीन युगमे उनका यह खारजीरग बहुत मकबूल था। यहाँतक कि नवाब **मुस्तफाखाँ शेफ़्ताने** अपने तजकरेमे **नासिखको आतिश**पर फौकियत दी है, हालाँकि **मिर्ज़ा गालिब** जैसे अमर शायर **नासिख**से **आतिश**को ही श्रेष्ठ समझते थे और सचमुच आतिश भावोकी बन्दिश, भाषाके माधुर्य्य, और विचारोकी उच्चताके कारण **नासिख**से कही श्रेष्ठ है। नासिखके यहाँ दिखावटी शानदार शब्दो, उपमाओ, अलकारोकी ऐसी भूलभुलैया है कि आदमीका दम घुटने लगता है। आतिश इन दोषोसे मुक्त है।

आतिशके जर्बुलमसल शेर—

आये भी लोग बैठे भी, उठ भी खड़े हुए।
मैं जा ही ढूँढ़ता तेरी महफिलमें रह गया॥

न पूछ हाल मेरा चोबेख़ुश्के[1] सहरा हूँ।
लगाके आग मुझे कारवाँ[2] रवाना हुआ॥

मौत माँगूँ तो मिले आरज़ूए ख़्वाब मुझे।
डूबने जाऊँ तो दरिया मिलें पायाब[3] मुझे॥

और कोई तलब इबनाएज़मानेसे[4] नहीं।
मुझपे अहसाँ जो न करते तो यह अहसाँ होता॥

ज़मीनेचमन गुल खिलाती है क्या-क्या?
बदलता है रंग आसमाँ कैसे-कैसे?

फसले बहार आई, पियो सूफियो शराब।
बस हो चुकी नमाज़, मुसल्ला[5] उठाइये॥

ख़ुशीसे अपनी रुसवाई गवारा हो नहीं सकती।
गरीबाँ फाडता है तंग जब दीवाना होता है॥

सफर है शर्त, मुसाफिरनवाज़[6] बहुतेरे।
हज़ार-हा शजरेसायादार[7] राहमें है॥

---

[1]जगलकी सूखी लकडी, [2]काफला, यात्रीदल;
[3]केवल टख़नो तक गहरा; [4]ससारके मित्रोसे,
[5]वह चटाई या दरी जिसपर बैठकर नमाज़ पढी जाती है,
[6]यात्रीको सुविधा पहुँचानेवाले, [7]छायावाले पेड।

बहुत शोर सुनते थे पहलूमें दिलका।
जो चीरा तो एक क़तरयेख़ूँ न निकला॥

बागेजहाँको[1] याद करेंगे अदममें[2] क्या?
क़ुंजेकफससे[3] लग रहे आशियाँमें[4] हम॥

इस बलाएजाँसे आतिश! देखिये क्योकर निभे?
दिल सिवा शीशेसे नाज़ुक, दिलसे नाज़ुक ख़ूएदोस्त[5]॥

तुम फातिहा भी पढ चुके हम दफ़्न भी हुए।
बस, ख़ाकमे मिला चुके, चलिये सिधारिये॥

तबलो अलम ही पास है अपने न मुल्कोमाल।
हमसे ख़िलाफ होके करेगा ज़माना क्या?

लगे मुँह भी चिडाने देते-देते गालियाँ साहब।
ज़बाँ बिगड़ी तो बिगड़ी थी, ख़बर लीजे दहन[6] बिगड़ा॥

किसीने मोल न पूछा दिलेशिकस्ताका[7]।
कोई ख़रीदके टूटा पियाला क्या करता?

काम हिम्मतसे जवाँमर्द अगर लेता है।
साँपको मारके गजीनयेज़र[8] लेता है॥

चाल है मुझ नातवाँकी[9], मुर्ग़े बिस्मिलकी[10] तडप।
हर कदमपर है यकीं, याँ रह गया वाँ रह गया॥

---

[1]ससाररूपी उद्यानको, [2]परलोकमे, [3]बन्दी-गृहसे
[4]घोसला, निवासस्थानमे, [5]प्रेयसीका स्वभाव,
[6]मुँह, [7]टूटे दिलका,
[8]गडा धन, [9]निर्बलकी,
[10]घायल पक्षीकी।

बयाँ ख़्वाबकी तरह जो हो रहा है।
यह क़िस्सा है जबका कि 'आतिश' जवाँ था ॥

इश्किया कलाम—

एक शब बुलबुले बेताबके जागे न नसीब।
पहलुए गुलमें कभी ख़ारने सोने न दिया ॥
तकियातक पहलूमें उस गुलने न रक्खा 'आतिश' !
गैरको साथ कभी यारने सोने न दिया ॥

कैसी-कैसी सूरतोंके अपने दिलमें दाग़ है।
इस मुरक़्क़ेमें[1] भी है क्या-क्या वरक तसवीरका ॥

फूँक आशियाँ हमारा ऐ बर्क़आतिशेगुल !
रहनेके काबिल अपने यह बोस्ताँ न ठहरा ॥

बग़लमें लेके यूसुफको अकेला वाँसे मैं गुज़रा।
कदम रखते हुए जिस रास्तेमें कारवाँ खटका ॥

रंग बदला नज़र आता है हवाका मुझको।
गुले ताज़ा कोई इस बाग़में ख़न्दाँ[2] होगा ॥

नागुफ़्तनी[3] है हालेबहारोख़िज़ानेबाग़[4]।
इक ज़ख़्म है कि ख़ुश्क हुआ और नम हुआ ॥

काटकर पर मुतमईन[5] सैयाद बेपरवा न हो।
रूह बुलबुलकी इरादा रखती है परवाज़का[6] ॥

---

[1]चित्रसग्रहमे,
[2]हँसता हुआ, विकसित,
[3]न कह सकने योग्य,
[4]बागकी बसन्त और पतझडका हाल,
[5]सन्तष्ट;
[6]उड निकलनेका।

सोरिशेइश्क़में[1] यह दिल ही है क़ायम 'आतिश' !
पानी हो-होके बहा करता जो पत्थर होता ॥

सुबह होती नज़र आती नही हरगिज़ 'आतिश' !
बढ़ गई रोज़ेकयामतसे मगर[2] आजकी रात ॥

मश्शाक़ेदर्देइश्क़[3] जिगर भी है दिल भी है ।
खाऊँ किधरकी चोट बचाऊँ किधरकी चोट ॥

वस्लमें हिज्रका धडका-सा लगा रहता है ।
शामसे फिरती है आँखोमें मेरी सूरतेसुबह ॥

हमसे ख़िलाफ नाहक़ सैयाद ओ बागबाँ है ।
नालोसे अपने बिजली किस दिन गिरी चमनपर ?

बागबाँ ! कैसी बहार आई है, क्या आलम है ?
नज़र आते है चमनमें ख़सोख़ाशाक[4] हनूज़ ?

आइना देखनेका गुज़रता नहीं ख़याल ।
अपनी ख़बर नही उन्हें, मेरी ख़बर कहाँ !

शराबेबेख़ुदी[5] ऐसी पिला दी सागरेगुलने ।
रहे सैयादसे मुर्ग़ेचमन गाफिल गुलिस्ताँमें ॥

अल्लाहरे बेनियाज़िएमहबूब[6], आफरी[7] !
दिलसे क़रीब होके कोई दूर जब रहे ॥

---

[1] प्रेमके झमेलेमे,
[2] शायद,
[3] प्रेमके गम खानेका अभ्यस्त;
[4] फूस और तिनके,
[5] तन्मयताकी शराब,
[6] प्रेयसीकी उपेक्षा;
[7] धन्य है ।

किसीका हो रहे 'आतिश' ! किसीको कर रखे ।
दो रोजा उम्रको इन्सान रायगाँ[1] न करे ।।

तसव्वुरसे किसीके की है मैंने गुफ़्तगू बरसो ।
रही है एक तसवीरे ख़याली रूबरू[2] बरसो ।।

रहती है आँखे बन्द तसव्वुरमें यारके ।
तारेनिगहसे अपने बँधा है ख़याले दोस्त ।।

जमालयाती शेर--

सामने आइना रखते तो गश आ-आ जाता ।
तुमने अन्दाज़ नही अपनी अदाका देखा ।।

चमक-चमकके निकलनेका हाल खुल जाता ।
दिखाऊँ किसको वोह रख़्स चश्मेमहरोमाह नही[3] ।।

जब देखिये कुछ और ही आलम है तुम्हारा ।
हर बार अजब रंग है, हर बार अजब रूप ।।

अजब तेरी है ऐ महबूब ! सूरत ।
नज़रसे गिर गये सब ख़ूबसूरत ।।

ग़ैरतेमहरो[4], रश्केमाह[5] हो तुम ।
ख़ूबसूरत हो, बादशाह हो तुम ।।
हुस्नमें है तुम्हारे शाने ख़ुदा ।
इश्कबाज़ोके सजदागाह[6] हो तुम ।।

---

[1]व्यर्थ;
[2]सामने,
[3]सूर्य और चाँद आँख नही रखते;
[4]सूरजको शर्मानेवाले;
[5]चाँदसे भी सुन्दर;
[6]उपास्य स्थान ।

कसम है तेरे सरकी ऐ रुख़्सेयार[१] !
नहीं तेरे बराबर चाँद सूरज ।

गये जिस बज़्ममें, रोशन चिरागेहुस्नसे कर दी ।
बहारेताज़ा आई, तुम अगर गुलज़ारमें आये ।।

करके आराइश[२] जो देखी उस सनमने अपनी शक्ल ।
बन्द आँखे हो गईं, आईना हैराँ रह गया ।।

चमनमें शबको जो वह शोख़ बेनकाब आया ।
यकीन हो गया शबनमको आफताब आया ।।

चमक जानेसे उसके बन्द जो हो जाती हैं आँखें ।
यह धोखा बर्क देती है तुम्हारे रूएख़न्दाँका[३] ।।

दिखाके चेहरये रोशन वोह कहते हैं सरेशाम :
"वोह आफताब नहीं है जिसे ज़वाल[४] हुआ" ।।

पासरुसवाईका[५] दोनो जानिबोसे शर्त है ।
मैं तुम्हें, तुम मुझको समझाओ ख़ुदाके वास्ते ।।

ख़्वाहाँ[६] तेरे हर रंगमें ऐ यार हमी थे ।
यूसुफ था अगर तू तो ख़रीदार हमीं थे ।।

पयाम्बर[७] न मयस्सर हुआ तो ख़ूब हुआ ।
ज़बानेग़ैरसे क्या शरहेआरज़ू[८] करते ।।

---

[१]प्रेयसीके कपोल; [२]शृंगार,
[३]खिले हुए चेहरेका, [४]डूबना, पतन;
[५]बदनामीका डर; [६]अभिलाषी,
[७]सन्देश वाहक; [८]अभिलाषाकी व्याख्या ।

हालेदिल होते हैं हसरतकी निगाहोंसे अयाँ[1] ।
मेरी उसकी गुफ़्तगूमें अब जबाँ ख़ामोश है ।।

शर्तेवफा की किस बेवफासे ?
आतिश-सा आरिफ आगाह भूला ।।

बेचारा दिल किसीसे न अपना बहल सका ।
क्या-क्या चमकके निकले हैं अख़्तर तमाम रात ।।

यह दिल लगानेमें मैंने मजा उठाया है ।
मिला न दोस्त तो दुश्मनसे इत्तहाद[2] किया ।।

फिराक़ेयारमें[3] गिरियाका ज़ब्त[4] 'आतिश' नहीं बहतर ।
बुख़ारेदिल निकलने दो, बरस लेने दो बारॉको[5] ।।

फिराकेयारमें दिलपर नही मालूम क्या गुज़री ?
जो अश्क[6] आँखोमें आता है सो बेताबाना आता है ।।

सुन तो सही जहाँमें है तेरा फसाना क्या ?
कहती है तुझको ख़ल्क़ेख़ुदा[7] ग़ायबाना[8] क्या ?

तलाशेयारमें क्या ढूँडिये किसीका साथ ।
हमारा साया हमें नागवार राहमें है ।।

सारी रौनक़ है यह दीवानोके दमकी 'आतिश' !
तौक़ोजंजीरसे[9] होता नहीं ज़िन्दाँ[10] आबाद ।।

---

[1]प्रकट , [2]सम्बन्ध; [3]प्रेयसीके विरहमे,
[4]रोनेको रोकना, [5]बारिशको, [6]आँसू,
[7]ससारके लोग, [8]पीठ पीछे; [9]बेडी और गलेके बन्धनसे;
[10]कारागृह ।

नीतिपूर्ण कलाम—

हिर्सोहविसको सीनेमे गाफिल जगह न दे।
मतलबको फौत[1] करता है कीडा किताबका॥

खिलाफे वजह है इन्सांके वास्ते मायब[2]।
बदनको जेब न देवे कभी कबा[3] उलटी॥

सइयेलाहासिल मदावाये[4] मरीजे इश्क है।
थामना मुमकिन नही गिरती हुई दीवारका॥

आंखें नही ह चेहरेपै तेरे फकीरके।
दो ठीकरे हैं भीकके, दीदारके[5] लिए॥

फिराकेयारमें[6] रहता है यूं तमव्वुरेगोर।
ख्याल जैसे मुसाफिरका हो सराको तरफ॥

मरते शमअ हूं हरचन्द फरोगेमहफिल[7]।
बात करने नहीं देता कि जबां कटती है॥

कुफ्रो-इस्लामकी कुछ कैद नही ऐ 'आतिश'।
शेख हो या कि बिरहमन हो, पर इन्सां होवे॥

हम क्या कहें किसीसे, क्या है तरीक अपना।
मजहब नहीं है कोई मिल्लत[10] नहीं है कोई॥

---

[1]लालच तथा वासनाका नाश
[2]दाग
व्यर्थ चेष्टा,
[3]निवास,
[4]निरीक्षण
[5]देखनेके,
[6]प्रेमीके विरहमें,
[7]सभाका सियार,
[8]कब्रका ध्यान,
[10]संगठन, सम्प्रदाय।

दिलकी कुदूरतें[1] अगर इन्साँसे दूर हो।
सारे निफाक[2] गबरू[3]-मुसलमाँसे दूर हो॥

हासिल हुआ न ख़ाक भी आपसकी नजअसे[4]।
दिलसे गुबारे काफिरो दींदार ले चले॥

तसव्वुफके रगमे—

असीर[5] ऐ दोस्त! तेरे आशिकोमाशूक दोनो है।
गिरफ़्तार आहनी[6] जंजीरका यह, वह तिलाईका[7]॥
निकल ऐ जान तनसे ताविसाले यार हासिल हो॥
चमनकी सैर है अंजाम, बुलबुलकी रिहाईका॥
विसालेयारका वादा है फरदायेकयामतपर[8]।
यकी मुझको नहीं है गोरतक[9] अपनी रसाईका[10]॥

हुस्नेपरी इक जलवये मस्ताना है उसका।
हुशयार वही है कि जो दीवाना है उसका॥
वह याद है उसकी कि भुला दे दो-जहाँको।
हालतको करे गैर वोह याराना है उसका॥
यूसुफ नही जो हाथ लगे चन्द दिरम से।
क़ीमत जो दो आलमकी है बयाना है उसका॥
यह हाल हुआ उसके फकीरोसे हवीदा[11]।
आलूदयेदुनिया[12] जो है बेगाना है उसका॥

---

[1]द्वेषभाव, मैल, [2]लडाई-झगडे, [3]मूर्तिपूजक;
[4]वैरभावसे, [5]बन्दी, [6]लोहेकी,
[7]सोनेका, [8]प्रलयके दिनका, [9]कब्रतक;
[10]पहुँचका, [11]प्रकट, [12]ससार लिप्त।

कुछ नजर आता नही उसके तसव्वुरके सिवा।
हसरतेदीदारने[1] आँखोको अन्धा कर दिया॥

कुछ नजर आया न फिर जब तू नजर आया मुझे।
जिस तरफ देखा मुकामेहू[2] नजर आया मुझे॥

उल्टा उधर नकाब तो, परदे इधर पडे।
आँखोको बन्द जलवसेदीदारने[3] किया॥

पार उतरे क्या सलामत बहरेउल्फतसे[4] कोई।
सैकड़ो गरदाब[5] उसके दरमियाँ गरदिशमे है॥
गुम्बदे गरदूँसे निकलो जिस तरह भी हो सके।
डर है गिर पड़नेका 'आतिश' यह मकाँ गरदिशमे है॥

याद रखनेकी जगह है यह तिलिस्मे हैरत।
सुबहको देखते ही भूल गये शामको हम॥

गजब है मंजिलेहस्तीमे आसाइशतलब[6] होना।
हुजूमेख्वाबसे[7] रहरवने[8] है आखिर खलल पाया॥

सिवाय नामके बाकी असर निशाँसे न थे।
जमीसे दब गये झुकते जो आस्माँसे न थे॥

शबको चिरागकी नही रहरवको[9] अहतयाज[10]।
हर जर्रा आफताब है तेरी सबीलका[11]॥

---

[1]देखनेकी इच्छाने, [2]ईश्वरका वास, [3]दृश्यके प्रकाशने;
[4]प्रेम-दरियासे, [5]भँवर,
[6]भोगोपभोगका अभिलाषी, [7]सोनेके कारण,
[8]यात्रीने, [9]यात्रीको,
[10]आवश्यकता, [11]पथका।

ज़ंजीरका वोह गुल नही जिन्दाँमें[१] ऐ जुनूँ[२]।
दीवाना क़ैदख़ानये तनसे निकल गया॥

दिखलाके जलवा आँखोंने इक शमयेनूरका।
गुल कर दिया चिराग़ हमारे शऊरका॥

नागवाराको जो करता है गवारा इन्साँ।
ज़हर पीकर मज़ये शीरोशकर[३] लेता है॥
हिज्रमे वस्लका मिलता है मज़ा आशिक़को।
शौक़का मर्तबा जब हदसे गुज़र लेता है॥

सूरतेरेगेरवाँ[४] गरमेसफर हूँ रोज़ोशब।
कुछ नही मालूम जाता हूँ किधर, मज़िल कहाँ?
जो न ईज़ा[५] दे कोई ईज़ा नही देता उसे।
सायएदीवारको अन्देशयेआमिल[६] कहाँ॥
इश्क़के सदमे उठानेको जिगर भी चाहिए।
ख़ूँ हुआ मेरी तरह 'आतिश' किसीका दिल कहाँ?

मज़िले हस्तीमें दुश्मनको भी अपना दोस्त कर।
रात हो जाये तो दिखलाये तुझे दुश्मन चिराग॥
दाग़ेदिलकी रोशनी काफी है 'आतिश' गोरमें।
ग़म नही इसका, न हो अपना सरे मदफन चिराग़॥

शाहरा हे हस्तिये मौहूममें[७] वह चाल चल।
अपनी आँखोंको बिछा दें दोस्त-दुश्मन जेरेपा[८]॥

---

[१]बन्दीगृहमे, दीवानगी, [३]दूध-मिश्री,
[४]उडती हुई रेतके समान, [५]कष्ट, [६]मत्रवादियोका भय,
[७]असार जीवनचक्रमे, [८]पाँवके नीचे।

मुफलिसका काम याँ नही दौलतका खेल है।
दुनिया कुमारखाना[1] है चलती है ज़रकी चोट ॥

दुश्मन भी हो तो दोस्तीसे पेश आएँ हम।
बेगानगीसे अपना नहो आश्ना मिज़ाज ॥

सर शमा-सा[2] कटाइये पर दम न मारिये।
मंजिल हज़ार सिरत हो हिम्मत न हारिये ॥

२७ सितम्बर १९४९

---

[1]जुआ खेलनेकी जगह, [2]दीपककी तरह।

नासिख के शिष्य–

४२

बर्क़

मिर्जा मुहम्मदरजा 'बर्क' काज़मअलीखाँके पुत्र, नासिखके शिष्य, अवधके अन्तिम नवाब वाजिदअलीशाहके कवितागुरु और मुसाहब थे। फतहउद्दौलाबख्शीउलमुल्ककी उपाधिसे सम्मानित थे। प्रतिष्ठित वशमे उत्पन्न होनेके कारण और स्वय अच्छे स्वभावी तथा नवाबके उस्ताद होनेकी वजहसे काफी शुहरत रखते थे। शायरीके अतिरिक्त व्यायाममे भी रुचि रखते थे। विन्नोट और तलवारमे अच्छी महारत रखते थे। नवाब वाजिदअलीशाहके अत्यन्त विश्वासपात्र और वफादार थे। १८५७ के विप्लवके अपराधमे वाजिदअलीशाह बन्दी बनाकर कलकत्ते भेजे गये तो यह भी उस आपत्तिकालमे उनके साथ गये और वही मृत्युको प्राप्त हुए।

बर्क जो कहते थे आखिर वही कर-कर* उट्ठे।
जान दी आपके दरवाज़े पै मरकर उट्ठे॥

एक दीवान छोडा है। जिसमे—गज़ले, रुबाइयाँ, किते और मुसद्दस वगैरह है। गजलोमे अपने उस्ताद नासिखके खारजी रगके अनुयायी थे।

---

*अब इस तरहके 'कर-कर' प्रयोग वर्जित है। अब कर-करके बजाय 'करके' प्रचलित है।

कैसका नाम न लो, जिक्रे जुनूं जाने दो।
देख लेना मुझे तुम मौसमे गुल आने दो॥

उठाके आइना दिखला दिया उसे मैंने।
न सूझी आरिजेगुलगूंकी[1] जब मिसाल मुझे॥

अजाँ दी काबेमे नाकूस[2] दैर[3]मे फूंका।
कहा-कहाँ तेरा आशिक तुझे पुकार आया॥
—इन्तकादियात, भाग २

निकला गुबार दिलसे, सफाई तो हो गई।
अच्छा हुआ जो खाकमे तुमने मिला दिया॥

आता नही करार दिले बेकरारको।
गममे फँसा हूँ दामे मुहब्बतसे छूटकर॥
—तारीखे अदबे उर्दू

---

[1]फूल जैसे कपोलोकी, [2]शख;
[3]मन्दिरमे।

४३

बहर

[जन्म १२२५ हि० स०]

शेख इमदादअली बहर अपने उस्ताद नासिख़के हमनाम इमाम-बख़्शके पुत्र थे। लखनऊ वतन था।

मेरा दिल किसने लिया नाम बताऊँ किसका ?
मैं हूँ या आप हैं, घरमें कोई आया न गया ॥

ज़ालिम ! हमारी आजकी यह बात याद रख।
इतना भी दिलजलोंका सताना भला नहीं ॥

गई बरसात, गुज़रा साल यह भी आहोशेवनमें[1]।
ख़बर हमको नहीं, बादल किधर आया किधर बरसा ॥

—इन्तख़ाबयात, भाग २

मुद्दतसे इल्तफात[2] मेरे हालपर नहीं।
कुछ तो कजी[3] है दिलमें कि सीधी नज़र नहीं ॥

अफसोस उम्र कट गई रंजोमलालमें।
देखा न ख़्वाबमें भी जो कुछ था ख़्यालमें ॥

क्या-क्या न मुझसे संगदिली दिलबरोंने की।
पत्थर पड़ें समझमें न समझा किसी तरह ॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

---

[1]रोनेधोनेमें, [2]कृपाकटाक्ष, [3]टेढ़ापन (मैल)।

४४

आबाद

मिर्जा मेहदीहुसेन 'आबाद' गुलामजफरके बेटे थे। लखनऊके रईसोमे शुमार किये जाते थे। शेरो-सुखनका बडा शौक था। स्वय अपने मकानपर भी मुशायरोका आयोजन करते थे। दूसरोके यहाँ भी बडे चावसे मुशायरोमे जाते थे। कई कृतियाँ छोडी है। कलाम मामूली है।

भला देखेगे क्योकर गैर उसको।
मेरी आँखोके पर्देमें निहां है॥

जब हुए बर्बाद ऐ'आबाद' तब पाया पता।
बेनिशा होकर मिला हमको निशाने कूए दोस्त॥

जहाँतक हो सका अपनी जुबाँसे उससे कह गुजरे।
जताई बात हमने दोस्तीकी अपने दुश्मनको॥

४५

वज़ीर

ख्वाजा मुहम्मद वज़ीर, ख्वाजा मुहम्मदफकीरके पुत्र और नासिखके शिष्योमे प्रसिद्ध शिष्य थे। आखिरी उम्रमे शेरो-सुखनसे अरुचि हो गई थी और एकान्त जीवन व्यतीत करते थे। स्वाभिमानका यह हाल था कि वाजिदअलीशाह नवाबने दो बार इन्हे बुलानेका प्रयत्न किया, परन्तु ये गये नही। हि० स० १२७०मे समाधि पाई। अपने उस्ताद नासिखकी खारजी शायरीपर फिदा थे। रियायते लफ्जीकी इमारतपर इमारत खडी कर देना इनका खास जौक था।

चला है ओ दिलेराहत तलब! क्या शादमाँ होकर।
जमीने कूएजानां रज देगी आस्मां होकर॥
किया कत्ल उसने गैरोको मरे हम रश्कके मारे।
अजल भी दोस्तो आई नसीबे दुश्मनाँ होकर॥
तिरछी नजरोसे न देखो आशिके दिलगीरको।
कैसे तीरन्दाज हो सीधा तो कर लो तीरको॥
है चश्मे नीमबाज अजब ख्वाबेनाज है।
फित्ना तो सो रहा है परे फित्ना बाज है॥

—इन्तकादयात, भाग २

न कर नजर मेरे जुर्मोगुनाहे बेहदपर।
इलाही तुझको गफ्फ़ुरलरहीम कहते है॥
कहे उदू न कही मुझको देखकर मोहताज।
यह उनके बन्दे है जिनको करीम कहते है॥

—तारीखे अदबे उर्दू

४६

रश्क

मीर औसतअली रश्कका असल वतन फेजाबाद था। परन्तु लखनऊ रहने लगे थे। इनकी शायरी साधारण है। तीन दीवान छोडे है।

महफिलमे शमा, चाँद फलकपर, चमनमे फूल।
तसदीरे रूए अनवरे जानाँ कहाँ नही॥

कहाँ यह लुत्फ चीतेने अगर पाई कमर पतली।
तुम्हारे होट पतले, उँगलियाँ पतली, कमर पतली॥

—इन्तकादयात, भाग २

यारको हमसे कुछ लगाव नही।
वोह मुहब्बत नही, वोह चाव नही॥
गगको बहरे ग़मसे क्या निसबत?
यह वोह दरिया है जिसमें नाव नही॥
अबकी जाड़े है और नालओ आह।
इस तरहका कोई अलाव नही॥

इस गजलमे इन्होने ताव, पुलाव, दबाव, सभी काफिये इस्तेमाल किये है। शायद गलतीसे बिलाव काफिया रह गया था। सो वह भी किसी मसखरेने इनके तखल्लुसके साथ जड दिया है—

दूरसे छेछडे दिखाओ नही।
'रश्क' बैठाहै बनबिलाव नही॥

—तारीखे अदबे उर्दू

४७

महर

मिर्जा हाशिमअली बेग महरके पिता फैजअली अलीगढमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी तरफसे तहसीलदार थे। बचपनसे ही शेरगोईका शौक था। १८४० ई०मे सरकारी इम्तहान पास करके चुनारगढ (जिला मिर्जापुर)के मुसिफ नियुक्त हुए। १८५७के विप्लवमे अग्रेजोको शरण देनेके उपलक्षमे खिलअत और जागीर प्राप्त करनेपर आगरेमे रहकर वकालत करने लगे थे। तत्कालीन ख्यातिप्राप्त शायर **गालिब, अनीस, दबीर, गुलाम, इमामशहीद, सबा, मुनीर** वगैरहसे मित्रता थी। काफी अधिक लिखते थे। ८-१० पुस्तके इनकी लिखी मिलती है। १८७९मे परलोक सिधारे।

शोख चश्मीसे चिकारोंको वह धमकाते है।
देखियो हमसे मिलाना न खबरदार आँखें॥

चश्मे मखमूरमें साकीके ये कैफीयत है।
नशे मस्तोके दुबाला हो जो हो चार आँखे॥

४८

मुनीर

सैयद **इसमाइलहुसेन मुनीर** शिकोहाबादके रहनेवाले थे। इनके पिता **अहमदहुसेन शाद** भी शायर थे। मुनीर अक्सर लखनऊ आया-जाया करते थे। एक वेश्याके वधके अभियोगमे इन्हे कालापानी हो गया था। १८८१मे रामपुरमे समाधि पाई।

घूंघटसे तेरे कानकी बाली नज़र आई।
दीवारे चमन तोड़कर पत्ता निकल आया॥

तनते हुए मुशायरेमें आओ एक दिन।
मिसरा तो तरह हो कभी कद्दे बुलन्दका॥

देखकर कुश्तोके अम्बार लबे बाम हँसो।
सब कहे कहक़हे दीवारका पुश्ता बाँधा॥

फरियादेआशिक़ाँ जकने कानमे पडे।
बालीमे तेरे गूँज हो आवाज़े चाहकी॥

फिराके यारमें हर तरह दिन गुज़र जाता।
क़ज़ा जो रहम न खाती, तो क्या मै मर जाता॥

कुछ जवानी है अभी कुछ है लडकपन उनका।
दो दग़ाबाज़ोंके क़ब्ज़ेमें है जोबन उनका॥

जाने शीरीं हिज्रमें होटोंतक आई फिर गई।
नापसन्दे मर्ग होकर यह मिठाई फिर गई॥

नाकये लैलाकी क्या सहराये मजनूँमें बिसात ।
अजदहे वहशतके मुँहमें ऊँट जीरा हो गया ।।

शादी है दुख्तेरजसे किसी दीपरस्तकी ।
तौबाके दरपै बजता है घण्टी शिकस्तकी ।।

बहुताने गिरियासे न गई मेरी आबरू ।
क्या सूखे घाट उतरे है तूफान आपके ।।

—'आजकल' १५ सितम्बर १९४९

आतिश के शिष्य–

४६

रिन्द

सैयद मुहम्मदख़ाँ रिन्द नवाब ग़यासुद्दीन नीसापुरीके बेटे थे। फैजाबादके रहनेवाले थे, परन्तु लखनऊ रहने लगे थे। लखनऊ दरबार-की रगरेलियोमे सराबोर रहते थे।

फेक दूँ दिलको अभी चीरके पहलू अपना।
तुझपै काबू नहीं, दिलपर तो है काबू अपना॥

खुली है कुंजे कफसमे मेरी ज़बाँ सैयाद।
मै माजरायेचमन क्या करूँ बयाँ सैयाद॥
दिखाया कुजे कफस मुझको आबोदानेने।
वगर्ना दाम कहाँ, मै कहाँ, कहाँ सैयाद॥

आ अन्दलीब ! मिलके करे आहोज़ारियाँ।
तू हायगुल पुकार मै चिल्लाऊँ हायदिल॥

वादेपै तुम न आये तो कुछ हम न मर गये।
कहनेको बात रह गई और दिन गुज़र गये॥

—इन्तक़ादयात, भाग २

दो-चार गाम याँसे है दौलतसराए दोस्त।
टूटे यह पाँव, देखो तो आकर कहाँ थके॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

५०

नसीम

[१८११–१८४३ ई०]

पं० दयाशकर 'नसीम' १८११ ई० मे लखनऊमे उत्पन्न हुए। आपके पिताका नाम प० गगाप्रसाद कौल था। आप काश्मीरी ब्राह्मण थे, किन्तु सुना जाता है कि आप उनकी तरह शकील नही थे। ठिगनाकद, गन्दुमी रग, काली आँखे और छरेरे बदनके आदमी थे। तत्कालीन रिवाजके अनुसार उर्दू-फारसीकी शिक्षा प्राप्त की। शायरीकी ओर प्रवृत्ति हुई तो उस युगके श्रेष्ठ उस्ताद 'आतिश' के शिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त किया। २० वर्षकी आयुमे ही शायरीका अच्छा-खासा अभ्यास कर लिया। प्रारम्भमे आपने भी गजले ही कही, किन्तु दिलके वलवले गजलमे पूरे न हो सके तो मसनवीकी[1] ओर आकर्षित हो गये।

उन दिनो मीर 'हसन' की मसनवी 'सहरुलबयान' बडी ख्याति पा रही थी। अत नसीमने भी 'गुलबकावली' की कहानी को नज्म करके २५ वर्षकी आयुमे समाप्त कर दिया और इस मसनवीका 'गुलज़ारे नसीम' नाम रखा।

"सींचा था जिसको खूने जिगरसे वोह बाग था"

'गुलज़ारे नसीम' प्रकाशित होते ही हाथो-हाथ बिक गई। कविता मर्मज्ञोने इसका हृदयसे स्वागत किया। अभीतक मसनवीका श्रेय केवल

---

[1]जो कथा या कहानी कवितामे लिखी जाय उसे मसनवी कहते है।

'मीर हसन' को प्राप्त था। 'गुलजारे नसीम' की बदौलत 'नसीम' भी आस्माने शायरी पर चमकने लगे, परन्तु खेद है कि क्रूरकालको उनकी यह ख्याति सहन न हुई और ३२ वर्षकी आयुमे ही उन्हे झपट्टा मारकर दबोच लिया।

नसीमने मीरहसनकी मसनवीके मुकाबिलेमे मसनवी कही है, परन्तु उनका अनुसरण कही भी नही किया है। अपना मौलिक और अनोखापन हर जगह कायम रखा है। इस मसनवीकी भूमिकामे स्व० चकबस्तने लिखा है—

"अगर मीरसहन अपने रगमे फर्द है तो नसीम अपने तर्जमे यकता है। अगर कलामकी सादगी और बेतकल्लुफीका लुत्फ उठाना है तो मीरहसनकी मनसवी देखो, अगर बारीकबीनी और मायने आफरीनीका रग पसन्द है तो गुलजारे नसीमकी सैर करो। देखो फिराके यारमे सदमा गुजरनेका मजमून एक ही है। दोनो उस्तादोकी तबियत इस मजमूनपर बराबर लडी है। मगर दोनोके अन्दाजे सुखन पर खयाल करो—

मीरहसन—

दिवानी-सी हर सिम्त फिरने लगी।
दरख्तोमें जा-जाके गिरने लगी॥
ठहरने लगा जानमें इज्तराब।
लगी देखने वहशत आलूदा ख्वाब॥
खफा जिन्दगानीसे होने लगी।
बहानेसे जा-जाके सोने लगी॥
जहाँ बैठना फिर न उठना उसे।
मुहब्बतमें दिनरात घुटना उसे॥
किसीने अगर बात की, बात की।
पै दिनकी जो पूछी कही रातकी॥

कहा गर किसीने कि कुछ खाइये ॥
कहा ख़ैर बेहतर है मँगवाइये ॥

जो पानी पिलाना तो पीना उसे ।
ग़रज़ ग़ैरके हाथ जीना उसे ॥

नसीम—

सुनसान वो दमबख़ुद थी रहती ।
कुछ कहती तो ज़ब्तसे कहती ॥

करती थी जो भूक प्यास बसमें ।
आँसू पीती थी खाके कसमें ॥

जामासे जो ज़िन्दगीके थी तंग ।
कपडोके एवज़ बदलती थी रंग ॥

यकचन्द जो गुज़री बेख़ुरो ख़्वाब ।
ज़ाइल हुई उसकी ताक़तोताब ॥

सूरतमें ख़याल रह गई वोह ॥
हैय्यतमें मिसाल रह गई वोह ॥

आने लगे बैठे-बैठे चक्कर ।
फ़ाक़ेसे ख़याल बन गया घर ॥

"दोनोने अपने-अपने रगमे हकेसुख़नवरी अदा किया । मीरहसनके अशआरका बेसाख़्तापन और सादापन दिलमे अजीब कैफ़ियत पैदा करता है । शबेहिजराकी बेकरारीकी तसवीर आँखोके सामने फिर जाती है । नसीमके अशआर एक दूसरी ही हालत पैदा करते है । अलफाज़ की शौकत (शब्दोकी मोहकता) बन्दिशकी चुस्ती, इस्तआरोकी नज़ाकत (अलंकारों-की कोमलता) तशवीहोकी पुख़्तगी (उदाहरणोकी दृढता) से मुसन्निफका

जोरे तबीयत (रचयिताकी कवित्वशक्ति) मालूम होता है। नाजुक खयाली और बुलन्द परवाजी इस आलमका इशारा करती है जहाँ पहुँचते हुए हमारे तायरे ख्याल (कल्पना पक्षी) के पर जलते हैं। गरज कि अगर सूरते हालका बयान मीरहसन पर खत्म है तो कलाम-का मायने खेज होना नसीमपर।

शहजादेके गायब हो जाने पर मीर हसनने पसमाँदा (घर के) लोगोकी परेशानीका हाल इस तरह नज्म किया है—

कोई देख यह हाल रोने लगी,
कोई गमसे जी अपना खोने लगी।

कोई बिलबिलाती-सी फिरने लगी,
कोई जोफ खा-खाके गिरने लगी।

कोई सरपै रख हाथ दिलगीर हो,
गई बैठ मातमकी तसवीर हो।

हुआ गुम वोह यूसुफ, पडी फिर यह धूम,
किया खादिमाने महलने हुजूम।

कहा शहने वाँका मुझे दो पता,
अजीजो जहाँसे वोह यूसुफ गया।

गईं ले वोह शहको, लबेबामपर,
दिखाया कि सोता था याँ सीमबर।

जो देखी जगह वह जहाँसे गया,
कहा हाय बेटा तू याँसे गया।

मेरे नौजवाँ अब किधर जाये पीर,
नजर तूने मुझपर न की बेनजीर।

अजब बहरे गममें डुबोया मुझे,
गरज जानसे तूने खोया मुझे।

फूलके गायब हो जाने पर बकावलीके इज्तराबकी तसवीर नसीमने अपने रगमे यूँ खीची है—

देखा तो वह गुल हवा हुआ है,
कुछ और ही गुल खिला हुआ है।

घबराई कि है! किधर गया गुल,
झुझलाई कि कौन दे गया जुल।

है-है मेरा फूल ले गया कौन,
है-है मुझे खार दे गया कौन।

हाथ उसपर अगर पड़ा नहीं है,
बू होके तो गुल उड़ा नही है।

नर्गिस तू दिखा किधर गया गुल,
सोसन तू बता किधर गया गुल।

सम्बुल मेरा ताजयाना लाना,
रामशाद इन्हे सूलीपर चढ़ाना।

थर्राई खवासे सूरते बेद,
एक-एकसे पूछने लगी भेद।

बोली वोह बकावली कि अफसोस,
गफलतसे यह फूलपर पड़ी ओस।

आँखोसे अजीज गुल मिरा था,
पुतली वही चश्मेहीज का था।

नाम उसका सबा न लेती थी मै,
इस गुलको हवा न देती थी मै।

गुलचीका जो हाय ! हाथ टूटा ,
गुंचेके भी मुँहसे कुछ न फूटा ।
ओ बादे सबा ! हवा न बतला ,
खुशबू ही सुँघा पता न बतला ।
बुलबुल तू चहक अगर खबर है,
गुल तू ही महक बता किधर है ।

"मीर हसनके अशआरका असर बिजलीकी तरह दिलमे दौड जाता है । जो हालत वोह बयान करता है, उसकी तसवीर आँखोके सामने खीच देता है । नसीम के अशआर जबानकी पाकीजगी और तरकीबे अल्फाज़की चुस्तीके लिहाजसे तासीरका तिलस्म बने हुए है । एककी जीनत हुस्ने सूरतसे है, दूसरेकी शान लुत्फेमायनीसे कायम है । मीरहसन मुहावरे और रोजमर्राके बादशाह है, इस्तआरे तशबीह नसीमका हिस्सा है । लेकिन इतना कहना नाइन्साफी नही कि जो सोजोगुदाज मीरहसनके कलाममे है, वोह नसीमके कलाममे नही है, और हकीकत ये है कि जो दर्द अमूमन शुअराये दिल्लीके कलाममे पाया जाता है, वोह अहले लखनऊ के कलाममे नही पाया जाता"[1] ।

मुहम्मद हुसेन आजाद लिखते है––"प० दयाशकर नसीमने गुलजारे नसीम लिखी और बहुत खूब लिखी । इसकी आम और खास सबमे शुहरत है । इसके नुक्ते और बारीकियोको समझे या न समझे, मगर सब लेते है और पढते है । जितनी समझमे आती है उसपर खुश होते है और लोटे जाते है । हमारे मुल्के सुखनमे सैकडो मसनवियाँ लिखी गईं, मगर इनमे फकत दो नुस्खे ऐसे निकले, जिन्होने तबियतकी मुआफकतसे

---

[1]गुलजारे नसीम दीबाचा पृ० २८–३१ ।

कबूले आमकी सनद पाई। एक 'सहरुलबयान' और दूसरी 'गुलजारे नसीम"।[1]

गुलजारे नसीमकी दिन-दूनी, रात-चौगुनी फैलती हुई सुगन्ध ईर्ष्यालुओंके हृदयमे काँटेकी तरह खटकने लगी। उन्होने बिलबिलाकर ऐसी बेतुकी और बेपरकी बाते कहना शुरू की कि लोग हैरतमे आगये। मगर चकबस्तने इनकी तूफानेबदतमीज़ीके वोह दन्दानशिकन जवाब दिये कि फिर जबान खोलनेकी हिम्मत न हुई। पक्ष-विपक्षके उत्तर 'शेरो सुख़न' से दूने साइजके ३७४ पृष्ठोमे 'गुलजारे नसीम' की द्वितीयावृत्तिके साथ प्रकाशित हो गये है, जो कि शायरी और ज़बानकी मालूमात बहम पहुँचानेके लिए बडे कामके है। नसीमकी सूझ, कवित्वशक्ति और हाज़िर जवाबी कमालकी थी। यही कारण है कि उस युगमे जब कि 'आतिश' और 'नासिख़' जैसे मुसल्लिमउल सबूत उस्ताद मौजूद हो, 'अनीस' और 'दबीर' के मर्सियोसे छते फटी पडती हो, वज़ीर, सबा, रिन्द, ख़लील जैसे नौजवाँ शायर कयामत ढा रहे हो, तब उनके समकक्ष बज़्मे अदबमे नसीम अपना एक महत्वपूर्ण, विशिष्ट स्थान हिन्दू होते हुए भी बना सके। इनकी कवित्व शक्ति और हाजिर जवाबीके कुछ उदाहरण चकबस्तने इस तरह बयान किये है—

१—एक मुशायरेमे नसीमने मतला पढा—

मिन्नत दिला किसीकी न इसला उठाइये।
मर जाइये न नाज़े मसीहा उठाइये॥

आतिश भी इस मुशायरेमे मौजूद थे। उन्होने नसीमकी बहुत तारीफ की और कहा कि मेरा यह मतला इसके आगे गर्द है—

जाँबलब लबके इश्क़में ईज़ा उठाइये।
बीमार होके नाज़ेमसीहा उठाइये॥

---

[1]आबेहयात।

२—एक मर्तबाका जिक्र है—कही मुशायरेकी सुहबत थी, यह भी वहाँ मौजूद थे। कब्ल मुशायरा शुरू होनेके शेख नासिखने इनकी तरफ मुखातिब होकर कहा कि—पण्डत साहब ! एक मिसरा कहा है, दूसरा मिसरा नही सूझता कि पूरा शेर हो जाय। इन्होने जवाब दिया 'फर्माइय'। नासिखने मिसरा पढा—

"शेखने मस्जिद बना मिसमार बुतखाना किया"

उनके मुंहसे मिसरा निकलनेकी देर थी कि यहाँ दूसरा मिसरा तैयार था—

"तब तो इक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया"

इस मिसरेका सुनना था कि हाजरीने जल्सा फडक उठे और हर तरफसे नारा हाये तहसीन बुलन्द हुए। शेख नासिखने शायरीकी आड मे मज़हबी चोट की थी। लेकिन नसीमने ठण्डा कर दिया।

३—इसी तरह एक शख्सने मुशायरेमे एक शेर पढा जिसका दूसरा मिसरा यह था—

"जानिबे जुल्मात हरगिज़ आफ़ताब आता नहीं"

पहला मिसरा कुछ मुहमल (बेमायने) सा था। नसीमके मुंहसे बेसाख्ता निकल गया कि दूसरा मिसरा तो खूब है, लेकिन पहला मिसरा ठीक नही। वे साहब भी जलेतन थे। झल्लाकर बोले कि अच्छा इससे बहतर मिसरा कह दीजिए। यहाँ तो मज़ामीन हरवक्त हाथ बान्धे सामने खडे रहते थे। उसी वक्त मिसरामौजूं करके सुना दिया—

तीरहदिलकी बज्ममें जामे शराब आता नहीं।
जानिबे जुल्मात हरगिज़ आफ़ताब आता नहीं॥

नसीमकी मुशायरेमे धाक बैठ गई वह बेचारा ज़लील हो गया।

४—एक रोज़ आतिशके यहाँ शागिर्दोंका जमघटा था। रिन्द,

सबा, खलील, वगैरह बैठे हुए थे। नसीम भी मौजूद थे। सुबहका सुहावना वक्त, बरसातका मौसम, मेह बरसता हुआ, अजीब कैफियत थी। मौसमे बहारसे कुछ तबीयते ऐसी मस्त हुई कि शागिर्दोंने आतिशसे गजलकी फर्माइश की। आतिशका बुढापा था लेकिन तबियतमे जवानीका जोर भरा था। फिलबदी अशआर मौजू करने शुरू कर दिये। जिस गजलका मतला है—

दहनपर है उनके गुमाँ कैसे-कैसे।
कलाम आते है दरमियाँ कैसे-कैसे॥

नसीमकी तबियत भी जोशे बहारसे लहराई हुई थी। उन्होंने इन अशआरकी तजमीन[1] करनी शुरू कर दी। जितनी देरमे आतिश दूसरा शेर सोचते थे। ये उस अर्सेमे उनके पहले शेर पर तीन मिसरे लगा चुकते थे, और बाज-बाज मिसरे तो वाकई इस अन्दाजसे लगाये है कि अगर कोई बरसो सरबगरेबाँ रहे तो इससे बहतर मिसरे नही लगा सकता। आतिशके दो शेरोकी तजमीन मिसालन लिखी जाती है—

न खूनी कफन है न घायल हुए है,
न जख्मी बदन है, न बिस्मिल हुए है,
लहू मलके कुश्तोमें दाखिल हुए है,
"तुम्हारे शहीदोमें शामिल हुए है
गुलोलालए अरग्वाँ कैसे-कैसे"

कोई जानता है, किसीको खबर है,
कि परदेमें कौन ऐ सनम जलवागर है,

---

[1]शेरके पहिले मिसरेपर तीन मिसरे लगाकर मुखम्मस बनाना।

कहीं कुछ ख़याल और कही कुछ नज़र है ,
"दिलोदीदऐ अहले आलममे घर है ।
तुम्हारे लिए है मकाँ कैसे-कैसे "

इसी तरह १४–१५ शेरकी गजलपर मिसरे लगाये है। आतिशके शागिर्दोमे 'सबा' से इनसे बहुत याराना था। इनके मरनेपर सबाने यह शेर कहा—

उठ गये है 'नसीम' जिस दिनसे ।
ऐ 'सबा' ! वोह हवाएबाग़ नही ॥

५—लेकिन रिन्दसे चश्मक थी। चुनाचे एक मुशायरेमे नसीमने 'रिन्द' की एक मशहूर गजलपर खमसा पढा। जिसका मक्ता ये था—

वस्ल इन्साँको परीज़ादोका हो, है दुश्वार ।
फ़ायदा कुछ नहीं तुम मुफ़्तमें क्यों होते हो ख़्वार ॥

कहते-कहते तो हुए तुमको 'नसीम' अब लाचार ।
"इश्क़को तर्क करो या न करो, हो मुख़्तार ,
नेको बद हम है तुम्हें 'रिन्द' सुझाते जाते" ॥

तीसरे मिसरेका निकलना था कि रिन्दने सरेमुशायरा तलवार खीच ली और नसीमसे बरसरे पैकार होने का इरादा किया। नसीमके मिज़ाजमे भी बाँकपन था। यह उठ खडे हुए और कहने लगे कि तलवारपर न भूलना, यहाँ थप्पडोसे तलवार छीन लेते है। लेकिन 'फलक' वगैरह इस मुशायरेमे मौजूद थे, उन्होने बिगडी हुई तबियतोको सम्भाला और भडकती हुई आग पर पानी डाला, और रिन्दसे कहा कि बन्दानवाज यह तलवारका मुकाम नही, यहाँ जोरे कलमसे काम लीजिये। इस हगामाआराईकी वजह यह थी कि रिन्द एक रगीन मिज़ाज और आशिकतन आदमी थे। उस ज़मानेमे एक बारगाहे हुस्नके उम्मीदवार थे। लेकिन किस्मतकी नारसाई मजिले मकसूद तक रसाई नही हुई थी। तलव्वन मिज़ाजीने

इस मायूसीकी हालतको गैजो-गज़बसे बदल दिया था। नसीमने इस खमसेमे दर-परदा इसी कैफियतका इशारा किया था। रिन्दके चोट खाए हुए दिलपर यह ताने आमेज़ नसीहत गिराँ गुज़री और इस मारकेका बाइस हुई। रिन्दके इस शेर पर—

रास्ता रोकके कह लूँगा जो कहना है मुझे।
क्या मिलोगे न कभी राहमें आते-जाते॥

नसीमने एक सुहबतमे इस शेरका दूसरा मिसरा पढा तो मज़ाकन 'मिलोगे' के बजाय 'मिलोगी' पढा। इस पर बडा कहकहा पडा और इस शेरको लोग इसी सूरतमे पढने लगे। उडते-उडते यह खबर रिन्दके कानो तक भी पहुँची। हरीफोने अस्ल वाकयेपर अपनी तरफसे और हाशिये चढाये। गरज़ कि रिन्दके दिलमे इस वाकयेकी वजहसे भी एक काविश मौजूद थी। यह भी उनके लिए नसीमसे बिगडनेकी एक वजह हुई। एक मौकेपर रिन्दने एक शेर पढा—

क्या मिला अर्ज़े मुद्दआ करके।
बात भी खोई इल्तजा करके॥

नसीमने पहला मिसरा यो बदल कर पढा—

फ़ायदा ! अर्ज़े मुद्दआ करके ?

और कहा—अब शेर बहतर हो गया, और लोग भी जो बैठे थे उन्होने भी नसीमकी ऐसी कही। यह अम्र भी रिन्दको नागवार गुज़रा।

६—नसीमकी जो वुकअत शुअराए लखनऊके जुमरेमे थी, उसका अन्दाज़ा मुन्दर्जा ज़ैल वाकयेसे हो सकता है। एक मर्तबा देहलीसे ये तीन मिसरे इम्तहानन लखनऊ भेजे गये कि शायराने लखनऊ इन पर मिसरे लगाकर भेजे।

(१) नातवाँ हूँ कफन भी हो हलका।
(२) इसलिए क़ब्रमें रक्खा उन्हें जंजीर समेत।
(३) मनमी रवम ब काबा ओ दिल मी रवद बदैर।

अब अहले लखनऊकी यह कोशिश हुई कि ऐसे मिसरे कहकर भेजे जाएँ कि देहली वालोको भी यहाँ की शायरीका कायल होना पडे। अगर मिसरे सुस्त हुए तो किरकिरी हो जायगी। गरज कि तीन शख्सो को जो हर तरह इस कामके लिए मौजू खयाल किये गये, एक-एक मिसरे पर मिसरा लगानेका काम सुपुर्द हुआ। पहला मिसरा नासिख-को दिया गया, दूसरा आतिशको और तीसरा नसीमको। गो कि उस वक्त और बडे-बडे शायर मौजूद थे मगर आतिश और नासिखके साथ लखनऊकी आबरू कायम रखनेका शर्फ नसीम ही को हासिल हुआ। तीनो उस्तादोने जी तोडकर मिसरे लगाये है—

डालदे साया अपने आँचलका।
नातवाँ हूँ कफन भी हो हलका॥

—नासिख

हश्रमें हश्र न बरपा करें यह दीवाने।
इसलिए क़ब्रमें रक्खा उन्हें जजीर समेत॥

—आतिश

दारमजदीं ओ कुफ़ बहर यक क़दम बसैर।
मनमी रवम ब काबा ओ-दिल मी रवद बदैर॥[1]

नसीम स्वतत्र और स्वच्छन्द प्रकृतिके थे। अपने स्वाभिमानमे बाल नही आने देते थे। कभी शाही दरबारमे नही गये, और न कभी शानो शौकतके लिए मन ललचाया। अनीसके इस शेरके उदाहरण बने रहे।

---

[1]गुलजारे नसीम दीबाचा, पृ० ४८-५२।

दरपै शाहोंके नहीं जाते फकीर अल्लाहके।
सर जहाँ रखते है सब हम वाँ कदम रखते नही ॥

एकबार अमजदअलीशाहके सामने नर्तकी यह गजल गा रही थी--

जब न जीतेजी मेरे काम आयगी।
क्या यह दुनिया आकबत बरूशायगी ॥
जाँ निकल जायेगी तनसे ऐ 'नसीम' !
गुलको बूएगुल हवा बतलायगी ॥

तो सुखन शनाश बादशाहने पूछा--क्या यह गजल उसी नसीमकी है, जो 'गुलजारेनसीम' का मुसन्निफ (रचयिता) है। नर्तकीके हाँ कहनेपर बादशाहने दरबारमे बुलानेकी अभिलाषा प्रकटकी तो ईर्ष्यालुओ ने कह दिया कि 'नसीम' तो इन्तकाल फर्मा गये। कुदरतकी बात देखिये कि इधर उनकी जबानसे ऐसा मनहूस वाक्य निकला, उधर मृत्युकी कमानसे तीर निकलकर नसीमको लगा। मृत्युसे २-३ घण्टे पूर्व नसीमने यह शेर कहा था--

पहुँची न राहत हमसे किसीको बल्कि अजीयतकोश हुए।
जान पडी तब बारेशिकम थे, मरके वबाले दोश हुए ॥

नसीम 'आतिश' के शिष्य होते हुए भी अपनी मुश्किल पसन्दीके कारण नासिखके रगमे कहते थे। इनके कलाममे भी वही खारजी रगामेजी और शब्दोकी मुनासबत पाई जाती है। नसीमकी स्वाभाविक प्रवृत्ति गजलके अनुकूल नही थी। इसीलिए उन्होने बहुत शीघ्र इस क्षेत्रका परित्याग कर दिया। 'गुलजारे नसीम' के अन्तमे उनकी गजलोके केवल २८२ शेर मुद्रित है। उन्ही मे से कुछ बतौर नमूना पेश किए जाते है। पहले कुछ चकबस्त द्वारा सकलित किये गये नसीमके समकालीन शायरोके साथ तुलनात्मक शेर पेश किये जाते है--

नसीम— सहबाकशोकी[1] खाक है हर इक मुकामपर।
साकी लुटा शराबको मस्तोके नामपर॥
सबा— लाई है मुझको वहशते दिल उस मुकामपर।
हँसनेकी जा है कैसके सौदाये खाम पर[2]॥
रिन्द— पड़ती है आँख जब मिरी मीना ओ जामपर।
सौ सौ दरूद[3] पढता हूँ साकीके नामपर॥

नसीम— दिलसे हरदम हमे आवाजेबुका[4] आती है।
बन्द कानोको भी गिरयाकी[5] सदा आती है॥
गुल हुआ कोई चरागे सहरी[6] ओ बुलबुल!
हाथ मलती हुई पत्तोसे सदा[7] आती है॥
रिन्द— तीरओतार ओ धुआँधार[8] घटा आती है।
मयकशो! फस्लेमये[9] होशरुबा[10] आती है॥
जानिबे खानयेखुम्मारसे[11] क्या आती है।
लड़खडाती हुई जो बादेसबा आती है॥

नसीम— अब्रेरहमत[12] सुनते है नाम आपका।
खाकसारोपर करम फ़रमाइये॥

---

[1]शराब पीने वालोकी,

[2]भाव यह है कि मै उस उनमत्तावस्थाको पहुँच चुका हूँ कि मजनूँका दीवानापन हलका पड जाता है,

[3]दुआ,
[4]रोनेकी आवाज,
[5]रुदनकी धुनि,
[6]प्रात कालीन दीपक;
[7]आवाज,
[8]अन्धेरी दे-दे करके,
[9]शराब पीनेकी ऋतु,
[10]होश खोने वाली,
[11]शराबखानेसे,
[12]दयाकी बारिश।

रिन्द— दिनको तो तशरीफ तुम लाते हो रोज़।
शबको भी इक दिन करम फरमाइये॥

नसीम— लाये उस बुतको इल्तजा करके।
कुफ़्र टूटा ख़ुदा-ख़ुदा करके॥
रिन्द— क्या मिला अर्ज़े मुद्दआ करके।
बात भी खोई इल्तजा करके॥

नसीम— जब हो चुकी शराब तो मै मस्त मर गया।
शीशेके ख़ाली होते ही पैमाना भर गया॥
सबा— वाइज़के मै ज़रूर डरानेसे डर गया।
जामे शराब लाये भी साकी किधर गया॥

नसीम— रूहेरवाने जिस्मकी[1] हालत मै क्या कहूँ?
झोका हवाका था, इधर आया उधर गया॥
सबा— मिसले हुबाब[2] बहरेजहाँमें[3] न दम मिला।
इक मौज[4] था कि मै इधर आया उधर गया॥

नसीम— गुज़रा जहाँसे मै तो कहा हँसके यारने।
"किस्सा गया, फिसाद गया, दर्देसर गया"॥
सबा— अच्छा हुआ जो हो गये वहदतपरस्त[5] हम।
फिक्रा गया, फिसाद गया, शोरोशर गया॥

नसीम— है रंजे इश्क मेरे लिये, मै बरायेरंज[6]।
ख़ुद भी मिटे यकीं है जो मुझको मिटाये रंज॥

---

[1]शरीर के प्राण की, [2]बुलबुला,
[3]ससार रूपी नदीमे, [4]लहर,
[5]एक ईश्वर वादी; [6]रजके लिए।

सबा— दिल है गिज़ायेरंज[1], जिगर है ग़िज़ाएरंज।
पैदा किया है हमको ख़ुदाने बरायेरंज॥

नसीम— या तंगियेकिनार[2] थी या अब फिशारेक़ब्र[3]।
वोह इब्तदाए ऐश थी, यह इन्तहाए रंज॥

सबा— आदमसे ख़ुल्देबारा छुटा हमसे कूए यार।
वोह इब्तदाए रंज है यह इन्तहाए रंज॥

नसीम— हम शीशयेशकिस्ता[4] हैं तुम कैफेमौजेमय[5]।
बुनियादे ऐश तुमसे है हमसे बिनाये रंज॥

सबा— ऐ सानए अज़ल[6] मिरी मट्टी ख़राब की।
क्या चाहिए थी ख़ानये दिलमें बिनाये रंज॥

नसीम— क्यों ख़फा रश्केहूर होना है।
आदमीसे क़ुसूर होता है॥
ख़ाकसारी वोह है कि ज़र्रोंपर॥
रोज़ बाराने नूर होता है॥

सबा— बन्दा अब नासबूर[7] होता है।
उफ़्[8] होवे क़ुसूर होता है॥
ऐ सबा! जब बहार आती है।
हमको सौदा ज़रूर होता है॥

---

[1]रजकी ख़ुराक;
[2]गोदकी तगी;
[3]क़ब्रकी सकीर्णता;
[4]टूटे प्याले;
[5]शराबकी लहर;
[6]मृत्यु रूपी कारीगर;
[7]असन्तुष्ट;
[8]क्षमा किये जाने पर।

अब हम उनके २८२ शेरो मे से कुछ नमूना और पेश करते है—

समझा है हकको अपने ही जानिब हर एक शख़्स ।
यह चाँद उसके साथ चला जो जिधर गया ॥
शोरीदगीसे[1] मेरी यहाँतक वोह तंग थे ।
रूठा जो मैं तो ख़ैर मनाई कि शर[2] गया ॥

बूए गुल गुंचेसे कहती है 'नसीम' ।
बात निकली मुँहसे अफसाना चला ॥

चमनमें दहरके[3] आकर मै क्या निहाल हुआ ।
बरंगे सब्जये बेगाना पायमाल हुआ ॥
कहानी कहके सुलाते थे यारको सो अब ।
फ़साना उम्र हुई; ख़्वाब वोह ख़याल हुआ ॥
जूनूँकी चाकज़नीने[4] असर किया वाँ भी ।
जो ख़तपें हाल लिखा था वोह ख़तका हाल हुआ ॥

शरीके बज्म हुए हो तो दूर कीजे हिजाब ।
जो निकले नाचने फिर क्या लिहाज घूँघटका ॥

बजुज गोरेगरीबाँ[5] नक़्शे पा[6] थे फिर नहीं आगे ।
यहीतक हर मुसाफ़िरने पता पाया है मज़िलका ॥
'नसीम' अपने ही ऐमालोसे गर्दिश है जमानेकी ।
रवाँ[7] कश्तीपै आता है नज़र हर नख़्ल[8] साहिलका ॥

सदफ़-ओ-अब्रेगुहरबारको[9] देखा तो खुला ।
आलमे आबमें भी होते है प्यासे पैदा ॥

---

[1]बुरी हालतसे; [2]झगडा; [3]संसारके, [4]कपडे फाडनेने;
[5]कब्रिस्तानसे आगे, [6]पद चिह्न; [7]चलता हुआ; [8]पेड; [9]सीप ।

कूचये जानाकी मिलती थी न राह।
बन्द की आंखें तो रस्ता खुल गया॥

बुलबुलके मुंहपै उडने लगी है हवाइयाँ।
सैयादको बता कहीं-ओ-बागबाँ ! हवा॥

बुतोंकी गली छोड़कर कौन जाये।
यहींसे है काबेको सजदा हमारा॥

कलतक जो शमए महफिले ऐशोनिशात थे।
जलता नहीं चराग भी आज उनकी गोरपर॥

कुफ्रो ईमाँ दोनो जानिबकी सुने।
इसलिये गोशेबशर है दो तरफ॥

ऐ मुर्गेदिल तू शाखे नशेमनसे गिर पड़ा।
हैफ आशियाँ बुलन्द है, परवाज पस्त है॥
थे महवेजुल्फ दीद्येतर दिल भी आ फँसा।
मछलीको क्या खबर थी कि पानीमे शस्त है॥

जब न जीते जी मेरे काम आयगी।
क्या यह दुनिया आक़बत बख्शायगी॥
जब मिले दो दिल मुख़िल फिर कौन है ?
बैठ जाओ खुद हया उठ जायगी॥
खाकसारोंसे जो रक्खेगा गुबार।
ओ फलक ! बदली तेरी हो जायगी॥
गर यही है इस गुलिस्ताँकी हवा।
शाखेगुल इक रोज झोका खायगी॥

जब करेगा गर्मियाँ वोह शोलारू।
शमये महफिल देखकर जल जायगी॥

जाँ निकल जायेगी जब तनसे 'नसीम'।
गुलको बूए गुल हवा बतलायगी॥

सब्र रुख़सत हो तो जाने दीजिये।
बेक़रारी आये तो ठहराइये॥
दिल ही में दिखलाइये तासीरेइश्क़।
ठंडी साँसोंसे उन्हें गरमाइये॥
अब्रेरहमत सुनते हैं नाम आपका।
ख़ाकसारोंपर करम फरमाइये॥
सर्द आहें भरते हैं हम जब 'नसीम'!
कहते हैं वोह ठण्डे-ठण्डे जाइये॥

क्या-क्या हसीं चुने हुए मिट्टीमें मिल गये।
अफ़्शाँ समझके ख़ाकसे ज़र्रा उठाइये॥

जिस क़दर वस्लेबुताँका तुम्हें रहता है ख़याल।
ऐ 'नसीम'! उतनी कभी यादेख़ुदा आती है?

आशिक़से गर्म होके न पूछो जलनका हाल।
अफरोख़्ता हो शमअ़ तो परवाना क्या करे॥

कानमें सबके अपनी बात न डाल।
आबरू मिस्ले आबे गोहर है॥

तुम्हें रक़ीबकी ख़ातिर है लो मैं जाता हूँ।
उठाइये न हयाको, बिठाइये न मुझे॥

जो दिनको निकलो तो ख़ुर्शीद गर्देसर घूमे।
चलो जो शबको तो क़दमोपै माहताब गिरे॥

अहदे पीरीमें रवाना हुए यूँ होशोहवास।
सुबहको जैसे मुसाफ़िरसे हो मंज़िल ख़ाली॥

इश्क़के रुत्बेके आगे आस्माँ भी पस्त है।
सर झुकाया है फ़रिश्तोंने बशरके सामन ॥

बल पड़ने लगा अबरूयेख़मदारके ऊपर।
आजाये न आफत कहीं दो चारके ऊपर ॥

चल। दुस्तरे रिज़को लेकर जो साकी।
फरिश्ते हुए साथ घर देखनेको ॥

मुहतसिबकी आँखपर जबसे चढ़ी।
दुख़्तेरिज़ शीशेके दिलसे गिर गई ॥

आनमें फर्क़ न आने दीजिये।
जान अगर जाये तो जाने दीजिये ॥

आँख नर्गिससे जो उसकी लड गई।
सुबहदम क्या ओस गुलपर पड़ गई ॥

दुनियामें ऐशो ग़मसे है यकसर भरे हुए।
शीशोके दिल है ख़ाली तो सागर भरे हुए ॥

दोज़ख़ोजन्नत है अब मेरी नज़रके सामने।
घर रकीबोंने बनाया उसके घरके सामने ॥

३० नवम्बर १९५० ई०

५१

शरफ़

मीर सआदतअलीहुसेनखाँ शरफ़ उर्फ आगा हिजो नवाब वाजिद-अलीके समधी थे। वाजिदअलीशाह जब बन्दी बनाकर कलकत्ते भेजे गये, तब इन्होने उस विपत्तिमे भी उनका साथ दिया। आतिशके शिष्योमे इनका विशेष स्थान है।

ठहरा गया है लाके जो मंजिलमे इश्कको।
क्या जाने रहनुमा था कि रहजन था, कौन था ?

निकलके जाऊँ किधर तेरी अंजुमनके सिवा।
चमनकी बू हूँ बसूँ फिर कहाँ चमनके सिवा॥

दर्दे दिल भी उन्हें सैयादने कहने न दिया।
रह गये मुर्गेकफस खोलके मिनकारोको॥

—इन्तकादयात, भाग २

जहाँमें हुस्न परस्तोकी जान लेनेको।
निखर-निखरके निकलते है खूबरू क्या-क्या॥
टपक-टपकके कही गुल बना कही लाला।
चमनमे रग न लाया मेरा लहू क्या-क्या॥
जबाँ जो उनकी 'शरफ' नशेमें बहकती है।
मजे-मजेकी गोह करते है गुफ्तगू क्या-क्या॥

फड़ककके जान न देता तो और क्या करता।
कफससे और निकलनेकी राह क्या करता ?

शाख़ेगुल झूमके गुलज़ारमें सीधी जो हुई।
फिर गया आँखमें नक़्शा तेरी अँगड़ाईका॥

रमाके धूनी जो बैठा हूँ माँगपर उसकी।
इसी लकीरका मुझको फकीर होना था॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

५२

ख़लील

मीर दोस्तअली ख़लील सैयद जमालअलीके पुत्र और बड़ौलीके रहनेवाले थे। मामूली शायरी करते थे।

बज्मसे यारने यह कहके निकाला हमको।
उठिये घर जाइये, दम ले चुके, सुस्ताए बहुत॥

मुसाफिरे रहे ना आश्नाए[1] मंजिल है।
मिसाले रेगेरवाँ जाएँगे कहाँ देखें॥

जूनूंमें भी यही धुन है कोई उधर ले जाये।
जिधर वोह दुश्मने होशोहवास रहता है॥

—इन्तक़ादयात, भाग २

---

[1]निर्दिष्ट स्थानसे अनभिज्ञ।

५३

सबा

मीर वज़ीरअली सबा लखनऊके रहनेवाले और बुन्देअलीके पुत्र थे।

दिलमें इक दर्द उठा आँखोंमें आँसू भर आये।
बैठे-बैठे हमें क्या जानिये क्या याद आया॥

कूचये इश्ककी राहें कोई हमसे पूछे।
लिज़्ज़ क्या जानें गरीब अगले ज़मानेवाले॥

—इन्तक़ादयात, भाग २

५४

नवाब आसफ़ुद्दौला 'आसफ़'

[शासन काल ई० स० १७७२-१७९७]

लखनऊके नवाब मुगल सल्तनतकी ओरसे अवधप्रान्तके शासक (गवर्नर, सूबेदार) थे और मुगल बादशाहोके नायब कहलाते थे। अवध-की राजधानी फैजाबाद थी और अवधके तत्कालीन शासक नवाब **शुजा-उद्दौला**के नवाब **आसफुद्दौला** पुत्र थे। इन्होने २७ वर्षकी आयुमें शासनकी बागडोर सम्भाली और फैजाबादसे बदलकर लखनऊको अवध-की राजधानी बनाया। ये बडे गुणज्ञ, कलापारखी और दानी थे। इनकी दानवीरताकी चारो ओर ख्याति फैल गई थी—

जिसे न दे मौला, उसे भी दे आसफुद्दौला।

इनकी गुणज्ञता, कलाप्रियता और सहृदयताकी गन्ध फैली तो देशके कोने-कोनेसे गुणी एकत्र होने लगे। **गुलशनेहिन्द**के लेखकका कथन है कि इनके शासनकालमे "एक-एक कमालका हज़ारहा आदमी मौजूद था।" इमारतका शौक ऐसा था कि हर रोज एक नई इमारतकी बुनियाद रखी जाती थी। इनके शासनकालमे सगीतकी इतनी उन्नति हुई कि लखनऊ सगीत-विशेषज्ञोका रगस्थल बन गया था। आसफुद्दौला स्वय शायर थे और शायरोका आदर-सत्कार, भरण-पोषण मुक्त हृदयसे करते थे। अतएव **सौदा, मीर, सोज़** जैसे ख्यातिप्राप्त शायर भी खिच आये। नवाबका उपनाम **आसफ** था और **सोज़**से अपनी कविता संशोधित कराते

थे। इनका एक उर्दू दीवान ५७० पृष्ठका मिलता है। जिसमे मसनवी हजल हिजो तज़मीन और गज़ले है। हिजोमे करबला भाण्डका खाका ऐसे अश्लील शब्दोमे उडाया गया है कि उन्हे कोई सजीदा शख्स पढ नही सकता। गज़लोके चन्द शेर दर्ज किये जाते है। अपने वशमे सबसे प्रथम इन्हीको शायरीका शौक लगा। बादमे इनके उत्तराधिकारियोने भी इसे कायम रक्खा।

जहाँ तेग उसकी अलम देखते है।
वहाँ अपना सर हम कलम देखते है॥
जो जलवा सनम तुझमे हम देखते है।
खुदाकी खुदाईमें कम देखते है॥
गुज़रते है सौ-सौ खयाल अपने दिलमे।
किसीका जो नक़्शेकदम देखते है॥
बुतोकी गलीमे शबोरोज़ आसफ।
तमाशा खुदाईका हम देखते है॥

—तारीखे अदबे उर्दू

यह न आनेके बहाने है सभी वरना मियाँ!
इतना तो घरसे मेरे कुछ नही घर दूर तेरा॥

क़िस्सये फरहादोमजनूँ रातदिन पढते थे हम।
सो तो वह माज़ी[1] पडा, अब अपना अफसाना हुआ॥
रातदिन यह सोच रहता है मेरे दिलके तईं।
ऐ खुदा! याँसे वह जाकर किसका हमखाना[2] हुआ?

क़ासिद! तू लिये जाता है पैगाम हमारा।
पर, डरते हुए लीजियो वां नाम हमारा॥

---

[1]पुरानी बात हुई, [2]मेहमान।

कूचेसे अपने तूने मुझको अबस[1] उठाया।
सब तो चले गये थे इक मैं ही रह गया था॥

इस अदासे मुझे सलाम किया।
एक ही आनमें गुलाम किया॥

दर्दे दिल है तो यारके बाइस।
गम है तो इस निगारके[2] बाइस॥

कोई बात तो हमारी भी मान अब ख़ुदासे डर।
कबतक दिया करेगा हमें तू जवाब तल्ख़॥
फिरता हूँ कोहोदश्तमें[3] रोता मैं ज़ार-ज़ार।
तुझ बिन हुआ है घर मुझे ख़ाना ख़राब तल्ख़॥

बड़ा चरचा बढेगा इसका 'आसफ'।
हरइक बेदर्दको तू मत सुना दर्द॥

कल तलक होती थी कुछ नब्जमें गरमी महसूस।
आज तो नब्ज़ ही होती नहीं अपनी महसूस॥
चश्मे आशिक़में यारो ख़्वाब कहाँ?
दिले आशिक़में सब्रोताब कहाँ?

यह सारी शोख़ियाँ हैं, सुनलो यारो सामने होकर।
करे गर बात कोई इस सितमगरसे तो हम जानें॥

फ़रहाद था या मजनूं फिर अच्छा ज़माना था।
अब लुत्फ़ नहीं 'आसफ' कुछ उल्फतेख़ूबाँमें॥

---

[1]व्यर्थ; [2]सुन्दरीके;
[3]पर्वतों, बनोमें।

जॉ निकल जायगा ज़ालिम! मिरा, अब जानेसे ।
याँ न आना ही भला था तेरा इस आनेसे ।।

मिलनेको तुझसे दिल तो मेरा बेक़रार है ।
तू आके मिल न मिल, यह तेरा अख्तयार है ।।

सभूसे बोलता है, पर मुझीसे—
नही कुछ बोलता, क्या जाने क्या है ?

—इन्तकादयात, भाग १

२५ फरवरी १६५०

५५

नवाब वज़ीरअलीख़ाँ 'वज़ीर'

[शासन काल १७९७ ई०]

वजीरअलीख़ाँ नवाब आसफुद्दौलाके पुत्र थे। उनके बाद सन् १७९७मे अवधके राज्यासनपर अभिषिक्त हुए, किन्तु अत्यन्त उग्र-स्वभावी और अंग्रेज-विरोधी होनेके कारण चार मासमे ही राज्यच्युत करके बनारस भेज दिये गये। वहाँ इन्होने रेजीडेण्टको मार डाला और विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। अन्तमे जयपुरमे पकड लिये गये और कलकत्ते-के फोर्ट विलयममे बन्दी बनाकर रखे गये।

ज्यूँ सब्ज़ा रुँदे उगते ही पैरोके तले हम।
इस गर्दिशे अफलाकसे फूले न फले हम॥

अरमान बहुत रखते थे हम दिलके चमनमे।
बैठे न ख़ुशीसे कभी सायेके तले हम॥

हम बोह न कलम थे किसी मालीके लगाये।
नरगिसके निहालोमें थे आसफके पले हम॥

ज़िन्दाने मुसीबतमें भला किसको बुलाएँ।
रहते हैं वज़ीरी ही से दिन-रात मिले हम॥

—तारीख़े अदबे उर्दू

२५ फरवरी १९५०

५६

नवाब सआदतअलीखाँ

[शासन काल सन् १७९७-१८१४ ई०]

सआदतअली नवाब आसफुद्दौलाके सौतेले भाई थे। नवाब वजीर-अलीके राज्यच्युत किये जानेपर अंग्रेजोकी कृपासे ये सिंहासनारूढ हुए। इन्हे अंग्रेजोकी यह कृपादृष्टि अत्यन्त मँहगी पडी। अवध प्रान्तका दो-तिहाई भाग अंग्रेजोके कब्जेमे चला गया। यूँ तो समस्त देशपर अंग्रेजोकी ईस्ट इण्डिया कम्पनीका अधिकार था और वही शासनकार्य चलाती थी। भारतके बादशाह, नवाब, राजे तो उनकी शतरजके मुहरे थे। उनके सकेतपर लडते और चलते थे। घरेलू कलह और षडयन्त्रोके कारण बन्दरबाँटकी न्यायतुलाके समक्ष सभी नतमस्तक थे। कुछ सन्तानहीन राज्योको ईस्ट इण्डिया कम्पनीने कृपापूर्वक अपने उदरगह्वरमे शरण दे दी थी। जो बचे थे वे भाई-भाईकी क्रोधाग्निमे भस्मीभूत हो रहे थे। उसी अग्निको बुझानेमे पारितोषिक स्वरूप या जले हुए घरको अनधिकारी भाईको सौप देनेकी महान नैतिकताके उपहारस्वरूप राज्यका बहु भाग अपने अधिकारमे कर लेना ईस्ट इण्डिया कम्पनीका महान कर्तव्य हो जाता था और इसी विध्वस राज्यको प्राप्त करनेकी खुशीमे ये अधिकारहीन लँगडे राजा-नवाब जवाहरात लुटाते थे। प्रजा ऐसे शुभ अवसरोपर घीके दिये जलानेको मजबूर थी।

यह बचा-खुचा राज्य भी धन-वैभवकी दृष्टिसे कुछ कम न था। नवाब सआदतअलीखाँ भी बडे गुणज्ञ थे। इन्होने भी अपने भाई आसफुद्दौलाकी भाति कलाकारोका आदर-सत्कार किया। मुसहफी और इंशाकी नोक-झोक इन्हीके शासनकालमे हुई थी।

५७

नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर

[शासन काल ई० १८१४-१८२७]

गाज़ीउद्दीन हैदर अपने पिता **सआदतअली**के बाद सन् १८१४में राज्यासीन हुए। अभीतक लखनऊके नवाब मुगल बादशाहोके नायब कहलाते थे, परन्तु इन्होने सन् १८१९मे नाममात्रके मुगल बादशाहकी आधीनताको उतार फेका और नवाबवज़ीरके बजाय बादशाह कहलाने लगे। इस स्वतन्त्रताके उपलक्षमे जवाहरात लुटाये गये और अहलेलखनऊ जो अभीतक देहलीकी वजअ-क़तअ तहजीबोतमद्दुन, लिबास और जबान-की तकलीद (अनुकरण) करना फख्र समझते थे, धीरे-धीरे जुदागाना नीति बरतने लगे। यह अलगाव यहाँतक बढा कि शायरी भी इससे अछूती न रह सकी और वह भी देहलवी और लखनवी दो हिस्सोमे तकसीम हो गई। दिल्लीके सैकडो मुहावरे अहले लखनऊने तर्क कर दिये। यहाँतक कि बहुतसे ऐसे शब्द जो शब्द दिल्लीमे पुल्लिग बोले जाते थे, वे लखनऊमे स्त्रीलिग और जो स्त्रीलिग बोले जाते थे, वे लखनऊमे पुल्लिग बोले जाने लगे।

गाजीउद्दीन हैदर भी शायरी करते थे, परन्तु बडी नीरस और फुसफुसी। बकौल डाक्टर स्प्रिंरिग—"इनके अशआर इस दर्जा ख़राब है कि वाकई बादशाहका कलाम मालूम होते है।"

डाक्टर स्प्रिंरिग साहबने बात वाकई बडे पतेकी कह दी है। सचमुच जितने बादशाह-नवाब शायर हुए है, उनमे एकका भी ऐसा कलाम नही,

जिसे उच्चकोटिका कहा जा सके। हालाँकि इन सबको नामवर मुसल्लिम उलसबूत उस्तादोसे सीखनेका अवसर प्राप्त हुआ। प्राय. अपने समयके सभी ख्यातिप्राप्त शायर बादशाहोके दरबारोमे रहे। उनकी कविता सशोधित की, अपनी तरफसे लिखकर भी दी, फिर भी मैदानेशायरीमें एक भी सुर्खरू नजर नही आता।

२७ फरवरी १९५० ई०

५८

नवाब नसीरुद्दीन हैदर

[शासनकाल सन् १८२७–१८३७ ई०]

नसीरुद्दीन अपने पिता नवाब गाज़ीउद्दीन हैदरके बाद सन् १८२७मे राज्यारूढ हुए। यह भी मामूली शायर थे।

यह किस मस्तके आनेकी आरज़ू है ?
कि साकी लिये सागिरे मुश्कबू[1] है ॥

समाया है जबसे तू नज़रोमे मेरी।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है ॥

जिताऊँ मै क्या अपना हाले परीशाँ।
अयाँ[2] ज़ुल्फे दिलदारसे मू-ब-मू[3] है ॥

चलो कब्रे फरहादपर फातहाको।
मगर आबेशीरीसे लाज़िम वज़ू है ॥

शफक[4] बनके होना है गरदूँपै ज़ाहिर।
यह किस कुश्तये बेगुनहका लहू है ?

गुलिस्ताँमें जाकर हर इक गुलको देखा।
न तेरी-सी रगत न तेरी-सी बू है ॥

---

[1]सुगन्धित मद्यपात्र, [2]प्रकट,
[3]प्रत्येक बालसे, [4]सन्ध्याकालीन लालिमा।

५९

नवाब मुहम्मदअली शाह

[शासनकाल १८३७-१८४२ ई०]

नवाब नसीरुद्दीनके बाद उनके सगे चाचा मुहम्मदअली शाह सन् १८३७मे गद्दीपर बैठे। इनका कोई कलाम दस्तयाब नहीं है।

६०

अमजदअली शाह

[शासनकाल सन् १८४२–१८४७ ई०]

अमजदअली अपने पिता नवाब मुहम्मदअलीशाहके बाद सन् १८४२से १८४७ तक शासक रहे। ये पिता-पुत्र भी अपने पूर्वजोके समान कलाकारोका भरण-पोषण करते रहे।

६१

नवाब वाजिदअली शाह 'अख़्तर'

[शासनकाल सन् १८४७–१८५६ई०]

वाजिदअलीशाह अपने पिता नवाब **अमजदअलीशाह**के बाद सन् १८४७मे बीस वर्षकी अवस्थामे लखनऊके राज्यसिहासनपर अभिषिक्त हुए। इनके अभिषिक्त होते ही दर्बारमे नर्तकियो और कोकिलकठियोके परेके परे एकत्र होने लगे और शराबकी नहरे बह निकली। यूँ तो इस वशमे सभी नवाब एक-से-एक बढकर रँगीले हुए, परन्तु इन्होने सबपर फौकियत हासिल कर ली। स्वर्गके राजा इन्दरके अखाडेकी रगीन कहानियाँ मान्द पड गईं। मालूम होता है अवध सल्तनतका सगेबुनियाद ही शराबमे भिगोकर किसी परी पैकरसे रखवाया गया था। मुगल बादशाहोमे जिस प्रकार **मुहम्मदशाह रंगीले** रगीन मिज़ाजीमे अपना सानी नही रखते, उसी तरह लखनवी नवाबोमे वाजिदअलीशाहका भी जवाब नही है। इनके चापलूस मुसाहब इन्हे किस प्रकार मूर्ख बनाते थे? ये कितने नाज़ुक मिज़ाज और ऐय्याश थे, रुपयेको किस बेदर्दीसे लुटाते थे? इनके हरममे कितनी बेगमात और रखैल थीं? ये जीनेपर चढते हुए रेलिगकी बजाय सुन्दरी स्त्रियोके क्या पकडकर चढ़ते थे? यह सब इतिहासके पृष्ठ चीख-चीखकर सुना रहे हैं।

नवाब वाजिदअलीको शायरी और सगीतका तो शौक था ही परन्तु नाचनेमे भी कमाल हासिल था। कत्थक नृत्यमे वे बडी महारत रखते थे। उनके दरबारमे शायरो-गवैयोका तो बोलबाला था ही, नचैयो, भाण्डो, मसखरों और लतीफे कहनेवालोकी भी एक बहुत बडी जमाअ़त थी।

तीतर लडानेवालो, बटेर मुठियानेवालो, कबूतर उडानेवालोको भी बाकायदा तनख्वाहे मिलती थी। भड्वे-मीरासी 'मीर साहब' कहलाये जाते थे। जब शासक रात-दिन रग-रलियोमे गर्क थे, तब अहले लखनऊका क्या हाल था? यह अल्लामा नियाज़ फतहपुरीकी जबानेमुबारिकसे सुनिये—"घर-घर मजालिसे लुत्फोनिशातका कयाम, गोशे-गोशेमे रिन्दाने बादाकोशका अजदहाम, हर-हर बामसे हुस्ने दिलनवाजकी जलवा फरोशी और हर-हर गलीमे इश्ककी तपिशअन्दोजी, हर शामको शबेऐशके असबाबकी फराहमीमे वोह इफरात, गोया सुबहतक जिन्दा रहना नही और हर सुबुह आइन्दा शामके लिए वोह अहतमाम कि शायद कभी मरना नही। गदासे लेकर शाहतककी आँखमे सरसो फूली हुई थी और जिधर देखिये काकुमोसजामके परदोकी ओटमे ईरानी कालीनोपर हरीरी चादरोके अन्दर हुस्नोशबाब इस तरह मदहोश पडे थे, जैसे इस रातकी कभी सुबह होना ही नही है। ज़ाहिर है कि जब सारा शहर इस रगमे रचा हो तो खुद जानेआलम (नवाब) वाजिदअलीशाहने हुस्नोशबाबसे इन्तकाम लेनेके लिए क्या कुछ न किया होगा"।[1]

नवाब **वाजिदअली** स्वभावत नाजुक मिज़ाज, ऐय्याश और आराम तलब थे ही, कुछ चापलूसो और चाटुकारोने हवाके घोडेपर चढाया, और अगर कोई कसर रह गई थी तो वह गौर-महाप्रभुओने पूरी कर दी। शासनसत्ता अपने हाथमे लेकर नवाबोको आलसी और अकर्मण्य तो पहले ही कर दिया था, परन्तु जिस कुत्तेको मारना हो उसे पहले पागल प्रसिद्ध करो और फिर गोली मारो अपनी इसी कायमाब नीतिके अनुसार वाजिदअलीको ज्यादा-से-ज्यादा बदनाम किया गया और अनुकूल अवसर मिलते ही ३१ जनवरी १८५६को गिरफ्तार करके कलकत्ते भेज दिया गया, और बची-खुची २ करोड वार्षिक आयकी अवध सल्तनतको ईस्ट इण्डिया

---

[1] इन्तकादियात, भाग १, पृ० ६६-६७

कम्पनी चट कर गई।

वाजिदअली 'अख़्तर' तख़ल्लुस रखते थे। बन्दी वेषमे जब कलकत्तेको प्रस्थान किया तो मनकी व्यथा इन शब्दोमे प्रस्फुटित हुई—

दरो दीवार पै हसरतसे नज़र करते है।
रुख़सत, ऐ अहले वतन! हम तो सफर करते है॥

इनके ४०के करीब दीवान मौजूद है। असीर और बर्कसे शायरीमें इसलाह लेते थे।

इस इश्क़ने ऐसा किया, मै क्या बताऊँ क्या किया?
आहे दिल नाशादने और आस्माँ पैदा किया॥

कमर धोका, दहन उक़्दा, गज़ा आँखें, परी चेहरा।
शिकम हीरा, बदन ख़ुशबू, जबी दरिया, जबाँ ईसा॥
बरायेसैर मुझ-सा रिन्द मयख़ानेमें गर आये।
गिरे साग़र, लुढ़के शीशा, हँसे साकी, बहे दरिया॥

यही तशहीर है शबोरोज़ है बंगालेमें।
लखनऊ फिर भी दिखावेगा मुकद्दर मेरा॥

२७ फरवरी १९५० ई०

लखनऊकी बेगमात—

नवाबोके दरबारोमे ही शायरो और गवैयोका जमघट नही रहता था, उनके महलोमे भी बहुत-सी बेगमात शायरी करती थी। कितनी ही गान-विद्यामे निपुण थी और कितनी ही नृत्यकलामे पारगत थी। नवाबोकी चहेती बेगम बननेकी लालसामे बेगमात इन हुनरोको बड़े चावसे सीखती थी। अकेले नवाब वाजिदअलीशाहकी ७० बेगमात शायरी करती थी। बेगमातकी शायरी भी बहुत घटिया स्तरकी है। प्रसगवश उनमेसे १३ बेगमातके एक-एक, दो-दो नमूने पेशेनज़र हैं।

६२

उमराव महल

अत्यन्त रूपवती, सिकन्दर बेगमकी उपाधिसे विभूषित थी। और तीन हज़ार रुपये मासिक खर्चको मिलते थे।

नहीं आता है अब क़रार मुझे।
तेरे ख़तका है इन्तज़ार मुझे॥
दिनको रहता है इज़्तराब मुझे।
शबको आता नहीं है ख्वाब मुझे॥

६३

बदरआलम बेगम

ये वाजिदअलीशाहके साथ उनकी बन्दी अवस्थामे बेपर्दगीके भयसे कलकत्ते नही गई थी। इनकी जुदाईकी चिट्ठियाँ, औरतके फर्ज, आदि मज़मून पुस्तक रूपमे प्रकाशित हो चुके है।

तुम्हारे ख़तको जब देखा तनेमुर्दामें जान आई।
हुआ साबित कि है तहरीरमें इजाज़े मसीहाई॥

बलाये हिज्रमें जबसे फँसी हूँ।
मैं अंगारोके ऊपर लोटती हूँ॥

६४

रश्कमहल बेगम

ये वाजिदअलीके बन्दी जीवनमे उनके साथ बराबर रही, इनसे शाहज़ादा मिर्ज़ा अमानजाह उत्पन्न हुए। उसे भी छोडकर ये नवाबके साथ रही।

हुआ बाल बाँका जो मिर्ज़ा हमारा।
तो फिर संग है और शाना तुम्हारा॥

६५

हूर बेगम

ये डोमिनीकी लड़की थी। गाना भी जानती थी।

लो आओ एक दम मेरे पहलूमें सो रहो।
गर अपना जानते हो तुम अब जान, आर क्या ?
लाखो हसीं हैं सूरतेजानाँके शेफ़्ता।
हम किस कतारमें हैं, हमारा शुमार क्या ?

६६

शैदा बेगम

इनसे दो शहज़ादियाँ उत्पन्न हुईं।

क्यो हमसे छिपाते हो तुम राज़की बातें।
हम तुमसे किसी बातका पर्दा नहीं करते॥

६७

सदरमहल बेगम

आपने बादशाहनामा और गुलदस्ता नामक दो दीवान लिखे है।

मैंने बलाएँ लेनेको हाथ बढ़ाये जब उधर।
मुंहको फिराके यारने मुझसे कहा 'अलग-अलग'॥

६८

महलआलम बेगम

इनसे वाजिदअलीकी बचपनमे ही शादी हो गई थी। यह खास मलका थी। नवाब खास महलकी उपाधि और पंचहज़ारी मसब था। आपके बतनसे चार शाहज़ादे हुए थे। एक मसनवी और एक दीवान लिखा है।

पिला तू बज्ममें वह जामे खुशगवार मुझे।
कि ता-ब-हश्र[1] न हो साक़िया! खुमार मुझे॥

है शबेवस्ल मगर दिलमें है धड़का आलम।
बोल उठे न कहीं मुर्गेसहर आजकी रात॥

---

[1]कयामतके दिनतक।

६९

इशरतमहल बेगम

शोलये इश्क़ ! लगा आग न दिलमें मेरे।
यह तो अल्लाहका घर है, किसी दुश्मनका नहीं ॥

७०

फ़ातिमा बेगम

फिर वह चर्वे हो फिर वही बातें।
दिन हों इशरतके, ऐशकी रातें ॥

७१

हैदरी बेगम

शाहज़ादा मिर्ज़ा हुमायूँकी लडकी और मिर्ज़ा महबूबअली क़ौसकी बहन थी।

न पूछ ए हमनशी हमसे शबे फ़ुर्क़तकी बेताबी।
अलम है, दर्दे हसरत है, फ़ना है, आहोज़ारी है ॥

७२

महबूबमहल बेगम

उठा सकी न मुसीबत फिराक़े यारमें रूह।
निकल गई तने लाग़िरसे इन्तज़ारमें रूह॥

७३

दीहम बेगम

क्या कहूँ कुछ कहा नहीं जाता।
हाय चुप भी रहा नहीं जाता॥

७४

हिजाब बेगम

बेगम हिजाब किसकी मलका थी, यह तो ठीक नही कहा जा सकता, परन्तु उनका जन्म सन् १८४४मे हुआ और दीवान १८७५में मुद्रित हुआ था। कुछ लोग इन्हे नवाब वाजिदअलीशाह की मलका लिखते है, परन्तु अल्लामा नियाज़ फतहपुरी इसको सही नही मानते।

नमूना कलाम—

ख़फा अभीसे न हो, मुद्दआ सुनो तो सही।
कुबूल करना न करना, भला सुनो तो सही॥
रक़ीबोकी तो शबोरोज़ सुनते हो बातें।
हमारी भी तो कभी महलका! सुनो तो सही॥
नहीं यह खूब कि सुनते नहीं किसीकी तुम।
यह देखो तो कि मैं कहता हूँ क्या, सुनो तो सही॥
ख़ता मेरी तो बताओ कि रूठे जाते हो।
बिगडते किसलिए हो, क्या हुआ सुनो तो सही॥
जवाब दो कि न दो ऐ बुतो! नही परवा।
कहूँ जो कुछ वोह बराये ख़ुदा सुनो तो सही॥
न रहम आये जो तुमको तो मेरी किस्मत है।
तुम अपने दिलसे मेरी इल्तजा सुनो तो सही॥
मुआफ़ करनेको कहता नहीं मैं साहबसे।
यह चाहता हूँ कि उज्रे ख़ता सुनो तो सही॥

'हिजाब'को तो ज़मानेमें जानते सब है।
मगर जो कहते है तुमको, ज़रा सुनो तो सही ॥

आगसे भी है ज़ियादा बेक़रारी इन दिनो।
शक्ल पहचानी नहीं जाती हमारी इन दिनो ॥

जो उसने कहा गो वही करते गये हम तो।
इसपर भी निगाहोसे उतरते गये हम तो ॥

वह ख़ुलूससे पेश आये यह थी उनकी इनायत।
गरदनको झुकाये हुए, डरते गये, हम तो ॥

ख़ुद कभी पूछें वोह अहवाल यह आदत ही नही।
हम जो कुछ आपसे कहते है गिला होता है ॥

रहे बुतख़ानेमें बरसो न काबेमें ज़रा ठहरे।
ग़रज़ थी दिलके बहलानेसे, जिस जा दिल लगा, ठहरे ॥

कहेंगे उसको न अच्छा बुरा 'हिजाब' कभी।
बयाँ करेंगे किसीसे न अपने यारका हाल ॥

मैंने तो कोई बात नहीं ऐसी कही थी।
ग़ैरोंसे भरा था कि जो वोह बन्देपै बरसा ॥

तुमसे बतलाऊँ क्या कि फ़ुरक़तमें।
सदमे दिलपर गुज़रते है क्या-क्या ?
बुतको ख़ौफेख़ुदा 'हिजाब' नहीं।
हम सनमसे भी डरते है क्या-क्या ?

ऐ हिजाब ! आज तो सोता है यह ग़ाफ़िल कैसा ?
बख़्त जागे है, ज़रा यारको देखा होता ॥

दामने महबूब तक पहुँचा न जब दस्ते जुनूँ।
बढ़ गया नाचार अपने ही गिरेबाँकी तरफ ॥

महीनों हो गये साहब ! कहाँतक आजमाओगे ।
गले लग जाओ, क्या हररोजके झगड़े निकाले है ।।

कुछ खौफेखुदा कीजिये इस तरह न चलिये ।
सौ बार तो इस चालपै तलवार चली है ।।

बनके तसवीर 'हिजाब' उसका सरापा देखो ।
मुँहसे बोलो न कुछ, आँखोसे तमाशा देखो ।।

बेगम हिजाबका कलाम भी तत्कालीन लखनवी रगमे सराबोर है । वही बाजारू इश्क, वही रकीबोसे परेशानी, वही बुतोकी बेवफाई । रकाबतकी बात तो समझमे आती है, क्योकि सैकडो सौत होती थी, उनके घात-प्रतिघात तो सचमुच असह्य होते होगे, परन्तु समस्त भाव पुरुषोचित गजलमे समोने और वह भी एक सम्भ्रान्त महिला द्वारा शोभनीय नही । बेगमातका कलामके पहले परिचय न दिया जाय, तो वह किसी पुरुष या वेश्याका लिखा हुआ भी समझा जा सकता है । सम्भ्रान्त महिलाओके उद्‌गार तो स्त्रियोचित शुद्ध प्रेमके द्योतक होने चाहिएँ । मातृ जातिके उच्छ्वासमे जब वासनाकी गन्ध आने लगी, तब उसकी सन्तानकी क्या शोचनीय स्थिति हुई, कि नसीसे छिपी बातही है । कलाममे क्रिया भी पुल्लिग इस्तेमाल की गई है । उर्दू-शायरीमे आशिक पुरुष होता है, इसी नियमके अनुसार स्त्रियोको भी मजबूरन सभी भाव पुरुषोचित लाने पडते थे, जो अत्यन्त अस्वाभाविक और अरुचिकर प्रतीत होते है ।

ता० २७ फरवरी १९५०

सदा है इस आहोचश्मेतरसे[1] फलकपै बिजली ज़मींपै बाँरां[2] ।
निकलके देखो टुक अपने घरसे फलकपै बिजली ज़मीपै बारां ॥
हँसे है कोठेपै यूसुफ अपना, मैं ज़ेरे दीवार रो रहा हूँ ।
अज़ीज़ ! देखो मेरी नज़रसे फलकपै बिजली ज़मीपै बारां ॥
पतंग क्योंकर न होवे हैरां कि शमा सबको दिखा रही है ।
बचश्मेगिरियां[3] व ताजे ज़रसे फलकपै बिजली ज़मीपै बारां ॥
नहाके अफशां[4] चुनो जबीपर निचोड ज़ुल्फोको बाद उसके ।
दिखाओ आशिकको इस हुनरसे फलकपै बिजली ज़मीपै बारां ॥
वोह तेग खींचे हुए है सरपर मैं सर झुकाये हूँ अश्करेज़ां[5] ।
दिखाऊँ ऐ दिल ! तुझे किधरसे फलकपै बिजली ज़मीपै बारां ॥
'नसीर' लिक्खी है क्या गज़ल यह कि दिल तडपता है सुनके जिसको ।
बँधे है यूँ कब किसी बशरसे फलकपै बिजली ज़मीपै बारां ॥

तू अपनी पगडीपै रखके तुर्रा जो खेले पिचकारियोसे होली ।
अया[6] हो नैरंगियेदिगरसे[7] फलकपै बिजली ज़मीपै बारां ॥
वोह शोख़ झरनेकी सैर करके फिसलने पत्थरपै जाके बैठा ।
पुकारी खलकत[8] इधर-उधरसे फलकपै बिजली ज़मीपै बारां ॥
'नसीर' मद आपकी है तुझको कि अहले मानी पुकारते है ।
अजब है मज़मून ताज़ा तेरे फलकपै बिजली ज़मीपै बारां ॥

दन्दां[10] दिखाके मत हँस ऐ बख़ययेगरीबां[11] ।
चाके जिगरका[12] हमको तौरेरफू[13] न आया ॥

---

[1]ठण्डी साँस और रोती आँखोसे, बारिश, रोती आँखोसे,
[2]बिन्दी, [3]आँसू बहाता हुआ, [4]प्रकट, [5]नये ढगसे,
[6]जनता, [7]धन्य, [8]दाँत,
[9]कुरतेके गलेकी सीवन, [10]फटे जिगरका, [11]सीनेका ढग ।

जौकका ऐसे हगामी मुशायरोंमें लँगोट बाँधकर उतरना लाज़िमी था। इतने बड़े उस्ताद होकर किनाराकशी कर गये, यह बोझ सुननेकी सामर्थ्य नहीं रखते थे। उन्हें तो अपनी शुहरतको बरक़रार रखना था। गधा लात मारे तो ये भी उसको लात मारना जरूरी समझते थे।'

शाह नसीरकी शागिर्दी और बादशाहकी उस्तादी दोनों पाटोंके बीचमें पड़कर जौककी जो गत बनी, वह काबिले रहम है।

चलती चक्की देखकर दिये कबीरा रोय।
दो पाटनके बीचमें साबुत बचा न कोय॥

जौककी शायरीके सम्बन्धमें उन्हींके श्रद्धालु शिष्य मौलाना आज़ादकी राय यह है—'उस्तादकी ग़ज़लोंके दीवानको देखकर मालूम होता है कि आम जौहर उनके कलामका—ताज़गीयेमज़मून, सफ़ाइयेकलाम, चुस्तीयेतरकीब, रंगीनीमुहावरा और प्रासफ़ज़मी है। मगर हक़ीक़तमें रंग मुस्तलिफ़ उस्तोंमें मुस्तलिफ़ रहा। इब्तदामें मिर्ज़ा रफ़ी (सौदा)का अन्दाज था। शाह नसीरसे उन दिनों मार्के हो रहे थे, उनका ढंग वही था। इसलिए इन्होंने भी वही अख्तियार किया। इसके अलावा मिर्ज़ा की तर्ज़को जलसेके गरमानेमें और लोगोंके लबोदहनसे वाह-वाहके निकाल

फिर इसीपर तीन क़सीदे भी लिखे। शाह नसीरने एक विद्यार्थीसे कई एतराज उठवाये और खुद भी बीच-बीचमें उसका पक्ष मजबूत करनेको हाशियाराई करते गये। मगर जौकने फिर भी बाजी जीती।

'मौलवी अमीमुद्दीनने मिर्ज़ा गालिबके खिलाफ एक पुस्तक लिखी। मगर उन्होंने उसका कोई जवाब नहीं दिया। किसीने कहा—हजरत! आपने उसका कोई जवाब नहीं लिखा। गालिबने फर्माया—अगर कोई गधा तुम्हें लात मारे तो क्या तुम भी उसके लात मारोगे (शेरो-शायरी, पृ० २१२)

लेनेमे एक अजीब जादूका असर है। चुनाचे वही मुश्किल तरहे, चुस्त बन्दिशे, बरजिस्ता तरकीबे, मआनीकी बुलन्दी, इनके यहाँ भी पाई जाती है। चन्द रोजके बाद नवाब इलाहीबख्शखाँ 'मारूफ'की खिदमतमे और वलीअहदके दरबारमे पहुँचे। 'मारूफ' एक देरीना साल मश्शाक और फकीर मिजाज शख्स थे। उनकी पसन्देतबअके बमूजिब इन्हे भी तसव्वुफ (सूफीवाद), इरफान (आध्यात्मिक, ईश्वरीय), और दर्देदिलीकी तरफ खयालातको माइल करना पडा। वलीअहद जुरअत-ओ-इशाका अन्दाजपसन्द करते थे। उनकी गजले उसी रगमे बनानी पडती थी। नतीजा इसका यह हुआ कि उनकी (जौककी) गजल आखिरको एक गुलदस्तए गुलहाए रगारग होती थी[1]। दो-तीन शेर बुलन्दखयालीके, एक-दो तसव्वुफके, दो-तीन मुआमलेके[2], और पेच इसमे यह होता था कि हर काफिया भी एक खास अन्दाजके साथ खसूसियत रखता है। इसीमे बँधे तो लुत्फ दे, नही तो फीका रहे। बस वोह मश्शाकेबाकमाल इस बातको पूरा-पूरा समझा हुआ था, और जिस काफियेको जिस पहलूके मुनासिब देखता था, उसीमे बाँध देता था, और इस तरह बाँधता था कि और पहलू नजर न आता था। साथ इसके सफाई और मुहावरेको हाथसे नही जाने देता था, और इन्ही उसूलके लिहाजसे—मीर, सौदा, दर्द, मुसहफी, इशा, जुरअत, बल्कि तमाम शुअरायेमुतकद्दमीन (पुराने शायरो)को इस अदबसे याद करते थे, गोया उन्हीके शागिर्द है।

---

[1] आजाद जैसा श्रद्धालु और विनयी शिष्य अपने उस्तादकी शायरीको चोचोका मुरब्बा या खिचडी कैसे लिख सकता था? मगर आशय उसका गुलदस्तेसे भी वही है। यानी एक रग नही, सब तरहका रग उनकी शायरीमे पाया जाता है।

[2] मुआमलेबन्दीकी शायरीका उल्लेख मध्यवर्ती युगमे जुरअतके परिचयमे हो चुका है।

और फिलहकीकत सबके अन्दाजको अपने-अपने मौकेपर पूरा-पूरा काममे लाते थे। फिर भी जाननेवाले जानते है कि उनका असली मीलान सौदाके अन्दाजपर ज्यादा था।"[१]

आजाद साहबके वक्तव्यका सार यह हुआ कि जौक अपने उस्ताद शाह नसीर और शागिर्द बहादुरशाहकी बदौलत कहीके न रहे। वे खारिजी रगसे मिलती-जुलती सौदाकी शायरीके पैरो थे, लखनऊकी बदनाम मुआमलेबन्दीको भी कनखियोसे घूर लेते थे। मुशायरोंमे लोहा लेनेकी गरजसे और मिली हुई ख्यातिको बनाये रखनेकी तमन्नामे जौक आम दिलचस्पीके बहावमे हाथ-पॉव मारते थे, परन्तु बाहर न निकल सकते थे।

३ शाहनसीरकी शागिर्दी और बादशाहकी उस्तादीसे जौकका जो हश्र हुआ, वह हम देख चुके। गालिबकी समकालीनताने क्या सितमज़रीफी की, लगे हाथ यह भी परख ले।

गालिबका समकालीन होनेके कारण जौककी ख्यातिको बडी ठेस पहुँची। वास्तवमे गालिब और जौक एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी नही थे। दोनोका रग जुदागाना था। शैली भिन्न थी, विचारधारामे महान अन्तर था। अतएव इन दोनोकी तुलनात्मक विवेचना करना उचित नही। दोनो समकालीन थे और दोनो ही उर्दूके कवि थे। इससे अधिक समानता इन दोनोमे न थी। जिस प्रकार राजनीति-निपुण प० जवाहरलाल नेहरूकी दर्शनशास्त्राचार्य्य डाक्टर राधाकृष्णनसे तुलना करना उपयुक्त नही। अथवा शृगाररसके ख्यातिप्राप्त कवि बिहारीका, भक्तिरसके सर्वप्रिय कवि सूरदाससे मुकाबिला नही किया जा सकता। उसी प्रकार 'जौक' और 'गालिब'की तुलना भी भ्रमात्मक है। दोनोका क्षेत्र पृथक-पृथक था। फिर भी समकालीन होनेके कारण आलोचक और पाठक

---

[१] आबेहयात, पृ० ४६९-७१।

दोनो ही इनकी तुलना करनेसे बाज़ नही आते। गालिबकी तारीफ़ करते समय जौकको घटिया करके दिखाना अपना कर्तव्य समझते है। यह जौकका बडा दुर्भाग्य है। गालिबकी महानतामे किसीको सन्देह नही हो सकता। उनका अनूठा शब्दोका चुनाव, मानवजीवनकी व्याख्या और कल्पनाकी उडान अद्वितीय है, और यह कैसे हो सकता है कि सब शायरोमे यह विशेषण समान मात्रामे पाये जाएँ, परन्तु इसका यह अर्थ नही कि शायरीमे उनका अपना नियत स्थान नही है। जौकका गालिबसे मुकाबिला न किया जाय तो जबानकी सफाई, मुहावरोका उपयोग, मधुर और ललित शैली और जीवनके तथ्योको सीधी-सादी भाषामे प्रभावक रूपसे कह डालनेकी शक्तिके कारण वोह अपने युगके सर्वश्रेष्ठ शायरके पदपर आसीन होनेके अधिकारी थे, परन्तु गालिबकी ज्वलन्त आभाके समीप उनकी प्रतिभा फीकी पड जाती है। काश वे गालिबसे ५० वर्ष पहले या पीछे हुए होते।

जब मनुष्यकी पहुँचसे दूर होते हुए भी लोग प्रेयसीकी तुलनामे चन्द्रपर छीटे उडानेसे बाज नही आते। तब एक ही समय और एक ही शहरमे उत्पन्न हुए जौकपर लोग दोषारोपण किये बिना कैसे चूक सकते है? हालाँकि ज़ौक और गालिबको एक दूसरेसे सरोकार नही। दोनोमे छ और तीनका अन्तर है। वास्तवमे गालिबकी तुलना 'मीर'से और जौककी तुलना 'सौदा' और 'नासिख'से होनी चाहिए। यदि रवीन्द्रनाथकी स्टालिनसे, बर्नार्डशाकी चर्चिलसे और महात्मा गाधीकी गोलवेलकरसे तुलना की जाय तो इस रुचिको क्या कहा जायगा?

४ मौलाना मुहम्मदहुसैन आजादकी साहित्यिक सेवाएँ उर्दू-ससार कभी भुला नही सकता। उन्होने नज़्मका आन्दोलन इस सफलतासे चलाया कि आज हज़ारो शायर नज़्म लिख रहे है, जिससे उर्दू-शायरीका कायाकल्प ही हो गया है। और उर्दू-गद्यको जिस खूबीसे सँवारा और उसमे जो गुलकारियाँ की है, उनकी छटा देखते ही बनती है। जिस

चीज़का बयान करते हैं, हूबहू तसवीर खीचकर रख देते हैं। ये जौकके अत्यन्त श्रद्धालु और विनयी शिष्य थे। उस्तादके लिये जानतक कुर्बान कर देना मामूली बात समझते थे। ऐसे शिष्य बिरले ही भाग्यवानोको नसीब होते है। गदरमे भरा हुआ घर छोडकर केवल उस्तादका बेतरतीब कलाम[1] लेकर घरसे निकल पडे और उसमे अपनी जादूभरी लेखनीसे चार चाँद लगा दिये। जौकके कलामके सम्बन्धमे आजाद लिखते हैं—

"जब वोह साहबेकमाल आलमेअरवाहसे किश्वरे अजसामकी तरफ चला तो फसाहतके फरिश्तोने बागेकुदसके फूलोका ताज सजाया। जिनकी खुशबू शुहरते आम बनकर जहाँमे फैली और रगने बकाएदवामसे आँखोको तरावत बख्शी। वही ताज सरपर रखा गया तो आबेहयात

---

[1] स्वय आजाद फर्माते है—

"मुतफर्रिक गजलोके बस्ते, बडी-बडी पोटे थी। बहुत-सी थैलियाँ और मटके थे। उस्ताद जो कुछ कहते थे, बडी अहतयातसे इनमे भरते जाते थे। उनकी गजलो और कसीदोका इन्तखाब कई महीनेमे खत्म हुआ कि दफअतन १८५७का गदर हो गया। सिपाही घरमे घुस आये और बन्दूके दिखाकर जल्दीसे निकलनेको कहा। दुनिया आँखोमे अन्धेरी थी, भरा हुआ घर सामने था, और मै हैरान खडा था कि क्या-क्या कुछ उठाकर ले चलूँ? उनके (उस्ताद जौकके) गज़लोके जुगपर नज़र पडी। यही ख्याल आया कि मुहम्मदहुसैन! अगर खुदाने करम किया और जिन्दगी बाकी है तो सब कुछ हो जायगा। मगर उस्ताद कहाँसे पैदा होगे, जो ये गजले फिर आकर कहेगे। अब उनके नामकी जिन्दगी है, और है तो इनपर मुनहसिर है। ये है तो वे मरकर जिन्दा है। यह गई तो नाम भी न रहेगा। वही जुग उठा बगलमे मारा और सजे-सजाये घरको छोडकर २२ नीमजानोके साथ घरसे बल्कि शहरसे निकला।" (आबेहयात, पृ० ४६८)

इसपर शबनम होकर बरसा कि शादाबीको कुम्हलाहटका असर न पहुँचे। मलिकउश्शुअराईका सिक्का उनके नामसे मौजूं हुआ, और उसके तजगाए शाहीमे यह नक्श हुआ कि 'इसपर नज्मे उर्दूका खात्मा किया गया।'[१] चुनाचे अब हर्गिज उम्मीद नही कि ऐसा कादरउलकलाम फिर हिन्दोस्तानमे पैदा हो।[२] इसमे किसीको कलाम नही कि उन्होने फिक्रेसुखन और कसरते मश्कमे फनानीउश्शुअरा (अमर कवि)का मर्तबा हासिल किया और इशापरदाजिये हिन्दकी रूह को (भारतीय लेखनकला)को शगुफ्ता किया।[३] सौदाके बाद जौकके सिवा किसीने इस (कसीदे) पर कलम नही उठाया, और उन्होने मुरक्अको ऐसी ऊँची महराबपर-सजाया कि जहाँ किसीका हाथ नही पहुँचा। अनवरी, जहीर, जहूरी, नजीरी, उरफी, फारसीके आसमानपर बिजली होकर चमकते है। लेकिन उनके (जौकके) कसीदोने अपनी कडक-दमकसे हिन्दकी जमीनको आसमान कर दिखाया।[४] कलामको देखकर मालूम होता है कि मजामीनके सितारे उतारे है मगर अपने लफ्जोकी तरकीबसे उन्हे ऐसी शानोशिकोह-

---

[१]तात्पर्य्य यह है कि—"जब उस्ताद जौकने ससारमे अवतीर्ण होनेके लिए प्रस्थान किया तो लालित्य और सौष्ठवरूपी साहित्यिक देवताओने जन्नतके उद्यानसे फूल चुनकर ताज बनाया, जिसकी सुगन्ध उस्ताद जौककी ख्याति बनकर सर्वत्र फैली और उसके रगने अमरत्व रूपी तरावट दी, और वोह ताज जब उस्तादके सरपर रखा गया तो अमृतकी बारिश हुई ताकि ताज कुम्हला न जाय। राष्ट्रकविके नामसे प्रसिद्ध हुए, और उनके लिए बादशाही प्रमाणपत्रमे यह अकित कर दिया गया कि अब जौकसे श्रेष्ठ कोई कवि नही होगा।

[२]आबेहयात, पृ० ४३५-३६

[३]आबेहयात, पृ० ४६७

[४]आबेहयात, पृ० ४७१

की कुर्सीपर बिठाया है कि पहलेसे भी ऊँचे नजर आते हैं। उन्हे कादरउलकलामीके दरबारसे मुल्के सुखनपर हुकूमत मिल गई है कि हर किस्मके खयालको जिस रगमे चाहते है कह जाते है। कभी तशबीह (उपमा)के रगमे सजाकर इस्तआरा (उदाहरण)की बूसे बसाते है। कभी बिल्कुल सादे लिबासमे जलवा दिखाते है। मगर ऐसा कुछ कह जाते है कि दिलमे नश्तर-सा खटक जाता है, और मुँहसे कभी वाह और कभी आह निकलती है। मालूम होता है उनके होटोमे शुस्ता और बरजस्ता (ललित और भावोके अनुरूप) अल्फाजके खज़ाने भरे है और तरकीबे अल्फाजके हजारो रग है। मगर जिसे जहाँ सजता देखते है, वह गोया वहीके लिए होता है। उन्हे इस बातका कमाल था कि बारीकसे बारीक मतलब और पेचीदासे पेचीदा मजमूनको इस सफाईसे अदा कर जाते थे कि गोया एक शरबतका घूँट था कि कानोके रास्ते पिला दिया।

खुदाने अजब तासीर दी थी कि जो लफ्ज उनसे तरतीब पाकर निकलते है, खुदबखुद जबानोपर ढलकते आते है, जैसे रेशमपर मोती। खुदा जाने जबानने किसी आईनेकी सफाई उडाई है या उन्होने अल्फाजके नगीनोपर क्योकर जिला की है जिससे कलाममे यह बात पैदा हो गई है। हकीकतमे इसका सबब ये है कि कुदरतेकलाम उनके हर एक नाजुक और बारीक खयालको मुहावरो और जर्बउलमसल (कहावतो)मे इस तरह तरकीब देती है, जैसे आईनागर शीशेको कलईसे तरकीब देकर आईना बनाता है। इसी वास्ते साफ हरएक शख्सकी समझमे आता है और दिलपर असर करता है। उनके कलाममे यह भी खसूसियत है कि शेरका कोई लफ्ज भूल जाये तो जबतक वही लफ्ज उस जगह न रखा जाय, शेर मजा नही देता।"[1]

मौलाना आजादने अपने गुरूका जिस श्रद्धा-भक्तिसे परिचय दिया

---

[1]आबेहयात, पृ० ४७३-७४।

है, उसका क्या कहना ? उनकी जादूभरी लेखनीने जौकके कलामको चार चाँद लगा दिये है। मगर यही रगीन इबारत जौकके लिये मुजिर साबित हुई। आजादकी इसी कसौटीपर आलोचक जौकके कलामको परखते है, और जब वह उस कसौटीपर खरा नही उतरता तब जौककी वही दयनीय स्थिति हो जाती है, जो तनिक-सा भी खोट निकलनेपर जौहरीकी दृष्टिमे सौटचका बताये जानेवाले सोनेकी होती है, और तब खरे-खोटे-को अलग-अलग करनेकी परेशानीको मद्देनजर रखकर वाजिबी कीमतसे भी कम कीमत आँकी जाती है।

आज़ादके उक्त कथनको लोग पक्षपात और अतिशयोक्तिपूर्ण तथा भ्रम उत्पन्न करनेवाला समझते है, और जौकपर निम्न बहुतान लगाते है--

१--जौक जी-हुजूर शायर था।

२--जोक दकियानूसी खयाल रखता था।

३--जौककी शायरीमे जलील, हकीर, आम विचार पाये जाते है।

४--जौककी शायरी निम्न श्रेणीकी है।

५--जौकका अपना रग कुछ नही, दूसरोका अन्ध अनुकरण है।

साहित्यपर शायरकी निजी प्रकृतिके अतिरिक्त तत्कालीन वाता-वरणका भी प्रभाव पडता है। शायर जिस माहोलमे उठता-बैठता और साँस लेता है, उसका असर भी लेता है। जौक जिस स्थितिमे रहे, उसको देखते हुए आश्चर्य होता है कि वे क्योकर अपना निजी कलाम इतना लिख सके और कैसे वे अनमोल मोती चुन सके। दोष तलाश करनेवाले तो हर एकमे दोष खोजते है। मीर, गालिब और मोमिन भी गलतियोसे अछूते नही रह सके।

अगर चाहो निकालो ऐब तुम अच्छेसे अच्छेमें।
जो ढूँडोगे तो अकबरमें भी पाओगे हुनर कोई॥

१--जौकको जी-हुजूर शायर इसीलिए कहा जाता है कि वह दरबारी

शायर थे, और उन्होने कसीदे लिखनेमे अभूतपूर्व कौशलका परिचय दिया है। कसीदे लिखनेका उन दिनो आम रिवाज था और अच्छे-से-अच्छा शायर कसीदे लिखनेका प्रयास करता था। दरबारी शायर न होते हुए भी मीर-ओ-गालिबने कसीदे लिखे। यह जुदा बात है कि वे इस फनमे गजलकी तरह कमाल हासिल न कर सके। और सौदा तो कसीदोके लिए मशहूर है ही। उन दिनो कसीदोमे महारत हासिल न करना शायरीमे एक नुक्स समझा जाता था। अगर कसीदे लिखनेकी वजहसे जौकपर जी-हुजूरीका बहुतान लगाया जाता है तो मोमिन जैसे एक-दोको छोडकर यह सभीपर आयद होता है। गालिब भी बादशाहके उस्ताद होना चाहते थे, परन्तु जौकके जीते जी कामयाब न हो सके, और अपनी इस खलिशको निरन्तर दबाये रखनेके प्रयत्नमे भी उनके मुँहसे निकल पडा—

उस्तादेशहसे हो मुझे परख़ाशका ख़याल।
यह ताब, यह मजाल, यह ताकत नही मुझे॥

२—जौक चूंकि शाह नसीरके शिष्य थे, इसलिए उनके यहाँ पुरानी शायरीके अन्सर जरूर पाये जाते है। लेकिन प्राचीनतासे लगाव होना और पुरानी परम्पराका यथोचित निर्वाह करना दोष नही सद्गुण है। हाँ लकीरके फकीर, रूढीवादी होना गुनाह है। प्राचीन साहित्यिक रीति-रिवाजो और कायदे-कानूनोका ठीक-ठीक पालन करना, उनमे यथोचित आवश्यकतानुसार सुधार और परिवर्तन करना लाजिमी है। और जौकने इस कर्तव्यका ठीक-ठीक पालन किया है। वे शायरीके नियम-उपनियम सभीका अक्षरश पालन भी करते थे, और उसमे नवीनता लानेका प्रयत्न भी करते थे। उर्दू-शायरीमे माशूक हरजाई और बाजारी तस्लीम किया गया है। ज़ौक उसी बदनाम और बेवफा माशूकमे सती-साध्वी प्रेयसीकी कैसी स्वाभाविक और गर्हित भावना भरते है—

हम ऐसे साहिबे अस्मत परीपैकरपै आशिक हैं।
नमाज़े पढ़ती है हूरें हमेशा जिसके दामनपर॥

उस बुतपै गर खुदा भी हो आशिक तो आये रश्क।
हर चन्द जानता हूँ कि वह पाकबाज़ है॥

ऐसे पवित्र माशूककी कल्पना जौकसे पहले कहाँ मिलती है ? और भी अनेक नये और अछूते भाव जौकने अपनी शायरीमे समोये है, जो कि उनके कलाममे यत्र-तत्र देखनेको मिलेगे।

३, ४ नम्बरके बहुतान प्राय एक ही कोटिके है। ये सब बाते उन दिनो आम थी, और अच्छे-से-अच्छे शायरके कलाममे पाई जाती है। किसीके यहाँ कम और किसीके यहाँ ज्यादा। मीर और सौदाके युगका वर्णन करता हुआ विद्वान लेखक लिखता है—"इस अहदके शायरोकी एक खसूसियत ये है कि उनके कलाममे पस्तखयालातके साथ-साथ बुलन्द खयाल और सखीफ (बेहूदे, छिछोरे, तग) अल्फाजके साथ शानदार और फसीह (ललित, सुरुचिपूर्ण) अल्फाज मिले-जुले है। गजलोमे शुतुरगुर्बगी-ओ-नाहमवारी (शुतुर्मुर्गकी एक टाँग नीची एक ऊँची के समान, ऊबड-खावड) पाई जाती है। मीर तकी मीरकी निस्बत एक कदीम तजकरेनवीसका कौल है कि उनके मामूली अशआर निहायत मामूली और आला अशआर निहायत आला होते है। नवाब मुस्तफाखाँ शेफ्ता अपने तजकरेमे यही ऐतराज मिर्जा सौदापर भी वारिद करते है।"[1]

जब नाखुदाएसुखन मीरके यहाँ भी ये अयूब पाए जाते है, तब जौकपर ही यह बहुतान लगाने व्यर्थ है। मीर भी ऐसे जलील और हकीर शेर लिखनेसे बाज नही आये—

जब कुछ अपने कने रखते थे, तब भी खर्च था लडकोका।
अब जो फकीर हुए फिरते है 'मीर' उन्हीकी बदौलत है॥

× × ×

---

[1] तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ११६

'मीर' क्या सादा है बीमार हुए जिसके सबब।
उसी अत्तारके लौडेसे दवा लेते है॥

यह तो खुदाएसुखन मीर साहबके कलामका नमूना है। अब जौकके समकालीन गालिबकी रुचिकी भी बानगी देखये—

हमसे खुल जाओ बवक़्ते मयपरस्ती एक दिन।
वर्ना हम छेड़ेंगे रखकर उज्रेमस्ती एक दिन॥

ले तो लूँ सोतेमे उसके पाँवका बोसा, मगर—
ऐसी बातोसे वह काफिर बदगुमाँ हो जायगा॥

क्या खूब तुमने गैरको बोसा नही दिया।
बस चुप रहो हमारे भी मुँहमें जबान है[1]॥

पीनसमें गुजरते है जो कूचेसे वोह मेरे।
कन्धा भी कहारोको बदलने नही देते॥

सुहबतमे गैरकी न पडी हो कही ये खू।
देने लगा है बोसा बगैर इल्तजा किये॥

बोसा नही न दीजिये दुश्नाम ही सही।
आखिर जबाँ तो रखते हो तुम गर दहाँ नही॥

दरपै पड़नेको कहा और कहके कैसा फिर गया।
जितने अर्सेमे मेरा लिपटा हुआ बिस्तर खुला॥

---

[1] मौलाना हालीने इस शेरकी व्याख्यामे लिखा है—'मुँहमे जबान है' का एक मतलब तो यह है कि हम भी ताकतेगुफ्तार रखते है और जवाब दे सकते है। दूसरा मतलब यह भी है कि हम चखकर बता सकते है कि आया बोसा दिया है या नही।

गैरको यारब ! वे क्योकर मनमे गुस्ताखी करें ।
गर हया भी उसको आती है तो शरमा जाये है ।।

धौलधप्पा उस सरापा नाजका शेवा नहीं ।
हम ही कर बैठे थे 'गालिब' पेशदस्ती एक दिन ।।

इस तरहके अनेक शेर जौकके पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोके उद्धृत किये जा सकते है । जब सर्वसाधारणकी रुचि ही इस ढगकी थी तब कोई करे भी क्या ? युगके अनुसार साहित्यक आदर्शका स्तर ऊँचा-नीचा होता रहता है । दूर क्यो देखा जाय ? इस सभ्यता और प्रगतिके युगमे भी भारतीय फिल्म क्षेत्रकी कुरुचि किसीसे पोशीदा नही । निरन्तर आग उगलनेवाले 'जोश' जैसे शायरे इन्कलाबसे भी फिल्मव्यवसाइयोने--'हमको नजर लग जायगी, भोली दुल्हन शर्माएगी' तथा 'गोरी मेरे जुबनाका देखो उभार'--जैसे कामुक गीत लिखवा ही लिये । फिर उस युगकी तो बात ही निराली थी ।

५--यह बहुतान भी व्यर्थ-सा है । हर शायर अपने पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोसे कुछ न कुछ अक्स लेता है और उसे पचाकर अपनी प्रतिभा और बुद्धिबलसे अलौकिक रूप देता है । जौकने भी यही किया है । हाँ, यह ठीक है कि उनका अपना खास रग कोई न था । वे कई शायरोके रगमे लिखते नजर आते है । परन्तु इसे नकल या अन्धअनुकरण कहना ठीक नही ।

जौककी खूबियाँ--

फिराक गोरखपुरीके शब्दोमे--"जौकके कलामका ज्यादा हिस्सा खारजी एव मसनूई किस्मकी शायरीका नमूना है । लेकिन इस रगको भी जौकने अपनी मश्शाकी, कादरकलामी और उस्तादाना अन्दाजसे मजा दिया है बयानमे एक पुख्तगी, एक शुस्तगी और उस्तादाना शान मिलती है । गालिब और मोमिनके कलामकी-सी मानवीयत (गम्भीर

अर्थ) और दाखलीयत (Inwardness) न सही। लेकिन नासिखके कलामकी तरह जौकके अशआर रेगेरवाँ (उडती हुई रेत) भी नही है।"[1]

हमारी शायरीकी जबानके लिये वोह कुछ कर गया जो सबसे नही हो सकता था। जोश मलीहावादी आजाद अशारीके बारेमे लिखते है—'आपके कलामकी सबसे बडी खूबी यह है कि अलफाजकी तरतीब और नशिस्त ऐसी होती है कि अक्सर-ओ-बेश्तर उसकी नसर (गद्य) नही की जा सकती। कहने और सुननेमे तो यह बात शायद ज्यादा मुश्किल मालूम न हो, मगर इसके बरतनेमे जो हफ्तखवाँ (अत्यन्त कठिन मार्ग) तय करना होते है उनका अन्दाजा करना भी दुश्वार है।' लेकिन इस बेलको पहले-पहल जौक ही ने परवान चढाया था। इस कामको पहले जौक ही ने सँवारा था। जौक ही की बदौलत उनके जमानेमे और बादमे बहुतसे कहनेवालोने अलफाज्की तरतीब और नशिस्त यूँ रखना सीखा कि मिसरेकी नसर न हो सके और गजलमे नसरेमौजूका (पद्यमे गद्यका) लुत्फ पैदा हो जाए। जैसा कुछ जौकने कहा है वोह बेऐब है, मुकम्मिल है, उस्तादाना है, कई अदबी खूबियोका हामिल है। लेकिन शायरीमे खासकर गजलकी शायरीमे हम कुछ और चीजे भी पानेकी उम्मीद रखते है, और वही चीजे हम जौककी गजलमे बहुत कम पाते है। लेकिन फनके लिहाजसे जौकका कारनामा भुलाया जा ही नही सकता। इस कारनामेकी खुद अपनी एक हैसियत है और उसकी तारीखी अहमीयत (ऐतिहासिक महत्व) भी गैरमामूली (असाधारण) है।"[2]

---

[1] अन्दाजे, पृ० १००

[2] अन्दाजे, पृ० १०५-७

उसे हमने बहुत ढूँडा, न पाया।
अगर पाया तो खोज अपना न पाया॥
जिस इन्साँको सगेदुनिया[1] न पाया।
फरिश्ता उसका हमपाया[2] न पाया॥
मुकद्दरस ही से गर सूदोज़ियाँ[3] हैं।
तो हमने याँ न कुछ खोया न पाया॥
अहातेसे फलकके हम तो कबके।
निकल जाते, मगर रस्ता न पाया॥
जहाँ देखा किसीके साथ देखा।
कही हमने तुझे तनहा न पाया॥
किया हमने सलाम ऐ इश्क! तुझको।
कि अपना हौसला इतना न पाया॥
न मारा तूने पूरा हाथ कातिल!
सितममें भी तुझे पूरा न पाया॥
लहदमें[4] भी तेरे मुज़तरने[5] आराम।
खुदा जाने कि पाया या न पाया॥
कहे क्या हाय, ज़ख्मे दिल हमारा।
जहनपाया लबेगोया[6] न पाया॥

उसने जब माल बहुत रद्दोबदलमे मारा।
हमने दिल अपना उठा, अपनी बगलमें मारा॥

---

[1]मासारिक कुत्ता अर्थात् व्यसन-लिप्त, [2]बराबर,
लाभ-हानि, [4]कब्रमें,
[5]प्रेमरोगीने, [6]वाक्यशक्ति।

आप आइनयेहस्तीमें[1] है तू अपना हरीफ[2]।
वर्ना यॉ कौन था, जो तेरे मुकाबिल होता ॥

मैं हिज्रमे मरनेके करीं[3] हो ही चुका था।
तुम वक्तपर आ पहुँचे, नही हो ही चुका था ॥

यह हयाते चन्दरोज़ा[4] जो न सद्देराह[5] होती।
तो फिर एक असगिाहेअदमोवजूद[6] होता ॥

उसे ऐय्यार पाया यार समझे 'ज़ौक' हम जिसको।
जिसे यॉ दोस्त अपना हमने जाना वोह 'उदू' निकला ॥

नाला इस शोरसे क्यो मेरा दुहाई देता।
ऐ फलक ! गर तुझे ऊँचा न सुनाई देता ॥

झूठ ही जानो कलाम उस रहजने ईमानका।
पहनकर जामा भी वोह आये अगर कुरआनका ॥

मैं वोह शहीद हूँ लबेखन्दानेयारका[7]।
हँसता रहे चिराग़ भी मेरे मज़ारका ॥
ऐ ज़ौक ! होश गर है तो दुनियासे दूर भाग।
इस मयकदेमे काम नही होशयारका ॥

इस तरफको देखता भी है तो शरमाया हुआ।
वस्लकी शबका समॉ ऑखोमे है छाया हुआ ॥

---

[1]ससार रूपी दर्पणमे, [2]प्रतिद्वन्द्वी, निकट,
[3]चार दिनकी जिन्दगी, [4]मार्गकी बाधक,
[5]अर्थात् अस्तित्व तथा अस्तित्वहीन दशामे कोई अन्तर न रहता,
[6]प्रेयसीके मुस्कराते ओठोका।

कहते थे आफताबेकयामत जिसे सो वोह ।
निकला चिरागे दागे दिल अपना बुझा हुआ ।।
हम आप जलबुझे मगर इस दिलकी आगको ।
सीनेमें हमने 'ज़ौक' न पाया बुझा हुआ ।।

जुदा हो यारसे हम और न हो रकीब जुदा ।
है अपना-अपना मुक़द्दर जुदा, नसीब जुदा ।।

शुक्र ! परदे हीमें उस बुतको हयाने रक्खा ।
वर्ना ईमान गया ही था, ख़ुदाने रक्खा ।।

इश्कके ढबपै न कोई बजुज़इन्सान[1] चढ़ा ।
इसके काबूपै चढा तो यही नादान चढ़ा ।।

बरगेगुचा[2] ख़ूनी दिल हँसे क्या इस गुलिस्ताँमें ।
भर आया मुँहमें ख़ूँ गर इक तबस्सुम[3] ज़ेरे लब आया ।।

वोह सुबहको आये तो करूँ बातोमें दोपहर ।
और चाहूँ कि दिन थोड़ा-सा ढल जाय तो अच्छा ।।
ढल जाये जो दिन भी, तो करूँ उसी तरह शाम ।
और फिर कहूँ गर आजसे कल जाए तो अच्छा ।।
अलकिस्सा नहीं चाहता वोह जाये यहाँसे ।
दिल मेरी ही बातोमें बहल जाये तो अच्छा ।।

कहे है ख़ंजरे कातिलसे यह गलू मेरा ।
कमी जो मुझसे करे तो पिये लहू मेरा ।।
मुझे वह परदानशी सामने कब आने दे ।
जो ज़िक्र आने न दे अपने रूबरू मेरा ।।

---

[1] मनुष्यके अतिरिक्त, [2] कलीकी तरह, [3] मुस्कान ।

वोह कौन है जो मुझपै तास्सुफ[1] नही करता।
पर मेरा जिगर देख, कि मै उफ नही करता॥

चाहे आलममें फरोग[2] अपना, तो हो घरसे जुदा।
देख चमके है शरर पत्थरसे होते ही जुदा॥

कोहके चश्मोसे अश्कोको निकलते देखा।
"ऐ सनम! पर तेरा पत्थर न पिघलते देखा"॥
था मै इस बागमे नख्लेगुलेआतिशबाजी[3]।
फूलते देखा मगर आह न फलते देखा॥

वोह दौलत कर तलब जिससे कि दिल हो जाय मुस्तगनी।
अगर हाथ आयेगा गजीनयेकारूँ[4] न ठहरेगा॥

आदम दुबारा सूयेबहिश्तेबरी[5] गया।
देखो, जहा खराब हुआ फिर वही गया॥

क्या-क्या मजा न तेरे सितमका उठा लिया।
हमने भी लुत्फे जिन्दगी अच्छा उठा लिया॥

आखिर गिल[6]अपनी खाकेदरेमयकदा[7] हुई।
पहुँची वही यह खाक जहाँका खमीर था॥

---

[1]अफसोस,
[2]उन्नति,
[3]अर्थात् आतिशबाजी, फुलझडी,
निस्पृह,
[4]कारूँका खजाना अर्थात् कुबेर-धन,
[5]स्वर्गकी ओर,
[6]मिट्टी,
[7]मधुशालाके द्वारकी रज।

दिल इबादतसे चुराना और जन्नतकी तलब।
कामचोर! इस कामपर किस मुँहसे उजरतकी तलब॥

दिलको रफीक[1] इश्कमे अपना समझ न 'ज़ौक'।
टल जायगा यह अपनी बला तुझपै टालके॥

मुझमे क्या बाकी है जो देखे है तू आनके पास।
बदगुमाँ बहमकी दारू नही लुकमानके पास॥

फिरतो आये खैरसे हम जाके उस मगरूरतक।
पर उछलता ही रहा अपना कलेजा दूरतक॥

बे यार रोजेईद शबेगमसे कम नही।
जामेशराब दीदयेपुरनमसे[2] कम नही॥
उस हूरवशका[3] घर मुझे जन्नतसे है सिवा[4]।
लेकिन रकीब हो तो जहन्नुमसे कम नही।

हमारे हाथसे ऐ 'ज़ौक' वक़्ते मयनोशी।
हज़ार नाज़से वोह एक जाम लेते है॥

बर्के खिरमनसोज़[5] है आलममें नाफहमी[6] तेरी।
वर्ना क्या-क्या लहलहाते खेत है हर दानेमें॥

इल्म जिसका इश्क और जिसका अमल वहशत नही।
वोह फलातू है तो अपने काबिले सुहबत नही॥

वक्ते पीरी शबाबकी बाते।
ऐसी है जैसे ख्वाबकी बाते॥

---

[1]मित्र, [2]अश्रुपूर्ण नेत्र, [3]दिव्यरूपाका, [4]अधिक,
[5]खेतको जलानेवाली बिजली, [6]अनभिज्ञता।

महजबीं ! याद है कि भूल गये ?
वोह शबे माहताबकी बातें ॥
सुनते है उसको छेड़-छेड़के हम !
किस मज़ेसे अताबकी[1] बातें ॥

वे सीधे घरको सिधारे और उनकी खोजमें हम ।
फिरे भटकते हुए कूए बदगुमानीमें ॥

गुहरको जौहरी सर्राफ ज़रको देखते है ।
बशरके देखनेवाले बशरको देखते है ॥
बनाके आइना है देखते जो आइनागर ।
हुनरवर अपने भी ऐबोहुनरको देखते है ॥

फिरता है सैले हवादससे[2] कोई मर्दोंका मुंह !
शेर सीधा तैरता है वक़्तेरफ़्तन[3] आबमें ॥

वह दिन है कौन-सा कि सितमपर सितम नहीं !
गर ये सितम है रोज तो इक रोज हम नही ॥
मुश्किल है मेरे अहदे मुहब्बतका टूटना ।
ऐ बेवफा ! यह तेरी 'ख़ुदाकी कसम' नही ॥
हाथ आये किस तरहसे दिले गुमशुदाका खोज ।
है चोर वह कि जिसपै किसीका भरम नही ॥

हज़रते दिलका देखना आलम, हाथ उठाये दुनियासे ।
पॉव पसारे बैठे है और सरपै सफरके झगड़े है ॥

आज उनसे मुद्दई कुछ मुद्दआ कहनेको है ।
पर नही मालूम क्या कहवेंगे, क्या कहनेको है ॥

---

[1]क्रोधकी; [2]दुर्घटना रूपी बाढसे, [3]तैरते हुए ।

काकरेजी दुपट्टेको बल देकर कमरमे लपेट लिया था, और उसके दोनो कोने सामने पडे हुए थे। हाथमे पतला-सा खारपश्त, पाँवमे सुर्ख गुलबदन-का पायजामा, मुहरियोपर तग ऊपर जाकर किसी क़दर ढीला। कभी-कभी एक बरका पायजामा भी पहनते थे। पायजामा हमेशा रेशमी और कीमती होता था। चौडा सुर्ख नेफा, अँगरखेकी आस्तीन आगेसे कटी हुई, कभी लटकती रहती थी कभी पलटकर चढा लेते थे। सरपर गुलशनकी दो पलडी टोपी उसके किनारेपर बारीक लैस, टोपी इतनी बडी थी कि सरपर अच्छी तरह मढकर आ गई थी। अन्दरसे माँग, माथेका कुछ हिस्सा और बाल साफ झलकते थे। गरज कि निहायत खश पोशाक और जामाजेब आदमी थे।"[1]

मोमिन दरबारी शायर न थे खालिस कलाकार थे। स्वतत्र स्वभाव और स्वाभिमान इनके विशेष गुण थे। किसी रईसकी प्रशसामे क़सीदे वगैरह लिखना तो दरकिनार वे किसीको हिजोके उपयुक्त भी नही समझते थे। किसीसे सहायता लेना या याचना करना खिलाफेशान समझते थे। स्वय कहते है —

इन्साफके ख्वाहाँ है, नही तालिबे ज़र हम।
तहसीने सुख़न फहम है 'मोमिन' सिला अपना॥

यही वजह थी कि रामपुर, टौक, भोपाल, जहाँगीराबाद, कपूरथला, आदि रियासतोके निमत्रण उन्होने स्वीकृत नही किये, और नौकरीके फन्देसे हमेशा मुक्त रहे। मुगलिया सल्तनतकी तरफसे इनके खानदानको एक हजार रुपया पेन्शन मिलती थी, यह भी उसमेसे कुछ हिस्सा पाते थे। आर्थिक परिस्थिति सन्तोषजनक थी। अतएव 'मीर'की तरह इनके स्वाभिमान और आत्मसम्मानको निर्धनताकी कसौटीपर परखे जानेका

---

[1] दीवाने मोमिन, पृ० २८-२९

उम्रे रवाँका तौसनेचालाक[1] इसलिए।
तुझको दिया कि जल्द करे याँसे एड तू॥

मौत ही से कुछ इलाजे दर्दे फुरकत हो तो हो।
गुस्लेमैय्यत[2] ही हमारा गुस्लेसेहत[3] हो, तो, हो॥

समझ है और तुम्हारी कहूँ मैं तुमसे क्या?
तुम अपने दिलमें ख़ुदा जाने सुनके क्या समझो?

हाथ सीनेपै मेरे रखके किधर देखते हो।
इक नज़र दिलसे इधर देखलो गर देखते हो॥

अबस[4] तुम अपनी रुकावटसे मुँह बनाते हो।
वोह आई लबपै हँसी, देखो, मुसकराते हो॥

ज़ियादा होता है पीरीमे फरबा[5] नफ्सेअम्मारह[6]।
यह बालोकी सुफेदी शीर[7] है इस मारे रहज़नको[8]॥

वोह दिलको चुराकर लगे जो आँख चुराने।
यारोका गया उनपै भरम और ज़ियादा॥

रुक़्का है चोरीका और भेजा है अनजानके हाथ।
या इलाही कही पडजाय न दरबानके हाथ॥

तेरे कूचेको वोह बीमारेगम दारुश्शफा[9] समझे।
अजलको[10] जो तबीब[11] और मर्गको[12] अपनी दवा समझे॥

---

[1]तेज घोडा, [2]मृत्युस्नान, [3]आरोग्यस्नान, [4]व्यर्थ, [5]प्रचण्ड, [6]विषयवासना, [7]दूध, [8]मजी साँपको; [9]आरोग्य मन्दिर, [10]यमराजको, [11]चिकित्सक; [12]मृत्युको।

सितमको हम करम समझे जफाको हम वफ़ा समझे ।
और इसपर भी न समझे वोह, तो उस बुतसे ख़ुदा समझे ।।
समझ ही में नही आती है कोई बात 'ज़ौक' उसकी ।
कोई जाने तो क्या जाने, कोई समझे तो क्या समझे ?

लेते ही दिल जो आशिके दिलसोज़का[1] चले ।
तुम आग लेने आये थे, क्या आये ! क्या चले ।।

ऐ 'ज़ौक' ! किसी हमदमे दैरीनाका[2] मिलना ।
बहतर है मुलाकाते मसीहा-ओ-ख़िज़रसे ।।

समझे है वाजबुलरियायत[3] दोस्त ।
दुश्मनोंकी रियायतोसे[4] मुझे ।।

ऐ 'ज़ौक' ! इतना दुख़्तरेरज़को[5] न मुँह लगा ।
छुटती नहीं है मुँहसे ये काफिर लगी हुई ।।

क्या गरज़ लाख ख़ुदाईमें हो दौलतवाले ।
उनका बन्दा हूँ, जो बन्दे है मुहब्बतवाले ।।
गये जन्नतमे अगर सोज़े मुहब्बतवाले ।
तो यह जानो रहे दोज़ख़ ही में जन्नतवाले ।।
न सितमका कभी शिकवा न करमकी ख़्वाहिश ।
देख तो, हम भी है क्या सब्रोकनाअतवाले ?
नाज़ है गुलको नज़ाकतपै चमनमें ऐ ज़ौक ।
इसने देखे ही नहीं नाज़ोनज़ाकतवाले ।।

---

[1]दग्धहृदय प्रेमीका,
[2]बिछडे साथीका,
[3]कृपापात्र,
[4]सिफारिशोसे,
[5]शराबको ।

मजे जो मौतके आशिक बयाँ कभू करते।
मसीहो खिज्र भी मरनेकी आरजू करते॥
अगर ये जानते चुन-चुनके हमको तोड़ेंगे।
तो गुल कभी न तमन्नाये रंगो बू करते॥

उस संगेआस्तांपै[1] जबीनेनियाज[2] है।
वोह अपनी जा-नमाज[3] है और यह नमाज[4] है॥
नासाज[5] हमसे जो है उसीसे यह साज[6] है।
क्या खूब दिल है वाह, हमें जिसपै नाज है॥

गुंचे[7] तिरी गुंचादहनीको[8] नहीं पाते।
हँसते तो है पर तेरी हँसीको नही पाते॥

बाद रजिशके गले मिलते हुए रुकता है दिल।
अब मुनासिब है यही कुछ मै बढ़ूँ कुछ तू बढे॥

दुकाने हुस्नमें रखते नहीं मताएवफा।
वगर्ना लेते हम इक अपने महबूबके लिए॥

याद आया याँके आनेका वादा भी खूब उन्हें।
जब रातको वह पाँवमें महदी लगा चुके॥
तुम भूलकर भी याद नहीं करते हो कभी।
हम तो तुम्हारी यादमें सब कुछ भुला चुके॥
मस्जिदमें बैठे क्या हो? चलो, मयकदेको 'जौक'।
उट्ठो कहीं, वजीफा[9] बहुत बड-बडा चुके॥

---

[1]प्रेयसीकी चौखटपर, [2]नतमस्तक, [3]उपासना स्थल;
[4]उपासना, [5]क्षुब्ध, [6]मिला हुआ,
[7]कलियाँ [8]मुस्कराहटको, [9]ईश्वरस्तुति।

चुपके-चुपके गमका खाना कोई हमसे सीख जाय।
जी ही जीमे तिलमिलाना कोई हमसे सीख जाय॥
जब कहा मरता हूँ वोह बोले मेरा सर काटकर।
"झूठको सचकर दिखाना कोई हमसे सीख जाय"॥

बिन जले शमअके परवाना नही जल सकता।
क्या करे इश्क अगर हुस्न हौ सबकत[1] न करे॥

मरजे इश्क जिसे हो उसे क्या याद रहे।
न दवा याद रहे और न दुआ याद रहे॥
तुम जिसे याद करो फिर उसे क्या याद रहे।
न खुदाईकी हो परवाह, न खुदा याद रहे॥

पिला मय आश्कारा[2] हमको किसकी साकिया! चोरी।
खुदाकी जब नही चोरी तो फिर बन्देकी क्या चोरी॥

बेकरारी थी सब उम्मीदे मुलाकातके साथ।
अब वोह अगली-सी दराजी[3] शबेहिज्राँमें[4] नही॥

कितने मुफलिस हो गये कितने तवगर हो गये?
खाकमें जब मिल गये दोनो बराबर हो गये॥

रात जूँ शमअ कटी हमको जो रोते-रोते।
बह गये अश्कोमे हम सुबहके होते-होते॥

जिस तरह माह सारे सितारोमे एक है।
यूँ मेरा महजबी भी हजारोमे एक है॥

---

[1]पहल; [2]प्रकट रूपसे,
[3]लम्बाई, [4]विरहरात्रिमे।

ज़िबह करनेको मेरे पूछते क्या हो तदबीर ।
तुम छुरी फेर भी दो, नाम ख़ुदाका लेकर ।।

मौत उसको याद करती है ख़ुदा जाने कि गोर ।
यूँ तेरा बीमारेग़म जो हिचकियाँ लेने लगा ।।
मुझको हर शब हिज्रकी होने लगी ज़ूँ रोज़ेहश्र ।
मुझसे यह किस दिनके बदले आस्माँ लेने लगा ।।

उतारा तूने तो सर तनमे इस शामतके मारेका ।
अरे अहसान मानूँ सरसे मैं तिनका उतारेका ।।
न पकड़े दामनेइलयास[1] गरदाबेबलामे[2] हम ।
कि बदतर डूबकर मरनेसे है जीना सहारे का ।।

तासीरेमुहब्बत अजब इक हुबका[3] अमल है ।
लेकिन यह अमल यारपै चल जाय तो अच्छा ।।
जो चश्म कि बेनम हो वोह हो कोर[4] तो बहतर ।
जो दिल कि हो बेदाग वह जल जाय तो अच्छा ।।
फुरकतसे तेरी तारेनफस[5] सीनेमे मेरे ।
काँटा-सा खटकता है निकल जाय तो अच्छा ।।

बयाने दर्दे मुहब्बत जो हो तो क्योकर हो ?
ज़बान दिलके लिये है न दिल 'ज़बाँ'के लिये ।।

२० मार्च १९५०

---

[1]अर्थात् किसीका सहारा, [2]सकटके भँवरमे;
[3]प्यार, चाहका, [4]अन्धी,
[5]साँस ।

७७

मोमिन

हकीम मुहम्मद मोमिन खाँ 'मोमिन'के पिता हकीम 'गुलामनबीख़ाँ' दिल्लीके सम्भ्रान्त व्यक्तियोमेसे थे। मोमिनका जन्म दिल्लीके कूचये-चेलानमे ई० स० १८०० (हि० स० १२१५) मे हुआ। अरबी-फारसी-की उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके अतिरिक्त हिकमत, नजूम और रमल (ज्योतिष) मे भी पूर्ण योग्यता प्राप्त की थी। सगीतमे वोह नाम पैदा किया कि इनकी मृत्युके पश्चात् तत्कालीन वीणा-विशेषज्ञ नज़ीरने यह कहकर बीन उठाकर रख दी कि "अब दिल्लीमे इसका कोई कद्रदाँ नही रहा।" शतरजके नामी खिलाडियोमे थे।

तबियत रगीन और स्वभाव आशिकाना था। शायरीके लिए भी दिल मचलने लगा। शाह 'नसीर' जो उन दिनो देहलवी शायरोमे 'नासिख' समझे जाते थे--उन्हे चन्द रोज 'मोमिन'ने अपना कलाम दिखाया, परन्तु 'नसीर' और 'मोमिन'की तबियते जुदागाना थी। इसीलिए बहुत जल्द इसलाह लेना छोड दिया, और स्वय ही अपनी गजले बनाने लगे।

जब 'नासिख'का दीवान छपकर दिल्ली आया तो 'गालिब' और 'मोमिन'ने भी उसके ख़ारजीरगमे लिखनेका प्रयत्न किया। क्योकि नासिखका यह ख़ारजीरग उन दिनो मकबूले आम था। उर्दू-शायरीका यह सौभाग्य ही समझना चाहिए कि उसके यह दोनो अमर कलाकार नासिखके रंगमें सफलता प्राप्त न कर सके और बहुत शीघ्र इस तर्ज़को तिलाजलि देकर अपना मख़सूस रग अख़्तियार कर लिया। काश!

ये दोनो उसी रगमे सराबोर हो गये होते तो आज ये आबदार मोती देखने कैसे नसीब होते और फिर उर्दू-शायरी 'मीर'के अलावा और किसपर नाज करती ? चन्द शेर नासिखके रगमे 'नसीर', 'मोमिन', और 'गालिब'-के दिये जाते है —

नासिख —

मुँहको दामनसे छुपाकर जो वह रक्साँ[1] होता।
शोलये हुस्न[2] चरागेतहेदामाँ[3] होता ॥

निकहते काकुले पेचाँसे[4] जो देते तशबीह[5] ॥
इतरेमजमूअएका[6] हर जुजू[7] परीशाँ होता ॥

खूँ रुलाता वही नासूर बनाकर गरदूँ[8] ।
जख्म भी गर मेरे तनपर कभी खन्दाँ[9] होता ॥

कौन है जो नही मरता है तेरे कामत[10] पर ?
क्यों न हर सर वे चमन क़ालिबे बेजाँ[11] होता ॥

नसीर—

लौ लग रही है जिससे वह शमअरू न आया ।
बल बे तेरी शरारत याँ तक कभू न आया ॥

हो इस दहनसे[12] रूकश[13] सैलेसबाकी[14] खाई[15] ।
गुचेके आह मुँहसे किस दिन लहू न आया ॥

---

[1]नाचता, [2]सौन्दर्य्य-ज्वाला, [3]घूँघटके अन्दर दीपक ।
[4]जुल्फोकी सुगन्धसे, [5]उपमा, [6]इत्रोका,
[7]प्रत्येक अणु, [8]आकाश, [9]मुस्कराता,
[10]कद, [11]निर्जीव शरीर, [12]प्रेयसीके मुखसे,
[13]मुकाला करके, [14]हवाके थपेडेकी, [15]मुँहकी खाई, हारना पड़ा ।

दन्दाँ दिखाके मत हँस ऐ बख़ययें गरीबाँ !
चाके जिगरका हमको तौरे रफू न आया ।।

अपनी भी बादेमजनू यारो हवा बँधी है ।
ले गर्दोबाद ख़ेमा कब कूबकू न आया ।।

गालिब---

न लेवे गर खसे जौहर तरावत सब्जये खतसे ।
लगादे ख़ानये आईनामें रूए निगार 'आतिश' ।।

फरोगे हुस्नसे होती है हल मुश्किले आशिक ।
न निकले शमअके पा से निकाले गर न ख़ार आतिश ।।

सताइश गर है ज़ाहिद इस क़दर जिस बागे रिज़वाँका ।
वोह इक गुलदस्ता है हम बे ख़ुदोंके ताके निसयाँ का ।।

बयाँ क्या कीजिये बेदादे काविश हाय मिज़गाँका ।
कि हर एक कतरये ख़ूँ दाना है तसबीहे मरजाँका ।।

मोमिन---

ले उडी लाशा हवा लागिर ज़बस तन हो गया ।
ज़र्रहे रीगे बयाबाँ अपना मदफन हो गया ।।

बिन तेरे ऐ शोलारू ! आतिशकदा तन हो गया ।
शमअ कदपर मेरे परवाना बिरहमन हो गया ।।

याद आया सूये दुश्मन उसका जाना गर्म-गर्म ।
पानी-पानी हो गया मै मौजे दरिया देखकर ।।

इस प्रकारकी खारजी शायरीके सम्बन्धमे इसी अध्यायके प्रारम्भमे काफी लिखा जा चुका है । यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि भावोके लिए नही, अपितु शब्दोकी मुनासबतके लिए शेर मौजूँ किये गये है ।

हाँ, तो इस तरहकी अस्वाभाविक और बनावटी शायरीके जालसे बहुत शीघ्र 'गालिब' और 'मोमिन' बाहर निकल आये। 'मोमिन' गजलके बहुत बडे उस्ताद हुए है। इनके शिष्योमे—नवाब शेफ्ता, नवाब अकबर, नवाब नसीम, मीर तसकीन, आही, आशुफ्ता, सालिक, शहज़ादा कैसर बहशत, फातमा बेगम साहबा, और यासने काफी ख्याति प्राप्त की।

मोमिन जिस जिगरसोजीसे गजल बनाते थे, उसे पढते भी वैसे ही दर्दीले स्वरोमे थे कि कलेजा मुँहको आने लगता था। फारसीके गद्य पद्यपर भी उर्दूकी तरह ही कुदरत रखते थे।

मोमिनकी वेश-भूषाका कलमी चित्र मिर्जा फरहतअल्ला बेग इस प्रकार खीचते है—"हकीम आगाजानके छत्तेके सामने 'मोमिन'का बडा मकान है। अन्दर बहुत वसीअ सहन और उसके चारो तरफ इमारत है। दालानोमे चाँदनीका फर्श है। अन्दरके दालानमे बीचो-बीच कालीन बिछा हुआ है, उसपर गाव तकियेसे लगे हकीम (मोमिन) साहब बैठे है, सामने हकीम सुखानन्द 'रकम', मिर्जा रहीमुद्दीन 'हया' बाअदब दुजानू बैठे हुए है। मालूम होता है कोई दरबार हो रहा है। किसीको आँख उठाकर देखने और बिला जरूरत बोलनेका यारा नही। हकीम साहबकी उम्र तकरीबन चालीस सालकी है। कशीदा कामत, सुर्खी सफेद रग था, जिसमे सब्जी झलकती थी। बडी-बडी रोशन आँखे, लम्बी-लम्बी पलके, खिची हुई भवे, लम्बी सुतवा नाक, पतले-पतले होट, उनपर पानका लाखा जमा हुआ, मिस्सी आलूदा दाँत, हलकी-हलकी मूँछे, खशखशी दाढी, भरे-भरे डण्ड, पतली कमर, चौडा सीना, लम्बी उँगलियाँ, सरपर घुँघराले लम्बे-लम्बे बाल काकुलोकी शक्लमे कुछ तो पुश्तपर और कुछ कन्धोपर पडे हुए। कानके करीब थोडेसे बालोको मोडकर जुल्फे बना लिया था। बदनपर शरबती रगका नीची चोलीका अँगरखा, लेकिन उसके नीचे कुरता न था और जिस्मका कुछ हिस्सा अँगरखेके पर्देसे दिखाई देता था। गलेमे स्याह रगका फीता, उसमे छोटा-सा सुनहरी तावीज,

काकरेजी दुपट्टेको बल देकर कमरमे लपेट लिया था, और उसके दोनो कोने सामने पडे हुए थे। हाथमे पतला-सा खारपश्त, पॉवमे सुर्ख गुलबदन-का पायजामा, मुहरियोपर तग ऊपर जाकर किसी क़दर ढीला। कभी-कभी एक बरका पायजामा भी पहनते थे। पायजामा हमेशा रेशमी और कीमती होता था। चौडा सुर्ख नेफा, अँगरखेकी आस्तीन आगेसे कटी हुई, कभी लटकती रहती थी कभी पलटकर चढा लेते थे। सरपर गुलशनकी दो पलडी टोपी उसके किनारेपर बारीक लैस, टोपी इतनी बडी थी कि सरपर अच्छी तरह मढकर आ गई थी। अन्दरसे माँग, माथेका कुछ हिस्सा और बाल साफ झलकते थे। गरज कि निहायत खुश पोशाक और जामाजेब आदमी थे।"[1]

मोमिन दरबारी शायर न थे खालिस कलाकार थे। स्वतत्र स्वभाव और स्वाभिमान इनके विशेष गुण थे। किसी रईसकी प्रशसामे कसीदे वगैरह लिखना तो दरकिनार वे किसीको हिजोके उपयुक्त भी नही समझते थे। किसीसे सहायता लेना या याचना करना खिलाफेशान समझते थे। स्वय कहते हैं —

इन्साफके ख्वाहाँ हैं, नही तालिबे ज़र हम।
तहसीने सुख़न फहम है 'मोमिन' सिला अपना॥

यही वजह थी कि रामपुर, टौक, भोपाल, जहाँगीराबाद, कपूरथला, आदि रियासतोके निमत्रण उन्होने स्वीकृत नही किये, और नौकरीके फन्देसे हमेशा मुक्त रहे। मुगलिया सल्तनतकी तरफसे इनके खानदानको एक हजार रुपया पेन्शन मिलती थी, यह भी उसमेसे कुछ हिस्सा पाते थे। आर्थिक परिस्थिति सन्तोषजनक थी। अतएव 'मीर'की तरह इनके स्वाभिमान और आत्मसम्मानको निर्धनताकी कसौटीपर परखे जानेका

---

[1]दीवाने मोमिन, पृ० २८-२९

कभी अवसर न आया। जिस युगमे 'मोमिन' पैदा हुए, उस युगमे शायर खुशामद और भाडपनेसे किनाराकशी कर ही नही सकता था। चाहे वह घरमे कितना ही सम्पन्न क्यो न हो। इसलिए 'मोमिन'का इस कलकसे बेदाग निकल जाना सराहनीय ही है। फिर भी भूखे पेट और फटे हाल रहकर जो 'मीर'की तरह अपनी गर्दनको सीधी रख सके उस स्वाभिमानकी कुछ बात ही और है। भाग्यसे मोमिनको इस दुष्कर परीक्षामे-से गुजरना न पडा। यह वह फिसलती जमीन थी कि 'गालिब' जैसे सिद्धहस्त और आनके पक्के शायर भी अपने कदम जमाकर न रख सके। ज़ौककी तो ख़ैर बात छोडो, वह तो दासताकी बेडीमे जकडे हुए होनेके कारण और स्वभावसे भी चापलूस और खुशामदी थे, परन्तु 'गालिब' जिनकी स्वाभिमानताके अनेक किस्से मशहूर है, और जो कहते थे—

बन्दगी में भी वह आज़ाद[1]-ओ-ख़ुदबीं[2] हैं कि हम।
उल्टे फिर आये दरे काबा[3] अगर वा[4] न हुआ॥

किन्तु उनकी फिजूलखर्ची, मयनोशी और मुफलिसी उनके स्वाभिमान और आनको स्थिर नही रहने देती थी। उन्होने हरचन्द अपनी इस निर्बलताको छुपाकर जाहिरामे गयूर और खुद्दार बननेकी कोशिश की, मगर उनकी यह कमजोरियाँ कही न कहीसे अपनी झलक दिखाती ही रही। बकौल अल्लामा नियाज फतहपुरी—"जौक तो मुफलिसो बेदस्तोपा बादशाहको लूटना चाहता था, गालिब यही हसरत अपने साथ ले गये कि वह क्यो न जौककी जगह हुए, और हरचन्द उन्होने अपनी खलिश छुपानेकी बहुत कोशिश की, लेकिन वे इसमे कामयाब न हो सके। गालिबका यह कहना —

---

[1]स्वतत्र; [2]स्वाभिमानी;
[3]काबेका द्वार; [4]खुला हुआ।

उस्तादे शहसे हो मुझे परख़ाशका ख़याल ।
यह ताब, यह मजाल, यह ताक़त नही मुझे ।।

• यह ऐसी तारीज़ (ऐतराज, छेड) अपने अन्दर पिन्हाँ (छुपाये) रखता है कि इससे ज्यादा इजहारे रश्क (ईर्ष्या-मनोभाव)की शदीद मिसाल शायद ही कोई और मिल सके ।"[१] गालिबको जब तनख्वाह मिलनेमे देर हुई तो अपने फाकोतकका जिक्र करनेमे सकोच नही हुआ । बकौल किसीके—"गालिब उम्रभर न सिर्फ उमराये इसलाम बल्कि अगरेज हुक्कामकी चापलूसीको तुर्रये इम्तयाज (सन्मानकी कलगी) समझते रहे ।"[२]

मोमिन न किसीके दरबारमे जाते थे, न किसीकी खुशामद या प्रशसामे कुछ लिखते थे । चापलूसी, खुशामद और भिक्षुक मनोवृत्तिको पाप[३] समझते थे । वे जन्मत स्वाभिमानी, स्वतत्र और स्वच्छन्द प्रकृति के मनुष्य थे । अत न उन्होने दरबारी प्रतिष्ठाको कभी आदर दिया और न शायरीमे किसीका अनुकरण करना उचित समझा ।[४] स्वय उन्होने अपना जुदागाना रग अख्तियार किया ।

मोमिनके दीवानमे २१९ गजले है । गजल ही उनकी शायरीकी विशेषता है । ये न तसव्वुफको जगह देते है, न फलसफेके फेरमे पडते ह । अपितु जो गजलका असली मौजू (वास्तविक ध्येय या अर्थ) इन्सानी

---

[१] इन्तकादियात, भाग १, पृ० २४ ।

[२] दीवाने मोमिन, भूमिका, पृ० ३४ ।

[३] तुलसी कर पै कर करो, कर-तर कर न करो ।
जा दिन कर-तर कर करो, ता दिन मरन करो ।।

[४] लीक-लीक गाडी चले, लीकहि चले कपूत ।
लीक छोड तीनो चले—शायर, सिह, सपूत ।।

मुहब्बत है, उसीमे तबा आजमाई करते है। उनके कलाममे न तो हकीकी-इश्क[1] (ईश्वरीयप्रेम) हिलोरे मारता है और न नासहाना वाज़ (पण्डिताऊ उपदेश) सुनाई पडता है। उन्होने सिर्फ इन्सानी जज्बयेइश्कके हर पहलको इस खूबीसे नज्म किया है कि जिसकी मिसाल नही। उन्होने सिर्फ इश्किया शायरीको अपना मौजू बनाया, इससे उनकी शायरीका क्षेत्र काफी सीमित हो गया है। फिर भी उनकी कलाकी चरमसीमा यही है कि जिस सीमित क्षेत्रमे गालिब जैसोका दम घुटता[2] था, उसी सँकरी गलीमे मोमिनने तबियतकी वे-वे जौलानियाँ दिखाई और कल्पनाकी ऐसी कुलाचे भरी है कि उनका समकालीन कोई भी शायर हमसरी न कर सका।

"मोमिनने इसी दुनियाका इश्क कहा, और इसमे जितने तजरबाते तल्खोशीरी (कडवे-मीठे) हो सकते है, वे सब उन्होने हासिल किये। वही हिजरोविसालकी मादी कैफियात, वही शिकवे-शिकायत, वही रकीबका खटका, वही इल्तजाएँ, वही तदबीरे। अलगरज वे तमाम जज्बात जो अनासरे मुहब्बत (प्रेमतत्वो)से ताल्लुक रखते है, सब मोमिनके यहाँ पाये जाते है। यहाँतक कि हम मोमिनके माशूकका कैरेक्टर (चारित्र) उनके कलामसे मुतईन करे तो कह सकते है कि बाजारी जिन्स (वैश्या, छिनाल)से ज्यादा हैसियत नही रखता। लेकिन मोमिनका कमाले

---

[1] "मोमिन' ! बहिश्तो इश्के हकीकी तुम्हें नसीब।
हमको तो रज हो, जो गमे जाविदाँ न हो॥

[2] बकदरे शौक नही ज़र्फे तगनाए गज़ल।
कुछ और चाहिए वुसअत मेरे बयाँके लिये॥

यानी जिन भावोको मे लाना चाहता हूँ, वे इस सकुचित क्षेत्रमे नही आ पाते। उसके लिए विशाल क्षेत्रकी आवश्यकता है।

शायरी देखिये कि अगर एक तरफ पस्तीसे इस कदर करीब है कि अदना-सी लगजिश भी उसे बाजारी शुअराकी सफमे मिला सकती है तो दूसरी तरफ बुलन्दीका यह आलम है कि गालिबकी इन्तहाई परवाज़ भी उसकी फिजातक नही पहुँचती। लेकिन यह सब उसी हद्दूदके अन्दर जिनको हद्दूदेतगज्जुल कहा जाता है।"[1]

सदाचार और कला एक नही है। दोनो भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते है। सुघड चित्रकारका बनाया हुआ किसी युवतीका नग्न चित्र भी कला-पूर्ण होता है, और फूहड चित्रकार राम-सीताका चित्र भी बिगाड देता है। कलापारखीके लिए न नग्न चित्र फेक देने योग्य है, न राम-सीताका भौडा चित्र सदाचरणका प्रतीक होनेके कारण सग्रहणीय। उसे तो दोनो चित्रोको कलाकी कसौटीपर परखना है। सद् या असद् आचरणके झमेले-को नैतिक शास्त्रके पण्डित जाने। यही बात शेरकी है। आलोचकका काम केवल यह देखना है कि जो भाव शेरमे व्यक्त किया गया है, वह कला-पूर्ण तरीकेसे और सलीकेसे मौजूँ हुआ है कि नही। जनतापर उस शेरका क्या प्रभाव पडता है, इससे आलोचकको कोई प्रयोजन नही। यदि शेरमे कला है और चमत्कार है तो वह प्रशसनीय है। 'मोमिन'की शायरी-का मूल्य इसी दृष्टिकोणसे आँकना चाहिए। कला-कलाके लिए है। यह उनकी शायरीका लक्ष्य था। उन्होने अपने हृदयगत भावोको बेमलाल और बेहिचक कहा है। तसव्वुफ या फलसफेकी आड नही ली। सौन्दर्य और प्रेमका नग्न चित्र खीचा है। परन्तु इस चातुर्यके साथ कि न कही कलापर आँच आई न कही ओछी और कमीनी हरकते ही पैदा हुई। जहाँतक कलाका सम्बन्ध है, "मोमिन असलूबेअदा और कुदरतेबयानका बादशाह है। वह मामूलीसे मामूली बातका इजहार करता है, तो भी इस लुत्फके साथ कि उसमे जिद्दत (नवीनता)पैदा हो जाती है। और

---

[1] इन्तकादयात, भाग १, पृ० २७

जब अनहोनीको होनी और होनीको अनहोनी साबित कर जाता है तो अजीब समा पैदा हो जाता है।"

'मोमिन' फार्सी तरकीबे इस्तेमाल करनेमे निपुण थे, और एक तरहसे 'गालिब'से भी बढ-चढकर थे। उन्होने फार्सी शब्दोका अपने शेरोमे इस कुशलतासे समिश्रण किया है कि फारसीकी मिठास तो पैदा हो ही गई है, साथ ही कलाम भी क्लिष्ट नही होने पाया है।

अन्तमे नियाज फतहपुरीके शब्दोमे—"मोमिनने अपनी सारी रचनाओमे सिवाय हिकायते हुस्नोइश्कके और किसी चीजसे सरोकार नही रखा, और इस सिलसिलेमे जितने पहलू गुफ्तगूके निकल सकते है, या जिस कदर तल्खोशीरी तजरबात हासिल हो सकते है वह सबके सब किसी न किसी सूरतमे इनके कलाममे पाये जाते है।"[1] इनका प्रेम-पात्र भी जुरअत-ओ-इशाके माशूककी तरह बाजारी है। लेकिन इनका प्रेम बहुत बुलन्द है, और उसी ऊँचाईतक माशूकको भी ले जाना चाहते है। इनकी मोहब्बत अगर जरा बलन्द और हो जाती तो फिर आज यह जुस्तजू न होती कि उर्दू-शायरीमे दूसरा 'मीर' कौन हो सकता है।

मोमिनके कलामको समझने और उसका उचित मूल्य आँकनेके लिए पाठकोके लिए यह आवश्यक है कि वह तगज्जुल और मामलाबन्दीका अन्तर अच्छी तरह ध्यानमे रखे। मामलाबन्दीकी परिभाषा है—आशिक और माशूकके प्रेम-व्यवहारका कवितामे नग्न, किन्तु अश्लीलताके दोषसे मुक्त दिग्दर्शन। इसका प्रारभ फारसी शायरोसे हुआ। भारतमे इसका श्रीगणेश उर्फी और नजीरीने किया। जहाँगीरका रगीन शासनकाल था, तबियते आशिकाना थी, देशमे चैनकी बसी बजती थी। इसलिए यह रग क्यो न कुबूल होता। यूँ भी मामलाबन्दीकी बाते सर्वप्रिय होती है। जैसे आजकल फिल्मी गीतोके आगे कलापूर्ण गानोका कोई स्थान

---

[1] इन्तकादियात, भाग १, पृ० ३२

नही । मामलाबन्दीके शायर जब जल्द ख्याति प्राप्त करने लगे, तो औरों-को भी इस तरफ अग्रसर होनेका प्रोत्साहन मिला । शाही दरबारके वातावरणसे इस प्रकारकी शायरीने और जोर पकडा । अवधमे शाही-रगरलियाँ बेहद बढी-चढी थी । इसलिए वहाँकी शायरीमे यह रग और भी गहरा था । वहाँ मुसहफी जैसे शायरोकी कदर न थी । वहाँ हर चीज हँसती और थिरकती दरकार थी । रोने-बिसूरनेवालोका काम न था । वहाँ 'जुरअत' जैसे मामलाबन्द शायरोकी तूती बोलती थी ।

'मोमिन' रिन्द और आशिक मिजाज थे, फिर भी उनका वातावरण मामलाबन्दीका न था । 'मीर' और 'दर्द'की कवितामे दिल्लीवाले रँगे हुए थे । इल्म और तसव्वुफका चर्चा रहता था । इसलिए पढे-लिखे हल्कोमे खालिस मामलाबन्दीके लिए विशेष आदर न था । मामलाबन्द शायर दुशालेमे लपेटकर चोट कर सकता था । ताकि अपनी जबानका रग और मनोभाव भी व्यक्त हो जाय और वातावरणकी गम्भीरता और परिपाटी भी बनी रहे । यही सावधानी कविताको मामलाबन्दीसे उठा-कर तगज्जुल बना देती है । या यूँ कहिये कि अश्लीलता और तगज्जुलकी सीमापर मामलाबन्द शायर अपनी कलाबाजियाँ दिखाता है । मोमिन भी सीमापर खडे है, परन्तु उनकी रचनाओका झुकाव अश्लीलताकी ओर नही है , तगज्जुलकी ओर है । इसलिए वह आलोचकोके दोषारोपणसे बच गये है । सीमासे थोडा इधर रहते तो वह 'मीर'से टक्कर लेते । और तनिक आगे बढ जाते तो जुरअतके रगमे डूब जाते ।

आग अश्के गरमको लगे जो क्या ही जल गया ।
आंसू जो उसने पूँछे शब और हाथ जल गया ।।

मेरी प्रेयसीके हाथ इतने कोमल है कि उसने रातको मेरे गरम आँसू पूँछे तो उसके हाथमे छाले पड गये । इस घटनासे मेरा हृदय दग्ध हो गया है। काश उसके हाथमे छाले पडनेकी अपेक्षा मेरे आँसुओको ही आग लग जाती ।

फोड़ा था दिल न था, यह मुए पर खलल गया ।
जब ठेस साँसकी लगी, दम ही निकल गया ।।

जिसे हम जीवनभर दिल समझते रहे, मरनेपर मालूम हुआ कि वह दिल नही, फोडा था । दिल होता तो बडी-से-बड़ी आपत्तिमे भी स्थिर और दृढ रहता । यह तो सचमुच फोडा था जो साँसकी एक ठेस भी बर्दाश्त न कर सका । उसकी एक चोटमे ही दम निकल गया ।

क्या रोऊँ ? खैरा चश्मिये बख्ते सियाहको ।
वाँ शग़्ले सुरमा है अभी, याँ नील ढल गया ।।

अब प्रेयसीके चचल नेत्रोके कारण मै अपने काले दिनो (दुर्दिनो)का रोना क्या रोऊँ ? मेरी आँखे निस्तेज हो चली है, मृत्युके समीप पहुँच रहा हूँ और वह अभी आँखोमे सुर्मा लगा रही है । किसीकी आँखे बन्द हो रही है और किसीकी आँखोपर सान चढाई जा रही है ।

उस कूचेकी हवा थी कि मेरी ही आह थी ।
कोई तो दिलकी आग पै पंखा-सा झल गया ।।

न जाऊँगा कभी जन्नतको मै न जाऊँगा ।
अगर न होवेगा नक़्शा तुम्हारे घरका-सा ।।

करे न ख़ाना ख़राबी तिरी नदामते जौर।
कि आबेशर्ममे है जोश चश्मेतर का-सा॥

अत्याचारोके प्रायश्चितस्वरूप प्रेयसीको रोता देखकर मोमिन भयभीत हो उठते है कि उसके आँसुओमे कही मेरा घर ही नष्ट न हो जाय। क्योकि प्रेयसीके शर्मीले आँसुओमे वही शक्ति है जो आशिकके व्यथापीडित आँसुओमे होती है।

यह जोशेयास तो देखो कि अपने कत्लके वक़्त।
दुआए वस्ल न की, वक़्त था असर का-सा॥

नियम है कि जब मनुष्य बध किया जाता है या फाँसीपर लटकाया जाता है, तब जीवनके अतिरिक्त उसे अभिलषित वस्तु माँगनेको कहा जाता है, और सम्भवत उसकी अभिलाषा पूरी भी की जाती है। अत मोमिन चाहते तो कत्लके वक्त विसालकी दुआ करते, और जो साध कभी पूरी न हुई, वह मरते-मरते पूरी कर लेते, परन्तु उनपर तो जोशेयास (निराशाओका प्रभाव) इतना अधिक था कि कुछ भी माँगना उचित नही समझा।

यह नातवाँ हूँ कि हूँ और नज़र नही आता।
मेरा भी हाल हुआ, तेरी ही कमरका-सा॥

अल्लाहोअकबर ! नातवानी (निर्बलता) इतनी बढ गई है कि मै भी प्रेयसीकी कमरकी तरह नज़र नही आता।

ख़बर नहीं कि उसे क्या हुआ ? पर इस दरपर—
निशानेपा नज़र आता है नामाबरका-सा॥

मेरे पत्र-वाहकका क्या हुआ, यह तो मालूम नही, परन्तु उसके पाँवके-से निशान प्रेयसीके दरपर अकित है। अत. वह वहाँतक गया तो ज़रूर, मगर लौटने दिया या मार डाला, यह नही कहा जा सकता।

मोमिन नामाबरके कत्लका इलजाम भी माशूकपर थोपना चाहते है, परन्तु किस खूबीसे !

महव मुझ-सा दमेनज्जारए जानाँ होगा ।
आयना, आयना देखेगा तो हैराँ होगा ॥

जिस प्रकार मै उसके रूपको देखकर सुध-बुध भूल बैठा हूँ, महव हो गया हूँ, उसी प्रकार यदि आयना (दर्पण) भी उस प्रेयसीके प्रतिविम्ब (आयने)को देखेगा तो हैरान हो जायगा ।

ख्वाहिशेमर्ग हो, इतना न सताना वर्ना ,
दिलमे फिर तेरे सिवा और भी अरमाँ होगा ॥

मोमिन प्रेयसीसे कहते है कि हमे इतना अधिक न सता कि हम जीनेसे मरना अच्छा समझे । अभी तो हम केवल तुझीको चाहते है, फिर मृत्युको भी चाहने लगेगे, और तेरे सिवा हम किसी औरको चाहे, यह तेरे लिए उपयुक्त नही ।

दीदयेमुन्तजिर ! आता नही शायद तुझतक ।
कि मेरे ख्वाबका भी कोई निगहबाँ होगा ॥

प्रतीक्षित नेत्रो ! तुम्हारे पास जो स्वप्न नही आता है, शायद इसका कारण ये है कि प्रेयसीके समान उसके स्वप्न भी दरबानकी चौकसीमे है ।

क्योकि उम्मीदे वफासे हो तसल्ली दिलको ।
फिक्र है यह कि वह वादेसे पशेमाँ होगा ॥

प्रेयसीकी स्वीकृतिसे तसल्ली होनेके बजाय मेरी परेशानियाँ और भी बढ गई है, क्योकि मै जानता हूँ कि इस स्वीकृतिसे उसे पछतावा होगा। अत मै नही चाहता कि मेरे कारण उसे किसी प्रकारकी चिन्ता या आकुलता हो ।

दर्द है जॉके एवज़ हर रगोपैमें सारी।
चारागर! हम नही होनेके जो दरमाँ होगा॥

चारागर (इलाज करनेवाले), तेरे इलाजसे दर्द तो जाता रहेगा, मगर हम नही रहेगे (यानी मर जाएँगे)। क्योकि यह दर्द तो जानकी एवज़ीमे हर रग व रेशेमे सारी (मौजूद) है। जान तो पहले ही निकल चुकी है। उसके एवज जो रहा-सहा दर्द बाकी है, तैने उसे भी मिटानेका उपाय किया तो हम भी मिट जाएँगे। न मर्ज रहेगा न मरीज।

शूमिये बख्त तो है चैन ले ऐ वहशतेदिल!
देख ज़िन्दाँ ही कोई दिनमें बयाबाँ होगा॥

दिलकी वहशत (हृदय-उन्माद) जिन्दाँ (कारावास)से घबराकर बयाबानोमे चलनेको उभारती है। मोमिन उसे उतावली करनेसे रोकते हुए कहते है "अगर मेरी सब्जकदमी सलामत है तो यह कारावास ही उजडकर बयाबान हो जायगा।" बेशक, जहाँ-जहाँ पाँव पडे सन्तोके तहाँ-तहाँ चौड चपट हो जाय।

निसबते ऐशसे हूँ नजअमें गिरयाँ, यानी—
है यह रोना कि दहन गोरका ख़न्दाँ होगा॥

मोमिन कष्टोके इतने आदी हो गये है कि उन्हे तनिक भी खुशी पसन्द नही। मरनेके बाद जो गोर (समाधि) बनेगी, उसका प्रारम्भमे मुँह चौडा होगा। मोमिन उस खुले मुँहको हँसनेसे उपमा देते है और कहते है कि मै नजअमे (मृत्युके वक्त) इसलिए गिरयाँ (रोता) हूँ कि मै नही चाहता कि मेरी गोर भी हँसे। जब जीवन रोते-बिलखते गुजरा तो मरनेपर मेरी कब्र भी क्यो हँसे?

बात करनेमें रक़ीबोसे अभी टूट गया।
दिल भी शायद उसी बद अहदका पैमाँ होगा॥

माशूकने अहद (वायदा) किया था कि वह रकीबोसे बात नही

करेगा, मगर उसने बाते की। इधर उसका अहद टूटा, उधर हमारा दिल भी टूट गया! मालूम होता है हमारा दिल भी माशूकके अहदकी तरह बोदा और कमज़ोर था।

आँख न लगनेसे सब अहबाबने।
आँखके लग जानेका चर्चा किया॥

मर गये उसके लबेजाँ बरुशपर।
हमने इलाज आप ही अपना किया॥

बुझ गई इक आहमें शमयेहयात।
मुझको दमेसर्दने ठण्डा किया॥

उन-से परीवशको न देखे कोई?
मुझको मिरी शर्मने रुसवा किया॥

आशिकने शर्मकी वजहसे माशूककी ओर नज़र नही की। मगर इसी शर्मने सब भेद खोल दिया। लोग समझ गये कि कुछ न कुछ बात जरूर है। वर्ना ऐसा कौन है जो ऐसे परीवश (अप्सरा)को न देखे।

जौरका शिकवा न करूँ जुल्म है।
राज़ मेरा सब्रने अफ्शाँ किया॥

मैंने माशूकके जौरो (अत्याचारो)को इसलिए चुपचाप सहन कर लिया कि किसीको इस चाहतका पता न लगे। परन्तु उल्टा और भेद खुल गया, और लोग कहने लगे कि ताज्जुब है कि यह इतने जुल्मोसितमपर उफ भी नही करता, कुछ ज़रूर दालमे काला है।

रहमेफ़लक और मेरे हाल पर?
तूने करम ऐ सितमआरा! किया॥

मेरी दयनीय स्थितिपर अब फलक (आसमान) जैसे बेरहमको भी रहम आता है। अगर तैने मेरी यह स्थिति न की होती तो आकाशकी

सहृदयता मुझे प्राप्त न होती। इसलिए ऐ सितमआरा (अत्याचारी माशूक) तेरा यह सितम भी तेरी महर्बानी ही है।

दावये तकलीफसे जल्लादने।
रोजे जजा क़त्ल फिर अपना किया॥

आशिकने कयामतमे माशूकपर दावा किया कि इसने हमको कत्ल करके तकलीफ पहुँचाई। यह दावा सुनते ही माशूकने फिर उसे कत्ल कर दिया ताकि उसे पिछले कष्टोका अहसास (सज्ञा) न रहे।

मुए न इश्क़में जबतक वोह महर्बां न हुआ।
बलाएजाँ है वोह दिल जो बलाएजाँ न हुआ॥

इश्कमे जबतक हम न मरे, दोस्त महर्बान नही हुआ। वह दिल बलाएजान (जानके लिये मुसीबत) है जो बलाएजान (बलि-न्योछावर) नही होता। यानी वह जीवन किस कामका जो किसीपर निछावर नही होता! ऐसे जीवनको ढोते फिरना बला है।

दियतमें रोजे जजा ले रहेगे कातिलको।
हमारा जानके जानेमे भी जियाँ न हुआ॥

हमे माशूकने कत्ल कर दिया, इससे हमे कुछ नुकसान (जियाँ) नही हुआ! रोजेजजा (कयामतके दिन) दियत (खूँबहा) में हम माशूकको ही माँग लेगे। यानी जो जीतेजी अपना न हुआ, उसे मरनेके बाद प्राप्त कर लेगे। मुसलमानी मुल्कोमे पहले यह रिवाज था कि कत्ल किये गये इन्सानके वारिसोको कातिलसे धन-सम्पत्ति आदि उनकी इच्छानुसार दिलवा दी जाती थी। क्योकि कातिलको प्राणदण्ड देनेसे मकतूल (मारा गया प्राणी) तो जीवित हो नही सकता, न उसके वारिसोको ही कुछ लाभ पहुँचता है, और कातिलकी जान और जाती है। इसीलिए न्यायाधीश कातिलसे अधिक-से-अधिक क्षतिकी पूर्तिस्वरूप दिलवाते थे। इसी

प्रथाको दियत या खूंबहा कहते है। मोमिन अपने कातिलको ही खूंबहामें माँगकर अपना बना लेना चाहते है। काश अत्याचारियोको अपना बनानेकी लालसा सबकी जागृत हो उठे।

दमेहिसाब रहा रोजेहश्र यह ही जिक्र।
हमारे इश्क़का चर्चा कहाँ-कहाँ न हुआ॥
उमीदे वादए दीदारे हश्रपर 'मोमिन'।
तू बेमज़ा था कि हसरतकशे बुताँ न हुआ॥

मोमिन इस कदर बद मज़ाक था कि उम्मीदे वादये दीदारे हश्र (हश्रमे सूरत दिखानेके वायदेके भरोसे) पर सब्र किये बैठा रहा और सासारिक प्रेयसीकी अभिलाषा न की। नकदको छोडकर उधारकी ओर ताकता रहा।

कुछ अपने ही नसीबकी खूबी थी, बादेमर्ग
हगामये मुहब्बतेअगियार कम हुआ॥

मेरे जीवनमे माशूक अगियार (प्रतिद्वन्द्वी) को बहुत चाहता था। मैने ईर्ष्यावश जान दे दी तो अब हगामयेमुहब्बते अगियार (प्रतिद्वन्द्वीके प्रति प्रेमका अत्याधिक आवेग) कम हो गया है। यह अपना ही नसीब खोटा था। यदि जीतेजी यह प्रेम कम हुआ होता तो मै क्यो व्यर्थ जान देता।

माशूकसे भी हमने निभाई बराबरी।
वाँ लुत्फ कम हुआ तो यहाँ प्यार कम हुआ॥

यह बराबरका दावा मोमिनका अछूता खयाल है। वर्ना उर्दू शायरीमे मोमिनके समयतक आशिककी क्या मजाल थी कि माशूकके साथ बराबरी करें। वर्तमान युगमे जिगरने इस मजमूनको कई तरहसे बान्धा है। हफीजने बिल्कुल टक्करका शेर लिख दिया है, और जोश तथा इकबालने तो माशूक क्या खुदासे भी बराबरीकी टक्कर ली है।

आये गज़ालचश्म सदा मेरे दाममें।
सैयाद ही रहा मै, गिरफ़्तार कम हुआ॥

मोमिनका माशूक ही सिर्फ हरजाई न था, वरन् वे खुद भी हरजाई थे। वे भौरोकी तरह लोलुप थे। किसी एकके हो जाना उनके स्वभावमें न था। फ़र्माते है--मेरे दाम (जाल) मे सदा गजाले चश्म (मृगनयनी) फँसे। मै स्वय सैयाद रहा, यानी हसीनोको फाँसता रहा, स्वय गिरफ्तार बहुत कम हुआ। मोमिनका माशूक भी बाजारी है और उनका इश्क भी बाज़ारी! गोया कि जैसी गन्दी देवी वैसे ऊत पुजारी

नाकामियोकी काहिशे बेहदका क्या इलाज।
बोसा दिया तो जौके लबेयार कम हुआ॥

जिनका रोना-झीकना स्वभाव है, उनकी कितनी ही अभिलाषाएँ पूरी हो जाएँ, सदैव रोते-बिसूरते रहेगे। मोमिन भी अपनी हदसे ज्यादा नाकामयाबियोकी वजहसे नीरस हो गये है। उन्हे अब किसी बातमे लुत्फ नही आता। यहाँ तक कि जिन्दगीभरकी साध पूरी करनेको माशूकने बोसा भी दिया तो भी उन्हे कुछ आनन्द न हुआ! उल्टा उनका जौके लबेयार (माशूकके चुम्बनका चाव) कम हो गया। इस दुर्भाग्यका क्या इलाज?

सब ताबः फिक्ना चौंक पडे तेरे अहदमें।
इक मेरा बख्त था कि वोह बेदार कम हुआ॥

मै वहमसे मरता हूँ, वहाँ रौबसे उसके
क़ासिदकी ज़बाँसे नहीं पैग़ाम निकलता॥

कासिद माशूकके रौबसे मेरा सन्देश कहनेमे असमर्थ है, और मै अपने वहमी स्वभावकी वजहसे शकित हूँ कि कही वह स्वय तो आशिक नही हो गया है। वर्ना दमबखुद खडे रहनेकी वजह और क्या हो सकती

है ? किसीने ठीक ही कहा है वहमकी दवा लुकमानके पास भी नही ।

जब जानते तासीर कि दुश्मन भी वहाँसे ।
अपनी तरह ऐ गर्दिशे ऐय्याम ! निकलता ॥

हरएकसे उस बज्ममें शब पूछते थे नाम ।
था लुत्फ जो कोई मिरा हमनाम निकलता ॥

थी नौहाजनी दिलके जनाजेपै जरूरी ।
शायद कि वोह घबराके सरेबाम निकलता ॥
काँटा-सा खटकता है कलेजेमें गमेहिज्र ।
यह खार नही दिलसे गुलअन्दाम ! निकलता ॥
हूरे नहीं मोमिनके नसीबोंमें, जो होतीं ।
बुतखाने ही से क्यो यह बदनाम निकलता ॥

वस्लकी शब शामसे मै सो गया ।
जागना हिजराँका बला हो गया ॥
आइना जल्दीसे पटक दो कहीं ।
दिल ही नहीं, हाथसे देखो गया ॥
साथ न चलनेका बहाना तो देख ।
आके मिरी नाशपै वोह रो गया ॥

नासह ! यह गिला क्या है कि मै कुछ नहीं कहता ।
तू कब मेरी सुनता है ? कि मै कुछ नही कहता ॥
ऐ चारागरो क़ाबिले दरमाँ नहीं यह दर्द !
वरना मुझे सौदा है ? कि मै कुछ नही कहता ॥

रात किस-किस तरह कहा, न रहा ।
न रहा, पर वोह महलक़ा न रहा ॥

गैर आकर करीबे खाना रहा।
शौक अब तेरे आनेका न रहा॥

गैर (प्रतिद्वन्द्वी) मेरे मकानके नजदीक मकान लेकर रहने लगा है। अब तेरे आनेका चाव मुझे नही है क्योकि मेरे यहाँ आयगा तो उसके यहाँ जानेका भी तुझे बहाना या अवसर मिल जायगा।

तेरे परदेने की यह परदादरी।
तेरे छुपते ही कुछ छुपा न रहा॥

तूने मुझसे परदा किया तो लोग ताड गये कि कुछ न कुछ बात जरूर है। वरना इससे इस कदर हिजाब क्यो ?

मुद्दआ गैरसे कहा तो वोह।
समझे अब कुछ भी मुद्दआ न रहा॥

आदमीको जब खयाल होता है कि अब अभिलाषा पूरी न होगी, तब वह मनकी बात दुश्मनसे भी कह देता है। आशिकने मकरसे दिलका मुद्दआ रकीबसे कह दिया, ताकि वह या माशूक यह समझ ले कि अब इसका कोई स्वार्थ या मतलब नही है और फरेबमे आजाये।

जज्बये दिलको न छातीसे लगाऊँ क्योंकर।
आप वोह मेरे गले दौडके इकबार लगा॥

इसी जज्बये दिलकी बदौलत माशूक मेरे गले लगा था, अत मै इसे सीनेसे लगाये हुए हूँ।

तू किसीका भी खरीदार नहीं, पर जालिम !
सरफरोशोका तेरे कूचेमें बाजार लगा॥

शबेगम फुरक़त हमें क्या-क्या मजे दिखलाय था।
दम रुके था सीनेमें कम्बख्त जी घबराय था॥

या तो दम देता था वोह या नामाबर बहकाय था।
थे गलत पैगाम सारे कौन याँतक आय था॥
सुनके मेरी मर्ग बोले "मर गया अच्छा हुआ।
क्या बुरा लगता था जिस दम सामने आजाय था"॥

न कॉटोपर कोई यूँ लोटे जूँ मै बिस्तरे गुलपर।
तेरे बिन करवटें शब ऐ सनमअन्दाम! लेता था॥
मै उसकी बज्मेमयमें जहर पी क्योकर न मर जाता।
कि मेरे सामने उस लबके बोसे जाम लेता था॥
उस लबेनाजुकको बर्गेगुलसे देते है मिसाल।
होट बर्गेलाल थे और नील दागे लाला था॥

अपने लबेनाजुक (कोमल ओठ) की मिसाल लालाफूलसे देते सुनकर इस कदर माशूकको बुरा मालूम हुआ कि मारे गुस्सेके उसके ओठ लाला फूलकी तरह लाल हो गये और, गुस्सेमे ओठ चबानेसे दागेलालाकी तरह नील पड गया। इस प्रकार उक्त उपमा सही चरितार्थ हो गई। माशूकका सौन्दर्य्य क्रोधमे बिगडता नही, और बढता है।

मैंने तुमको दिल दिया, तुमने मुझे रुसवा किया।
मैंने तुमसे क्या किया और तुमने मुझसे क्या किया॥
सरसे शोले उठते है ऑखोसे दरिया जारी है।
शमअसे यह किसने जिक्र उस महफिलआराका किया॥
रोइये क्या बस्लतेखुफ्ताको कि आधीरातसे।
मै यहॉ रोया किया और वह वहॉ सोया किया॥
आँख आशिक़की कोई फिरती है ऐ वादाखिलाफ!
देखले मै मरते-मरते सूएदर देखा किया॥
चारागर काबेमें, उसके आस्ताँसे ले गये।
एक भी मेरी न मानी लाख सर पटका किया॥

नाकामियोंमें तुमने जो तशबीह मुझसे दी।
शीरींको दर्देतलख़िये फरहाद आगया॥
हम चारागरको यूँही पिन्हाएँगे बेडियाँ।
काबूमें अपने गर वोह परीज़ाद आ गया॥

हम चारागरको इसलिए बेडियाँ पहनाएँगे कि वह खुद दीवाना है, वरना वह हम आशिकोका इलाज क्यो करता ? दूसरा मतलब यह है कि जो चारागर हमे दीवाना समझता है, हम उसे अपने परीजाद माशूक (अप्सरा सी प्रेयसी) को दिखा देगे तो वह खुद-ब-खुद दीवाना हो जायगा।

जब हो चुका यक़ी कि नहीं ताकते विसाल।
दममें हमारे वह सितमईजाद आ गया॥
ज़िक्रे शराबोहूर कलामेख़ुदामें देख।
मोमिन मै क्या कहूँ, मुझे क्या याद आ गया॥

वादये वसलतसे हो दिल शाद क्या ?
तुमसे दुश्मनकी मुबारिकबाद क्या ?
मै असीर उसका जो है अपना असीर।
हम न समझे सैद क्या सैयाद क्या ?

जो मेरी मुहब्बतमे कैद है मै उसी कैदीका कैदी हूँ। इसके अतिरिक्त मै कुछ नही जानता कि कौन सैयाद है और कौन सैद !

नशये उल्फतमें भूले यारको।
सच है, ऐसी बेख़ुदीमें याद क्या॥
जब मुझे रंजेविलेआज़ारी न हो।
बेवफ़ा ! फिर हासिले बेदाद क्या ?

यह उज्रे इम्तहाने जज्बे दिल कैसा निकल आया ?
मैं इलजाम उसको देता था क़ुसूर अपना निकल आया ।।
किया जंजीर मुझको चारागरने किन दिनोमें जब ।
उबूकी क़ैदसे वोह शोख़े बेपरवा निकल आया ।।
हमारे ख़ूंबहाका ग़ैरसे दावा है क़ातिलको ।
यह बादे इनफसाल अब और ही झगड़ा निकल आया ।।

माशूकने आशिकको कत्ल किया, यहाँ तक तो उचित था किन्तु उसका गैरसे यह कहना कि तेरे उभारनेसे ही इसका कत्ल किया गया, इसलिए इसका ख़ूंबहा (मृत्युदण्डके एवज़मे मनमॉगी वस्तु) दे, ठीक नही, क्योकि आशिक नही चाहता कि माशूक गैरसे किसी तरहका भी व्यवहार रखे ।

आशिक़ हुए हैं आप कहीं, गो उसीपै हो ।
शब हालेग़ैर मुझसे ज्यादा ख़राब था ।।
बेपरदा गैरसे न हुआ होगा शब, कि सुबह
आँखोंमें शर्म थी न नज़रमें हिजाब था ।।
क्या जी लगा है तज़करए यारमें, अबस
नासेहसे मुझको आजतलक इज्तनाब था ।।

किसपै मरते हो ? आप पूछते हैं ।
मुझे फ़िक्रे जवाबने मारा ।।
यूँ कभी नौजवाँ न मरता मैं ।
तेरे अहदे शबाबने मारा ।।

देखलो शौक़े नातमाम मिरा ।
ग़ैर ले जाय है पयाम मिरा ।।

तूने रुसवा किया मुझे, अबतक
कोई भी जानता था नाम मिरा ?

जवाबे ख़ूने नाहक मेरा ऐसा क्या दिया तूने।
कि ज़ालिम ! रह गये मुँह लेके सब अहबाब अपना-सा ॥

बेख़ुद थे, गश थे, महव थे, दुनियाका ग़म न था।
जीना विसालमे भी तो मरनेसे कम न था ॥

दरबाँको आने देनेपै मेरे, न कीजे कत्ल।
वरना कहेंगे सब कि यह कूचा हरम न था ॥

माशूकके कूचेको हरम (काबे) की उपमा दी है, और काबेमे हर कोई जा सकता है, और वहाँ किसीको कत्ल नही किया जा सकता।

सुबहसे तारीफ है सब्रोसकूने गैरकी।
किसने शब मुझको तड़पते पेशेदर दिखला दिया ?
मौतके सदके कि वोह बेपरदा आये लाशपर।
जो न देखा था तमाशा उम्रभर, दिखला दिया ॥
गो हसदसे हो पर अब भी है वही नासेहकी बात।
नाहक उस जानेजहाँ को इक नज़र दिखला दिया ॥

मोमिनने नासेहको कायल करनेकी गरजसे अपने माशूककी सूरत दिखा दी। मगर यह गज़ब हुआ कि वह उसको दिल दे बैठा, और मोमिन-को तर्केइश्ककी नसीहत करने लगा। पहले हमदर्दीकी नीयत से नसीहत करता था, अब स्वार्थ और ईर्ष्यावश नसीहत करता है।

नामउल्फ़तका न लूँगा जबतलक है दममें दम।
तूने चाहतका मज़ा ऐ फ़ित्नागर ! दिखला दिया ॥

सख़्त कम्बख़्ती हुई यह भी नसीबोंका लिखा ।
ग़ैरको ख़त नामाबरने बेख़बर दिखला दिया ।।

दुश्नामेयार तबए हज़ीपर गिराँ नही ।
ऐ हमनफस ! नज़ाकते आवाज़ देखना ।।

माशूककी गालियाँ (दुश्मनामेयार) हमारे दिल (तबएहजी) पर कुछ भी असर नही करती । हम तो उसकी आवाजकी नजाकतको देख रहे है । पारखी अवगुणोमे भी गुण परख लेते है ।

जूँ निकहतेगुल जुम्बिश है जीका निकल जाना ।
ऐ बादेसबा मेरी करवट तो बदल जाना ।।

निर्बलता इतनी बढ गई है कि तनिक भी हिलने (जुम्बिश) मे प्राण निकलने जैसा कष्ट होता है। जैसे हवाकी हरकतसे बूएगुल (निकहते गुल) निकल जाती है, उसी तरह आशिकके प्राण निकल जाते है । इसलिए मुझमे तो करवट बदलनेका साहस नही, ऐ बादेसबा ! (प्रात कालीन पवन) तूही मेरी करवट बदलनेका प्रयत्न कर ।

किस दिन थी उसके दिलमे मुहब्बत जो अब नही ।
सच है कि तू उदूसे ख़फा बेसबब हुआ ।।

आशिकने माशूकसे कहा कि तुम बेसबब उदूपर खफा हुए । तुम इस वजहसे खफा हुए कि उसके दिलमे तुम्हारे लिए मुहब्बत नही है, यह तो कोई नई बात नही । मुहब्बत तो उसे कभी थी ही नही, फिर आज ऐसी नई बात क्या हुई ?

सीनेपै हाथ धरते ही कुछ दम पै बन गई ।
लो जानका अज़ाब हुआ दिलको थामना ।।

ले उड़ी लाशा हवा लागिर जबस तन हो गया ।
ज़र्रए रेगेबयाबाँ अपना मदफन हो गया ।।

हम इतने निर्बल हो गये कि हवाके झोकेसे उड गये। हमारे शरीरका अणु-अणु बयाबानमे बिखर गया। जिसे रेगे बयाबान (चमकती रेत) समझा जाता है, वे सब हमारी कब्रे है क्योकि वे हमारे ही अणु है।

बिन तेरे ऐ शोलारू! आतिशकदा तन हो गया।
शमअकदपर मेरे परवाना बिरहमन हो गया॥

तेरे वियोगमे मेरा बदन आतिश कदा (आगकी भट्टी) हो गया। उसको जलता देख बिरहमन भी परवानेकी तरह मेरे प्रज्वलित शरीर (शमअकद) पर न्यौछावर हो गया। मोमिनका खयाल था कि ब्राह्मण अग्निकी पूजा करते है। इसी भावको बान्धनेके लिये यह सब बखेडा किया गया। यह गजल लखनवी रगमे है जो मोमिनने शुरू-शुरूमे अख्तियार किया था।

औरकी चाहतका तूने जब किया मुझपर खयाल।
तब मुझे भी तुझसे वहमे रब्ते दुश्मन हो गया॥

राजेनिहाँ जबाने अगयार तक न पहुँचा।
क्या एक भी हमारा खत यारतक न पहुँचा॥

आशिकका पत्र अगर माशूकके पास पहुँचता तो वह जरूर प्रतिद्वन्द्वी (अगियार) से जिक्र करता। मेरा प्रेम (राजेनिहा) उसपर प्रकट नही है, इसीसे मालूम होता है कि मेरे पत्र माशूक तक न पहुँचकर कही बीचमे ही रह गये।

जज्बेदिल उसे खींचके लाये तो कहाँ लाये?
जो गैरका घर है वही मसकन है हमारा॥

रो दिया जो उसने मेरी लागरीको देखकर।
क़तरयेअश्केनदामत मुझको दरिया हो गया॥

मैं तो दीवाना था, उसको अक्लको क्या हो गया ?
क़ैस कहता है मुझे, नासेहको सौदा हो गया ॥

होता है आहे सुबहसे दाग और शोलाजन ।
कैसा चराग था यह कभी गुल न हो सका ॥

मय न उतरी गलेसे जो उस बिन ।
मुझको यारोने पारसा जाना ॥
शिकवा करता है बेनियाज़ीका
तूने 'मोमिन' बुतोको क्या जाना ॥

इस वुसअते कलामसे जी तग आ गया ।
नासेह ! तू मेरी जान न ले, दिल गया, गया ॥

कुछ आँख बन्द होते ही आँखे-सी खुल गईं ।
जो इक बलाएजान था, अच्छा हुआ गया ॥
आहेसहर हमारी फलकसे फिरी न हो ।
कैसी हवा चली यह कि जी सनसना गया ॥
आती नही बलाए शबेग़म निगाहमे ।
किस महरवशका जलवा नज़रमे समा गया ॥
मुझ ख़ानमाँ ख़राबका लिक्खा कि जानकर ।
वोह नामा गैरका मेरे घरमे गिरा गया ॥

वोह हँसे सुनके नाला बुलबुलका ।
मुझे रोना है ख़न्दये गुलका ॥

माशूक इस कदर बेदर्द है कि नालये बुलबुल सुनकर भी हँसता है । किसीको रोते देखकर भी मुस्कराता है, और मैं इस कदर सहृदय हूँ कि फूलोके मुसकरानेपर भी रो उठता हूँ, क्योकि मै उनके मुस्करानेका परिणाम जानता हूँ कि वे किसी बेरहम हाथोसे तोड लिये जाएँगे, या मुर्झा-

कर गिर पडेगे। दूसरा भाव यह भी है कि वोह (फूल) बुलबुलका नाला सुनकर हँसे तो मुझे उनकी इस ढीट हँसीपर रोना आ गया।

लाश किसकी है, यह उड़से न पूछ।
मै हूँ कुश्ता[1] तेरे तजाहुल[2] का॥

चिलमनके बदले मुझको जमीपर गिरा दिया।
उस शोख़ बेहिजाबने परदा उठा दिया॥

उस शोखने परदा क्या उठाया, मुझे बेहोश कर दिया! चिलमन गिरानेके बदले मुझे गिरा दिया।

फर्माते है "विसाल है अंजामकारे इश्क"।
क्या नासहे शफीकने मुज़दा सुना दिया॥

नासेहके कथनका तो तात्पर्य यह था कि इश्कका अजाम विसालेकजा (मृत्यु-आलिगन) है, परन्तु कजा कहाँ नही है, विसालमे ही उसका भाव निहित है। मोमिन उसके विसाल शब्दको यारका विसाल समझ कर खुश होते है, और कहते है—नासेह जैसे मनहूसने आज यह कैसा हर्ष समाचार (मुजदा) सुनाया। उससे तो ऐसी खुशखबरीकी कभी आशा न थी।

मिट्टी न दी मज़ारतलक आके उसपै भी।
कहते है लोग ख़ाकमे उसने मिला दिया॥
हमदम दिखा अब उसको किसी ढब कि रहम आये।
नासेहको मेरे हालेज़बूँने रुला दिया॥
बेसैरे दश्तोबादया लगने लगा है जी।
और उस ख़राब घरमें कि वीराँ नही रहा॥

---

[1] मिटा हुआ, [2] अनजाने अत्याचारोका।

असर उसको ज़रा नहीं होता।
रंज राहत फिज़ा नही होता॥

यदि माशूक आशिकके रजसे प्रभावित होकर उसपर कृपा करने लगे तो उसके सारे रजोगम राहत (सुख-चैन) मे बदल जाएँ, परन्तु ऐसे भाग्य कहाँ ?

तुम हमारे किसी तरह न हुए।
वर्ना दुनियामें क्या नही होता॥
हालेदिल यारको लिखूँ क्योकर ?
हाथ दिलसे जुदा नही होता॥

इस हुस्नपै ख़लवतमें जो हाल किया कम था।
क्या जानिये क्या करता गर तू मेरी जा होता॥
एक-एक अदा सौ-सौ देती है जवाब उसके।
क्योकर लबे कासिदसे पैगाम अदा होता॥

पडा ही मरना बस अब तो हमको जो उसने ख़त पढ़के नामाबरसे—
कहा कि "गर सच यह हाल होता तो दफ्तर इतना रकम न होता"॥

जो आप दरसे उठा न देते कही न करता मै जिबहसाई।
अगर्चे यह सरनविश्तमे था, तुम्हारे सरकी कसम न होता॥
विसालको हम तरस रहे थे, जो अब हुआ तो मजा न पाया।
उदूके मरनेकी जब ख़ुशी थी, कि उसको रजोअलम न होता॥

ग़ैर निकला तेरे घरसे गई इस वहममें जान।
गुल हुए चोरके उस कूचेमें गर आख़िरे शब॥
दी तसल्ली भी तो ऐसी कि तसल्ली न हुई।
ख़्वाबमे तो मेरे आये वोह मगर आख़िरे शब॥

वहशतसे मेरी सारे अहब्बा[1] चले गये।
आना है गर तो आओ कि खाली मकाँ है अब ॥
कह दी रकीबने तेरी बेइल्तफातियाँ।
नासेह हमारे हालपै कुछ महर्बाँ है अब ॥

तारे आँखे झपक रहे थे।
था बामपै कौन जलवागर रात ॥

किस वास्ते ऐ शमा ! जबाँ काटते है लोग।
क्या तूने भी की थी शबेहिजराँकी शिकायत ॥

रोया करेगे आप भी पहरो इसी तरह।
अटका कही जो आपका दिल भी मिरी तरह ॥
ना ताब हिज्रमे है न आराम वस्लमे।
कम्बख्त दिलको चैन नही है किसी तरह ॥
लगती है गालियाँ भी तेरे मुँहसे क्या भली।
कुरबान तेरे, फिर मुझे कहले इसी तरह ॥

ऐ सोजिशेसीना मुझे वह सीना दिखा दे।
खोले तेरी गरमीसे वोह घबराके मगर बन्द ॥

उसके कूचेसे चला आये है उडता काग़ज़।
फाड़कर फेंक दिया क्या मेरे खतका काग़ज़ ॥

न क्योकर बस मुआ जाऊँ कि याद आता है रह-रहकर।
वोह तेरा मुसकराना कुछ मुझे होटोमें कह-कहकर ॥

---

[1]अहबाब, मित्र।

दुश्मनी देखो कि ताउलफत न आजाये कहीं।
लेलिया मुँहपर दुपट्टा हाल मेरा देखकर॥

मोमिन ! ख़ुदाके वास्ते ऐसा मकाँ न छोड़।
दोज़ख़में डाल ख़ुल्दको, ऐसा मकाँ न छोड़॥

याँ अपना उनकी चाहमें मरना यकीं हुआ।
वाँ और ही के चाहनेका है गुमाँ हनूज़॥

ऐ जज़्बेदिल वोह शोख़ सितमगर तो इक तरफ।
पैग़ाम लेके भी कोई आया नहीं हनूज़॥

नासेह रकीबसे है बदआमोज़तर कहीं।
पर मैंने तेरा हाल सुनाया नही हनूज़॥

नासेह कही ज्यादा रकीबसे बदआमोज (बुरी सलाह देनेवाला) है। खैर गुजरी कि मैने उसको तेरा हाल नही सुनाया, वर्ना शायद वह भी तुझे चाहने लगता। नासेहको यारका हाल सुनानेकी वजह यह हो सकती थी कि वोह मेरी आसक्तिका कारण समझकर नसीहत करनेसे बाज आये। मगर भूखी कुतियाको जलेबियोकी पहरेदार बनाना उचित नही समझा।

डूबा जो कोई आह, किनारेपै आ गया।
तुगयाने बहरे इश्क है साहिलके आस-पास॥

जो दरियाए इश्कको तैरकर किनारे पै आगया, समझ लो कि वही डूब गया। यानी इस दरियामे किनारेपर आना ही मृत्यु है। इसलिए कि और दरियाओके बरखिलाफ यहाँ तूफानका तमाम ज़ोर किनारे (साहिल) के आस-पास रहता है।

ऐ कैस ! तेरे नालेकी ग़ैरतको क्या हुआ ?
लैलीने जग बाँधे है महमिलके आस-पास ।।

कैस (मजनूँ) के नालोमे शक्ति होती तो लैलीको जग (घटियाँ) बान्धनेकी क्यो आवश्यकता पडती ?

खा गया जी, गमेनिहाँ अफसोस ।
घुल गई गमके मारे जाँ अफसोस ।।
गुलेदागेजुनू खिले भी न थे ।
आ गई बागमे खिज़ाँ अफसोस ।।

मुझसे मिल, वर्ना रकीबोसे मै सब कह दूँगा ।
दुश्मनी अबकी तेरी और वह पहला इख़लास ।।

मोमिनने भी क्या कमीना धमकी दी है ! तौबा !!

इफलास[1]से खाया किये ग़म सब्ज़[2]ख़तोंका ।
अफ़सोस कही ज़हर भी हमको न मिला क़र्ज़ ।।

मोमिनके यहा बाजारू औरतो ओर छोकरो दोनोका इश्क पाया जाता है । जो उन दिनो एक रिवाज था ।

करते हो मुझसे राज़की बातें तुम इस तरह ।
गोया कि क़ौले महरमे[3] इसरार है गलत ।।

हाँ तू क्योकर न करे तर्के बुताँ ऐ वाइज़ !
ऐसी हूरें तेरी किस्मतमें कहाँ ऐ वाइज़ !

---

[1]निर्धनतासे,
[2]कमसिन छोकरो का,
[3]भेदियेकी बात ।

आता है बेकसों पै तो जल्लादको भी रहम ।
रोती है शमअ आप सरे कुश्तगाने शमअ[1] ।।

वोह सोख्ता जिगर हूँ कि पैमानओ सबू ।
बनते नही है ख़ाकसे मेरी, मगर चिराग ।।
उस महरवशके जलवेके कुर्बान क्यो न हूँ ।
परवानेको भी रात न आया नज़र चिराग ।।

क्या दुख न देखे इश्कमे क्या-क्या न पाये दाग ।
ज़ख़्मों पै ज़ख्म झेले है दागो पै खाये दाग ।।

मजलिसमें ता न देख सकूं यारकी तरफ ।
देखे है मुझको देखके अगयारकी तरफ ।।

नही चाह मेरी अगर उसे, नही राह दिलमें तो किस लिए
मुझे रोते देख वोह रो दिया, मेरा हाल सुनके हुआ कलक ।।

कहर है, मौत है, कज़ा है, इश्क ।
सच तो यह है, बुरी बला है इश्क ।।
आफते जाँ है कोई परदा नशी ।
कि मेरे दिलमें आ छुपा है इश्क ।।
बुलहवस[2] और लाफेजाँ बाज़ी[3] ।
खेल कैसा समझ लिया है इश्क ।।
वस्लमें अहतमालेशादीये मर्ग
चारागर ! दर्दे बे दवा है इश्क ।।

विरहके कष्ट सहते-सहते भी जान चली जाती है और विसाल

---

[1]शमापर न्योछावर होनेवाले परवानोपर,
[2]विषयासक्त; [3]प्राण देनेकी शेखी ।

हुआ तो ख़ुशीके मारे प्राण निकल जाते है। अत यह इश्कका वोह रोग है जिसकी कोई दवा नही।

निचोडेंगे हम अपना दामनेतर।
जहन्नुममे हैं ऐ वाइज़ अगर आग॥
जले क्या-क्या शजर तुरबत पै मेरी।
दबी थी लाशके बदले मगर आग॥

सोजिशे परवाना दिखलाते हो क्या, मैं क्या करूँ ?
देख जलते शमएमहफिलको जला जाता है दिल।

तुम मुझे परवानेका जलना दिखाकर यह जताते हो कि आशिक यूँ जला करते है। मगर मेरा दिल शमअको देखकर खुद-ब-खुद जल रहा है कि इसको अपने आशिकोसे किस कदर दिलसोजी है कि उनके गममे खुद भी जल रही है, और तुम हो कि हम मिट रहे है, मगर तुम्हारी बलासे।

या इलाही ! मुझको किस परदानशीका ग़म लगा।
सीनेमें अन्दर ही अन्दर कुछ घुला जाता है दिल॥
हैरतेदीदार बस आईना रखदे हाथसे।
अपनी हालत देखकर ज़ालिम कटा जाता है दिल॥

शामसे तासुबह मुज़तर सुबहसे ताशाम हम।
एक आलममें है क्यो ए गर्दिशे ऐय्याम हम॥
तू ख़बर ला क्या कहा ? क़ासिदसे छुपते फिरते है।
हमदम उस परदानशींको भेजकर पैगाम हम॥
इस सियहबख़्ती में रक्खें तुझसे उम्मीदे वफा।
ऐसे सोदाई नहीं ऐ शोख़ लैला फाम हम॥

नातवाँ थे पर न छोड़ा मिसले ख़ार।
ख़ुद उलझकर रह गये दामनमें हम॥

जोशे वहशतने उठाया लाशको ।
अपने पाओंसे गये मदफनको हम ।।

साहबने इस गुलामको आजाद कर दिया ।
लो बन्दगी कि छूट गये बन्दगीसे हम ।।
इन नातवानियो पै भी थे खारे राहे गैर ।
क्योकर निकाले जाते न उसकी गलीसे हम ।
है छेड इख्तलात भी गैरोके सामने ।
हँसनेके बदले रोएँ न क्यो गुदगुदीसे हम ।।

जो पहले दिन ही से दिलका कहा न करते हम ।
तो अब यह लोगोकी बातें सुना न करते हम ।।
अगर न आँख तगाफुल शुआरसे लगती ।
तो बैठे-बैठे यह यूँ चौंक उठा न करते हम ।।
अगर न हँसना हँसाना किसीका भा जाता ।
तो बात-बातपै यूँ रो दिया न करते हम ।।

अब औरसे लौ लगायेगे हम ।
जूँ शमअ तुझे जलाएँगे हम ।।

बसकि परदानशींपै मरते है ।
मौतसे आये है हिजाब हमें ।।

दावये हुस्ने जहाँसोज इस कदर ?
फिर कहोगे तुम मे हरजाई नहीं ।।

माशूकने दावा किया है कि मेरे हुस्नने एक जहानमे आग लगा दी है । आशिक जवाब देता है कि इससे तुम्हारा हरजाई होना साबित होता है, क्योकि हरजाई न होते तो हर जगह आग लगी हुई न होती ।

गर नही मिलते, मिलूँगा औरसे।
क्यो ? मुझे क्या पासे रुसवाई नही ?

देखते ही गुल, नज़रमे तेरा हँसना फिर गया।
आतिशेगुलने लगाई आग ऐ गुलरू ! हमें ॥
क्या असर था अश्के दुश्मनमें जो क्एयारसे।
मारे गैरतके बहाकर ले चले आँसू हमें ॥

हो गई घरमें ख़बर, है मनअ़ वाँ जाना हमें।
वोह भी रुसवा हो ख़ुदा, जिसने किया रुसवा हमें ॥
हर सितम सैयादका क्या इल्तफात आमेज़ था।
बन्द करनेको कफसमे दामसे छोडा हमे ॥

मुझपै बादे इम्तहाँ भी जौर कम क्योकर करें ?
वोह सताएँ गैरको ऐसा सितम क्योकर करे ?

क्या रहम खाके गैरने दी थी दुआएवस्ल।
ज़ालिम ! कहाँ वगर्ना असर मेरी आहमें ॥
जाने दे चारागर ! शबेहिजराँमें मत बुला।
वोह क्यो शरीक हो मेरे हालेतबाहमें ॥
है दोस्ती तो जानिबेदुश्मन न देखना।
जादू भरा हुआ है तुम्हारी निगाहमें ॥
मोमिनको सच है दौलते दुनिया ओ दी नसीब।
शब बुतकदेमें गुज़रे है दिन ख़ानकाहमें ॥

ता न पड़े ख़लल कही आपके ख़्वाबेनाज़में।
हम नही चाहते कमी अपनी शबेदराज़में ॥

सूरत दिखाइये जो कभी जाके ख़्वाबमें।
बेदीद आँख खोल दे झुँझलाके ख़्वाबमें ॥

शब वोह जो सो रहे मेरे पास आके ख्वाबमें।
जागे थे बख्तेखुफ्ता तमन्नाके ख़्वाबमे॥

क्या कीजिये कि ताकते नज्जारा ही नहीं।
जितने वे बेहिजाब हैं हम शर्मसार है॥

मैं अपनी चश्मेशौकको इलजाम ख़ाक दूँ।
तेरी निगाहेशर्मसे क्या कुछ अयाँ नही॥
लगजाये शायद आँख कोई दम शबेफिराक।
नासेह ही को ले आओ, गर अफसाना ख़्वाँ नही॥

कहते है तुमको होश नही इज्तराबमे।
सारे गिले तमाम हुए इक जवाबमें॥
हम कुछ तो बद थे जब न किया यारने पसन्द।
ऐ हसरत ! इस क़दर गलती इन्तख्वाबमे॥

ख़ार बिस्तरपै शबेहिज्र बिछाऊँ क्योकर।
दिलमे तो है वह गुलअन्दाम अगर बरमें नही॥

कौन-से सोख्ता अख्तरका ख़याल आता है।
सुरमा जब देते हो तुम अश्क बहाते क्यो हो ?
जिनसे मजूरेवफा है हो जफा भी उनपर।
मुझसे कुछ काम नही है तो सताते क्यो हो॥
दम कदमसे है लगा, जान निकल जायेगी।
देखो सीनेसे मेरे पाँव उठाते क्यो हो ?
किसीके अबरूयेखुशख़मका कुश्ता हूँ ताज्जुब क्या।
जो मेरी ख़ाकसे तामीरे महराबे इबादत हो॥

कूदकर घरमें तो पहुँचा मै तेरे, पर क्या करूँ ?
दम निकल जाता था, खटकेसे बराबर रातको॥

याद दिलवाई तपिशने तेरी शोख़ी वस्लकी ।
मर गये हम देखकर चीं हाये बिस्तर रातको ।।

वोह जो हममें तुममें करार था, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
वही वादा यानी निबाहका, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
वोह जो लुत्फ मुझपें थे पेश्तर वोह करम कि था मेरे हालपर ।
मुझे सब है याद ज़रा-ज़रा, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
वोह नये गिले, वोह शिकायते, वोह मज़े-मज़ेकी हिकायतें ।
वोह हरेक बातपें रूठना, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
कभी बैठे सबमें जो रूबरू तो इशारतो ही से गुफ्तगू ।
वोह बयान शौकका बरमला, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
कोई बात ऐसी अगर हुई कि तुम्हारे जीको बुरी लगी ।
तो बयाँसे पहले ही भूलना, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
कभी हममें तुममें भी चाह थी, कभी हमसे तुमसे भी राह थी ।
कभी हम भी तुम भी थे आशना, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
सुनो ज़िक्र है कई साल का कि किया एक आपने वादा था ।
सो निबाहनेका तो ज़िक्र क्या, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।
वोह बिगडना वस्लकी रातका वोह न मानना किसी बातका ।
वोह नही-नही की हर आँ अदा, तुम्हें याद हो कि न याद हो ।।

है कुछ तो बात 'मोमिन' जो छा गई ख़मोशी ।
किस बुतको दे दिया दिल क्यो बुत-से बन गये हो ?

ऐ नासहो ! आ ही गया, वोह फ़ित्नयेऐय्याम लो ।
हमको तो कहते थे भला, अब तुम तो दिलको थाम लो ।।

गो आपने जवाब बुरा ही दिया, वले —
मुझसे बयाँ न कीजे उदूके पयामको ।।

हम समझते हैं आज़मानेको।
उज्र कुछ चाहिए सतानेको॥
संगेदरसे तेरे निकाली आग।
हमने दुश्मनका घर जलानेको॥
रोज़े महशर भी होश गर आया,
जाएँगे हम शराबख़ानेको॥

एजाज़से ज्यादा है सहर उनके नाज़का।
आँखे वोह कह रही है जो लबसे अयाँ न हो॥

फिर गई आँख मिस्ले किब्लानुमा।
जिस तरफ उस सनमने फेरा मुँह॥

समझ तो 'मोमिन' अगर नारवा है ख़ुद बीनी।
तो देखें काहेको परहेज़गार आईना॥

दस्तेजुनूँने मेरा गिरेबाँ समझ लिया।
उलझा है उन-से शोख़के बन्देकबाके साथ॥
कूचेसे अपने गैरका मुँह है? मिटा सके,
आशिकका सर लगा है तेरे नक्शेपाके साथ॥
अल्लाहरी गुमरही बुतोबुतख़ाना छोड़कर।
'मोमिन' चला है काबेको एक पारसाके साथ॥

तौबा गुनाहे इश्कसे फरमाये है वाइज़।
यह भी कही दिल देके गुनहगार हुआ है॥

मैं अगर आपसे जाऊँ[1] तो करार आ जाये।
पर यह डरता हूँ कि ऐसा न हो यार आ जाये॥

---

[1]मर जाऊँ।

बाँधो अब चारागरो ! चिल्ले कि वह भी शायद ।
वस्ले दुश्मनके लिए सूए मजार आ जाये ।।
नाम बदबख़्तिये उश्शाक ख़िज़ाँ है बुलबुल !
तू अगर निकले चमनसे तो बहार आ जाये ।।

देते हो तसकी मेरे आज़ारसे ।
दोस्ती तुमको नही अग़ियारसे ?
जाबजा नहरे है जारी, मैंने अश्क--
पूँछे होगे दामने कोहसारसे ।।
इश्कमें नासेह भी है क्या मुद्दई ।
जुर्म साबित हो गया इकारसे ।।
जिक्रे अश्के गैरमे रगीनियाँ ।
बूएख़ूँ आई तेरी गुफ़्तारसे ।।

तू गैरके प्रेम-अश्रुओका वर्णन ऐसी रगीन भाषामे कर रहा है कि मेरा हृदय ईर्ष्यासे खून हुआ जा रहा है । मुझे तेरी बातोमे खूनकी गन्ध आती है ।

है निगाहेलुत्फ़ दुश्मनपर तो बन्दा जाय है ।
यह सितम ऐ बेमुरव्वत ! किससे देखा जाय है ।।
हुस्नेरोज अफज़ूँपै गुर्रा किसलिए ऐ माहरू !
यूँ ही घटता जायगा जितना कि बढ़ता जाय है ।।
अब तो मर जाना भी मुश्किल है तेरे बीमारको ।
जोफके बाइस कहाँ दुनियासे उठ्ठा जाय है ।।
गैरके हमराह वोह आता है मै हैरान हूँ ।
किसके इस्तकबालको जी मेरा तनसे जाय है ।।

कत्ले दुश्मनका है इरादा उसे ।
यह सज़ा ? अपनी जाँनिसारीकी ।।

यानी खजर आजमाईके मुस्तहक तो हम जाँनिसार थे न कि दुश्मन ।

ताबेनज्जारा नही आयना क्या देखने दूँ ।
और बन जाएँगे तसवीर जो हैराँ होगे ।।

जो ही मानिन्द निशाने कफेपा बैठ गया ।
पाँव क्या कूचेसे उस होशरुबाके उट्ठे ।।

यह कौन कहे उससे की तर्केवफा मैंने ।
कर तू ही जरा नासेह पैगाम्बरी इतनी ।।
सजदा न कही करना 'मोमिन' कदमे बुतपर ।
काबे ही में होती है बेहूदासरी इतनी ।।

मुन्तजिर किसके यह रहते है कि हम हर शबको ।
ता-सहर शामसे उठ-उठके है घरमें फिरते ।।
सुर्भगी चश्मकी गर्दिश जो न भा जाती तो ।
खाक यो काहेको हम डालते सरमें फिरते ।।

मुए है हसरतेदीदारमे खूँ रोते-रोते हम ।
अजब क्या है जो निकले सुर्ख नरगिस अपनी तुरबतकी ।।

पाँव तुरबतपै मेरी देख, सम्भलकर रखना ।
चूर है शीशयेदिल संगे सितमसे पिसकर ।।

ऐशमें भी तो न जागे कभी तुम क्या जानो ?
कि शबेगम कोई किस तौर बसर करता है ?
जिक्र कर बैठे बुराई ही से शायद मेरा ।
अब वोह अग्रियारकी सुहबतसे हजर करता है ।।
क्या रुलाती है मुझे फिक्रे खयाले दुश्मन ।
वस्लमे जब वोह इधर हँसके नजर करता है ।।

यानी कही प्रतिद्वन्द्वीके तसव्वुरमे न हँस रहा हो, यही खटका आशिकको लगा हुआ है ।

सबेवहशत असर न हो जाये ।
कही सहरा भी घर न हो जाये ।।

जगलमे रहते-रहते कही उसे भी मै घर समझ बैठा, तो मजबूरन मुझे कही और जाना होगा ।

रश्के पैगाम है अनाकशे दिल ।
नामाबर राहबर न हो जाये ।।

मैने नामाबरको दोस्तके पास भेज तो दिया है, मगर यह रश्क कि 'वह माशूकको देखेगा, बात करेगा' मुझे मजबूर कर रहा है कि मैं भी स्वय वहाँ जाऊँ, परन्तु परेशानी यह है कि मै अब उसके पीछे जाता हूँ तो वह मेरा राहबर (मार्ग प्रदर्शक) हो जायगा ।

कसरतेसजदासे वोह नक़्शेक़दम ।
कहीं पामाले सर न हो जाये ।।

गलीमें उसकी न फिर आते हम तो क्या करते ?
तबीयत अपनी न जन्नतके दरमियान लगी ।।

जीना उम्मीदे वस्लपै हिजराँमें सहल था ।
मरता हूँ जिन्दगानिये दुश्वारके लिए ।।

दरबदर नासियह फरसाईसे क्या होता है ।
वही होता है जो क़िस्मतमें लिखा होता है ।।

मेरा खून क्या बारे गरदन हुआ ?
कि बेताब वोह दर्दे गरदनसे है ।।

नई कुछ नही अपनी जाँबाजियाँ।
यही खेल हमको लडकपनसे है॥

थी बदगुमानी अब उन्हें क्या इश्के हूरकी।
जो आके मरतेदम मुझे सूरत दिखा गये॥

ख़ुदरफ्तगीमें चैन वोह पाया कि क्या कहूँ।
गुरबत जो मुझसे पूछो तो बहतर वतनसे है॥

जाँ गई पर न गई जौरकशी।
बादे मुरदन भी दबाते है मुझे॥
अब यह सूरत है कि ऐ परदानशीं!
तुझ से अहबाब छुपाते है मुझे॥

मुझे चुप लगी मुद्दआ कहते-कहते।
रुके है वोह क्या जानें क्या कहते-कहते॥

हम हाल कहे जाएँगे सुनिये कि न सुनिये।
इतना ही तो याँ सुहबते नासेहका असर है॥
अब भी नहीं जाती तेरे आजानेकी उम्मीद।
गो फिर गई आँखें, पै निगह जानिबे दर है॥

है ऐतमाद मेरे बस्तेख़ुफ्तापर क्या-क्या?
वगर्ना ख़्वाब कहाँ चश्मे पासबाँके लिए॥

यह हालत है तो क्या हासिल बयाँसे।
कहूँ कुछ और कुछ निकले ज़बाँसे॥
मेरे घर आप यूँ जाते थे किस दिन।
उठाना मुद्दआ है आस्ताँसे॥

वोह आये हैं पशेमाँ लाशपर अब।
तुझे ऐ जिन्दगी लाऊँ कहाँसे॥
जहाँसे तगतर जन्नत न हो जाय।
बहुत हसरत भरा जाता हूँ याँसे॥

१८ अप्रेल १९५०

७८

ग़ालिब

[ई० स० १७९७ से १८६९ ई० तक]

मिर्जा असदुल्लाखाँ 'गालिब' उर्दूके अमर शायर हुए है। यूँ तो मीर तकी 'मीर'को उर्दूशायरीमे सर्वोच्च आसन प्राप्त है, वे 'खुदाएसुखन' जैसे महान सम्बोधन द्वारा स्मरण किये जाते है। उन जैसी जबान और मोजोगुदाज आजतक किसीको मयस्सर न हुआ। बडे-से-बडे शायरकी प्रशसामे इतना कह देना कि "तुम्हारे कलाममे मीर-जैसा रग झलकता है" बहुत बडा प्रमाणपत्र है। अर्वाचीन युगके श्रेष्ठ शायरो—नासिख, आतिश, गालिब, जौक आदिने भी मीरको सर्वश्रेष्ठ शायर तस्लीम किया है, परन्तु वर्तमान युगमे जो ख्याति गालिबको मिलती जा रही है, वह मीरको भी नसीब नही है। कुछ आलोचक और सुखनफहम वर्तमानमे भी गालिबपर मीर और मोमिनको तरजीह देते है और अपने कथनकी पुष्टिमे तुलनात्मक शेर पेश करते है, परन्तु ईमानकी बात यही है कि 'गालिब'के प्रशसकोकी सख्या बहुत अधिक है और उत्तरोत्तर तेजीसे बढती जा रही है। आस्मानेशायरीपै गालिब ही गालिब चमक रहे है और मीर, दर्द, आतिश और मोमिन भी उनके समक्ष मान्द दिखाई देते है।

यूँ तो गालिब अपने जीवनकालमे ही यथेष्ठ ख्याति प्राप्त कर चुके थे, परन्तु जो ख्याति-प्रतिष्ठा उन्हे वर्तमानयुगमे मिलती जा रही है, वोह उन्हे अपने जीवनमे प्राप्त न हो सकी। इसके मुख्य कारण दो थे—

(१) वह सामन्तवादी युग था। बादशाहो-नवाबो द्वारा जो प्रशसित होता था, वही जनताकी दृष्टिमे बडा आदमी समझा जाता था, और

यह सन्मान ज़ौकको प्राप्त था। क्योकि वे बादशाहके उस्ताद थे और बादशाहने उनको उस्ताद इसलिए चुना कि उसकी तबियतका रुझान ज़ौक जैसा था। उस सामन्तयुगकी बात जाने दीजिये, वर्तमानमे भी जिसको पत्रो और नेताओ द्वारा पब्लिसिटी मिलती है, वही बडा आदमी समझा जाता है और उस पब्लिसिटी पाये हुए बडे आदमीके समक्ष 'वास्तवम बडे आदमी' गुमनाम पडे रहते है।

(२) गालिब फारसीके उच्चकोटिके शायर थे और उर्दूमे शेर कहना अपने गौरवके अनुकूल नही समझते थे। मुँहका जायका बदलने-को कभी-कभी कहते भी थे तो वे इतने क्लिष्ट और फारसीमय होते थे कि आम जनता तो दरकिनार अच्छे-अच्छे सुखनफहम भी बगले झाँकने लगते थे। उनकी इस फारसियत और चक्करदार शायरीसे तग आकर लोग मजहका तक उडाने लगे थे। एक बार मौ० कादिरअली रामपुरीने इस मनगढन्त शेरका आशय समझानेके लिए मिर्जासे कहा--

पहले तो रोगनेगुल भैसके अण्डेसे निकाल।
फिर दवा जितनी है कुल भैसके अण्डेसे निकाल॥

मिर्जा समझ गये कि मेरे कलामका मजाक उडाया गया है। बाज़ शायर तो मुशायरोमे भी चोट करनेसे बाज नही आते थे, और मिसरातरहपर गजल पढते हुए एक-दो शेर मिर्जाकी मुश्किल पसन्दीपर भी कह दिया करते थे--

कलामे मीर समझे और ज़बाने मीरज़ा समझे।
मगर इनका कहा यह आप समझें या खुदा समझे'॥

'यानी हम 'मीर' और मिर्ज़ा 'सौदा'का तो कलाम समझ लेते है लेकिन मिर्जा गालिबका कलाम नही समझ पाते। उनका कलाम किसीकी समझमे नही आ सकता। उसे वह खुद समझे या खुदा शायद समझे तो समझे।

परन्तु मिर्जापर इन बौछारोका कोई असर न होता था। वे हँसकर टाल दिया करते थे, अथवा जवाबमे वे भी फर्मा दिया करते थे—

गर ख़ामुशीसे फायदा अख़फ़ाए हाल है।
ख़ुश हूँ कि मेरी बात समझनी मुहाल है॥

न सताइशकी तमन्ना न सिलेकी परवा।
न सही गर मेरे अशआरमें मानी न सही॥

आसान कहनेकी करते हैं फर्माइश।
गोयम मुश्किल व गर नगोयम मुश्किल॥

गालिबकी प्रारम्भिक क्लिष्ट और चक्करदार शायरीको देखकर ख़ुदाए सुखन मीरने भविष्यवाणी की थी—"अगर इस लडकेको कोई कामिल उस्ताद मिल गया और उसने इसे सीधे रास्तेपर डाल दिया तो लाजवाब शायर बन जायगा, वर्ना मोहमिल (व्यर्थ, निरर्थक) बकने लगेगा।" मिर्जाको उनके हितैषी मित्रोने काफी समझाया, परन्तु वे न माने और फारसीमय क्लिष्ट कलाम लिखते ही रहे। आखिर उनको समझ आई और उन्होने आसान शेर कहनेका भी प्रयत्न किया। अपने दीवानको मुद्रण योग्य बनाते समय, दो तिहाई क्लिष्ट और गूढ शेर निकाल दिये। फिर भी उनके दीवानका एक तिहाई हिस्सा अब भी ऐसा है, जिसे उर्दू नही कहा जा सकता और उसका भाष्य भी खीचतानकर ही किया जाता है। मिर्जाने बहुत कम अशआर उर्दूमे कहे और जो कहे उसमेसे भी दो तिहाई शेर निकाल दिये। इसलिए उनका उर्दू कलाम बहुत सक्षिप्त है। लेकिन बुलन्द अशआरकी सख्या अन्य उस्तादोसे कम नही, चाहे उनके दीवानोकी सख्या कितनी ही क्यो न हो।

वह युग दरअस्ल मिर्जाकी शायरीके अनुकूल न था। उस युगमे लखनऊ नासिखके खारिजी रगमे सराबोर था। दिल्लीमे शाह नसीरका दम गनीमत समझा जाता था। यूँ सुखनफहमोकी कमी न थी। देहली,

लखनऊ, रामपुर, हैदराबाद आदि सभी स्थानोमे मिर्जाके कद्रदाँ थे और उनका अत्यन्त आदर-सत्कार होता था। सुखनशनास उनके कलामकी मुक्त हृदयसे दाद देते थे, परन्तु मिर्जाको जो ख्याति आज प्राप्त है, वोह उनको जीवनकालमे मयस्सर नही हुई। बीसवी सदीके प्रारम्भसे अग्रेजी शिक्षाका जैसे-जैसे प्रचार बढता गया, वैसे-वैसे कलामेगालिबकी ओर भी आकर्षण बढता गया, क्योकि कलामेगालिबमे जो दार्शनिकता और सूक्तियोकी पुट मिलती है, वह उर्दूके अन्य शायरोमे बहुत कम पाई जाती है।

उन्होने हुस्नोइश्कके परदेमे जीवनके अनेक पहलुओपर प्रकाश डाला है, इसीसे उनके कलामका उत्तरोत्तर पठन-पाठन बढता जा रहा है। यह रुचि यहाँतक बढी है कि—

१. उनके कलामपर रगीन चित्र बनाये गये है।

२ उनके दीवान सुन्दर-से-सुन्दर छापनेकी होड लगी हुई है। सौ रुपये तकके मूल्यका दीवान प्रकाशित हो चुका है। जर्मनीसे भी उनके दीवानका सस्करण प्रकाशित हुआ है।

३ कितने ही साहित्यकोने उनके दीवानके भाष्य किये है और ऐसी-ऐसी कल्पनाएँ प्रसूत की है, जो शायद उनके मस्तिष्कमे भी शेर कहते समय न आई होगी।

४ उनके कलामपर कितनी ही तजमीनें[1] लिखी जा चुकी है।

५ उनके व्यक्तित्व और शायरीपर हजारो लेख छप चुके है और प्रयत्न चालू है।

---

[1]शेरके पहले मिसरेके हमवजन तीन और मिसरे कहकर, और उनको शरम जोडकर जो खमसा बनता है, उसे तजमीन कहते है। यहाँ गालिबके एक शेरपर 'सबा' अकबराबादीकी तजमीन दी जाती है —

६ उनपर न जाने कितनी नज़्मे और वार्ताएँ लिखी जा चुकी है ।

७ उनकी स्मृतिमे साहित्यक सस्थाएँ, पुस्तकालय, प्रकाशनगृह स्थापित हुए है ।

८ भारतके रेडियो स्टेशनोसे उनकी गजले दैनिक प्रसारित की गईं और आगे भी होती रहेगी । भारतविभाजनके बाद यहाँ उतना नही, किन्तु पाकिस्तानमे वही सिल्सिला चालू है ।

९ 'गालिब-दिवस' प्रतिवर्ष बडी धूमधामसे मनाया जाता है' ।

बज़्मे ख़वास बन्द है, बज़्मे अवाम बन्द है ?
किसके सलाम बन्द है, किसके पयाम बन्द है ?
मैकदे बन्द है न कुछ साग़िरो जाम बन्द है ।
गालिबे ख़स्ताके बग़ैर कौनसे काम बन्द है ?
रोइये ज़ार-ज़ार क्या, कीजिए हाय-हाय क्यो ?

इसमे अन्तिम दो मिसरे गालिबके है और पहले तीन सबाके । अच्छी तजमीन बडा मुश्किल फन है । इसमे असली शेर और लगाए हुए मिसरे एक जान हो जाते है, जोड कही मालूम नही होता ।

सबाका जिक्र करते समय उन अनेक मुसलमान साहित्यिक मित्रोकी स्मृति मनमे हलचल मचा देती है, जिन्हे भारत-विभाजनने अपना निवास-स्थान छोडकर पाकस्तिान जानेपर विवश किया । सबा आगरेके ख्याति-प्राप्त शायर थे और अब कराची चले गये है । बहुत अच्छे शेर कहते है । गालिबका तकरीबन सारा दीवान तजमीन किया हुआ है । अच्छे शायर तो है ही, जराफत और दोस्तदारीमे भी अपना सानी नही रखते । आधी-आधी रात बीतेतक उनके मुँहसे उनका कलाम सुना है । अब उन महफिलो-को आँखे तरस गई है ।

'गालिब-दिवसकी देखादेख अब—चकबस्त, हाली, इकबाल, बर्क आदिके भी दिवस मनाये जाने लगे है ।

१० उनके चित्रको लोग कमरेमे टाँगते है ।

११. उनके जीवन, रहन-सहन, स्वभाव, गुण-दोष, घरेलू जिन्दगी आदिपर नित नये लेख प्रकाशित हो रहे है ।

१२. उनके लिखे हुए व्यक्तिगत पत्र भी प्रकाशित हो चुके है ।

१३. उनके दीवानसे कितने ही अपने भाग्यका फल देखते है ।

१४ गालिबपरस्ती बाज लोगोमे यहाँतक बढ गई है कि वे उन्हे सर्वश्रेष्ठ शायर सिद्ध करनेके प्रयत्नमे अन्य शायरोपर छीटाकशी करनेसे भी नही चूकते ।

गालिबके पिता मिर्जा अब्दुल्लाबेग प्रारम्भमे अवधके नवाब आसफुद्दौलाके यहाँ मुलाजिम रहे, फिर निजाम हैदराबादके यहाँ मुलाजमत की और अन्तमे अलवर नरेश बख्तावरसिहके यहाँ फौजमे भर्ती हुए और युद्धमे मारे गये । गालिबके सगे चचा मरहठोकी तरफसे आगरेके सूबेदार थे । उन्हीने मिर्जाका लालन-पालन किया । १८०६ ई०मे जनरल लेककी अमलदारी हुई तो आगरा सूबेके बजाय कमिश्नरी बना दिया गया । अग्रेजोने भी एक हजार रुपये मासिक वेतन, चारसौ सवार, और लाख रुपयेकी जागीर दी । लेकिन मिर्जाके चचाके मर जानेसे वेतन बन्द हो गया और जागीर वापिस ले ली गई । मिर्जाकी केवल पेन्शन नियत कर दी गई । मिर्जाके चचा जब मरे, इनकी उम्र आठ वर्षकी थी । यह पेन्शन भी १८५७के विप्लवके बाद विद्रोही होनेकी आशकामे बन्द कर दी गई थी, किन्तु तीन वर्ष बाद आशका दूर होनेपर पुन वह पेन्शन जारी कर दी गई थी ।

मिर्ज़ा गालिबका बचपन आगरेमे व्यतीत हुआ । युवा होनेपर दिल्ली आकर बस गये थे और यहीकी खाकमे आखिरकार मिल गये । मिर्ज़ा बडे खुशरू और खुशपोश थे । सुर्खोसफेद रग, सरवेकद, सीनाकुशादा, चेहरा तुर्काना, बुलन्द पेशानी, चमकीली और मखमूर आँखें,

सुतवाँ नाक, भरे हुए सुर्ख रुखसार, और दाँत मोतियो जैसे, सरपर लम्बे बाल और दाढी मुंडी हुई—यह गालिबकी कलमी तसवीर है। बुढापेमे बाल मुँडवा दिये थे और दाढी रख ली थी।

मिर्जाकी शायराना अजमत उनके जीवनकालमे वर्तमान जितनी तो नही, फिर भी अच्छी खासी थी। उनका व्यक्तित्व आकर्षक और प्रतिष्ठित था। हर वर्गके सम्भ्रान्त व्यक्ति, रईस, साहित्यक, शायर, मिर्ज़ासे मुलाकात करनेमे गर्व अनुभव करते थे। मिर्जाकी शायरी क्या है, यह तो अगले पृष्ठोसे विदित होगा, किन्तु उनको शेर कहनेका अभ्यास कैसा था और वे किसी भी विषयपर अधिकारपूर्वक कितने कलापूर्ण ढगसे शेर कह सकते थे, यह निम्न घटनासे मालूम होगा।

कलकत्तेकी एक मजलिसमे जहाँ मिर्जा भी मौजूद थे, शुअरा-का जिक्र हो रहा था। दौरानेगुफ्तगूमे एक साहब ने फैजीकी बहुत तारीफ की। मिर्जाने कहा—"फैजीको जैसा लोग समझते है, वैसा नही है।" इसपर बात बढी। उस शख्सने कहा—"फैजी जब पहली बार अकबरके रोबरू गया था, उसने ढाईसौ शेरका कसीदा उसी वक्त बनाकर कहा।" मिर्जा बोले—"अब भी अल्लाहके बन्दे ऐसे मौजूद है कि दो-चार सौ नही तो दो-चार शेर हर मौके-पर फिलबदी (तत्काल) कह सकते है।" मुखातिबने जेबमेसे एक चिकनी डली (सुपारी) निकालकर हथेलीपर रखी और मिर्जासे उसपर शेर कहने-को कहा। मिर्जाने १३ शेरका किता उसी वक्त मौजू करके पढ दिया—

है जो साहबकी कफेदस्तपै[1] यह चिकनी डली।
जेब[2] देता है इसे जिसकदर अच्छा कहिये॥

---

[1]हथेलीपर, [2]शोभा।

ख़ामा[1] अगुश्तबदन्दा[2] कि इसे क्या लिखिये ।
नातक़ा[3] सर-ब-गरेबाँ[4] कि इसे क्या कहिये ।।

मुहरे मकतूबे अज़ीज़ाने गिरामी[5] लिखिये ।
हिर्ज़े बाज़ूए शिगरफ़ाने ख़ुदआरा[6] कहिये ।।

मिस्सीआलूदा[7] सरअगुश्ते हसीनाँ[8] लिखिये ।
दागेतर्फ़े जिगरे आशिके शैदा[9] कहिये ।।

ख़ातमेदस्तेसुलेमाँके[10] मुशाबा[11] लिखिये ।
सरेपिस्ताने परीज़ादसे[12] माना[13] कहिये ।।

अख़तरे सोख़्तए कैससे[14] निसबत दीजे ।
ख़ाले मुश्कीने रुख़े दिलकशे लैला[15] कहिये ।।

हज़रुल असवदे दीवारेहरम[16] कीजिये फ़र्ज़ ।
नाफ़ाआहूए[17] बयाबानेख़तनका[18] कहिये ।।

---

[1]कलम, [2]दाँतोमे उँगली दबाए, हैरान,
[3]जबान, [4]मुँह लटकाये, चिन्तामे,
[5]प्रियजनोके पत्रपर लगी हुई मोहर,
[6]शृगारमयी सुन्दरियोके बाजूपर बँधा हुआ तावीज,
[7]मिस्सी लगी हुई, [8]सुन्दरियोकी उँगली,
[9]आशिकके दिलका दाग, [10]सुलेमान बादशाहके हाथकी अँगूठीके,
[11]सदृश्य, [12]अप्सराके कुचका अग्रभाग,
[13]मानिन्द, [14]मजनूंका जला हुआ नसीबा,
[15]लैलाके आकर्षक चेहरेका सुगधित तिल,
[16]काबेकी दीवारका पवित्र काला पत्थर,
[17]हिरनके पेटसे निकलनेवाली मुश्क,
[18]खतनके जगलका हिरन।

वजअमे[1] इसको अगर समझिये काफेतिरयाक़[2]।
रगमे सब्जये नौखेजे मसीहा[3] कहिये॥

सोमयेमें[4] उसे ठहराइये गर महरेनमाज[5]।
मयकदेमें उसे खिश्तेखुमेसुहबा[6] कहिये॥

क्यो उसे कुफ्लेदरेगजे मुहब्बत[7] लिखिये।
क्यो उसे नुक्तये परकारे तमन्ना[8] कहिये॥

क्यो उसे गोहरेनायाब[9] तसव्वुर कीजे।
क्यो उसे मरदमके दीदयेउनका[10] कहिये॥

क्यो उसे तुकमये पैराहनेलैला[11] लिखिये।
क्यो उसे नक्शेपये नाकयेसलमा[12] कहिये॥

बन्दापरवरके कफेदस्तको दिल कीजिये फर्ज।
और इस चिकनी सुपारीको सवेदा[13] कहिये॥'[14]

---

[1]शकल, बनावटमे, तिरयाक शब्दमे जैसे उर्दूमे काफ लिखा जाता है,
[2]मसीहाकी भीगी मसोका रग, [4]मस्जिदमे,
[5]उपासना स्थान, [6]शराबके घडेकी ईंट,
[7]प्यारके खजानेका ताला, [8]अभिलाषाका केन्द्र,
[9]अमूल्य मोती,

[10]उनका नामक परिन्देकी आँखकी पुतली। यह परिन्दा किसीने नही देखा, इसलिए चिकनी टलीके अप्राप्य और बहु-मूल्य होनेकी ओर सकेत है।

[11]लैलाकी कमीजकी घुण्डी, [12]सलमाकी सॉडनीका पदचिह्न,
[13]दिलके केन्द्रमे रहनेवाला काला बिन्दु,

[14]अन्तमे पिछली सब उपमाओको रद करके सवेदाकी उपमाको सर्वश्रेष्ठ मानते है।

जौक बादशाहके उस्ताद थे और बादशाह तत्कालीन शायरोमे जौक-को तरजीह देते थे। लेकिन उनकी चहेती बेगम जीनतमहल गालिबकी तरफदार थी। उन्होने अपने पुत्र युवराज जवाँबख्तके विवाहपर विशेष आग्रह करके मिर्ज़ा गालिबसे सेहरा लिखाया। उस सेहरेके १० अशआर-मेसे ५ यहाँ दिये जाते है—

ख़ुश हो ए बख़्त[1] कि है आज तेरे सर सेहरा।
बाँध शहज़ादे जवाँबख़्तके सरपर सेहरा॥

क्या ही इस चाँदसे मुखडेपै भला लगता है।
है तेरे हुस्नेदिलेआफरोज़का[2] ज़ेवर सेहरा॥

सात दरियाके फराहम[3] किये होगे मोती।
तब बना होगा इस अन्दाज़का गजभर सेहरा॥

जौमें इतरायें न मोती कि हमीं है इक चीज़।
चाहिए फूलोका भी एक मुकर्रर[4] सेहरा॥

हम सुख़नफहम[5] है 'गालिब' के तरफदार नहीं।
देखें इस सेहरेसे कहदे कोई बहतर सेहरा॥

मिर्जाने सेहरा तो नायाब लिखा, मगर मक्तेमे बादशाह और उनके उस्ताद जौकपर चोट कर दी। जब यह सेहरा बादशाहके हुजूर पेश हुआ तो मक्तेको देखकर उन्हे मलाल हुआ, क्योकि मक्तेमे 'हम सुखन-फहम है गालिबके तरफदार नही' मिसरा कहकर यह सकेत किया गया है कि बादशाह सुखनफहम (कवितामर्मज्ञ) होता तो जौकको सन्मान

---

[1]भाग्यको सम्बोधित किया है। आशय यह है कि शहजादेके सेहरा बँधनेसे भाग्यका भी भाग्य चमक उठा है।

[2]हृदयग्राही सुन्दरताका, [3]जमा, [4]दूसरा, [5]विज्ञ कवि।

न देता। अत बादशाहने जौकसेभी एक सेहरा लिखनेको कहा। जौकने उसी जमीनमे १४ शेरका सेहरा तत्काल लिखा जो दरहकीकत गालिबके सेहरेका जवाब है—

ऐ जवाँबख़्त ! मुबारिक तुझे सरपर सेहरा।
आज है यमनोसअादतका[1] तेरे सर सेहरा॥

इक गुहर[2] भी नही सदकानेगुहरमें[3] छोडा।
तेरा बनवाया है ले-ले के जो गोहर सेहरा॥

फिरती ख़ुशबूसे है इतराती हुई बादेबहार[4]।
अल्लाह अल्लाहरे फूलोंका मुअत्तर[5] सेहरा॥

दुरे ख़ुश आबेमज़ामींसे[6] बनाकर लाया।
वास्ते तेरे तेरा जौके सनागर[7] सेहरा॥

जिनको दावा हो सुख़नका यह सुना दो उनको।
देखो इस तरहसे कहते हैं सुख़नवर सेहरा॥

ज़ीनतमहलको जब यह मालूम हुआ कि जौकने भी मिर्जाके जवाबमे सेहरा लिखा है तो उन्होने दरबारियोको बुलाकर सख्त ताकीद कर दी कि जौकके सेहरा पढनेपर कोई दाद न दे। मगर यह कैसे मुमकिन हो सकता था। एक तो अच्छा कलाम सुननेपर दोस्त-दुश्मनके मुँहसे बेअख्तियाराना दाद निकल पडती है और फिर कसदन किसी तरह दिलपर जब्र भी किया जाय तो बादशाहके स्वय दाद देनेपर दरबारियोमे चुप रहनेका साहस कैसे होता? अत जौकके सेहरेपर खूब दाद मिली। इस सेहरेके लिखे जानेसे मिर्जाको बहुत निराशा और व्यथा हुई। पारितोषक मिलनेकी तो बात ही जाती रही, बादशाहके कोपभाजन बन जानेकी बला बैठे-बिठाये गले

---

[1]विजयका, [2]मोती, [3]मोतीकी कानोमे, [4]समीर, [5]सुवासित, [6]कल्पनाके सुन्दर मोतियोमे, [7]प्रशसक, दर्बारी।

मॅढ गई। इसलिए उन्होने एक किता क्षमायाचना करते हुए लिखा, जिसके चन्द शेर ये है--

मजूर है गुजारिशे अहवाले वाकई।
अपना बयानेहुस्ने तबीयत नही मुझे॥
सौ पुश्तसे है पेशयेआबा सिपहगरी।
कुछ शायरी जरियए इज्जत नही मुझे॥
आजादरौ हूँ और मेरा मसलक है सुलहकुल।
हरगिज कभी किसीसे अदावत नही मुझे॥
उस्तादेशहसे हो मुझे पुरखाशका खयाल।
यह ताब, यह मजाल, यह ताकत नहीं मुझे॥
मक्तेमें आ पडी है सुखनगुस्तराना बात।
मकसूद इससे कतए मुहब्बत नही मुझे॥
रूए सुखन किसीकी तरफ हो तो रूस्याह।
सौदा नही, जुनूँ नही, वहशत नही मुझे॥
किस्मत बुरी सही पै तबियत नही बुरी।
है शुक्रकी जगह कि शिकायत नही मुझे॥
सादिक हूँ अपने कौलमें 'गालिब' खुदा गवाह।
कहता हूँ सच कि झूठकी आदत नहीं मुझे॥

[इस समय वास्तविक स्थिति (गुजारिशे अहवाले वाकई) को बताना मेरा उद्देश है, अपना कलाकौशल (बयाने हुस्ने तबियत) दर्शाना ध्येय नही है। सौ पुश्तोसे मेरे बाप-दादोका पेशा (पेशए आबा) सैनिकका रहा है, शायरी मेरे लिए कुछ सम्मानका साधन (जरियएइज्जत) नही है। (इस शेरमे जौकपर चोट की है, कि वह कविताके कारण बादशाहका उस्ताद बना बैठा है, और उसके पास प्रतिष्ठाका इसके अलावा और कोई सर्टीफिकेट नही है) मै स्वतत्र और उदार प्रकृतिका आदमी (आजाद-

रौ) हूँ और मेरा सिद्धान्त (मसलक) है कि सबके साथ शान्तिसे (सुलह कुल) रहूँ, इस लिए मै तो किसीसे दुशमनी (अदावत) रख ही नही सकता। (आशय यह है कि सेहरेका मकता मैंने दुश्मनीके कारण लिखा है या ज़ौक पर चोट की है, यह भ्रम मात्र है) मेरी यह ताब कहाँ कि बादशाहके उस्तादसे मै मुकाबला करूँ। (इस शेरमे फिर चोट है। आशय यह है कि जौकसे व्यक्तिगत रूपसे तो मै मुकाबला कर सकता हूँ, लेकिन बादशाहके उस्तादसे कौन मुठभेड करे ?) मेरे मकतेमे इत्तफाक-से आत्मश्लाघाके शब्द लिखे गये है जो कवि प्राय लिख दिया करते है, इन शब्दोके प्रयोगसे किसीसे लडाई (कतए मोहब्बत) करना अभीष्ट नही था। अगर किसीकी तरफ इशारा करके (रूए सुखन) मकता लिखा हो तो मै गुनहगार (रूसियाह)। मै कोई पागल था जो ऐसी बात करता। (जौक काले रग के (रूसियाह) थे, इस तरह इस शेर मे भी चोट की है) मेरी किसमत बुरी सही, पर तबियत अच्छी है, और अपनी बदकिस्मतीकी किसीसे शिकायत भी नही करता हूँ। भगवान् साक्षी है, मै हमेशा सच्ची बात कहता हूँ, कभी झूठ नही बोलता। ऊपर लिखी बातोमेसे कोई भी झूठ नही है।]

इस एक ही वाकयेसे गालिब की तत्कालीन स्थितिका आभास मिल जाता है। मिर्जा उच्चकोटिके शायर थे, किन्तु निर्धनताके अभिशाप-से बुरी तरह ग्रसित थे। जो पेशन पाते थे, वह उनके लिए यथेष्ट न थी। इसलिए शाही कृपाके भी अभिलाषी बने रहते थे, ताकि कुछ आर्थिक सबध बना रहे। लेकिन बादशाही कोषमे रहा ही क्या था, जो गालिबकी अभिलाषाऐ पूर्ण होती। इसी तगदस्तीकी वजहसे गालिब जैसा खुद्दार और शायरे आज़म इस तरहकी क्षमा याचना करने पर मजबूर होता था। कसीदे भी लिखता था और जो थोडा बहुत सीगा बन्धा हुआ था, वह भी वक्तपर न मिलता था तो अपनी हालतेज़ार भी बादशाहके गोश गुज़ार करनी पडती थी—

क्यों न दरकार हो मुझे पोशिश
जिस्म रखता हूँ, है अगरचे नज़ार ॥
कुछ ख़रीदा नहीं है अबके साल ।
कुछ बनाया नहीं है अबकी बार ॥
रातको आग और दिनको धूप ।
भाड़में जाएँ ऐसे लैलोनिहार ॥
आग तापे कहाँ तलक इन्सान ।
धूप खाये कहाँ तलक जाँदार ॥

आपका बन्दा और फिरूँ नंगा ।
आपका नौकर और खाऊँ उधार ॥

तुम सलामत रहो हज़ार बरस ।
हर बरसके हों दिन पचास हज़ार ॥

मिर्ज़ाके यूँ तो बहुत-से शिष्य थे, किन्तु उन मे ख़ास-ख़ास ये थे—मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली, मुशी हरगोपाल तुफ्ता, मीर महदीहसन मजरूह, मीर कुर्बानअली सालिक, मिर्ज़ा हातिमअली महर, मिर्ज़ा ज़ियाउद्दीन खा अहमद, नैयर, नवाब अलाउद्दीन खा अलाई, नवाब शेफ्ता, मयकश, जौहर, उमरावसिह बेसब्र ।

मिर्ज़ाका विस्तृत परिचय और उनके ७० के लगभग शेर 'शेरोशायरी' मे दिये जा चुके है । अत यहाँ उनका विशेष परिचय देनेकी अपेक्षा उनके उत्तमोत्तम शेर देनेका प्रयत्न किया गया है । जो अशआर 'शेरो-शायरी' मे आ चुके है,-उन्हे यहाँ यथा सम्भव दोहराया नही गया है । विज्ञ पाठक इस सकलनमे किसी गज़लका कोई अच्छा शेर मौजूद न पाएँ तो हमारी नज़रे इन्तखाबको इलज़ाम देनेसे पहले 'शेरोशायरी' मे उद्धृत शेर देख ले ।

ढाँपा कफनने दागे अयूबे बरहनगी।
मैं वर्ना हर लिबासमें नंगे वजूद था॥

इस्लामधर्मके कथानकके अनुसार जब खुदाने मनुष्य बनाया तो उसे इतना गौरव प्रदान किया कि फरिश्तो (देवताओ) से उसे सजदा (साष्टाग प्रणाम्) कराया, और जिस एक फरिश्तेने सजदा करनेसे इनकार किया, उसे जन्नतसे निकाल दिया। स्वर्गके देवता मनुष्यकी उपासना करे, इससे अधिक उसका सम्मान क्या हो सकता है। उससे आशा थी कि वह अपने गौरवके अनुकूल मनष्यताके कार्य करेगा और अपने इस सन्मान-को अक्षुण्ण बनाये रखेगा, किन्तु मनुष्य ससारमे आकर मनुष्य न रहा। उसने ऐसे-ऐसे कार्य्य किये कि उसे स्वय शर्म आने लगी। वह पृथ्वीके लिए भार हो उठा[1]। इसी तथ्यको गालिब स्वयपर घटाते हुए फर्माते है—मेरे अवगुणोकी नग्नता (दागे अयूबे बिरहनगी) मृत्युने ढक ली, वर्ना मैं तो हर प्रकारसे नग (बदनाम) हो चुका था।

इश्क़से तबियतने जीस्तका मज़ा पाया।
दर्दकी दवा पाई, दर्द बेदवा पाया॥

प्रेमरहित जीवन निरर्थक है[2]। प्रेम ही मनुष्यमे जीवन डालता है। गालिब फर्माते है—इश्ककी वजहसे ही हमको जीस्त (ज़िन्दगी) का मज़ा आया। बगैर इश्क तो यह ज़िन्दगी, दर्द (दूभर) थी। इश्क इस

---

[1] इसी मज़मूनका यह शेर 'मानूस' सहसरामीका क्या खूब है—

वोह ज़िन्दगी कि जिसपै फरिश्तोको नाज़ था।
आलूदये गुनाह किये जा रहा हूँ मैं॥

[2] **जा घट प्रेम न सचरे सो घट जान मसान।**
जैसे खाल लुहारकी, साँस लेत बिन प्रान॥

—कबीर

दर्द की दवा बन गया। लेकिन मलाल इतना ही है कि इश्क की कोई दवा नही। यह खुद एक असाध्य रोग है।

सादगी ओ पुरकारी बेखुदी ओ हुशयारी।
हुस्नको तगाफुलमें जुरअत आजमा पाया

हुस्न (सौन्दर्य्य) अपनी बेरुखी और तगाफुल (बेपरवाही, उपेक्षा) से हमारे हौसले और जुरअत (धैर्य और साहस) की आजमाइश कर रहा है। वह जाहिरामे सादा और भोला दिखाई देता है। मगर उसकी यही सादगी हमारे लिए पुरकारी (ऐयारी) और बेखुदी (भोलापन) हुश्यारी है। यानी उसकी इस सादगी और भोलेपनने ही तो हमारा सर्वस्व छीन लिया है।

दिल मेरा सोजेनिहाँसे बेमुहाबा[1] जल गया।
आतिशे खामोशकी मानिन्द गोया जल गया॥

सोजे निहाँ (मुहब्बतकी छुपी हुई आग) से मेरा दिल जलकर खाक हो गया। यह आग अन्दर ही अन्दर ऐसी सुलगती रही कि आतिशे खामोश (ऊपलेकी आग) की तरह उसने सब कुछ जला दिया।

मै हूँ और अफसुर्दगीकी आरजू 'गालिब' कि दिल।
देखकर तर्जेतपाके अहले दुनिया जल गया॥

दुनियाकी बेवफाई और बर्तावसे मै इतना तग आ गया हूँ कि अब अपने दिलको अफसुर्दा (बुझा हुआ, कुम्हलाया हुआ) ही रखना चाहता हूँ।

अहबाब चारासाजीए वहशत न कर सके।
जिन्दांमें भी खयाल बयाबाँ नवर्द था॥

---

[1]बेरहमीसे

प्रेम-रोगका इलाज किसीसे न हुआ है न होगा। इष्ट मित्रो (अह-बाब) ने प्रेमोन्मादका इलाज करने (चारासाजीए वहशत) के लिए मुझे कैद (जिन्दाँ) मे डाल दिया, मगर वहाँ भी मुझे जगलोकी खाक छाननेका खयाल बना रहा। पैरोमे बेडी रही, लेकिन खयाल पहलेकी तरह आवारा (बयाबाँ नवर्द) ही रहा।

यह लाशे बेकफन 'असदे' खस्ताजाँकी है।
हक मग़फ़रत करे अजब आजाद मर्द था॥*

दीन-हीन फटेहाल (खस्ताजा) असद (कवि के 'गालिब' और 'असद' दो उपनाम थे) को खुदा बख्शे। बडा निर्भीक (आजाद) आदमी था। यह बेकफन लाश उसीकी मालूम होती है। जीवनमे सचय करना उसे न आया। यहाँ तक कि कफनतकको घरमे कुछ न निकला।

दहरमें नक़्शेवफा वजहे तसल्ली न हुआ।
है यह वोह लफ्ज कि शर्मिन्दये मा।नी न हुआ॥

ससार (दहर) मे कोई वफादार नही। वफा सिर्फ शब्दकोषमे लिखा हुआ है। यह ऐसा बेशर्म शब्द है कि यह कभी सार्थक होकर न दिया। निरर्थक ही रहा।

हूँ तेरे वादा न करने मे भी राजी कि कभा।
गोश[1] मिन्नत कशे गुलबागे तसल्ली[2] न हुआ॥

तूने वादा न किया, इससे भी मुझे खुशी है। मेरे कानोको कमसे कम

---

*मृत्युसे चन्द मिनिट पहले जौकने यह कहा था—

कहते है आज 'जौक़' जहाँसे गुजर गया।
हक़ मग़फ़रत करे अजब आजाद मर्द था॥

[1]कान, [2]सन्तोष जनक शब्दोका अनुगृहीत।

न्तोषजनक शब्दो का अनुगृहीत तो न होना पडा, और इस एहसान-के बोझसे तो बच गये।

किससे महरूमिएक़िसमतकी[1] शिकायत कीजे।
हमने चाहा था कि मर जाएँ सो वह भी न हुआ॥

मैंने चाहा था कि अन्दोहेवफासे[2] छूटूँ।
वोह सितमगर मेरे मरनेपै भी राजी न हुआ॥

× × ×

सताइश गर है ज़ाहिद! इस कदर जिस बागेरिज़वाँका।
वोह इकगुलदस्ता है हम बेख़ुदोंके ताके निसयाँका॥

ऐ जाहिद! जिस बागेरिजवाँ (स्वर्गउद्यान) की तू इतनी सताइश (प्रशसा) करता है, वह तो हम बेखुदो (भुलक्कडो) के ताकेनिसियाँ (वोह आला जिसमे कोई चीज रखकर भूल जाएँ) का एक गुलदस्ता है। इससे अधिक कुछ नही। यानी हमे तो वह कभी याद भी नही आता।

मेरी तामीरमें मुज़मिर है इक सूरत ख़राबीकी।
हयूला बर्के ख़िरमनका है ख़ूनेगर्म दहक़ाँका॥

मेरे निर्माण (तामीर) मे ही मेरे विनाशके तत्व निहित (खराबी की सूरत मुज़मिर) है। किसान (दहकाँ) के घोर परिश्रम (खूने गर्म) मे ही बिजलीके वे तत्व (हयूला) समाये हुए है जो उसके अनाजके ढेर (खिरमन) को जला देते है। तात्पर्य्य यह है कि हमारी समृद्धि और सुखके सामानोमे ही हमारे विनाशके तत्व छिपे हुए है।*

---

[1]भाग्यहीनताकी, [2]वफा निभानेके सकटसे,

*असगर गोण्डवीने इसी मजबून को इस प्रकार अदा किया है—

नाम्ये पुरदर्द छेड़ा मैंने इस अन्दाज़से।
ख़ुद-ब-ख़ुद पडने लगी मुझपर नज़र सैयादकी॥

मुहब्बत थी चमनसे लेकिन अब ये बेदिमाग़ी है।
कि मौजेबूएगुलसे[1] नाकमें आता है दम मेरा॥

× × ×

सरापा रहने इश्क़ो ना गुज़ीरे उल्फ़ते हस्ती।
इबादत बर्क़की करता हूँ और अफसोस हासिलका॥

मैं भी कैसा विचित्र हूँ। एक तरफ तो इश्कको अपना सर्वस्व दिया हुआ (सरापा रहने इश्के) है, जिसके कारण मर जाना अवश्यम्भावी है, दूसरी तरफ जीवनका मोह भी मुझसे नही छूटता है (ना गुजीरे उल्फते हस्ती)। भला बताओ, यह दोनो बातें कैसे निभेगी। यह तो वैसा ही है, जैसे एक तरफ बिजली (बर्क) को पूजूँ और जब बिजली खेत (हासिल) को जला दे तो उस हानि पर अफसोस करूँ।

आज क्यों परवा नहीं अपने असीरोंकी[2] तुझे।
कल तलक तेरा ही दिल महरोवफ़ाका बाब था॥

प्रेम-बन्दियो की अब तुझे परवाह क्यो नही है। पहले तो तेरा दिल कृपा और स्नेहसे परिपूर्ण था।

बस कि दुश्वार है हर कामका आसाँ होना।
आदमीको भी मयस्सर नहीं इन्साँ होना॥

दुनियामे आसान-से-आसान काम भी दुश्वार है। यूँ तो हर आदमी इन्सान है। मगर जब तक वह इन्सानी फराइज़ (मनुष्य कर्तव्य) अदा नही करता, उसे इन्सानियत मयस्सर नही हो सकती।†

---

[1]फूलो की सुगन्ध से, [2]कैदियो की, प्रेम-पाश मे बँधे हुओ की।

† हालीने इसी भाव को यूँ व्यक्त किया है—

फरिश्तेसे बहतर है इनसान बनना।
मगर इसमें पड़ती है महनत जियादा॥

वह यथार्थ मे इसान नही कहला सकता, और यह कितनी मुश्किल बात है। यथार्थवादमे यह शेर गालिबके श्रेष्ठतम शेरोमे से है।

वाये दीवानगियेशौक़[1] कि हरदम मुझको।
आप जाना उधर[2] और आप ही परेशाँ होना ।।*

हैफ़[3] उस चार गिरह कपड़ेकी क़िस्मत 'ग़ालिब' !
जिसकी क़िस्मतमें हो आशिकका गिरेबाँ होना ।।

× × ×

दोस्त ग़मख़्वारीमें मेरी सई फरमाएँगे क्या ?
ज़ख्मके भरने तलक नाख़ुन न बढ़ जाएँगे क्या ।।

मित्र मेरा क्या दु ख बँटा सकते है। वह चाहे जितना इलाज कर ले, और मेरे जख्मो पर मरहम पट्टी कर ले, पर जब तक जख्म भरेगे, मेरे नाखून भी फिर से बढ जाएँगे, और मै नाखूनोसे जख्मोको फिर नोच लूँगा।

बेनियाज़ी हदसे गुज़री, बन्दापरवर ! कबतलक
हम कहेंगे हालेदिल, और आप फ़रमाएँगे "क्या"? ।।

---

[1]प्रेम का पागलपन, अर्थात् प्रेयसीकी गलीमे, [2]अफसोस।

*इसी आशयका एक और शेर है --

रोज़ कहता हूँ न जाऊँगा कभी घर उनके।
रोज़ उस कूचेमें एक काम निकल आता है ।।

[3]जिगरने प्रेमरोगीकी इस अवस्था को अपने ढग से व्यक्त किया है--

कूए जानाँकी हवा तकसे भी थर्राता हूँ मै।
क्या करूँ, बेअख़्तियाराना चला जाता हूँ मै ।।

निज़ाम रामपुरी इसी बेबसी को यूँ जाहिर करते है--

अहद किया था अभी कैसा 'निज़ाम' !
फिर वहीं जानेका इरादा किया !!

बन्दापरवर ! आपकी बेनियाज़ी (बेपरवाही) हदसे गुजर चुकी है। हम अपना बार-बार हाल बयान करते है और आप अनसुनी करते हुए यही फर्माते है कि "क्या कहा, क्या कहा ?" यूँ कबतक हालेदिल बयान किया जा सकेगा ?

हज़रतेनासेह गर आएँ दीदओ दिल फर्शेराह।
कोई मुझको यह तो समझा दो कि समझाएँगे क्या ॥

हमारे प्रेमोन्मादका समाचार सुनकर उपदेशक महाराज (नासेह) आना चाहते है। आएँ और बडी प्रसन्नतासे हमारे सर आँखो पर (दीद ओ दिल फर्शे राह) आएँ, परन्तु कोई मुझे यह तो बताये कि वे मुझे क्या समझाएँगे। इस रोगका रोगी किसीके समझाएसे अच्छा हुआ है क्या ?

गर किया नासेहने हमको क़ैद, अच्छा यूँ सही।
यह जुनूनेइश्क़के[1] अन्दाज़[2] छुट जाएँगे क्या ?

यह न थी हमारी क़िस्मत जो विसालेयार होता।
अगर और जीते रहते, यही इन्तज़ार होता ॥

तेरे वादेपै जिए हम तो यह जान झूट, जानाँ।
कि ख़ुशीसे मर न जाते अगर एतबार होता ॥

यह कहाँकी दोस्ती है कि बने है दोस्त नासेह।
कोई चारासाज़ होता, कोई ग़मगुसार होता ॥

उपदेश देनेवाले तो ससारमे सभी होते है। मित्रोसे मनुष्य सहानुभूतिकी आशा रखता है। मित्र भी उपदेशक बन जाएँ तो काहेके मित्र हुए ? मित्रको तो चाहिए कि दुखका इलाज करनेवाला (चारा साज) हो, गमको दूर (गमगुसार) करे।

---

[1]प्रेमोन्माद के, [2]ढग।

ग़म अगर्चे जाँ गुसल है, पै कहाँ बचें कि दिल है।
ग़मेइश्क़ गर न होता ग़मेरोज़गार होता॥

यह दिल तो गम उठानेके लिए ही बना है। यह माना कि गमे इश्क जान लेनेवाला (जागुसल) है। परन्तु गमेइश्क न होता तो सान्सारिक झगडोका गम होता। यह शेर गालिबके नश्तरो मे से है।

हविसको है निशातेकार क्या-क्या ?
न हो मरना तो जीनेका मज़ा क्या॥

ससार मे तृष्णाओ (हविस) को काम करनेकी उमग (निशातेकार) कितनी ज्यादा है, और यह इसलिए है कि जल्दी ही मर जाना है, जो तृष्णा पूरी हो सके कर लो। मरने का भय न होता तो मनुष्य सचेष्ट न होता और जीवनका आनन्द ही जाता रहता।

निगाहे बेमुहाबा चाहता हूँ।
तग़ाफुल हाय तमकीं आज़मा क्या ?

मै आपकी बेतकल्लुफ और मुहब्बत भरी निगाह (निगाहे बेमुहाबा) चाहता हूँ। आपने मेरे सब्र और इस्तकलाल आजमाने (तमकी आजमा) के लिए यह बेरुखी (तगाफुल) क्यो अख्तयार की हुई है ?

फ़रोग़े शोलये ख़स यक नफ़स है।
हविसको पासे नामूसे वफ़ा क्या॥

हविसकार (कामुक) को मुहब्बतकी इज्ज़तका पास नही हो सकता। फरोगे शोलये खस (घास की आगका भडकाव) यक नफस (एक पल) के लिए होता है। इसी तरह कामुकका प्रेम टिकाऊ नही होता।

दिले हर क़तरा है साज़े अनल बहर[1]।
हम उसके हैं, हमारा पूछना क्या॥

---

[1] "मै समन्दर हूँ" की धुन।

हर कतरा अपने आपको समन्दरका अश समझता है और "मै समन्दर हूँ" इस बात की रट लगाता है, फिर हमारी महत्ताका तो क्या कहना, हम तो ईश्वरके खासुलखास हुए। तसव्वुफका शेर है।

सीनेका दाग है, वोह नाला कि लबतक न गया।
खाकका रिज्क़ है वोह कतरा कि दरिया न हुआ॥

जो नाला दिल ही मे घुटकर रह गया, उसका अजाम यह हुआ कि वह सीनेका दाग बन गया। जो कतरा दरियामे आकर नही मिला, वह मिट्टी मे मिलकर मिट गया। अर्थात् जो प्रयत्न पूरा न हो, वह बिल्कुल ही व्यर्थ है।

कतरेमें दजला[1] दिखाई न दे और जुज़में[2] कुल।
खेल बच्चोंका हुआ, दीदएबीना[3] न हुआ॥

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक अशमे ईश्वरका रूप दिखाई न दे तो यह आँखका कुसूर है।

थी खबर गर्म कि ग़ालिबके उड़ेंगे पुर्ज़े।
देखने हम भी गये थे, पै तमाशा न हुआ॥

× × ×

दिलको हम सर्फेवफा समझे थे, क्या मालूम था?
यानी यह पहले ही नज़रेइम्तहाँ हो जायगा॥

हम तो समझते थे कि दिल हमेशा हमारा साथ देगा। वफा निभानेमे हमारे काम आयेगा। यह मालूम न था कि इम्तहानके मौके पर उसका पहले ही खात्मा हो जायगा।

बागमें मुझको न ले जा वर्ना मेरे हालपर।
हर गुलेतर एक चश्मेखूँफ़िशाँ[4] हो जायगा॥

---

[1]एक बडे दरिया का नाम, भागमे, अशमे, [3]देखनेवाली आँख, [4]खून बरसानेवाली आँख।

मेरी हालत इतनी दर्दीली और खस्ता है कि मुझे देखकर फूल भी खून के आँसू रोते है। इसलिए मुझे बाग मे ले जानेकी जिद न करो।

वायें[1] गर तेरा-मेरा इन्साफ महशरमें न हो।
अबतलक तो यह तवक़्क़ोह[2] थी कि वाँ हो जायगा॥

फ़ायदा क्या? सोच आख़िर, तू भी है दाना[3] 'असद' !
दोस्ती नादाँकी है, जीका ज़ियाँ[4] हो जायगा॥

× × ×

दर्द मिन्नतकशेदवा[5] न हुआ।
मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ॥

किसीका अहसान सर पर लादना बहुत तकलीफदेह होता है। मेरा दर्द ला इलाज था। दवाने असर न किया तो इससे यह फायदा हुआ कि रोग दवाके अहसान उठानेसे बच गया। मै अच्छा (तन्दुरुस्त) न हुआ तो न सही, मगर अहसानके बोझसे बच गया यही क्या कम है।*

जमा करते हो क्यो रकीबोंको।
इक तमाशा हुआ, गिला न हुआ॥

मै जब अपना दुखडा रोता हूँ तो रकीबोको क्यो बुलाते हो कि आओ तुम भी सुन लो। यानी मै गिला (शिकायत) कर रहा हूँ और आपने इसे मनोरजन समझ लिया है।

---

[1]अफसोस, [2]आशा, [3]बुद्धिमान, [4]नुकसान, [5]दवाका आभारी,

***जिसने कुछ अहसाँ किया इक बोझ सरपर रख दिया।**
सरसे तिनका क्या उतारा सरपै छप्पर रख दिया॥

——अज्ञात

हम कहाँ क़िस्मत आज़माने[1] जाएँ ।
तू ही जब ख़ंजरआज़मा न हुआ ।।

तेरे ही हाथो हमारी मुक्ति नही हो सकती तो फिर और कहाँ हो सकती है ।

है ख़बर गर्म उनके आनेकी ।
आज ही घरमें बोरिया न हुआ ।।

किसी सम्भ्रान्त अतिथिके आनेका समाचार पाकर एक स्वाभिमानी दरिद्रकी कैसी दयनीय मनोदशा होती है, यही भाव इस शेरमे दर्शाया है ।

जान दी, दी हुई उसीकी थी ।
हक़ तो यह है कि हक़ अदा न हुआ ।।

हमने ससारमे आकर ईश्वरके प्रति अपना कर्त्तव्य कहाँ निभाया ? ईश्वर के नाम पर मर जानेमे भी तो वह कर्त्तव्य पूरा नही हो सकता । क्योकि जान तो हमे ईश्वरने प्रदान की थी, मर कर उसे ही वापिस सौप दी, इस मे अपनी तरफ से क्या किया । सच्ची (हक) बात तो यह है कि हम कर्तव्य (हक) पूरा न कर सके ।

एतबारे इश्क़की ख़ानाख़राबी[3] देखना ।
ग़ैरने की आह, लेकिन वोह ख़फा मुझपर हुआ ।।

मेरे इश्कका उसे इस कदर यकीन और एतबार है कि गैर भी आहो फरियाद करे तो वह मुझी पर खफा होता है ।

न था कुछ तो ख़ुदा था, कुछ न होता तो ख़ुदा होता ।
डुबोया मुझको होनेने, न होता मैं तो क्या होता ।।

---

[1]भाग्य परखने, [2]खजर चलानेको उद्यत, [3]अर्थात् मुसीबत ।

ससारमे आनेसे पहले मै ईश्वरका अग था। ससारमे न आता, तो ईश्वरका अग ही बना रहता। मनुष्य बननेसे मेरी मिट्टी खराब हुई। मनुष्य न बना होता तो क्या से क्या, अर्थात् साक्षात् ईश्वर होता। इस शेरमे वेदान्तका सारा फलसफा समाया हुआ है।

हुई मुद्दत कि 'ग़ालिब' मर गया पर याद आता है।
वह हर इक बातपर कहना कि 'यूँ होता तो क्या होता'॥

× × ×

ज़िन्दगी यूँ भी गुज़र ही जाती।
क्यों तेरा राहगुज़र याद आया॥*

---

* **इक राहे मुस्तक़ीम पै थी गामज़न हयात।**
मुड़ने लगे तो उनसे मुलाक़ात हो गई॥

यह शेर खुर्शीद फरीदाबादीका है जो हमारे अनन्य मित्रो मे से थे। अफसोस कि वह भी देश विभाजनकी आहुति पर बलिदान हो गये और रावलपिडी चले गये। यहाँ उनकी एक गजल देनेके लोभको हम सवरण नही कर पा रहे है और इस तरह हम उन सुखद दिनोकी याद ताज़ा कर रहे है, जब सुमत साहबकी कोठी पर उनके अशआर झूम-झूमके सुना करते थे।

इस क़दर मायूस फ़ितरत हो गई तेरे बग़ैर।
रंजसे बदली हुई है हर ख़ुशी तेरे बग़ैर॥

बादयेरंगींकी लज्ज़त ज़हर थी तेरे बग़ैर।
तेरी आँखोकी क़सम हमने न पी तेरे बग़ैर॥

सुबहेगुलशन है शबेअफ़सुर्दगी तेरे बग़ैर।
लौट जाती है बहार आई हुई तेरे बग़ैर॥

प्रेम की कठिनाइयो से घबराकर कहते है कि क्यो हमे प्रेम रोग लगा। न तेरा (राहगुज़र) रास्ता याद आता, न इस प्रेममे फँसते, न यह मुसीबते सर पर आती और जीवन किसी न किसी तरह व्यतीत हो ही जाता।

अब मेरी महरूमियोपर फ़स्लेगुल है तानाज़न।
मुसकराकर छेड़ती है हर कली तेरे बग़ैर॥

कायनाते हुस्नपर तारीकियाँ छाने लगीं।
हो रहा है गुलचिराग़े आशिक़ी तेरे बग़ैर॥

तुझसे छुटकर कितना फीका पड़ गया है रंगेगुल।
हो गईं बेलेकी कलियाँ साँवली तेरे बग़ैर॥

कल जहाँका ज़र्रा-ज़र्रा तूर दर आग़ोश था।
आज इस घरमें नहीं है रोशनी तेरे बग़ैर॥

दिल नहीं झुकता है पहलेकी तरह सजदोंके साथ।
नामुकम्मिल है मज़ाक़ेबन्दगी तेरे बग़ैर॥

आफ़ताबे रोज़ेमहशर बन गया फ़ुरक़तमें चाँद।
हो गई नारेजहन्नुम चाँदनी तेरे बग़ैर॥

हर उजालेपै अँधेरेका गुमाँ होने लगा।
शामेग़म है मेरी सुबहेज़िन्दगी तेरे बग़ैर॥

हो गया तारी ख़यालोंपर जहन्नुम होशका।
छिन गई है मुझसे ख़ुल्दे बेख़ुदी तेरे बग़ैर॥

ऐ मेरी उम्मीदके चाँद इतना बतला दे मुझे।
मेरे घरमें क्यो न निकली चाँदनी तेरे बग़ैर॥

हर तमन्नाको शबेफ़ुरक़त कुचलकर रख दिया।
हमको अपने दिलसे ज़िब-सी हो गई तेरे बग़ैर॥

कोई वीरानी-सी वीरानी है।
दश्तको देखके घर याद आया॥

जगल (दश्त) भी हमारे घरकी वीरानीके सामने कुछ नही।

हुई ताख़ीर तो कुछ बाइसे ताख़ीर भी था।
आप आते थे मगर कोई अनाँगीर भी था॥

महबूब मुलाकातको तो आया मगर देर करके आया। इस देरीकी वजह कुछ न कुछ जरूर है। यह माना कि आप सीधे मेरी तरफ ही चले आ रहे थे, मगर रास्तेमे किसीने आपको रोका जरूर होगा। वर्ना इतनी देर क्यो होती? सदेह प्रकट किया है कि अवश्य आपको प्रतिद्वन्द्वीने देर करा दी है।

तुझसे बेजा है मुझे अपनी तबाहीका गिला।
इसमें कुछ शाइबए ख़ूबिये तक़दीर भी था॥

आशिक जानता है कि उसकी बरबादी माशूक ही के हाथो हुई है, लेकिन फिर भी इतना कठोर हृदय नही हो सकता कि माशूकको दोषी ठहराए। कहता है कि तुझसे अपनी बरबादीकी शिकायत (गिला) करना अनुचित है। मै तो इसका कारण (शाइबए खूबिए तकदीर) भाग्यचक्र-का प्रकोप समझता हूँ। मेरी तकदीर ही मे यह बरबादी लिखी हुई थी।*

नज़अके आलममें गुज़रा है मेरा दौरेफिराक।
मौतके दामनमें खेली ज़िन्दगी तेरे बग़ैर॥

ज़ाहिरा दुनिया जिसे महसूस कर सकती नही।
हो गई है मुझमें इक ऐसी कमी तेरे बग़ैर॥

ख़ूनेदिल टपका किया 'ख़ुर्शीद'के हर लफ़्ज़से।
हो गया रंगी मज़ाक़े शायरी तेरे बग़ैर॥

*गालिब ही का एक और शेर है·—

दरियाए मुआसी[1] तुनक आबीसे[2] हुआ खुश्क।
मेरा सरे दामन भी अभी तर न हुआ था॥

गुनाह करनेमे मेरी हिम्मत और हौसलेको देखो कि गुनाहोका दरिया अपने थोडेसे जखीरेकी वजहसे खुश्क भी हो गया और मेरे दामनका एक कोना भी नही भीग पाया।

क़ासिदको अपने हाथसे गरदन न मारिये।
उसकी खता नहीं है यह मेरा कुसूर था॥

जब माशूक कासिदसे नाराज हो गया और उसकी जान लेने पर उतारू हो गया तो इन्हे ईर्ष्या हुई कि कासिद तो हमसे भी बढ गया। माशूकके हाथोसे मरनेका सौभाग्य प्राप्त करनेके लिए झट बोल उठे कि कुसूर मेरा था, इसलिए दण्ड मुझे मिलना चाहिए। "अपने हाथसे" का टुकडा रश्कके पहलूको उजागर करता है।

आईना देख अपना-सा मुँह लेके रह गये।
साहबको दिल न देनेपै कितना गरूर था॥

प्रेयसीको इस बातपर अभिमान था कि उसने किसीको भी अपना हृदय नही दिया है, लेकिन आइना देखा तो सब गर्व नष्ट हो गया। अपनी छविको आयनेमे देखकर उस पर इतनी मुग्ध हुई कि बर्बस हृदय न्यौछावर हो गया। भाव यह है कि प्रेयसीका सौन्दर्य्य इतना

नजर लगे न कहीं उसके दस्तोबाजूको।
यह लोग क्यों मेरे जख्मेजिगरको देखते है॥

दाग कहते है .—

अजलको दोष दें, तक़दीरको रोएँ, मुझे कोसें,
मेरे क़ातिलका चर्चा क्यों है मेरे सोगवारोंमें॥

[1]गुनाहोका दरिया, [2]थोडा पानी होनेकी वजहसे।

मोहक है कि वह प्रेमीको ही नही, उसे स्वय भी न्यौछावर होनेको मजबूर करता है ।

गो मै रहा रहीनेसितमहाय रोज़गार ।
लेकिन तेरे ख़यालसे गाफिल नही रहा ।।

मै जमाने भरके सितम उठाता रहा, लेकिन उस हालतमे भी तेरी यादको नही भूला ।*

बेदादे इश्कसे नही डरता मगर 'असद' !
जिस दिलपै नाज़ था मुझे वह दिल नही रहा ।।

इश्क की मुसीबतो से तो नही घबराता लेकिन अब पहले जैसी सहनशक्ति दिल मे नही रही ।

रश्क कहता है कि उसका गैरसे इख़लास, हैफ !
अक़्ल कहती है कि वोह बेमहर किसका आश्ना ।।

अपने मन को समझाते है । गैरसे माशूकका (इखलास) मेल-जोल देखकर रश्कके कारण अफसोस होता है। मगर फिर मनको तसल्ली दते है कि वह तो प्रकृतिसे ही बेवफा है, वह किसीका मित्र नही हो सकता ।

ज़िक्र उस परीवशका, और फिर बयाँ अपना ।
बन गया रकीब आख़िर, था जो राज़दाँ अपना ।।

---

*सबा अकबराबादीका जिक्र हम आरम्भमे कर चुके है । इसी मजमूनका उनका शेर है, और पाठक इसे मित्रके प्रति पक्षपात न समझे तो हम यह कहनेकी धृष्टता करते है कि सबाका शेर गालिबके शेरसे भी ऊँचा है —

यह हमीं है कि तेरा दर्द छुपाकर दिलमें ।
काम दुनियाके बदस्तूर किये जाते है ।।

एक तो वह परी सूरत (परीवश) माशूक सौन्दर्य्यताकी खान, दूसरे अपने प्रेमके कारण हम उसका वर्णन और भी बढा चढा कर करते है। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारा परम मित्र (राजदाँ) हमारा हाल सुनते-सुनते इतना प्रभावित हुआ कि स्वयम् उस पर मोहित हो गया और हमारा प्रतिद्वन्द्वी बन गया।

घिसते-घिसते मिट जाता आपने अबस[1] बदला।
नगेसिजदासे[2] मेरे सगे आस्ताँ अपना[3] ॥

महबूबने मुझे इतना हकीर समझा कि उसके दर्वाजे पर जो मैंने सजदे किये थे, उन सिजदोके चिह्न भी रहने देना मुनासिब न समझ कर उसने दर्वाजेका पत्थर बदलवा दिया। मगर यह फिजूल ही उसने जहमत उठाई। मेरे लगातार सिजदा करते रहनेसे उसके दर्वाजेका पत्थर खुद ही किसी रोज मिट जाता। तब न सिजदेके दाग बाकी रहते, न पत्थर बदलवानेकी आवश्यकता रहती।

ता करे न गम्माजी कर लिया है दुश्मनको।
दोस्तकी शिकायतमे हमने हमजबाँ अपना ॥

हमने दुश्मन (प्रतिद्वन्द्वी) को भी माशूककी शिकायत करना सिखा दिया है। इससे हमारा मकसद यह है कि वह हमारा हम-जबान और हम-खयाल बन कर हमारी चुगली न खायेगा और जब उससे बातचीतका अवसर मिलेगा तो हमारी तरह उसकी शिकायत ही करेगा। चुगलखोरी-से वह हमे हानि न पहुँचा सकेगा।

दे वह जिस क़दर ज़िल्लत हम हँसीमें टालेंगे।
बारे आश्ना निकला, उनका पासबाँ अपना ॥

माशूकका दरबान जो बेइज्जती करता है, उसकी शर्म मिटानेकी

---

[1]व्यर्थ, [2]सिजदेके कलकसे, [3]दर्वाजेका पत्थर।

क्या खूब तरकीब निकाली है। कहते है कि वह दरबान तो हमारा पुराना दोस्त निकल आया। इसलिए उसकी गाली-गलौज तो हम हँसी-मजाक समझते है।

हम कहाँके दाना थे, किस हुनरमें यकता थे।
बेवजह हुआ 'ग़ालिब' दुशमन आसमाँ अपना॥

प्राय यह विश्वास है कि बुद्धिमानो और कलाकारो पर भाग्यका प्रकोप रहता है। कहते है कि हम न तो बुद्धिमान है, न किसी कलामे कुशल, फिर न जाने हमसे भाग्य विमुख क्यो है। किस ढगसे अपना कला-चातुर्य प्रकट कर गये है।

गिरनी थी हमपै, बर्क़ तजल्ली, न तूरपर।
देते है बादा ज़रफ़ेकदहसूवार[1] देखकर॥

यह क्या हुआ कि तजल्ली तूर पर गिर पडी, जिससे तूरका पहाड जल कर भस्म हो गया। तूरमे सहन शक्ति कहाँ थी। वह सहन-शक्ति तो हम मे है। पात्रको देख कर दान दिया जाता है। तूर पर तजल्ली-का प्रकाशमान होना कुपात्र को दान देना था।

रहमत[2] अगर क़ुबूल करे, क्या बईद[3] है।
शरमिन्दगीसे उज्र न करना गुनाहका॥

ईश्वरीय न्यायालयमे यदि मै लज्जाके कारण अपने अपराधोकी सफाई न दे सकूँ, तो सम्भव है इसी लज्जाको पापोका प्रायश्चित समझ-कर मुझे और दण्ड न दिया जाय।

जौरसे[4] बाज आये, पर बाज आएँ क्या ?
कहते है हम तुझको मुँह दिखलायें क्या॥

---

[1]शराब पीनेवालेका बर्तन, [2]ईश्वरीय कृपा;
[3]मुश्किल; [4]सितमसे, अत्याचारसे।

जाहिरा तो जुल्मोसितम करनेसे माशूकने गुरेज किया। मगर कहता है कि अब तक जो जौरो जफा किये, उसकी वजहसे मुझे मुँह दिखानेकी हिम्मत नही होती ! यह मुँह न दिखाना तो सब जुल्मोसे बढकर सितम है। इसलिए क्या खाक जुल्मोसे गुरेज़ किया है !

हो लिये क्यो नामाबरके साथ-साथ।
या रब, अपने ख़तको हम ले जाएँ क्या ॥

रातदिन गर्दिशमें है सात आसमाँ।
हो रहेगा कुछ न कुछ, घबराएँ क्या ॥

× × ×

लाग हो तो हम उसे समझें लगाव।
जब न हो कुछ भी तो धोखा खाएँ क्या।

वह हमसे नाराज हो तो भी हम अपने मनको यह कहकर बहला लें कि वास्तवमे तो वह प्रसन्न है, उनकी नाराजगीकी बाते असलमे प्यार की है। पर वह तो हमसे बात ही नही करते, फिर किस तरह मनको झूठी-सच्ची तसल्ली दे।

पूछते हैं वोह कि ग़ालिब कौन है ?
कोई बतला दो कि हम बतलाएँ क्या ॥

× × ×

इशरतेक़तरा है दरियामें फना हो जाना।
दर्दका हदसे गुज़रना है दवा हो जाना ॥

बून्द (कतरे) की सफलता इसीमे है कि वह दरियामे मिल कर दरिया बन जाये। इसी तरह दर्देइश्ककी दवा यही है कि वह हदसे गुजर जाय। यानी सीमित क्षेत्रको लाँघकर वह विश्वव्यापी हो जाय।

अब जफ़ासे भी है महरूम, हम अल्लाह ! अल्लाह !!
इस कदर दुश्मने अरबाबे वफ़ा हो जाना !!!

हाय रे भाग्य ! उपेक्षाकी भी हद हो गई। वे हम पर कभी कृपा करेंगे, इसकी तो आशा ही नही थी। जो वे जुल्मोसितम करते थे, उन्ही-को हम अपने लिए रियायते खास समझते थे। अब वे हम पर जफा करना भी अपनी हतक समझते है† ।

एक जगह और कहते है—

वा हसरता कि यारने खीचा सितमसे हाथ ।
हमको हरीसे लज्जते आज़ार देखकर ॥

अर्थात् हमे अत्याचारमे आनन्द प्राप्त करते देखकर यारने हम पर अत्याचार करना भी छोड दिया।

मुँद गईं खोलते ही खोलते आँखें 'ग़ालिब'!
यार लाये मेरी बालींपै[1] उसे, पर किस वक़्त ?*

× × ×

ऐ दिले ना आकबतअन्देश[2] ! जब्तेशौक कर ।
कौन ला सकता है ताबेजलवये दीदारे दोस्त ॥

---

†**तेरी सर्दमेहरी से अल्लाह तौबा ।**
सितम फिर सितम है, यह आफत नही है ॥
नवाब अच्छन मियाँ—'अश्क' रामपुरी

मेहरबानीको मोहब्बत नही कहते ऐ दोस्त !
आह अब मुझसे तुझे रजिशे बेजा भी नहीं ॥
—फिराक

[1]मेरे सिरहाने,

***आख़िरी शब दीदके काबिल थी बिस्मिलकी तड़प ।**
सुबहदम कोई अगर बालाए बाम आया तो क्या ?
—इक़बाल

[2]अदूरदर्शी।

जल्वये दीदारसे मूसा भी बेहोश हो गये थे, तूर भी जलकर सुर्मा हो गया था। ऐ अजाम न सोचनेवाले दिल ! उसे देखनेके शौकको मनमे ही दबा कर रख। दोस्तका जलवा देख सके इतनी ताब तुझमे कहाँ है ?

ग़ैर यूँ करता है मेरी पुरसिश[1] उसके हिज्रमें।
बेतकल्लुफ दोस्त हो जैसे कोई ग़मख़्वारे दोस्त ॥

उसके हिज्रमे गैर (प्रतिद्वन्द्वी) हमारा हाल इस तरह पूछता है—जैसे कोई वोह हमारा बेतकल्लुफ और गमख्वार दोस्त हो। मगर हम उसके दिलकी बात अच्छी तरह समझते है।

ताकि मै जानूँ कि है उसकी रसाई वाँ तलक।
मुझको देता है पयामे वादयेदीदारे दोस्त ॥

चुपके-चुपके मुझको रोते देख पाता है अगर।
हँसके करता है बयाने शोख़िये गुफ़्तारे दोस्त ॥

मेहरबानी हाय दुश्मनकी शिकायत कीजिये।
या बयाँ कीजे सपासे लज्जते आज़ारे दोस्त ॥

यह तीनो शेर कितआ बन्द है। दुश्मन मुझे माशूकके दर्शन होनेके वायदेका समाचार (पयामे वादए दीदारे दोस्त) देता है। मेरे प्रेमातुर मनको शान्ति देना उसका उद्देश्य नही है, अभीष्ट यह है कि इस समाचार देनेसे मै यह जानूँ कि उसकी माशूक तक (रसाई) पहुँच है, और इससे मुझे ईर्ष्या और दुख हो। और इसी अभिप्रायसे, जब मुझे रोते देखता है तो माशूककी चचल वार्तालाप (शोखिए गुफतार) का जिक्र करने लगता है। ताकि मेरा दिल और जले। समझ मे नही आता कि हम इस दुश्मनकी जाहिरा मेहरबानीका रोना रोएँ या माशूकके सितम करनेसे जो हमे आनन्द प्राप्त होता है, उसका वर्णन करे।

---

[1]पूछ ताछ।

ग़मसे मरता हूँ कि इतना नहीं दुनियामें कोई ।
कि करे ताज़ियते मेहरोवफ़ा मेरे बाद ।।

मरनेसे पहले इस गममे मरा जाता हूँ कि मेरे बाद दुनियामे कोई ऐसा नजर नही आता जो मुहब्बत और वफाका मातम (ताजियत) करे । मतलब यह कि मेहरोवफा भी मेरे साथ ही मर जाएँगी ।

आये है बेकसियेइश्क़पै रोना 'ग़ालिब' !
किसके घर जायेगा सैलाबेबला मेरे बाद ।।

मेरे मरनेके बाद यह मुसीबतोका तूफान, जिसे इश्क कहते है, कहाँ जायगा ? अर्थात् कोई इसे निभा न सकेगा, अत इश्ककी इस दयनीय अवस्थापर मुझे रोना आता है । अपनी चिन्ता नही है, जिस मुसीबतको गलेका हार बनाया हुआ है, उसीका सोच करके घुल रहे है ।

जीमें ही कुछ नहीं है हमारे वगर्ना हम ।
सर जाय या रहे, न रहें, पर कहे बग़ैर ।।

× × ×

मक़सद[1] है नाज़ोग़मज़ा वले[2] गुफ़्तगूमें काम ।
चलता नहीं है दश्नओख़ंजर[3] कहे बग़ैर ।।

हरचन्द हो मुशाहदए हक़्क़की गुफ़्तगू ।
बनती नहीं है बादओसाग़र कहे बग़ैर ।।

भाषामे उपमाओसे काम लेना ही पडता है । कभी माशूककी अदा और नखरे (नाजो गमजा) का दिग्दर्शन कराना हो तो उनकी उपमा छुरी और तलवारसे देनी पडती है । और ईश्वरीय चर्चा (मुशाहदए हक) भी हो तब भी उपमाके लिए शराब और सुराही (बादओ सागिर) जैसे शब्दो का प्रयोग अनिवार्य है ।

---

[1]अभिप्राय, [2]परन्तु, [3]छुरी और तलवार ।

न लड़ नासहसे 'ग़ालिब' ! क्या हुआ गर उसने शिद्दत[1] की ।
हमारा भी तो आख़िर ज़ोर चलता है गिरेबाँपर ।।

उपदेशकको ज़्यादती करनेसे नही रोक सकते तो कमसे कम अपने कपडे तो फाड़ सकते है । इसीसे हमारे दिलकी भडास निकल जायगी ।

फ़लकसे हमको ऐशेरफ्ताका[2] क्या-क्या तक़ाज़ा है ।
मताएबुर्दा[3]को समझे हुए है क़र्ज़ रहजन[4]पर ।।

हमारी सादगी भी कमाल की है । आसमान जिसने हमारे सुख चैनको लूटा है, उसीसे हम यह आशा कर रहे है कि वह फिर हमे सुख चैनके दिन दिखाएगा । जैसे कोई डाकूसे यह उम्मीद करे कि वह चोरी किए हुए मालको कर्जकी तरह लौटा देगा । कितनी निर्मूल आशा है ।

है बस कि हरइक उनके इशारेमें निशाँ और ।
करते है मुहब्बत तो गुज़रता है गुमाँ और ।।

चूँकि उनके हर नाजमे जिद्दत होती है और हर इशारेमे नया मतलब होता है । इसलिए वे हमसे मुहब्बत भी करते है तो कुछ और ही खयाल गुज़रता है और बदगुमानी-सी पैदा हो जाती है । अन्तरगमे यह सकेत भी है कि अपना ऐसा भाग्य कहाँ कि वह हमसे प्रेम करे ।

यारब ! वोह न समझे है न समझेंगे मेरी बात ।
दे और दिल उनको, जो न दे मुझको ज़बाँ और ।।

हे ईश्वर, देखती आँखो तो उन पर मेरी बातका कुछ प्रभाव नही हो रहा है । अब यही उपाय हो सकता है कि या तो हमे भी इस ढगसे कहना सिखा दे कि उनका दिल पसीजे, या उनका ही दिल बदल दे कि वह मेरी बात सुन और समझ सके ।

---

[1]ज़्यादती, [2]सुखके बीते हुए दिनोका, [3]चोरी किया हुआ माल, [4]डाकूपर ।

जाते हुए कहते हो "क़यामतको मिलेंगे"।
क्या ख़ूब, कयामतका है गोया कोई दिन और ॥

तुम जो जा रहे हो तो मेरे लिए तो अभी कयामत आ गई। इस लिए कयामतके दिन जो मिलना है, तो अभी मिल लो, और न जाओ। माशूकको ठहरानेके लिए क्या तर्क निकाला है।

न गुलेनग़मा[1] हूँ न परदयेसाज़[2]।
मैं हूँ अपनी शकिस्तकी[3] आवाज़ ॥

न मेरा अस्तित्व गीत सदृश्य है, न ही मेरे अन्दर कोई राग छुपा हुआ है, मै तो एक टूटा हुआ दिल लिये बैठा हूँ। तार टूटनेकी आवाज तो है, पर गीत न मेरे अन्दर है न बाहर।

हूँ गिरफ़्तारे उलफते सैयाद!
वर्ना बाकी है ताक़ते परवाज़§ ॥

कैद करने वालेसे इतना प्यार है कि कैदसे आजाद नही होना चाहते, यह बात नही है कि हममे उड कर भाग जानेकी शक्ति (ताकते परवाज) नही है।

मुझको पूछा तो कुछ गज़ब न हुआ।
मैं ग़रीब और तू गरीबनवाज़ ॥

मर गया फोड़के सर 'गालिबे' वहशी है-है[4]।
बैठना उसका वोह आकर तेरी दीवारके पास ॥

---

[1]गीतोका फूल, [2]वाद्यका परदा (जिसमे वाद्य निहित होता है), [3]टूटे हुए दिलकी, [4]हाय, हाय,

§ **पास था नाकामिए सय्यादका ऐ हम सफीर!**
वरना मैं, और उड़के जाऊँ एक दानेके लिए?

—इक़बाल

गर तुझको है यकीने अजाबत[1] दुआ न माँग ।
यानी बगैर यकदिले बेमुद्दआ न माँग ।।

अगर तुझको दुआके कुबूल होनेका यकीन है तो ऐसा दिल माग, जिसमे कोई ख्वाहिश न हो। बेमुद्दआ दिल है तो फिर किसीसे दुआ माँगने-की जरूरत नही । ऐसा दिल पा लेना ही गोया सब कुछ मिल जाना है ।

जोफसे है, नै क़नाअतसे यह तर्केजुस्तजू ।
है वबाले तकियागाहे हिम्मते मर्दाना हम ।।

लोग हिम्मते मर्दानाको जिन्दगीका सहारा (तकिया) समझते है । मगर अब हमसे यह भी तग आ गई है । इसी हिम्मतेमर्दानाके सहारे हम अपने दोस्तकी तलाशमे इतने घूमे-फिरे कि मारे कमजोरी (जोफ) के अब हिला नही जाता । हम अपने दोस्तकी तलाश जोफकी वजहसे नही कर सकते । इससे कोई यह न समझे कि हमने निराश हो कर सन्तोष (कनाअत) कर लिया है । नही, खोज करनेकी उमग ज्योकी त्यो बनी हुई है, वही लालसा और चाहत है, परन्तु निर्बलता एक पग नही सरकने देती ।

मुझको दयारेगैरमें मारा वतनसे दूर ।
रखली मेरे खुदाने मेरी बेकसीकी शर्म ।।

परदेशमे मरना हर आदमीको नागवार गुजरता है । मगर मरने-वाला खुदाका शुक्र इसलिए कर रहा है कि परदेशमे बेकफन और बे कब्र पडे रहे तो भी कुछ बुरा नही मालूम दिया, क्योकि उसके व्यक्तित्वसे कोई परिचित न था । परतु देशमे जहाँ परिचित तो अनेक, पर हितैषी एक भी नही, वहाँ इस तरह मरना बहुत लज्जाजनक होता । यूँ तो जीवन-मे न जाने कितनी बार मनुष्यका अपमान होता है, परन्तु परिचित खड़े

---

[1]स्वीकृतिका विश्वास ।

देखते रहे और उनके समक्ष अपमान होता रहे, यह अत्यन्त कष्टदायक और ग्लानिकारक होता है। अत परमात्माका धन्यवाद है कि उसने परदेशमे प्राण लेकर बेकसी और मजबूरियोकी शर्म रख ली।

इसी मज़मूनको गालिबने कई तरहसे बाँधा है —

हुए हम जो मरके रुसवा हुए क्यों न ग़र्क़ेदरिया।
न कभी जनाज़ा उठता, न कहीं मज़ार होता॥

अथवा

करते किस मुंहसे हो गुरबतकी शिकायत 'गालिब' !
तुमको बेमहरिए यारानेवतन याद नहीं ?

× × ×

थी वोह इक शख्सके तसव्वुरसे।
अब वोह रानाइयेख़याल कहाँ ?

जब प्रेम करते थे तो प्रेयसीके चिन्तनमे तल्लीन रहते थे और अनेक रगीन विचार मस्तिष्कमे आते थे। अब न प्रेम, न प्रेयसी, तो विचारोमे रगीनी (रानाइए खयाल) कहाँसे आवे। जीवनका सोता ही सूख गया है।

फिक्रेदुनियामें सर खपाता हूँ।
मै कहाँ, और यह वबाल कहाँ ?

सचमुच, एक साहित्यिक अथवा कविके लिए आटे-दालकी चिन्ता हृदयविदारक आडम्बर है।

आज हम अपनी परेशानियेख़ातिर[1] उनसे।
कहने जाते तो है, पर देखिये क्या कहते है*॥

---

[1]मनोवेदना,

*इस विषयके चन्द अशआर दिये जाते है —

पानीसे सगगज़ीदा डरे जिस तरह 'असद' !
डरता हूँ आईनेसे कि मर्दुमगज़ीदा हूँ ॥

जिस तरह पागल कुत्ते (सगगज़ीदा) का काटा हुआ पानीसे डरता है, उसी तरह मै आईनेसे डरता हूँ, क्योकि मैं (मर्दुम गज़ीदा) आदमी-का काटा हुआ हूँ। औरोसे तो क्या, अपने प्रतिबिम्ब तकसे घब-राता हूँ।

कर्ज़की पीते थे मय, लेकिन समझते थे कि हाँ।
रंग लायेगी हमारी फाकामस्ती एक दिन ॥

कहते है कि यूँ कहते, यूँ कहते, जो आ जाता।
सब कहनेकी बातें है, कुछ भी न कहा जाता ॥

—मीर

जब पुरसिशे हाल वह करते है, क्या जानिये क्या हो जाता है।
कुछ यूँ ही ज़बान नहीं खुलती, कुछ दर्द सिवा हो जाता है ॥

—फ़ानी

कुछ इस अदासे आपने पूछा मेरा मिज़ाज।
कहना ही पड़ा' 'शुक्र है परवरदिगारका' ॥

—अज्ञात्

पुरसिशेग़मका शुक्रिया, क्या तुझे आगही नहीं।
तेरे बग़ैर ज़िन्दगी, दर्द है ज़िन्दगी नहीं ॥

—एहसान दानिश

शुक्रिया पुरसिशे अहवालका, इसरार न कर।
पूछनेवाले, कहीं तेरा ही यह राज न हो ॥

—अज्ञात्

नग़माहायेगमको[1] भी ऐ दिल ! गनीमत जानिये ।
बेसदा[2] हो जायगा यह साज़ेहस्ती[3] एक दिन ॥

कैसा कठोर सत्य इस शेरमे भर दिया है । एक दिन प्राणका पछी उड जायगा, और न दुख शेष रहेगा, न सुख । जब सुख भाग्यमे नही है तो दुख का अत होने का अर्थ है जीवनका समाप्त हो जाना । इसलिए दुखको ही गनीमत जानो कि वह जीवनका द्योतक तो है ।

किस मुँहसे शुक्र कीजिये उस लुत्फ़ेख़ासका[4] ।
पुरसिश[5] है और पाएसुख़न[6] दरमियाँ नही ॥

आँखो ही आँखोमे बिना किसी प्रकारका वार्तालाप किये मेरे मन-की बात और मेरा हाल पूछ रहे है । उनके इस अनुग्रहका किस प्रकार धन्यवाद करूँ ?

जब करम रुख़सते बेबाकी-ओ-गुस्ताख़ी दे ।
कोई तकसीर बजुज़ ख़िजलते तकसीर नहीं ॥

जब तू स्वयम् इतना रहमदिल और दयालु है कि हमारे सारे गुनाह माफ कर देगा, और तू स्वयम् अनुमति देता है कि हम निडर और गुस्ताख बन बैठे तो अपने गुनाहोपर शर्मिन्दा (खिजल) हो, इस अपराध (तकसीर) से बडा अपराध और क्या हो सकता है ? अर्थात् और सारे अपराध तो तू क्षमा कर देगा, लेकिन अपराधोसे लज्जित होना

---

[1]रुदनरूपी सगीतको,
[2]बेआवाज,
[3]जीवन रूपी वाद्य,
[4]विशेष अनुग्रहका,
[5]पूछ ताछ,
[6]वार्तालाप ।

एक ऐसा अपराध है जिसे तू भी क्षमा न करेगा, क्योकि इससे तेरी क्षमाशक्तिके प्रति अविश्वास झलकता है*।

जहाँ तेरा नक़्शेकदम देखते हैं।
ख़याबाँ-ख़याबाँ[1] अरम[2] देखते हैं॥

जिस जगह तेरे कदमोके निशान होते है वहाँ बहिश्तके बागका दृश्य दिखाई देता है।

बनाकर फकीरोका हम भेस 'गालिब'!
तमाशाए अहले करम[3] देखते हैं॥

× × ×

ता फिर न इन्तज़ारमें नीद आये उम्रभर।
आनेका वादा कर गये आये जो ख़्वाबमें॥

माशूक स्वप्नमे आ कर कह गया कि तू निराश मत हो, मै अवश्य आ कर तुझे मिलूगा। अब उसकी इन्तजार करनी पड गई और इन्तजारमे सो भी नही सकते। यानी घडी दो घडीको आँख लगनेसे जो शान्ति मिलती थी वह भी लोप हो गई।

मुझतक कब उनकी बज़्ममें आता था दौरेजाम[4]॥
साकीने कुछ मिला न दिया हो शराबमे॥

और लोग शराब पीते रहते थे, हम उनको पीते देखते थे और अपने भाग्यको कोसते थे। आज हमारे पीनेके लिए जो प्याला आया तो सन्देह होता है कि कही शराबमे जहर तो नही मिला दिया। वरना साकीसे

***फ़रिश्ते हश्रमें पूछेंगे पाकबाज़ोसे।**
गुनाह क्यों न किये, क्या ख़ुदा ग़फ़ूर न था॥

—अज्ञात

[1]बाग, [2]बहिश्त, [3]दानियोका तमाशा, [4]शराबका दौर।

यह आशा कहाँ कि हमे शराब पिलाए। ज़हरकी जगह "कुछ" लिखनेमे शेर चमक उठा है।

मै और हज्जेवस्ल[1] खुदासाज़[2] बात है।
जाँ नज्र देनी भूल गया इज्तराबमें[3] ॥

मै इस हैरतमे रहा कि कहाँ मै और कहाँ वस्लकी लज्जत। मारे खुशीके मुझे मर जाना चाहिए था। परन्तु घबराहटमे जान देनी ही भूल गया।

लाखों लगाव एक चुराना निगाहका।
लाखों बनाव एक बिगड़ना अताबमें ॥

माशूकका आँखे चुराना लगावटकी लाखो बातोसे भी अधिक आकर्षक है, और गुस्सेमे एक बार बिगडना लाखो शृगारोसे भी अधिक मोहक।

हैराँ हूँ दिलको रोऊँ कि पीटूं जिगरको मै।
मकदूर[4] हो तो साथ रखूं नौहागरको[5] मै ॥

ईरानमे शोक करनेवाले किराये पर आते थे। जो जितना वैभवशाली होता था, अपने निकटजनकी मृत्युके समय उतने ही अधिक शोक करनेवालोको बुलाता था। उसी प्रथाकी ओर इशारा है। चूकि दिलकी और जिगरकी दो मौते एक साथ हो गई है और यह खुद अकेले है, इसलिए नौहागरकी ज़रूरत महसूस हुई है।

जाना पड़ा रक़ीबके दरपर हज़ार बार।
ऐ काश जानता न तेरी रहगुज़रको मै ॥

---

[1]मिलनका आनन्द, [2]ईश्वरीय देन, [3]घबराहटमे,
[4]सामर्थ्य, [5]शोक करनेवालेको।

फिर बेख़ुदीमें[1] भूल गया राहे कूए यार[2]।
जाता वगर्ना एक दिन अपनी ख़बरको मैं ॥

× × ×

छोड़ा न रश्कने कि तेरे घरका नाम लूँ।
हर-इकसे पूछता हूँ कि जाऊँ किधरको मैं ॥

रश्कको वजहसे किसीसे तेरा घर नही पूछ सकता कि कही मुझसे पता सुन कर कोई और न वहाँ पहुँच जाय। इस लिए रास्ता मालूम करनेके लिए बस इतना पूछता हूँ कि क्यो भाई मै किधरको जाऊँ। ऐसा पथिक निर्दिष्ट स्थान पर कब और कैसे पहुँचेगा, इसका अनुमान भी नही किया जा सकता। रश्कने किस दयनीय स्थितिको पहुँचा दिया है।

ज़िक्र मेरा ब-बदी भी उसे मंज़ूर नहीं।
ग़ैरकी बात बिगड़ जाय तो कुछ दूर नहीं ॥

आज कल तो गैरकी माशूकके साथ बनी हुई है। लेकिन जल्दी चटक जायगी। कारण, वह मेरी बुराई करनेसे बाज़ नही आयगा, और माशूक मेरा नाम (ब-बदी) बुराईके शब्दोमे भी सुननेको तय्यार नही। गैर अपनी हरकत नही छोडेगा और इसलिए माशूक उससे भी बिगड जायगा।

कतरा अपना भी हकीक़तमें है दरिया लेकिन।
हमको तकलीदे तुनक ज़र्फिए मनसूर नहीं ॥

हम भी वह बून्द (कतरा) है जो दरिया बनजानेकी शक्ति रखते है, परन्तु अपनी शक्ति और महत्ताका वर्णन अपने मुँहसे नही करना चाहते। क्योकि हम मन्सूरकी तरह ओछे (तुनकज़र्फ) नही है, जिसने अपने मुँहसे अनलहक (मै ईश्वर हूँ) कह दिया था। हम उसका अनुकरण (तकलीद) नही करेगे।

---

[1]तन्मयतामे, [2]प्रेयसीकी गलीका रास्ता।

मै जो कहता हूँ कि हम लेंगे क़यामतमे तुम्हें ।
किस रऊनतसे[1] वोह कहते है कि "हम हूर नहीं" ॥

× × ×

कम नही वोह भी खराबीमें पै वुसअ्रत मालूम ।
दश्तमें है मुझे वह ऐश कि घर याद नही ॥

यूँ तो हमारा घर भी उजाडपने और वीरानीमे किसी जगलसे कम नही । मगर उसका क्षेत्र सीमित है । उसमे इतनी विशालता नही जो हमारे उन्मादके लिए चाहिए । इसी कारण घर छोड कर हम जगलोमे रहते है, और वह जगह हमे इतनी आरामदेह है कि हमे भूलकर भी घर याद नही आता ।

कम नहीं जलवागरीमें तेरे कूचेसे बहिश्त ।
यही नक़्शा है वले[2] इसकदर आबाद नही ॥

सजावट तो बहिश्तमे भी माशूककी गलीसे कम नही है, परन्तु भीड-भाड और रौनक इतनी नही है । किस ढगसे माशूककी गलीको बहिश्तसे बढा कर दिखाया है ।

थक-थकके हर मुकामपै दो-चार रह गये ।
तेरा पता न पाएँ तो नाचार क्या करे ॥

शेर तसव्वुफमे है । ईश्वरको खोजनेवाले रास्तेमे ही थककर रह जाते है ।

हो गई है गैरकी शीरींबयानी कारगर[3] ।
इश्कका उसको गुमाँ[4] हम बेज़बानोपर नहीं ।

गैर चरब-चरब बोलकर और चिकनी-चुपडी बाते करके माशूक-को फुसला लेता है । हमे ऐसी बाते नही आती और चुप रहते है तो वह इसका यह अर्थ निकाल बैठा है कि हम उसके प्रेमी नही है ।

---

[1]गर्वसे; [2]लेकिन; [3]सफल; [4]सन्देह ।

दिल लगाकर लग गय, उनको भी तनहा बैठना।
हाय अपनी बेकसीकी हमने पाई दाद याँ ॥

हम तो बेकस थे ही वह भी किसीको दिल दे बैठे और अब उन्हें भी पता लग गया कि प्रेममे क्या पापड बेलने पडते है।

यह हम जो हिज्रमें दीवारोदरको देखते है।
कभी सबाको कभी नामाबरको देखते है ॥

दीवार को इसलिए देखते है कि शायद उसके कूचेकी हवा ही इस तरफ आजाय और हमारे विरह-पीडित मनको शान्ति दे और दरवाजेको इसलिए कि कासिद अब भी आये, अब भी आये।

वोह आएँ घरमे हमारे ख़ुदाकी कुदरत है।
कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते है ॥*

इतना बडा सौभाग्य हमारा हो सकता है, सुदामाके घर कृष्ण आ सकते है, यह विश्वास ही नही होता।

जहाँमे हो गमोशादी बाहम[1] हमें क्या काम।
दिया है हमको ख़ुदाने वह दिल कि शाद नही ॥

---

*इस शेर पर एक साहबने मजाहिया तजमीन करके शेरको दो कौडी-का करके रख दिया है—लेकिन नई बात निकाली है जो दिलचस्पीसे खाली नही।

सुना है जबसे कि चोरीकी उनको आदत है।
हमें हिफाजते सामाँकी सख़्त दिक़्क़त है ॥
निगाहदाश्तकी हर वक़्त किसको फ़ुर्सत है।
वह आएँ घरपै हमारे ख़ुदाकी कुदरत है ॥
कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते है।

[1]परस्पर।

लोग कहते है कि जहाँ सुख है, वहाँ दुख है, जहाँ शोक है, वहाँ हर्ष भी है। हमे तो इससे मतलब कुछ नही, क्योकि हमारे भाग्यमे तो दुख ही दुख है।

कभी जो याद भी आता हूँ मै तो कहते है—
कि "आज बज्ममें कुछ फितन-ओ-फिसाद[1] नही ॥"
तुम उनके वादेका जिक्र उनसे क्यों करो 'गालिब' !
यह क्या कि तुम कहो और वोह कहें कि याद नही* ॥

आशय यह है कि इतना भी गिरना किस कामका।

आहका किसने असर देखा है ?
हम भी इक अपनी हवा बाँधते है ॥

आह करनेका कुछ प्रभाव नही होगा, यह हम भी जानते है। हम तो केवल शेखीके मारे कहते है कि हमारी आह उनको प्रभावित करके रहेगी।

सब कहाँ कुछ लालओगुलमें नुमायाँ हो गईं।
खाकमें क्या सूरतें होगी कि पिनहाँ हो गईं ॥

सब सूरते तो नही, हाँ कुछ सूरते फूलोके रूपमे प्रकट (नुमाया) हुई है। यानी फूलोके सौन्दर्यसे अनुमान लगाया जा सकता है कि मिट्टी-मे कैसी-कैसी सूरते विलीन हो गई है।

---

[1]झगडा, ऊधम,

*तेरे सवालों चुप है इसे गनीमत जान।
कही जवाब न दे दें कि मै नहीं सुनता ॥
—अज्ञात

अर्जेगम न कर ऐ दिल, देख हम न कहते थे।
रह गये वह 'ऊँह' कहकर, सुन लिया जवाब उनका !
—जिगर मुरादाबादी

याद थीं हमको भी रंगारंग बज्मआराइयाँ।
लेकिन अब नक़्शोनिगारे ताकेनिसयाँ हो गईं॥

ऐ बज्म आराई पर नाज करने वालो! हम भी बज्मकी रगा-रगी (सुखके दिन) देख चुके है। मगर अब तो वे दिन ताकेनिसिया (वह आला जिसमे कोई वस्तु रखकर भूल जाएँ) की सजावट (नकशो-निगार) के रूपमे रह गये है अर्थात् स्मृतिपटसे भी लोप हो गये है।

नींद उसकी है, दिमाग उसका है, रातें उसकी हैं।
तेरी जुल्फें जिसके बाजूपर परेशाँ हो गईं॥*

रंजसे खूगर हुआ इन्साँ तो मिट जाता है रज।
मुश्किलें इतनी पडी मुझपर कि आसाँ हो गईं॥

× × ×

वाँ जो पहुँचा भी तो उनकी गालियोंका क्या जवाब?
याद थी जितनी दुआएँ सर्फे दरबाँ हो गईं॥

माशूकके घर घुसते ही पहिले तो दरबानने गालियोसे सत्कार किया। उसको गालियोके बदले असीस दी। नही तो वह अन्दर कब घुसने देता? अन्दर पहुँचे तो माशूकने गालियोसे खबर ली। उसको भी बदलेमे दुआ देना जरूरी। लेकिन जो दुआएँ याद थी, वह दर्बानको दे आये। दरबानवाली दुआएँ माशूकको कैसे दे, इसमे उसकी हतक है। नई और याद नही। इसी असमजसमे है।

दिलको नियाजे हसरते दीदार कर चुके।
देखा तो हममें ताकते दीदार भी नहीं॥

---

*दिन वही दिन है शब वही शब है।
जो तेरी यादमें गुजर जाएँ॥
—हसरत मोहानी

हसरते दीदार (देखनेकी अभिलाषा) के पीछे रो-रो कर और घुल-घुल कर हमने दिल नष्ट कर दिया। यानी जिस दिलको हसरते दीदार थी, हमने उसी को नष्ट कर दिया। मगर जब उनका दीदार हुआ, तो पता लगा कि हम मे उनका सौन्दर्य्य देखने की शक्ति ही नही है, अर्थात् सारा प्रयत्न व्यर्थ गया।

मिलना तेरा अगर नही आसाँ तो सहल है।
दुश्वार तो यही है कि दुश्वार भी नही॥

तेरा मिलना आसान न होता, यानी दुश्वार होता तो कोई दिक्कत नही थी। क्योकि हम हताश होकर बैठ रहते और उत्कठा तथा अभिलाषा की चिन्तासे मुक्ति पाते। परन्तु मुश्किल तो यह है कि तेरा मिलना जिस तरह आसान नही, उसी तरह दुश्वार भी नही। प्रयत्न करने पर सफलता मिल सकती है। इसी आशा और विश्वास पर हम दिन-रात सलग्न रहते है।

बेइश्क़ उम्र कट नही सकती है और याँ।
ताकत बकदरे लज्जते आज़ार भी नही॥

जिस जीवनमे प्यार नही वह जीवन भी क्या? प्रेमके बिना जीवन व्यतीत हो ही नही सकता, परन्तु यहाँ निर्बलताका यह हाल है कि कष्टोके आनन्दको सहन करनेकी भी क्षमता नही रही, फिर प्रेम किस बलबूते पर किया जाय?

शोरीदगीके हाथसे सर है वबालेदोश।
सहरामें ऐ ख़ुदा कोई दीवार भी नही॥

हमारी दीवानगी (शोरीदगी) का यह आलम है कि अपने कन्धो पर सरका बोझ भी वबालेजान मालूम होता है। जी चाहता है कि सरको फोड-फोड कर खत्म कर दे, मगर अफसोस जगलमे सर फोडनेको दीवार भी नही मिलती।

गुंजाइशे अदावते अग़ियार इक तरफ।
यॉ दिलमे ज़ोफसे हविसे यार भी नहीं ॥

हम प्रतिद्वन्द्वी (अगियार) के प्रति शत्रुताके भाव कहॉसे रखे। हमारा हृदय तो निर्बलताके कारण अब प्रेयसीकी चाहतका भार भी नही उठा पा रहा है।

न जानूँ नेक हूँ या बद हूँ, पर सुहबत मुख़ालिफ है।
जो गुल हूँ तो हूँ गुलख़नमें जो ख़स हूँ तो हूँ गुलशनमें ॥

यह तो मुझे मालूम नही कि मै अच्छा हूँ या बुरा हूँ। लेकिन सुहबत मुझे मुखालिफ मिली है अर्थात् वातावरण प्रतिकूल है। यदि मै फूल हूँ तो बजाय गुलशनके मै भट्टी (गुलखन) मे हूँ और अगर मै काटा (खस) हूँ तो चमनमे हूँ।

दिल ही तो है न सगोख़िश्त[1] दर्दसे भर न आये क्यों ?
रोएँगे हम हज़ार बार, कोई हमे सताये क्यों ?

दैर[2] नही, हरम[3] नही, दर नही, आस्ताँ[4] नहीं।
बैठे है रहगुज़रपै[5] हम, गैर हमे उठाए क्यो ॥

× × ×

कैदेहयातो बन्देगम अस्लमें दोनो एक है।
मौतसे पहले आदमी गमसे निजात पाए क्यो ?

यह जीव शरीर रूपी पिजरेमे कैद है। जब तक इस शरीरमें रहेगा कष्ट उठाता रहेगा। जिन्दगी और कष्टोका बधन (कैदेहयात और बन्देगम) परस्पर भिन्न नही, अपितु एक ही अवस्थाके दो नाम है।

---

[1]ईंट-पत्थर, [2]मन्दिर; [3]मस्जिद;
[4]किसीकी बैठक, [5]रास्तेमे।

दुखोके पुजको ही जिन्दगी कहते है। इसलिए मुक्तिसे पूर्व गमोसे छुटकारेकी आशा व्यर्थ है*।

वाँ वोह गरूरे इज्जोनाज यॉ यह हिजाबेपासे वजअ़।
राहमें हम मिलें कहाँ, बज्ममें वोह बुलाएँ क्यों ?

उन्हे अपने हुस्न पर गरूर है और हम अपनी वजअ़दारी (स्वाभिमानता) के सबब घरसे नही निकलते। मारे घमडके वे हमे महफिलमे नही बुलाते और हम घरसे न निकलनेकी वजहसे रास्तेमे नही मिलते, फिर मुलाकात हो तो कैसे हो ?

हॉ वोह नही ख़ुदापरस्त, जाओ वोह बेवफा सही !
जिसको हो दीनोदिल अ़ज़ीज़ उसकी गलीमें जाये क्यो ?

जब लोगोने नुकताचीनी करते-करते नाकमे दम कर दिया, किसीने कहा कि तुम्हारा माशूक नास्तिक है, किसीने कहा कि वह बेवफा है, तो झल्ला कर कहते है कि हाँ, वह तो सब कुछ है, परन्तु जिसको अपना धर्म और दिल प्यारा हो, वह उस नास्तिक और बेवफाकी तरफ रुख ही क्यो करे।

गालिबे ख़स्ताके[1] बगैर कौन-से काम बन्द है।
रोइये ज़ार-ज़ार क्या, कीजिये हाय-हाय क्यो ?

× × ×

रातके वक़्त मय पिये साथ रकीबको लिये।
आये वोह यॉ ख़ुदा करे, पर न करे ख़ुदा कि यूँ ॥

---

*एक और जगह गालिब इसी मजमूनको यूँ बॉधते है—

गमे हस्तीका 'असद' किससे हो जुज़ मर्ग इलाज।
शमअ़ हर रंगमें जलती है सहर होने तक ॥

[1]फटे हालके।

खुदा करे वे रात को यहाँ आएँ। मगर साथमे न रकीब हो, न शराब पी हुई हो।

मुझसे कहा जो यारने "जाते है होश किस तरह ?"
देखके मेरी बेखुदी चलने लगी हवा कि "यूँ" ॥

× × ×

ताअतमें ता रहे न मय ओ अंगबींकी लाग।
दोजखमें डाल दो कोई लेकर बहिश्तको ॥

बहिश्तमे शराब और शहद जी भर कर मिलेगे। इसी लालचमें लोग खुदाकी इबादत करते है ताकि खुश होकर वह बहिश्तमे भेज दे। मगर यह इबादत खुदगरजीको लिये हुए है। इसलिए इस बहिश्तको दोजखमे फेक दिया जाय ताकि बेगरज हो कर लोग इबादत करे, ऐसा करनेसे असली और नकली उपासकोका पता लग जायगा कि कौन निष्काम और कौन स्वार्थवश उपासना करते है।*

वारस्ता इससे है कि मुहब्बत ही क्यों न हो।
कीजे हमारे साथ अदावत ही क्यो न हो ॥

हम इस फर्माइशसे आजाद (वारस्ता) है कि आप हमसे मुहब्बत ही करे। चाहे तो आप हमसे अदावत ही रखे, मगर वोह हमीसे हो, किसी गैरसे न हो। क्योकि मुहब्बत हो या अदावत, हम किसी औरकी शिरकत उसमे बर्दाश्त नही कर सकते।

है आदमी बजाए खुद इक महशरेखयाल।
हम अंजुमन समझते है खिलवत ही क्यो न हो ॥

***सौदागरी नहीं यह इबादत खुदाकी है।**
ऐ बेखबर, जजाकी तमन्ना भी छोड़ दे ॥

—इक़बाल

मनुष्यके दिलमे अनेक विचार चक्कर काटते रहते है, अकेलेपन (खिलवत) मे भी एक विचारोकी महफिल (अजुमन) छाई रहती है।

वफादारी बशर्ते इस्तवारी अस्ल ईमाँ है।
मरे बुतखानेमे तो काबेमें गाडो बिरहमनको॥

जब ब्राह्मण अपनी सारी उम्र मन्दिरमे काट दे और उसीकी पूजा करते हुए मर जाये तो वह इस प्रतिष्ठाका अधिकारी है कि उसकी समाधि काबेमे बनाई जाये। क्योकि उसने अपना समस्त जीवन एक ही करीने-से बिताया। जिसका एक बार हो गया, उसको मरते दम तक निभाया, यही ईमान और प्रेमकी सच्ची कसौटी है।

शबको किसीके ख्वाबमे आया न हो कही।
दुखते है आज उस बुतेनाजुकबदनके पाँव॥*

× × ×

तुम वोह नाजुक कि खमोशीको फुगाँ कहते हो।
हम वोह आजिज कि तग़ाफुल भी सितम है हमको॥

तुम हमारे चुप रहने को भी रोना समझ कर नाराज होते हो। हम इतने दीन-हीन है कि तुम्हारा सितम तो क्या उपेक्षाभाव भी सहन नही कर सकते।

तुम जानो तुमको गैरसे जो रस्मोराह हो।
मुझको भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो॥

मै गैरसे मिलनेको तो मना नही करता, पर मेरी भी पूछ-ताछ करते रहोगे तो अनुग्रह होगा।

***क्या नजाकत है कि आरिज उनके नीले पड़ गये।**
हमने तो बोसा लिया था ख्वाबमे तसवीरका॥

—अज्ञात

जब मयकदा छुटा तो फिर अब क्या जगहकी क़ैद ।
मस्जिद हो, मदरसा हो, कोई ख़ानकाह हो ।।

जब शराब खाना ही छुट गया तो आदमी कही भी बैठ कर पी ले । मस्जिद, पाठशाला अथवा मठ, कोई भी स्थल हो । धार्मिक स्थानोका नाम लेकर जान बूझ कर जाहिदका मुँह चिढाया है ।

सुनते है जो बहिश्तकी तारीफ सब दुरुस्त ।
लेकिन ख़ुदा करे वोह तेरी जलवागाह हो ।।

तू वहाँ पर न हो तो ऐसी बहिश्तको क्या हम फूँकेगे ?

वोह अपनी ख़ू[1] न छोडेंगे हम अपनी वज़अ[2] क्यो छोडें ?
सुबकसरबनके[3] क्या पूछे कि हमसे सरगराँ[4] क्यो हो ।।

× × ×

किया गमख्वारने रुसवा लगे आग इस मुहब्बतको ।
न लाये ताब जो गमकी वोह मेरा राज़दाँ क्यो हो ।।

हम तो मोहब्बतकी आगको किसी तरह अपने कलेजेमे दबाए हुए थे, परन्तु गमख्वार बर्दाश्त नही कर सका और लगा फरियाद करने । उसके फरियाद करनेसे भेद खुल गया और बदनामी हो गई । गमख्वार कमबख्तमे बर्दाश्त नही थी तो मेरा विश्वासपात्र क्यो बना था । हमारा जब्त देखिये कि जिस चीजको गमख्वार स्वय भुक्तभोगी न होते हुए भी न झेल सका, हम उसे अपने पर बीतने पर भी मुहँसे उफ न करते थे । [मेरे एक मित्र है जिनकी साहित्यक क्षेत्रमे काफी ख्याति है । उनकी माताने एक सभ्रान्त महिलाके यहाँ कुछ धन जमा किया था, किन्तु उनकी आर्थिक स्थिति यकायक बिगड जानेसे वह धन वापिस न मिल सका ।- वक्त बे वक्त की जरूरत के लिए ही किसी तरह जोड-तोड कर

---

[1]आदत, [2]आन, [3]अपने दर्जेसे गिरकर, [4]नाराज ।

उनके यहाँ जमा कराया था, किन्तु जब वे देने योग्य ही न रही तो मन ही मनमे इस व्यथाको पीकर वे चुप हो गईं और अनेक आर्थिक कष्ट सहने पर भी यह भेद किसीको न बताया, किन्तु अपनी बडी लडकीके समक्ष रुपये जमा कराये थे अत उसे यह भेद मालूम था। उनकी जब माँ मरने लगी तो मै भी मौजूद था। माँके मरने पर उसकी प्रशसामे रोते हुए बेटीने इसका सकेत किया तो मेरे मित्र तत्काल बोले—"बहन! जिस भेद-को माँने मरते दम तक छुपाया, तुमने उसके मरते ही फाश कर दिया।" तभी मेरे मुँहसे गालिबका उक्त शेर यकायक निकल गया था]

वफा कैसी, कहाँका इश्क जब सर फोड़ना ठहरा।
तो फिर ऐ संगदिल तेरा ही संगेआस्ताँ[1] क्यो हो ?

× × ×

कफसमें मुझसे रूदादे चमन कहते न डर हमदम।
गिरी है जिसपे कल बिजली वोह मेरा आशियाँ क्यो हो ॥

इस शेरमे एक पूरी कहानी बयान कर दी है। एक पछी पिजरेमे बन्द है। एक और साथी भी गिरफ्तार हो कर आया है। पहिला पछी नवागतसे चमनका और अपने घोसलेका हाल पूछना चाहता है। हाल यह है कि घोसलेको बिजलीने जला कर राख कर डाला है। नवागत इस दुसवादको सुनानेमे झिझकता है। इसका मन भी नवागतकी चुपसे आशङ्कित हो जाता है। फिर भी पूरी बात जाने बिना चैन नही है। उसे हौसला देनेके लिए कहता है कि तू पूरी बात बता दे, तुझे गलत-फहमी हुई है, बिजलीने किसी औरका घोसला फूंका होगा। इस प्रकार कूजेमे दरिया बन्द करना गालिबका ही काम था।

यह फित्ना[2] आदमीकी खानावीरानीको[3] क्या कम है ?
हुए तुम दोस्त जिसके दुश्मन उसका आसमाँ क्यो हो ?

---

[1]चौखटका पत्थर, [2]माशूकसे अभिप्राय है, [3]बरबादी को।

यही है आज़माना तो सताना किसको कहते हैं ।
उदूके हो लिये जब तुम तो मेरा इम्तहाँ क्यो हो ।।

जब तुम मेरे हो ही नही सकते दुश्मनके हो लिये, तो फिर मेरी परीक्षा लेनेसे क्या लाभ ? परीक्षामे उत्तीर्ण होने पर भी जब तुम्हे पानेकी आशा नही, तो ऐसी परीक्षा तो सितम ही है ।

तोड़ बैठे जब कि हम जामोसुबू[1] फिर हमको क्या ?
आसमाँसे बादयेगुलफाम[2] गर बरसा करे ।।*

मस्जिदके ज़ेरेसाया ख़राबात चाहिए ।
भोपास आँख किबलयेहाजात[3] चाहिए ।।

ऐ वाइज ! मसजिदके नज़दीक शराबखाना भी उसी तरह लाज़िमी है, जैसे भवोके करीब आँख । जेरसायेसे मुराद नज़दीकके ही नही, बल्कि सरपरस्तीके भी है । यानी मसजिदके सरक्षणमे ही शराबखाना जारी किया जाय, ताकि नमाजियो और रिन्दोमे भाई चारा भी निभ सके । भवे महराबदार होती है और आँख मस्तीभरी, इसलिए मसजिद और शराबखानेकी उपमा इनसे दी है ।

मेरे दिलमें है 'गालिब'! जौके वस्लो[4] शिकवए हिज्राँ ।[5]
ख़ुदा वह दिन करे जब उससे मैं यह भी कहूँ वह भी ।।

---

[1]मद्य पात्र, [2]गुलाबी रगकी शराब,

* **बुलबुलने आशियाना चमनसे उठा लिया ।**
उसकी बलासे बूम बसे या हुमा बसे ।।

—अज्ञात

[3]आवश्यकताओकी पूर्त्तिका केन्द्र, [4]मिलनकी अभिलाषा;
[5]विरहकी शिकायत ।

गैरसे देखिये क्या खूब निबाही उसने।
न सही हमसे, पर उस बुतमें वफा है तो सही॥

अतएव उसे बेवफा कहना उपयुक्त नही।

ता हमको शिकायतकी भी बाकी न रहे जा[1]।
सुन लेते है गो जिक्र हमारा नही करते॥

आँखकी तसवीर सरनामेपै[2] खीची है कि ता--
तुझपै खुल जावे कि इसको हसरतेदीदार[3] है॥

पीनसमें गुजरते है जो कूचेसे वोह मेरे।
कन्धा भी कहारोको बदलने नही देते॥

खिजाँ क्या? फस्लेगुल कहते है किसको? कोई मौसम हो।
वही हम है, क़फस है, और मातम बालोपरका है॥

दिनपर दिन बीतते चले जाते है, हम उसी तरह रोते-पीटते रहते है, हमारी अवस्थामे परिवर्तन ही होनेमे नही आता।

हम भी तसलीमकी खू डालेंगे।
बेनियाजी तेरी आदत ही सही॥

लापरवाहीकी जो शिकायत की तो जवाब मिला कि मैने कोई जान कर लापरवाही थोडा ही की थी, मेरी तो आदत ही ऐसी है। फर्माया है कि अच्छा तेरी तो आदत बदलनेसे रही, हम भी तेरे इस व्यवहारको सहर्ष सहन करनेकी आदत डालेगे, क्योकि तुझसे बिगाड करनेकी सामर्थ्य हममे नही है।

---

[1]मौका, अवसर,
[2]लिफाफे पर,
[3]देखनेकी अभिलाषा।

यारसे छेड़ चली जाय 'असद'।
गर नहीं वस्ल तो हसरत ही सही ॥

× × ×

उस बज्ममें मुझे नही बनती हया किये।
बैठा रहा अगर्चे इशारे हुआ किये ॥

मँजा हुआ आशिक ढीठ बन जाता है। उनकी महफिलमे तरह तरहके अपमानजनक इशारे लोग मेरी तरफ करते है, फब्तियाँ कसते है, लेकिन मै हूँ कि बेहयाईकी चादर ओढे बैठा रहता हूँ।

मक़दूर[1] हो तो ख़ाकसे पूछूँ कि ऐ लईम[2]!
तूने वोह गंजहाये गिराँमाया[3] क्या किये?

× × ×

रखता फिरूँ हूँ ख़िरका ओ सज्जादा रहने मय।
मुद्दत हुई है दावते आबो हवा किये ॥

नमाजी कपडे (खिरका) और नमाज पढनेका आसन (सज्जादा) शराब खरीदनेके लिये गिरवी रख दिये है। पल्ले फूटी कौडी नही और शराब पिये (दावते आबो हवा किये) बहुत दिन हो गये थे और पीनेको बहुत जी कर रहा था, इसलिए यह नौबत आई। घरके सारे सामानमेसे नमाजी कपडे और नमाज पढनेके आसनको ही गिरवी रखनेके लिए छाँटना अर्थात् इनको ही निरावश्यक समझना, और वह भी शराब पीनेके लिए, कमालकी शोखी है।

---

[1]सामर्थ्य, [2]कजूस,

[3]अमूल्य खजाने अर्थात् अनेक ख्याति प्राप्त कलाकार जो मरनेपर खाकमे दबाये गये है।

सुहबतमें ग़ैरकी न पड़ी हो कहीं यह ख़ू।
देने लगा है बोसे बग़ैर इल्तजा किये॥

ज़िदकी है और बात, मगर ख़ू[1] बुरी नहीं।
भूलेसे उसने सैकड़ों वादे वफा किये॥

'ग़ालिब'! तुम्हीं कहो कि मिलेगा जवाब क्या ?
माना कि तुम कहा किये और वोह सुना किये॥

गुज़रा 'असद' मसर्रते पैग़ामेयारसे।
क़ासिदपै मुझको रश्के सवालोजवाब है॥

मै यारके सन्देशेके आनन्द (मसर्रते पैगामे यार) से बाज आया। मुझे तो इस बातकी ईर्ष्या हो रही है कि कासिदको यारसे वार्तालाप करनेका सौभाग्य क्यो प्राप्त हुआ।

देखना क़िस्मत कि आप अपनेपै रश्क आ जाय है।
मै उसे देखूं भला कब मुझसे देखा जाय है॥

ईर्ष्याका यह आलम है कि अपने आपको भी गेर समझ लिया है, और ईर्ष्या उत्पन्न हो गई है, इसलिए माशूकको देख ही नही सकते है। दुर्भाग्य इसे कहते है।

ग़ैरको यारब ! वोह क्योंकर मनएगुस्ताख़ी करे।
गर हया भी उसको आती है तो शरमा जाय है॥

ऐसे उदाहरण आये दिन देखनेमे आते है, दुष्टोके छेडने पर भी सम्भ्रान्त कुलकी ललनाएं लज्जाके कारण अपना मुहँ नही खोलती है।

गरचे है तर्ज़े तग़ाफुल पर्दादारे राज़ेइश्क।
पर हम ऐसे खोये जाते है कि वोह पाजाय है॥

---

[1] आदत।

यद्यपि हम अपने प्रेमको गुप्त रखनेका भरसक प्रयत्न करते है, और उसकी ओरसे उपेक्षाभाव (तर्ज़ेतगाफुल) बनाये रखते है, परन्तु हम उसके प्रेममे इतने लीन हो जाते हैं, और सुध-बुध खो बैठते है कि वह हमारे हृदयके भाव भाँप लेता है।

साया मेरा मुझसे मिस्लेदूद भागे है 'असद' !
पास मुझ आतिशबजाँके किससे ठहरा जाय है ॥

प्रेम-अग्नि मेरे हृदयमे ऐसी सुलगी हुई है कि मेरी परछाईं भी धुएँ (दूद) की तरह मुझसे भागती है, इष्टमित्रोका तो ज़िक्र ही क्या ? मुझ दग्ध हृदयके पास ठहरनेकी सामर्थ्य किसीमे नही है।

हविसेगुलका तसव्वुरमें भी खटका न रहा।
अजब आराम दिया बेपरोबालीने मुझे ॥

सैयादने मुझको सतानेकी नीयतसे मेरे पर और बाल नोचे। मगर मेरे लिए वह अत्याचार वरदान सिद्ध हुआ। क्योकि गुल तक पहुँचनेकी क्षमता न रहनेके कारण अब मुझे स्वप्नमे भी फूलकी तृष्णा नही खटकेगी*।

देखना तकरीरकी लज्ज़त कि जो उसने कहा।
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिलमें है ॥

× × ×

गरचे है किस-किस बुराईसे वले बाईं हमा[1]।
ज़िक्र मेरा मुझसे बहतर है कि उस महफ़िलमें है ॥

यह माना कि उनकी महफिलमे मेरी बुराई की जाती है, परन्तु

---

*इसी भावको एक और जगह व्यक्त किया है —

न लुटता दिनको तो क्यों रातको यूँ बेख़बर सोता।
रहा खटका न चोरीका दुआ देता हूँ रहज़नको ॥

[1]इसपर भी।

मुझे इससे प्रसन्नता होती है, ख्वाह किसी बहानेसे भी सही, मेरा ज़िक्र तो वहाँ होता है* ।

हर बुलहविसने हुस्नपरस्ती शआरकी ।
अब आबरूए शेवए अहले नज़र गई ।।

प्रत्येक कामुक प्रेमीने सौन्दर्य्य पूजाको अपना धन्धा बना लिया । टके सेर भाजी टके सेर खाजा हो गया । अब पारखियोके हुनरका कौन सम्मान करेगा, सच्चे प्रेमीके गुणको कौन जानेगा ।

तुमको भी हम दिखाएँ कि मजनूँने क्या किया ।
फुरसत कशाकशे गमेपिनहाँसे गर मिले ।।

बडा चर्चा है इस बातका कि मजनूँ सरीखा ससारमे आज तक कोई आशिक नही हुआ । हमारा दावा है कि हमारे सामने मजनूँ भी कुछ नही, और हम यह साबित कर सकते है, परन्तु क्या करे, दुखोकी खीचातानी दम लेने दे तभी तो ।

कोई दिन गर ज़िन्दगानी और है ।
अपने जीमे हमने ठानी और है ।।
आतिशे दोज़खमे[1] यह गर्मी कहाँ ?
सोज़ेगमहाए निहानी[2] और है ।।

× × ×

देके ख़त मुँह देखता है नामाबर ।
कुछ तो पैगामेज़बानी और है ।।

---

* **वोह दुश्मनीसे देखते है, देखते तो है ।**
मैं शाद हूँ कि हूँ तो किसीकी, निगाहमें ।।
—अमीर मीनाई

[1]नर्काग्नि मे; [2]दिलमे छुपे हुए दुखोकी जलन ।

नामाबर पत्र देकर मुहँ देखने लगा है। पत्र देनेपर इसे चला जाना चाहिए था। पर मुहँ देखनेसे अनुमान होता है कि इसे कुछ कहना है। कहनेका साहस नही है, मालूम होता है शायद पत्रके साथ ज़बानी गालियाँ भी भेजी है।

बारहा देखी है उनकी रजिशें।
पर कुछ अबके सरगरानी और है*॥

यूँ तो अनेक बार (बारहा) हमने उन्हे नाराज देखा है, पर अबकी बार तो इतने नाराज है कि मननेमे ही नही आते।

कोई उम्मीद बर नही आती[1]।
कोई सूरत नज़र नही आती॥
मौतका एक दिन मुअय्यन है[2]।
नीद क्यो रातभर नहीं आती॥

× × ×

आगे आती थी हालेदिलपै हँसी।
अब किसी बातपर नही आती॥

हाले दिल जितना काबिले रहम था, वह तो सब जानते है, पहले हमारी सहनशक्ति इतनी थी कि उन दुखोपर भी हँस दिया करते थे। अब जी इतना बुझ गया है कि सुख-सवाद भी हमे हर्षित नही कर सकता।

जानता हूँ सवाबेताअतो ज़ुहद[3]।
पर तबियत उधर नहीं आती॥

***वफाएवादा नहीं, वादएदिगर भी नहीं।**
वह हमसे रूठे तो थे, लेकिन इस कदर भी नहीं॥
—फ़ैज़

[1]पूरी नही होती, [2]निश्चित, [3]सदाचरणका पुण्य।

दागेदिल गर नज़र नहीं आता ।
बू भी ऐ चारागर ! नहीं आती ?

लानत है मेरे इलाज करनेवालो पर । कहते है कि हमारी नजरमे तो इसे कोई रोग नही है । मूर्ख कहीके, अन्दर ही अन्दर कोई चीज जले तो उसकी गध तो बाहर आती ही है । वह मेरे दिलका दाग नही देख सकते तो क्या उसके जलनेकी गध भी नही सूघ सकते ?

हम वहाँ है जहाँसे हमको भी ।
कुछ हमारी ख़बर नहीं आती ।।

मरते है आरज़ूमें मरनेकी ।
मौत आती है, पर नहीं आती ।।

काबे किस मुँहसे जाओगे 'ग़ालिब' !
शर्म तुमको मगर[1] नहीं आती ।।

× × ×

दिलेनादाँ तुझे हुआ क्या है ?
आख़िर इस दर्दकी दवा क्या है ?

हम है मुश्ताक़ और वोह बेज़ार ।
या इलाही ! यह माजरा क्या है ?

हाँ भलाकर तेरा भला होगा ।
और दरवेशकी सदा क्या है ?

जान तुमपर निसार करता हूँ ।
मै नहीं जानता दुआ क्या है ।।

मैने माना कि कुछ नहीं 'ग़ालिब' !
मुफ़्त हाथ आये तो बुरा क्या है ।।

---

[1]शायद ।

जल्लादसे डरते हैं न वाइज़से झगडते।
हम समझे हुए हैं उसे, जिस भेसमें जो आये ॥

जो भी जिस भेष मे हमारे समक्ष आवे, हम उसे ईश्वरका रूप समझते है। जल्लाद भी वही है, वाइज भी वही है और हम भी वही है। हममेसे प्रत्येकमे ईश्वर ही का रूप है। इसीलिए हम न किसीसे डरते है, न झगडते है।

बेख़ुदी बे सबब नहीं 'गालिब' !
कुछ तो है जिसकी परदादारी है ॥

इस तन्मयताके पर्देमे अवश्य इश्कको छुपाया हुआ है।

तेरी वफासे क्या हो तलाफी कि दहरमें।
तेरे सिवा भी हमपै बहुतसे सितम हुए ॥*

ससार (दहर) मे तेरी बेवफाईके अलावा और भी अनेक सितम हमपर हुए है। इसलिए तेरी वफा हमारा अधिक कष्ट निवारण (तलाफी) कैसे कर सकती है? माशूकके कृपापात्र होने पर भी निराश रहना ग़ालिबकी शायरीके फलसफए गमका यह एक नमूना है।

यूँ ही दुःख किसीको देना नहीं ख़ूब, वर्ना कहता—
"कि मेरे उदूको यारब ! मिले मेरी ज़िन्दगानी ॥"

सहृदयता देखिये कि दुश्मनको भी दुख देना नही चाहते।

जुल्मतकदेमें मेरे शबेग़मका जोश है।
इक शमअ़ है दलीलेसहर सो ख़मोश है ॥

***गर एक आसमाँको मिटाया तो क्या हुआ।**
ऐसे हज़ार बससरेकीं[1] और भी तो हैं ॥

—ज़ौक

[1]कीनेबाज़।

मेरे अधेरे घर (जुलमतकदे) मे दुखकी रात (शबेगम) पूर्ण रूपसे अपना प्रभुत्व जमाए हुए है, और काटे नही कटती। रात समाप्त हो तो कुछ चैन नसीब हो। पर सुबह है कि होनेमे ही नही आती। यूँ, शमअका बुझ जाना सूर्योदयका द्योतक होता है, पर यहाँ शमअ भी बुझ चुकी (खामोश) है, फिर भी अधेरा ज्योका त्यो है। दुख और निराशाके अधकारका कितना भयानक चित्र है*।

हूँ सरापा[१] साजे आहगे शिकायत[२], कुछ न पूछ।
है यही बहतर कि लोगोंमें न छेड़े तू मुझे ॥†

मै शिकायतोसे भरा बैठा हूँ, तूने जरा छेडा और मैने दिलकी भडास निकाली। सबमे तेरी बदनामी हो जायगी।‡

और बाजारसे ले आये अगर टूट गया।
सागिरे जमसे[३] मेरा जामेसिफाल[४] अच्छा है ॥

---

*एक और जगह इसी मजमूनको गालिब इस तरह बाधते है--

जिसे नसीब हो रोजेसियाह मेरा-सा।
वह शख्स दिन न कहे रातको तो क्योकर हो ॥

[१]मुजस्सिम, शिकायतके सुर निकालनेका बाजा,

†**हम भरे बैठे थे क्यो आपने छेडा साहब।**
देखा आखिर न, कि फोड़ेकी तरह फूट बहे ॥

--जौक़

‡इसी मजमूनको एक जगह और बाँधा है--

पुर हूँ मै शिकवेसे यूँ रागसे जैसे बाजा।
एक जरा छेड़िये फिर देखिये क्या होता है ॥

[३]जमशेद बादशाहका प्रसिद्ध प्याला, [४]मिट्टीका प्याला।

वैभवके आडम्बरोपर कैसी करारी चोट की है ।

बेतलब[1] दें तो मज़ा उसमें सिवा मिलता है ।
वोह गदा[2] जिसको न हो ख़ूएसवाल[3] अच्छा है ।।

क़तरा दरियामें जो मिल जाय तो दरिया हो जाय ।
काम अच्छा है वोह जिसका कि मआल[4] अच्छा है ।।

हमको मालूम है जन्नतकी हकीकत लेकिन—
दिलके ख़ुश रखनेको 'ग़ालिब' यह ख़याल अच्छा है ।।

× × ×

न हुई गर मेरे मरनेसे तसल्ली न सही ।
इम्तहाँ और भी बाक़ी हो तो यह भी न सही ।।

अगर मेरे मरनेसे भी तुम्हारी तसल्ली नही हुई है और अभी अत्याचार करनेके वलवले बाकी है तो अभी मेरी लाश मौजूद है, आप शौकसे अपनी अभिलाषा पूरी करे ।

इशरते सुहबते ख़ूबाँ ही गनीमत समझो ।
न हुई 'ग़ालिब' अगर उम्रेतबीई न सही ।।*

प्रथम तो जीवनमे सुख मिलता नही और मिलता भी है तो क्षणिक । अत यदि पूरी आयु (उम्रे तबीई) प्राप्त न हुई तो न सही, प्रेयसीके निकट जो क्षण भर गुजरा है वही गनीमत है ।

---

[1]बे माँगे, [2]फकीर सन्यासी, [3]माँगनेकी आदत, [4]अन्त ।

*उम्रभर रीगते रहनेसे कही बहतर है ।
एक लम्हा जो तेरी रूहमें वुसअ़त भर दे ।।

एक लम्हा जो तेरे गीतको शोख़ी दे दे ।
एक लम्हा जो तेरी लै में मसर्रत भर दे ।।

—साहिर लुधियानवी

ख़ुदाके वास्ते दाद[1] इस जुनूनेशौक़की[2] देना ।
कि उसके दरपै पहुँचते हैं नामाबरसे हम आगे ॥

× × ×

ख़ूब था पहलेसे होते जो हम अपने बदख़्वाह[3] ।
कि भला चाहते हैं और बुरा होता है ॥

जब सूरत यह है कि जो हम चाहते है उससे उल्टा होता है तो पहले-से ही अपना बुरा चीतते, जिसका उल्टा प्रभाव यह होता कि हमारा भला हो जाता ।

हरएक बातपै कहते हो तुम कि तू क्या है ।
तुम्हीं कहो कि यह अन्दाजे गुफ़्तगू क्या है ॥

यह भी कोई बात करनेका ढग है कि ज्यूंही हमारे मुहँसे कोई बात निकली और तुमने डाटा कि चुप रह, तू बीचमे बोलनेवाला कौन है ।

यह रश्क है कि वोह होता है हमसुख़न[4] तुमसे ।
वगर्ना ख़ौफेबदआमोज़िये उदू[5] क्या है ॥

हमे यह भय नही है कि दुश्मन जो तुमसे बात करता है, वह तुमसे हमारी बुराई करेगा, तुम्हारे कान भर देगा । ईर्ष्या इस बातकी है कि उसे तुमसे बात करनेका सौभाग्य प्राप्त है ।

रगोंमें दौडने फिरनेके हम नहीं क़ायल ।
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है ॥

आँखसे टपक कर लहू सार्थक होता है, केवल नाडियोमे प्रवाह करे तो इसका कुछ मूल्य नही । तात्पर्य यह है कि भावुकता और सहृदयतासे

---

[1]शाबाशी, [2]प्रेमोन्मादकी;
[3]बुरा चीतनेवाले, [4]बात करना,
[5]दुश्मनकी तरफसे बुराई करनेका भय ।

मनुष्यमे मनुष्यत्व आता है, नही तो निरा पशु है। शेरकी तारीफ नही हो सकती।

वोह चीज जिसके लिए हमको हो बहिश्त अजीज।
सिवाय बादए गुलफामोमुश्कबू[1] क्या है॥
रही न ताकतेगुफ्तार[2] और अगर हो भी।
तो किस उम्मीदपै कहिये कि आरजू क्या है॥

× × ×

मेरी किस्मतमें गम गर इतना था।
दिल भी यारब! कई दिये होते॥

दिल तो एक, और दुखोका बोझ इतना! बर्दाश्त हो तो कैसे?

गैर[3] लें महफिलमें बोसे जामके।
हम रहें यों तिश्नालब[4] पैग़ामके॥
खत लिखेंगे गर्चे मतलब कुछ न हो।
हम तो आशिक़ हैं तुम्हारे नामके॥

कब वोह सुनता है कहानी मेरी।
और फिर वह भी जबानी मेरी॥

× × ×

कर दिया जोफने आजिज 'गालिब'!
नंगे पीरी है जवानी मेरी॥

इश्कके गमने इतना कमजोर कर दिया है कि अब मै बिलकुल अशक्त हो गया हूँ। भरी जवानीमे बूढोसे भी गया गुजरा हो गया हूँ। मेरी जवानी ऐसी है कि बुढापा भी इससे शर्माए।

---

[1]सुगधित व गुलाबी शराब, [2]वाक् शक्ति,
[3]दुश्मन; [4]प्यासे।

है वस्ल हिज्र आलमे तमकीनोज़ब्तमें ।
माशूक शोख़ो आशिके दीवाना चाहिए ।।

प्रेयसीसे मिलनके समय उचित यह है कि प्रेयसीका व्यवहार चचल हो और प्रेमी प्रेममे विभोर हो । ऐसा न हो तो आनन्द नही आता । दोनो तरफसे सजीदगी और आत्म दमनका व्यवहार (आलमे तमकीनो ज़ब्त) होने पर मिलन भी विरह सदृश्य हो जाता है । शयन गृहमे भी राजदर्बारके नियमो पर चलनेका परिणाम जाहिर ही है ।

उस लबसे मिल ही जायगा बोसा कभी तो, हाँ ।
शौके फिज़ूलो ज़ुरअते रिन्दाना चाहिए* ।।

आशय यह है कि ससारमे शौक और हिम्मत बिना कुछ नही होता ।

दोस्तीका परदा है बेगानगी ।
मुँह छुपाना हमसे छोडा चाहिए ।।

माशूकसे पर्दा छुडवानेके लिए कैसी दलील पेश की है । मुँह छुपानेसे लोग जानेगे कि तुम्हारी मुझसे बिगड गई है, जिसका अर्थ वह यह निकालेगे कि पहिले हमारी परस्पर मित्रता थी । अगर तुम नही चाहते हो कि लोग इस भ्रममे पडे तो मुझसे पर्दा करना छोड दो ।

नुक्ताचीं[1] है गमेदिल उसको सुनाये न बने ।
क्या बनें बात जहाँ बात बनाये न बने ।।

ग़ौर फिरता है लिये यूँ तेरे ख़तको कि अगर ।
कोई पूछे कि यह क्या है तो छुपाये न बने ।।

---

*मीरीमें, फ़क़ीरीमें, शाहीमें, गुलामीमें ।
कुछ काम नहीं बनता बे जुरअते रिन्दाना ।।
—इक़बाल

[1]बालकी खाल निकालता है ।

इश्क़पर ज़ोर नही, है यह वोह आतिश 'ग़ालिब' !
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने ॥

इश्क वह आग है कि माशूकके दिलमे लगा नही सकते और अपने दिलसे बुझा नही सकते। हर तरह मजबूर है।

वोह आके ख़्वाबमे तसकीनेइज़्तराब तो दे।
वले मुझे तपिशेदिल मजाले ख़्वाब तो दे ॥

वह तो स्वप्नमे आकर मुझे तसल्ली दे सकते है, लेकिन मेरी तपिशे दिल (दिलकी आग) मुझे सोने दे तभी तो स्वप्नमे वे आये।

हॉ खाइयोमत फरेबेहस्ती।
हरचन्द कहे कि है, नही है ॥

जिन्दगी एक धोका है, इसके फरेबमे न आओ। चाहे लोग कितना ही इसके अस्तित्वका ढोल पीटे, तुम यही समझो कि कुछ भी नही है।

हम रश्कको अपने भी गवारा नही करते।
मरते है मगर उनकी तमन्ना नही करते ॥

हम उनकी मुहब्बतमे मरे जाते है, परन्तु हमे अपने ऊपर भी इतनी ईर्ष्या होती है कि हम उनसे मिलनेकी अभिलाषा नही रखते। गोया अपनेको भी गैर समझ लिया है।

दिया है दिल अगर उसको, बशर है क्या कहिए।
हुआ रकीब तो हो, नामाबर है क्या कहिए ॥

उनका जमाल ही ऐसा है कि जो देखता है दिल खो बैठता है। फिर हमारा नामाबर खत देनेके साथ-साथ अपना दिल भी दे बैठा तो उसका दोष भी क्या ? आखिर इन्सान है पत्थर तो नही !

जहे करिश्मा[1] कि यूँ दे रखा है हमको फरेब ।
कि बिन कहे भी उन्हें सब ख़बर है, क्या कहिए ।।

यह ज़िद कि आज न आये और आये बिन न रहे ।
कज़ासे शिकवा हमें किस क़दर है, क्या कहिए ?

मौतसे कहते है कि कम्बख्त जब तुझे एक दिन आना ही है तो आज जब हमे तेरी आवश्यकता है, क्यो नही आ जाती कि हमारा काम भी बन जावे, और तेरा काम भी पूरा हो जावे। जरूरतके समय तो आती नही और किसी न किसी दिन ख्वाहमख्वाह सर पर आन खडी होगी। कैसी दुष्ट है।

समझके करते है बाज़ारमें वोह पुरसिशेहाल[2] ।
कि यह कहे कि सरे रहगुज़र है, क्या कहिए ।।

माशूक महोदय बडे चालाक है। जानते है कि शिष्टाचार हमे इस बातकी आज्ञा न देगा कि बीच बाजार हम आपसकी बाते करे, इसीलिए जान बूझकर बाजारमे हाल पूछते है, ताकि हम कुछ न कह सके।

कभी नेकी भी उसके जीमें गर आजाय है मुझसे ।
जफाएँ करके अपनी याद शरमा जाय है मुझसे ।।

इस शर्मकी वजहसे जो कभी नेकी करनेका विचार बनता भी है तो वह विचारमात्र रह जाता है।

वोह बदख़ू[3] और मेरी दास्तानेइश्क़[4] तूलानी[5] ।
इबारत मुख़्तसिर[6] क़ासिद भी घबरा जाय है मुझसे ।।

---

[1]जादू तो देखो, [2]हाल पूछना,
[3]बद दिमाग, [4]प्रेम गाथा ;
[5]लम्बी, [6]सक्षेपमे बात यह है कि।

उधर वोह बदगुमानी है, इधर यह नातवानी है ।
न पूछा जाय है उससे न बोला जाय है मुझसे ॥

वह मेरे इश्कको झूठा समझते है, इस कारण मेरा हाल नही पूछते, और मै निर्बलताके कारण बोल नही सकता, फिर बात बने तो कैसे ।

सम्भलने दे मुझे ऐ नाउमीदी ! क्या क़यामत है !
कि दामाने ख़याले यार छूटा जाय है मुझसे ॥

इससे बढ कर और निराशा क्या हो सकती है कि प्रेयसीका चिन्तन भी (दामाने खयाले यार) मनसे लोप होनेको है ।

क्या ताज्जुब है कि उसको देखकर आजाय रहम ।
वाँ तलक कोई किसी हीलेसे[1] पहुँचा दे मुझे ॥

बाज़ीचए अतफाल[2] है दुनिया मेरे आगे
होता है शबोरोज़ तमाशा मेरे आगे

दुनियाका महत्त्व मेरी आँखोमे बच्चोके खेलसे अधिक नही ।

मत पूछ कि क्या हाल है, मेरा तेरे पीछे ।
तू देख कि क्या रंग है तेरा मेरे आगे ॥

× × ×

नफरतका गुमाँ गुज़रे है, मै रश्कसे गुज़रा ।
क्योंकर कहूँ लो नाम न उनका मेरे आगे ॥

मेरे अतिरिक्त कोई उनका नाम भी ले तो मुझे बर्दाश्त नही, मुझे उससे रश्क होता है । लेकिन लोग समझते है कि मै नफरतकी वजहसे उनका नाम नही सुनना चाहता । मै और उनसे नफरत करूँ ? यह लाछन मुझे पसन्द नही । बलासे ईर्ष्याकी आगमे जलता रहूँगा, किन्तु किसीको अब उनका नाम लेनेको मना न करूगा ।

---

[1]बहानेसे; [2]बच्चोका खेल ।

ईमाँ मुझे रोके है तो खीचे है मुझे कुफ्र ।
काबा मेरे पीछे है कलीसा मेरे आगे ॥

काबा ईमानकी तरफ खीचता है, कलीसा कुफ्रकी तरफ। ऐसी स्थितिमे न जाने मेरा क्या हाल होगा।

फिर देखिए अन्दाज़े गुलअफशानिए गुफ्तार[1] ।
रख दे कोई पैमाना-ओ-सहबा मेरे आगे ॥

मेरे सामने शराब और प्याला (पैमाना व सहबा) रख दो, फिर देखो, मेरे मुँहसे कैसे फूल झडते है। मेरी खुशवयानी शराब पीनेपर निर्भर है।

ख़ुश होते है पर वस्लमे यूँ मर नही जाते ।
आई शबेहिजराँकी तमन्ना मेरे आगे ॥

वस्लमे खुश तो सब होते है, पर मै खुशीके मारे प्राण त्याग बैठा हूँ। यह असाधारण बात शायद इसलिए हुई है कि विरह-रात्रिमे मैने मौतकी दुआ मागी थी जो ईश्वरने वस्लके समय पूरी की।

कहूँ जो हाल तो कहते हो मुद्दआ कहिए ।
तुम्ही कहो कि जो तुम यूँ कहो तो क्या कहिए ॥

मै जो अपना हल बताता हूँ तो कहते है कि आखिर तू चाहता क्या है। जो जान कर अनजान बने उसे कोई क्या बताए।

न कहियो तानसे फिर तुम कि हम सितमगर है ।
मुझे तो ख़ू है कि जो कुछ कहो बजा कहिए ॥

आपने अपनेको सितमगर कहा और मैने कह दिया कि आप बजा फर्माते है तो इसमे मेरा क्या कुसूर ? मुझे तो आपकी हर बात पर

---

[1] बातोके फूल झडना।

'बजा है' 'मुनासिब ह' कहनेकी आदत पडी हुई है। उसी आदतकी वजहसे यह गुस्ताखी हुई। वराय महर्बानी आइन्दा ऐसा जुमला न कहे, जिसके जवाबमे मै 'बजा है' कहूँ तो आपको नागवारे खातिर हो।

रोनेसे और इश्कमें बेबाक हो गये।
धोये गये हम ऐसे कि बस पाक हो गये॥

जब तक आँखसे आँसू न निकले थे, हमारा प्रेम गुप्त था। अब जब आठ पहरका रोना हो गया तो लज्जा जाती रही। अब खुले खजाने प्रेम व्यापार चलता है। गोया बिल्कुल शोहदे बन गये।

कहता है कौन नालये बुलबुलको[1] बेअसर।
परदेमे गुलके लाख जिगर चाक[2] हो गये॥

करने गये थे उससे तगाफुलका[3] हम गिला[4]।
की एक ही निगाह कि बस खाक हो गये॥

इस रंगसे उठाई कल उसने 'असद'की लाश।
दुश्मन भी जिसको देखके गमनाक हो गये॥

रोनेसे ऐ नदीम[5]! मलामत न कर मुझे।
आखिर कभी तो उक़दयेदिल वा करे[6] कोई॥

इब्नेमरियम[7] हुआ करे कोई।
मेरे दुखकी दवा करे कोई॥

बातपर वाँ जबान कटती है।
वोह कहे और सुना करे कोई॥

—फ़ैज़

§ **कहीं वह आके मिटा दें न इन्तज़ारका लुत्फ।**
कहीं क़बूल न हो जाय इल्तजा मेरी॥

—जिगर मुरादाबादी

कौन है जो नहीं है हाजतमन्द ।
किसकी हाजत रवा करे कोई ॥

× × ×

क्या किया खिज्रने सिकन्दरसे ।
अब किसे रहनुमा करे कोई ॥

खिज्र सिकन्दरको आबेहयातके चश्मेपर ले तो गया, मगर आबे-हयात स्वय पी लिया और उसे उन आदमियोके सामने ले गया, जिन्होने यह आबेहयात पी तो लिया था, लेकिन बुढापे और कमजोरीकी वजहसे गोश्तके लोथडेसे मालूम होते थे । सिकन्दरने उनकी यह हालत देखकर पानी न पिया । मिर्जा फर्माते है जब खिज्र जैसा राहबर ऐसा धोखा दे सकता है, तब और किस रहनुमापर विश्वास किया जाय ?

हजारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिशपै दम निकले ।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले ॥

मगर[1] लिखवाये कोई उसको खत तो हमसे लिखवाये ।
हुई सुबह और घरसे कानपर रखकर कलम निकले ॥

× × ×

हुई जिनसे तवक्कोह खस्तगीकी दाद पानेकी ।
वोह हमसे भी जियादा खस्तये तेगे सितम निकले ॥

जिन लोगोसे हमे अपने दुख (खस्तगी) मे सहानुभूति और सहायता पानेकी आशा (तवक्कोह) थी, वह हमसे भी बढकर दुखो का शिकार (खस्तएतेगे सितम) नज़र आये । अर्थात् अब किसी तरफसे कोई आशा नही ।

आपने अपनेको सितमगर कहा और मैने कह दिया कि आप बजा फर्माते है तो इसमे मेरा क्या कुसूर ? मुझे तो आपकी हर बात पर

---

[1]बातोके फूल झडना ।

कहाँ मयखानेका दरवाजा 'ग़ालिब' और कहाँ वाइज़ ।
पर, इतना जानते हैं, कल वोह जाता था कि हम निकले ।।

× × ×

सियाही जैसे गिर जाये दमेतहरीर काराजपर ।
मेरी क़िस्मतमें यूँ तसवीर है शबहायेहिजराँकी ।।

मेरे जीवनमे विरहकी राते (शबहाए हिज्राँ) यूँ भरी पडी है, जैसे लिखते समय (दमे तहरीर) कागजपर सियाही गिर पडे और काले धब्बोसे कागज़ भर जाय ।

पच आ पड़ी है वादयेदिलदारकी मुझे ।
वोह आये या न आये, मुझे इन्तज़ार है ।।*

मुझे भी उनके वादा करनेसे ज़िद (पच) हो गई है कि इन्तजार जरूर करना, चाहे वोह आवे या न आवे ।

फूंका है किसने गोशेमुहब्बतमें ऐ ख़ुदा !
अफसूने इन्तज़ारे तमन्ना कहें जिसे ।।

तानेके ढग पर मिर्ज़ा खुदासे पूछते हैं कि ऐ खुदा ! मुहब्बतके कानमे यह जादू (अफसूँ) किसने फूंक दिया कि तमन्नाके पूरी होनेका इन्तज़ार करते रहना । न तमन्ना कभी पूरी होगी न मोहब्बतका इन्तज़ार समाप्त होगा । यह इन्तज़ार ही शायद मोहब्बतकी जान है ।§

---

* **न जाने किस लिए उम्मीदवार बैठा हूँ ।**
एक ऐसी राहपै जो उनकी रहगुज़र भी नहीं ।।
—फ़ैज़

§ **कहीं वह आके मिटा दें न इन्तज़ारका लुत्फ ।**
कहीं क़बूल न हो जाय इल्तजा मेरी ।।
—जिगर मुरादाबादी

ग़ालिब बुरा न मान जो वाइज़ बुरा कहे।
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे॥

× × ×

नाकरदा[1] गुनाहोंकी भी हसरत की मिले दाद[2]।
यारब! अगर इन करदा गुनाहोंकी सज़ा है॥

हे ईश्वर! यह कहाँका न्याय है कि जो मैंने गुनाह किये हैं, उनकी तो तू सजा दे रहा है, लेकिन जो गुनाह मैंने नही किये है, उनका पुरस्कार कुछ भी नही मिल रहा है। ईश्वरके समक्ष इतनी निर्भीकता और स्पष्टना-से बोलना, मिर्जाकी दिलेरी और शोख़ीकी बहतरीन मिसाल है।

वाइज़! न तुम पियो न किसीको पिला सको।
क्या बात है तुम्हारी शराबेतहूरकी!!

वाइज पर छीटा फका है कि तुम बहिश्तकी शराब (शराबे तहूर) की शेखी क्या बघारते हो, प्रत्यक्ष कोई चीज हो तो हम माने।

गरमी सही कलाममे लेकिन न इस कदर।
की जिससे बात उसने शिकायत ज़रूर की॥

जबानमे थोडी-बहुत शोखी और चुस्ती तो ठीक, लेकिन इतनी गर्मी भी किस कामकी कि हर एक शिकायत करे।

'गालिब' गर इस सफ़रमे मुझे साथ ले चलें।
हजका सवाब नज़्र करूँगा हुजूरकी॥

कौन दीवाना हजके पुण्य (सवाब) का अभिलाषी है। किसी तरह उनके साथ रहूँ, यही मेरी तमन्ना है। अगर मुझे वे अपने साथ हजको ले चले तो हज यात्राका पुण्य जो मुझे प्राप्त होगा, वह मै उन्हीको दे दूगा। बादशाहके हजको जानेके लिए तय्यार होते समय यह शेर कहा था।

---

[1]न किए हुए, [2]पुरस्कार।

कहते हुए साक़ीसे हया आती है वर्ना।
है यूँ कि मुझे दुर्देतहेजाम बहुत है॥

हमारा स्वाभिमान हमे इजाजत नही देता कि हम अपना भरम साकी पर प्रकट करे। अन्यथा हमारी स्थिति तो ये है कि जिस शराबकी तलछट (दुर्देतहेजाम) को वह फेक रहा है, वही हमारे लिए पर्याप्त है। एक स्वाभिमानीकी अभिलषित मनोदशाका कितना सजीव चित्रण है।

नै तीर कमाँमें है न सैयाद कमींमें।
गोशेमे क[illegible]मुझे आराम बहुत है॥

बुलबुल कहती है कि [illegible]मे बहुत आरामसे हूँ, न अब मेरे लिए कोई कमानमे तीर लगाता है [illegible] सैयाद ताकमे रहता है। भाव ये है कि मै एकान्तमे रहकर इतन[illegible]जीवन व्यतीत कर रहा हूँ कि किसीको भी ईर्ष्या नही होती*

जमजम ही पै छोड़ो मुझे क्या तोफेहरमसे।
आलूदा बमय जामये अहराम बहुत है॥

जमजम काबेके एक पवित्र कुएँका नाम है। जहाँपर हाजी मदीनेकी परिक्रमा देनेमे पूर्व शरीर-शुद्धिके लिए वज़ू करते है, और जामये अहराम उस लिबासका नाम है, जिसे पहनकर परिक्रमा दी जाती है। मिर्जाकी रिन्दाना जुरअतका क्या कहना ? वे हजमे भी शराब साथ ले गये और गज़ब यह किया कि जामये अहराम पहन कर जमजम पर बैठकर इतनी पी कि बेखुदीमे वह यात्रा करनेका पवित्र लिबास भी

---

*—शोहरत और खुशीकी ज़िन्दगी ही दुखोको निमत्रण देती है, इस भावको असगर गोण्डवीने यूँ अदा किया है—

नाज़मये पुरदर्द छेड़ा मैंने इस अन्दाज़से।
खुदबखुद पड़ने लगी मुझपर नज़र सैयादकी॥

भिगो लिया। होश आने पर जामये अहरामकी हालत देखी तो बडे पसोपेशमे पडे, इससे यात्रा कौन करने देगा और ज़ाहिदोनासेह क्या-क्या न बकेगे। इसीलिए वह यात्रा स्थगित करके जामये अहरामके धब्बोको आबे ज़मज़मसे धोनेके लिए रुकना चाहते है[1] एक तो रिन्दाना जुरअत यह देखिये कि हजके कपडोसे ज़मज़मपर शराब पी, दूसरी शोख़ी यह कि जिस कुएँपर हाजी आचमन करते है, उसे आप धोबीघाट समझते है[2]। इसी मजमूनका एक और शेर है।

रात पी ज़मज़मपै मय और सुबहदम।
धोये धब्बे जामए अहरामके॥

× × ×

ख़ूँ होके जिगर आँखसे टपका नहीं ऐ मर्ग!
रहने दे मुझे याँ कि अभी काम बहुत है॥*

---

[1]--इसी भावको रियाज़ ख़ैराबादीने भी किस खूबीसे बयान किया है--

धोना है दाग़े जामये अहराम सुबह-सुबह।
हुजरेसे शेख़ पानीकी छागल उठा तो ला॥

मिर्जा जमज़मको धोबी घाट बनाते है तो रियाज़ धर्माचार्य्यको अपना नौकर समझकर उसीसे पानी मँगाते है, और 'दर्द' की हिम्मत देखिये कि वे अपने वस्त्रोको धोना तो दरकिनार, अब भी उसे इतना पवित्र समझते है कि फरिश्ते भी उससे वज़ू करना चाहे--

तर दामनीपै शेख़ हमारी न जाइयो।
दामन निचोड़ दें तो फ़रिश्ते वज़ू करें॥

***बाग़े बहिश्तसे मुझे हुक्मे सफ़र दिया था क्यों?**
कारेजहाँ दराज़ है, अब मेरा इन्तज़ार कर॥

--इक़बाल

मौतसे कहते है कि अभी तो इश्कका शुरू है, और तू अभीसे हमारी जान लेनेको आ गई। अभी तो मुझे बहुत काम करने है। कमसे कम जिगरका खून तो आँखोसे टपक जाय। अर्थात् इश्ककी कुछ मञ्जिले तो तै कर ले।

होगा कोई ऐसा भी कि ग़ालिबको न जाने।
शायर तो वह अच्छा है, पै बदनाम बहुत है॥

मुद्दत हुई है यारको मेहमाँ किए हुए।
जोशे क़दहसे[1] बज़्म चरागाँ[2] किए हुए॥
करता हूँ जमा फिर जिगरे लख़्त-लख़्तको[3]।
मुद्दत हुई है दावते मिज़गाँ[4] किए हुए॥
फिर दिल तवाफ़े कूए मलामत[5]को जाए है।
पिन्दारका[6] सनमकदा[7] वीराँ किए हुए॥
फिर शौक़ कह रहा है ख़रीदारकी तलब।
अर्ज़े मताए अक़्लो दिलोजाँ किए हुए॥
दौड़े है फिर हर एक गुलो लाला पर ख़याल।
सदगुलसिताँ निगाहका सामाँ किए हुए॥
फिर चाहता हूँ नामए दिलदार खोलना।
जाँ नज़्रे दिल फ़रेबिए उनवाँ[8] किए हुए॥
माँगे है फिर किसीको मुक़ाबिलमें आर्ज़ू।
सुरमेसे तेज़ दश्नए मिज़गाँ[9] किए हुए॥

---

[1]प्यालो से, [2]आलोकित, [3]जिगरके टुकडोको,
[4]पलकोको निमंत्रित, [5]बदनाम कूचेकी तरफ, [6]स्वाभिमानका,
[7]मन्दिर, [8]सरनामेकी दिलफरेबीपर न्यौछावर,
[9]पलकोका खजर।

एक नौबहारे नाजको ताके है फिर निगाह।
चेहरा फरोगे मयसे[1] गुलिस्ताँ किए हुए ॥

फिर जीमे है कि दरपै किसीके पडे रहे।
सर जेरे बारे मिन्नते दरबाँ किए हुए ॥

जी ढूँडता है फिर वही फुर्सत कि रातदिन।
बैठे रहे तसव्वुरे जानाँ किए हुए ॥

'गालिब'! हमे न छेड कि फिर जोशे अश्क से।
बैठे है हम तहियये तूफाँ किए हुए ॥

यह गजल मुसलसल है। अलफाजके चुनाव और बयानकी खूबीके लिहाजमे यह गालिबकी बहतरीन गजलोमेसे है। इसमे प्रवाहकी छटा देखते ही बनती है। मजमून गहरा नही है, लेकिन हुस्ने बयान तारीफ-से बाहर है। बात केवल इतनी-सी कहना चाहते है कि बहुत दिनोके बाद जीमे इश्कका वलवला उठा है, किन्तु इस भावनाने उदित हो कर दिलमे क्या-क्या कैफियते पैदा की है और कैसे-कैसे खयाली नकशे बनाए है। बार बार जो 'फिर' के शब्द का उपयोग किया है, इससे साबित होता है कि यह इन मजिलोसे पहिले भी गुजर चुके है। भावार्थ यूँ है—

"यारको अपने घर पर बतौर मेहमान बुलाए और शराबके प्यालो-से महफिलको आलोकित किए अर्थात् मय नोशीका जलसा किए बहुत दिन हो गए है। एक बार माशूकने आँख भर कर मेरी तरफ देखा था तो जिगर टुकडे-टुकडे हो गया था। अब चाहता हूँ कि वह फिर मेरी तरफ देखे, इस लिए जिगरके टुकडोको जोड रहा हूँ ताकि वह फिर माशूककी नजरका निशाना बन सके। जिस स्वाभिमानको मै प्रतिष्ठित समझ कर पूजता था, उसे छोड कर दिल आज फिर रुसवाई और बदनामीके मार्ग

---

[1]शराबके नशेसे।

पर जा रहा है, और शौक यह चाहता है कि बलासे अक्ल और दिल और जान तीनो जाते रहे, लेकिन प्रेमपात्र कोई मिल जावे। मेरी कल्पना फिर सुन्दर युवतियोकी तरफ दौडती है और कल्पनाके फूलोने एक बहुरग उद्यान सजा लिया है। यारके पत्रको फिरसे हाथमे लेकर खोलनेकी अभिलाषा है और खोलनेसे पहिले चाहता हूँ कि सरनामेकी दिल फरेबीके कारण उस पर अपनी जान ही न्यौछावर कर दूँ। इच्छा यह है कि काली जुल्फे चेहरे पर फैलाए माशूक अपने कोठेसे फिर अपना जलवा दिखलाए, और वह यूँ मेरे सामने आवे कि सुरमेसे उसने अपनी पलके खजरकी तरह घातक बना रखी हो। शराबके नशेमे मखमूर एक अल्हड सुन्दरीको फिर से मेरी आँखे ताक रही है। बस, अब तो यह जी मे है कि माशूकके दर्वाज़े पर उसके दर्बानकी खुशामद करके पडा रहूँ, और ऐसी फुरसतकी तलाश है कि यारके चिन्तवनमे ही बैठा रहूँ। इस प्रकारके विचारोसे जी इतना भर आया है कि मुझे कोई मत छेडे, वरना मै रोकर एक तूफान उठा दूँगा।

नवेदे अम्न है बेदादे दोस्त जाँ के लिए।
रहे न तर्ज़े सितम कोई आसमाँ के लिए॥

माशूकके सितम (बेदादे दोस्त) तो मेरे लिए शान्ति समाचार (नवेदे अम्न) है, क्योकि जब माशूक सब प्रकारके सितम मुझ पर ढा लेगा तो आस्मान कोई नया सितम न ढा सकेगा और आसमानकी दी हुई मुसीबते मुझे मुसीबते न मालूम देगी। उर्दू शायरीका आशिक माशूकको किसी तरह भी दोष देना ही नही चाहता।

मिसाल यह मेरी कोशिशकी है कि मुर्गे असीर।
करे क़फ़समें फ़राहम खस आशियाँके लिए॥

कैदी पछी (मुर्गे असीर) अगर पिजरे (कफस) मे इसलिए घास

फूस और तिनके (खस) जमा (फराहम) करे कि मै घोसला (आशियाँ) बनाऊँगा तो ज़ाहिर है कि वह बेकार मेहनत कर रहा है। न वह पिंजरे-से बाहर आयगा, न घोसला बना सकेगा। मेरा भी प्रत्येक प्रयत्न इसी प्रकारका है। व्यर्थ भी और दयनीय भी।

गदा समझके वह चुप था मेरी जो शामत आई।
उठा, और उठके कदम मैंने पासबाँ के लिए॥

यह शेर एक पूरा अफसाना है। कहानी यूँ है कि हम माशूकके घर पर गये, वहाँ दरबान चौखट पर पहरा दे रहा था। उसकी नज़र बचाकर भला कैसे अन्दर घुसा जा सकता था और वापिस जानेके लिए दिल कहाँ मानता था। इसलिए एक तरफको गलीमे बैठ गये कि शायद कोई सूरत बन जाय। फटा हाल और चेहरे पर फिटकार तो थी ही, दरबान यह समझा कि यह कोई भिखमगा है जो थक कर या भीख मिलनेकी आशा-मे बैठ गया है, इसलिए कुछ न बोला। पर थोडी देर बाद जब इन्तजार दूभर हो गया तो यह तरकीब सूझी कि दर्बानकी खुशामदसे शायद काम बन जाय। (रिश्वतके लिए शायद पैसे न होगे!) यह सोचकर दर्बान-के पैरो पर झुक गये कि इससे बढकर और क्या खुशामद हो सकती है। पैरो पर पडना था कि दर्बान समझ गया कि आँ हज़ारत तो--आशिक है और ऐसे ही दुष्टोको दूर रखनेके लिए उसे पहरेदारीकी नौकरी मिलती है। बस, पडने लगे ऐसे तडातड, कि तबियत झक्क होगई। न पैरोपर पडते न शामत आती।

मीरके शेरका अहवाल कहूँ क्या 'ग़ालिब'।
जिसका दीवान कम अज़ गुल्शने कशमीर नहीं॥

भारत क्या सारे ससारमे कशमीरके उद्यानोंका सौन्दर्य्य प्रसिद्ध है। 'मीर' की कविताकी इस सौन्दर्य्यसे उपमा देकर गालिबने अपनी उदारताका परिचय दिया है। और भी दो तीन स्थानो पर

ग़ालिबने मीरकी मुक्तकठसे प्रशसा की है। मीर सचमुच मीर है।

कमाले हुस्न अगर मौक़ूफे अन्दाजे तगाफुल[1] हो।
तकल्लुफ बर तरफ[2], तुझसे तेरी तसवीर अच्छी है॥

उपेक्षाके व्यवहार पर ही यदि सौन्दर्य्यकी परख है तो तुम्हारी तसवीर तुमसे भी बढकर सुन्दर है, क्योकि तसवीरका उपेक्षा भाव तुमसे भी अधिक है, वह तो किसीसे भी नही बोलती।

अश्क रोता है कि बज्मे तरब आमादा करो।
बर्क हँसती है कि फ़ुर्सत कोई दम है हम को॥

बादलकी प्रेरणा यह है कि रगरलियोकी महफिल जमाई जाये। लेकिन बिजली (बर्क) एक तरफको हँस रही है कि इन मूर्खोंको पता नही कि इनका जीवन क्षणिक है, और यह मसूबे व्यर्थ है। बादल शराब पीने और रगरलियाँ मनानेका द्योतक होता है और बिजली विनाशकी।

वीदा ख़ूँबार है[3] मुद्दत से वले[4] आज नदीम[5]!
दिलके टुकड़े भी कई ख़ूनमें शामिल आये॥

सामना हूरो परी ने न किया था न करें।
अक्स तेरा ही मगर तेरे मुकाबिल आये*॥

तेरा सौन्दर्य्य अद्वितीय है। हूर और परीकी क्या मजाल कि तेरी समता कर सके। तेरा प्रतिबिम्ब ही तेरा मुकाबला करे तो करे।

१४ जनवरी १९५१

---

[1]उपेक्षाके व्यवहारपर निर्भर, [2]तकल्लुफकी बात और है।
[3]आँख रक्त प्रवाह करती है, [4]लेकिन, [5]मित्र।

***संभल कर देखना आराइशोंके बाद आईना।**
यह आईना नहीं है, अब यह टक्कर है बराबर की॥

—अज्ञात

७६

ममनून

मीर निजामुद्दीन 'ममनून' कमरूद्दीनके पुत्र और सोनीपतके थे, पर र देहली रहते थे। अपने पितासे शायरी सीखी। १८४४ मे समाधि पाई।

इलाही वोह जो वायदे है, वफा किस तरह होवेंगे ?
न वाँ ख़ू[1] याद आने की न याँ शेवा तकाज़े का ॥

यह न जानै थे कि उस महफिल में दिल रह जायगा।
हम यह समझे थे चले आयेंगे दमभर देखकर ॥

कौन आये है ? कि सीने में बेदार होगई[2]।
सद आरज़ूए ख़ुफ़्ता[3] सदाएकदम के साथ ॥

इन्तकादियात, भाग २, पृ० १३६

मेरे यह गर्म आँसू पूछ मत दस्ते हिनाईसे[4]।
कि इन आँखों से रहता है रवा सैलाब आतिशका ॥

तबस्सुमे लबे गुंचाको[5] देख रोता हूँ।
कि रंग है यह उसी ख़न्दये निहानीका[6] ॥

गुमां न क्योंकि करूँ तुझपै दिल चुरानेका ।
झुकाके आँख सबब क्या है मुस्करानेका ॥

---

[1]आदत, [2]जागृत हो गई, [3]सैकडो सुप्त अभिलाषाएँ,
[4]पगध्वनि, [5]मेहन्दी रचे हुए हाथोसे,
[6]कलीकी मुस्कानको, [7](प्रेयसिकी) छुपी हुई हँसीका।

ख़ामोश हमज़बाँ यह लिया तूने किसका नाम ?
दिल में उठी वोह हूक कि दम-सा निकल गया ॥

ऐ वाये सादगीए वफा बाद सदफरेब[1] ।
आज उसके झूठे वादे पै मै फिर सम्भल गया ॥

तेरे मरीज़े गमकी यह हालत है ज़ौफ़से[2] ।
इक आहे नातवाँ भी कभू है कभू नही ॥

किसके दिल पै रखा था तुमने हाथ ?
रात यों दिलको बेकरारी थी ॥

सख़्त कुछ अफसुर्द ओ दिलगीर-से[3] रहते हो तुम ।
ख़ैर बाशद[4] मीर 'ममनूं' तुम पै क्या उफ़्ताद है[5] ?

बुलबुल ही इस चमनसे न कुछ नौहागर[6] गई ।
बादे सहर[7] भी आके दमेसर्द भर गई ॥

—'निगार' जनवरी ५०

---

[1]सौ धोखोके बाद भी, [2]दौर्बल्यसे, [3]उदास-से,
[4]कुशल तो है; [5]कष्ट, [6]रोती हुई,
[7]प्रातः कालीन समीर ।

इनकी कृतियोमे छ दीवान उर्दू, एक फारसी, और एक मसनवी है। इनके अतिरिक्त कसीदे और मर्सिये भी काफी लिखे है। अमीर मीनाई-जैसे ख्याति प्राप्त शायर इन्हीके शिष्य थे। उर्दू-भाषापर असीरका आश्चर्य-जनक प्रभाव सभी उर्दू-साहित्यिक स्वीकृत करते है, परन्तु उनका कलाम साधारण लखनवी रगका है। कभी-कभी लखनवी रगसे अलग होकर लिखते थे तो खूब लिखते थे।

कहनेको यूँ जहाँमे हजारो है यार-दोस्त।
मुश्किलके वक़्त एक है परवर्दगार दोस्त॥

जिदसे जितना है यहाँ काफ़िरो दींदारमे फर्क़।
जाहिद इतना तो नही सबुहओ[1] जुन्नारमे[2] फ़र्क़॥

आया है हमको हाथ यह मजमूँ चरागसे।
रोशन उसीका नाम रहे जो जलाये दिल॥

—तारीख़े अदबे उर्दू, पृ० ३०४

काग़ज़ तमाम[3], किल्क तमाम और हम तमाम।
पर दास्ताने शौक़ अभी नातमाम[4] है॥

बुतकदेकी मै सैर कर आया।
वाँ ख़ुदा ही ख़ुदा नज़र आया॥

नब्ज़ बीमारकी ऐ रश्के मसीहा देखी।
आज क्या आपने जाती हुई दुनिया देखी॥

ख़ुदा जाने यह दुनिया जलवागाहे नाज़ है किसकी?
हजारो उठ गये, रौनक़ वही बाकी है महफिलकी॥

७ सितम्बर १९५०

---

[1] सुमरन, माला, समाप्त,
[2] जनेऊमे,
[3] अधूरी।

८२

अमानत

[१८१६–१८५८ ई०]

सैयद आगाहसन 'अमानत' मीर आगा रिजवीके पुत्र थे। बीस वर्षकी उम्रमे यह अकस्मात गूगे हो गये और ९ वर्षके बाद जबान खुली। इनकी कई पुस्तके छप चुकी है। उनमे 'इन्दरसभा' 'वासोख्त' काफी प्रसिद्ध है। नासिखकी चलाई प्रथा रियायते लफ्जीका इनमे पूर्ण विकास हुआ। दो पुत्र लताफत और फसाहतको छोडकर सन् १८५८ मे परलोक सिधारे।

बज्मे आलममें यह हर शब है 'अमानत'की बुआ।
शमअरूए यारसे रोशन मेरा काशाना हो॥

फी सबील अल्लाह पानी इनको दो ऐ आबलो!
काँटे अब देखे नहीं जाते जबाने खारके॥

आँसू रवाँ है जुल्फे सियहके खयालमें।
मोती पिरो रहा हूँ तेरे बाल-बालमें॥

इश्कका खंजर लगा है दिलपै कारी इन दिनो।
जख्मकी सूरत है खूं आँखोंसे जारी इन दिनो॥

कूचये क़ातिल तलक ऐ दिल! रसाई कीजिये।
कासये सर हाथमें लेकर गदाई कीजिये॥

—तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ३०६

८ सितम्बर १९५०

८३

क़लक

ख्वाजा 'अरशद' अलीखाँ उर्फ असदुल्लाखाँ 'आफताबउद्दौला' की पदवीसे विभूषित थे। ख्वाजा वज़ीरके भाञ्जे और शागिर्द भी थे। खुशामद और ज़माना साज़ीके तौरपर वाजिदअलीका शिष्य भी अपनेको कहते थे। इनकी मसनवी 'तिलस्मे उल्फत' काबिले तारीफ है। गजले मामूली हैं।

ऐसे दीवाने हो सर सगसे[1] फोड़ें अपना।
कभी बादाम जो देखें तेरी प्यारी आँखें॥

वह कौन है जहाँमें नहीं जिसको हुब्बेज़र[2]।
ज़ाहिद लगाएँ आँखोसे उस सीमतनके पाँव॥

९ सितम्बर १९५०

---

[1]पत्थरसे, [2]धनकी इच्छा।

८४

ज़की

शेख महदीअलीखाँ 'जकी' करामतअलीखाँके पुत्र थे। लखनऊके रहने वाले थे। नासिखके शिष्य थे। नवाबकी प्रशसामे कसीदा लिखनेसे पुरस्कृत हुए। फिर ये दिल्ली और दक्षिण भी गये, जहाँ अच्छा आदर-सत्कार हुआ। अन्तमे लखनऊ लौट आये और वाजिदअलीके दरबारी कवि बनाये गये और मलिकुश्शोअराकी पदवीसे विभूषित किये गये। अवधकी नवाबी (१८५७मे) समाप्त होनेपर मुरादाबाद चले गये थे, किन्तु नवाब युसुफ अलीखाँके निमत्रण पर रामपुर रहने लगे थे और नवाबकी मृत्युके बाद अम्बाले चले गये थे। वही १८६४ ई० मे समाधि पाई। ये उर्दू काव्यशास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे और उस विषयपर एक पुस्तक भी लिखकर १८५८ ई० मे प्रकाशित की थी। इनका एक दीवान प्रकाशित हुआ है।

जा-बजा चर्चे हुए जब हुए हमसे दो-चार।
खुल गया राज़ पड़ी बात जो दो-चारके मुँह॥

अब सबब क्या है जो काँटा-सा खटकता है 'ज़की'।
यही वह दिल है जो रहता था सदा आँखोंमें॥

इन संगदिल बुतोंसे कहाँतक बराये दिल।
पहलूमें संग काश कि होता बजाये दिल॥

१० सितम्बर १९५०

८५

दरख़्शां

सैयद अलीखाँ 'दरख्शा' मीर मुगलके पुत्र, असीरके शिष्य और लखनऊके रहनेवाले थे। महताबुद्दौला कोकबुलमुल्क सितारएजगकी पदवीसे विभूषित थे। नवाब वाजिदअलीके बन्दी होनेपर ये भी उनके साथ कलकत्ते गये और वही समाधि पाई। ज्योतिष भी जानते थे। साधारण शायर थे।

खेद है कि इनका कलाम हमे दस्तयाब नही हो सका।

११ सितम्बर १९५०

नसीमके शिष्य—

८६

तसलीम

[१८२०–१९११ ई०]

शेख अमीरअल्लाह 'तसलीम' मौलवी अब्दुलसमद अन्सारीके बेटे थे। लखनऊमे परवरिश पाई थी। असगरअली 'नसीम' देहलवीके शिष्य थे। इनके ५ दीवान मिलते है। वर्तमान युगके तगज्जुलके सर्वश्रेष्ठ शायर मौलाना हसरत मोहानी इन्हीके शिष्य थे, जिनका परिचय और कलाम 'शेरोशायरी' मे प्रकाशित हो चुका है। ९६ वर्षकी आयुमें समाधि पाई। देहलवीरगमे शेर कहते थे।

अल्लामा 'नियाज' फतहपुरीने अपने एक मित्रके पत्रोत्तरमे लिखा है—

"हाँ, मैंने मुशी अमीरअल्लाह 'तसलीम, को देखा है, उनसे मिला भी हूँ और उनकी शायरीका भी मुअतरिफ (प्रशसक) हूँ। मेरी मसे भीग रही है और वे दौरे पुरअफशानीसे गुजर रहे है। हड्डियोका एक ढाँचा, जिसपर झुर्रियोका यह आलम जैसे कपडेपर अतू (ठप) कर दिया हो। बगैर असा (लकडी) के सहारेके एक कदम चलना दुश्वार, समाअत और बीनाई (श्रवण और दृष्टि शक्ति) तकरीबन मफकूद (नष्ट), कमर झुकी हुई, रीश-ओ-बरूत (दाडी-मूंछ) सब बर्फके गालेकी तरह सफेद, हाथ-पाँवमे रअशा (कम्पन) लेकिन खुशदिली और खुशमिजाजीका यह आलम कि गोया जवानी अभी आई है।"

"रामपुरमे ब-जुमरये खुशनवीसान मुलाज़िम (सुन्दर अक्षर लिखनेके कार्यपर नियत) थे। तीस रुपये मशाहरा था। लेकिन खिदमत मुआफ थी। .क्या बताऊँ किस कदर दिलचस्प इन्सान थे। बच्चोमे बच्चे, जवानोमे जवान और बूढे तो खैर वे थे ही। सौ से एक-दो साल कम। लखनऊसे कई माहके बाद वापिस आये है, यह वोह जमाना है, जब लखनऊ-मे सख्त ताऊन फैला था और शायद इसमे मुब्तला भी हो चुके थे। किसीने पूछा—हजरत! इस मर्तबा वतनमे बहुत कयाम रहा। फर्माने लगे—हाँ मियाँ, गया तो इसी इरादेसे था कि अब यहाँ वापिस न आऊँगा और हजरते ताऊनसे इल्तजा करूँगा कि मेरी मुश्किल भी हल कर दीजिये। लेकिन वहाँ वह इस कदर मसरूफ थे कि मेरी बात भी न पूछी। मज-बूरन वापिस आगया। अब इरादा है कि यह सैकडा पूरा ही कर लूँ। कहनेवालेने कहा—हजरत! इसके बाद फिर इकाई है। फर्माया—फिर जीना बेहयाई है।

"गज़लगोईमे चूँकि ये खान्दाने मोमिनसे ताल्लुक रखते है, इसलिए बावजूद लखनवी होनेके इनमे लखनवियत बहुत कम थी। जज्बात निगारीके साथ-साथ मोमिनकी हल्की-हल्की फारसी तरकीबोका बाकपन इनके कलामकी भी खसूसियत थी। एकबार मैंने खुद उनकी जबानसे एक गज़ल सुनी थी, दो-तीन शेर अब भी याद है—

जी में आता है कि इक दिन मरके हम।
हिम्मते दोशे अज़ीज़ाँ[1] देखलें।

इल्तफाते जोशे वहशत[2] फिर कहाँ?
हो सके जबतक, बयाबाँ[3] देखलें।

---

[1]इष्ट-मित्रोके कन्धोकी सामर्थ्य, [2]उन्मादावस्थाकी यह कृपा, [3]जगल, वीराना।

असीरके शिष्य—

८७

अमीर मीनाई

[१८२८–१९०० ई०]

मुशी अमीर अहमद 'अमीर' मीनाई, मौलवी करम मुहम्मदके पुत्र थे, और नवाब नसीरुद्दीनके शासनकाल १८२८ ई० मे लखनऊमे उत्पन्न हुए थे। शेरोसुखनका शौक बचपनसे ही था, क्योकि उन दिनो शेरो-शायरीके चर्चे आम थे। आतिश और नासिखके शिष्योके रोज़ाना मार्के, मुशायरोकी हर गली-कूचोमे धूम, अनीस और दबीर जैसे बाक-माल मर्सियेगो उस्तादोके हगामे, अमीर मीनाईको शायरीकी तरफ आकर्षित करनेके लिए काफी थे।

नवाब मुजफ्फरअलीखाँ 'असीर' मुशीजीके कवितागुरु थे, परन्तु हक तो यह है कि असीरका नाम मुशीजीकी बदौलत चमका। कुछ दिनकी लगन और मेहनतके बाद मुशीजीकी ख्याति फैलने लगी। नवाब वाजिद-अलीने प्रशसा सुनी तो उन्होने भी १८५२ ई० मे बुलाकर सुना, और दो ग्रन्थ—इरशादुलसुलतान, हिदायतुलसुलतान लिखाये। जिसके एवजमें मुशीजीको खिलअत और इनाम दिये गये।

मुशीजीकी ख्याति तबसे और भी अधिक बढती गई। १८५७ के विप्लवके कारण आर्थिक चिन्ताओमे ग्रसित हो गये। हितैषी मित्रोके समझाने बुझानेपर अग्रेज़ी नौकरी करनेपर प्रस्तुत भी हुए, परन्तु जब मालूम हुआ कि सर्विसके लिए प्रार्थनापत्र देना होगा तो उन्होने नौकरीका

इरादा तर्क कर दिया, और थोडे दिन बेकार रहनेके बाद नवाब रामपुरके निमन्त्रणपर रामपुर चले गये।

नवाब रामपुर बडे गुणज्ञ और कला-पारखी थे। उन्होंने भारतके हर कोनेसे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध हर प्रकारके गुणी एकत्र कर लिये थे। मुशीजीको उन्होने अपना कवितागुरु बनाकर काफी प्रतिष्ठा दी। रामपुरमे मुशीजी अत्यन्त आदर और सन्मानकी दृष्टिसे देखे जाते थे। साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्रोमे उनका व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था।

मुशीजी शायर होनेके अतिरिक्त, अरबी-फारसी और उर्दूके पूर्ण पण्डित, भाषा शास्त्र और शब्दकोषके प्रामाणिक अधिकारी और छन्द-शास्त्रके योग्य विद्वान थे। रामपुरमे सुख-शान्ति पूर्वक रहते हुए अध्ययन और ग्रन्थ-निर्माणमे जीवन व्यतीत करते थे। मुशीजी बहुत अधिक लिखते थे। १८५७ के गदरमे उनका एक दीवान और बाज गद्य पुस्तके नष्ट हो गईं। १८९५ ई० मे मकानमे आग लग जानेसे उनकी अक्सर कृतियाँ भस्म हो गईं। फिर भी उनके २२ ग्रन्थ मिलते है। इनमे ये चार दीवान गज़लोके है—

१—मिरातुलगैब—लखनवी रगकी गज़लो और कुछ कसीदोंका प्रारम्भिक दीवान।

२—जौहरे इन्तखाब—
३—गौहरे इन्तखाब } ये दोनो दीवन मीर और दर्दके रगमे लिखे है।

४—सनमखानये इश्क—यह दीवान मुशीजीने अपने प्रतिद्वन्द्वी मिर्ज़ा दाग के रगमे कहा है।

मुशीजीकी कृतियोमे 'अमीरूललुगात' उर्दू-साहित्यको उनकी बहुत बडी देन है। इसकी ८ जिल्द निर्माण करनेका सकल्प था, किन्तु २ ही प्रकाशित हो पाईं और तीसरी अधूरी लिखी रह गई कि उम्रने वफा न की।

मुशीजी ४३ वर्ष रामपुरमे आदर-सत्कार पूर्वक रहे, किन्तु दुर्भाग्यसे १९०० ई० मे हैदराबाद चले गये। वहाँ थोडे दिन कयाम किया था कि

बीमार हो गये और वही बीमारी आपकी मौतका बहाना बन गई। बीमारीकी स्थितिमे नवाब मिर्ज़ा दाग और प० रतननाथ 'सरशार' अयादतको आते थे। कभी-कभी हैदराबादके प्रधान मत्री महाराजा सर किशनप्रसाद भी कदमरजा फर्माते रहते थे।

हैदराबाद जानेकी वजह यह थी कि १९००ई० मे हैदराबाद-निजाम बनारस तशरीफ लाये तो मुशीजीने उनकी शानमे बनारस पहुँचकर एक कसीदा पढा। जो कि निजामको बहुत पसन्द आया। तभी निजामने हैदराबाद रहनेका निमत्रण दिया था।

मुशीजीकी मृत्युपर मिर्ज़ा दाग ने एक नौहा लिखा था, जिसे हम 'शेरोशायरी' मे दे चुके है।

'अमीर' लखनवी शायरोमे बहुत प्रसिद्ध हुए है। आतिश और नासिख के बाद आपका मर्तबा सबसे बुलन्द समझा जाता है। जिस तरह उर्दू-शायरीके खुदाये सुखन 'मीर' हुए है, लोग आपको भी लखनऊ-बज्मेअदबका खुदाए सुखन समझते है।

अल्लामा नियाज फतहपुरी लिखते है—"मुताक्खरीनके दूसरे दौरमे अमीर और दागको जितनी शोहरत हासिल हुई, किसी औरको नसीब न हो सकी, और इसका सबब शायद यह था कि एकको नवाब रामपुरकी कद्रअफज़ाईने उछाला और दूसरेको शाह दकनकी सुखन फहमीने। अमीर मीनाई अपने फज्लो कमालके लिहाज़से बडे मर्तबेके शख्स थे। लेकिन हकीकत ये है कि वे शायर पैदा नही हुए थे। बरखिलाफ इसके, दाग शायर महज़ (केवल शायर) थे और कुछ नही। अमीरकी शायरी इक्तसाबी (पेशेवरी, आजीविकाके लिए) थी और दागकी फितरी (स्वाभाविक)। लेकिन इन (मुशीजी) के इक्तसाबका भी यह आलम था कि गज़ल, कसीदे, मसनवी—सभी कुछ लिखा और हकीकत ये है कि ज़बानकी सेहत, लुगतकी तहकीक, मुहावरोका इस्तेमाल, अल्फाज़की बन्दिश और मज़मून आफरीनीके लिहाज़से बडे जबर्दस्त उस्ताद थे। लेकिन जज्बात

(भावों) के लिहाज़से उनके कलाममे कोई कैफियत नही पाई जाती। उनके दो दीवान है। एक 'मिरातुलगैब' जो बिलकुल उनके उस्ताद 'असीर' के रगमे है, और दूसरा 'सनमखानये इश्क' जिसमे दागका ततबअ (अनुकरण) किया है, इसीके साथ 'गौहरे इन्तखाब'' मे दर्द और मीरके रगके अशआर पेश किये गये है, और इसीसे साबित होता है कि वे अपनी जहानत (बुद्धि) से काम लेकर हररगमे लिख सकते थे और फितरतन वह खुद किसी मखसूस जौके शायरीके मालिक न थे।

"दाग देहलवी स्कूलके शायर थे और लालकिलेके अन्दर उनकी तरबियत (लालन-पालन) हुई थी। मिर्जा फखरूके साथ-साथ जौकके सामने जानूए अदब इन्होने भी तय किया था। वोह किले मुअल्लाकी जबान, वोह शेरोसुखनका चर्चा, वोह रगीन सुबहते। फितरी जौक (स्वभाविक शौक) चमक उठा और आखिरकार दुनियाए शायरीमे वोह शोहरत हासिल की कि उस दौरमे किसी दूसरेको नसीब न हो सकी। उनके कलामकी खूबी मामलाते हुस्नोइश्कके बयान करनेपर मुनहसिर है, और इस कूचेकी खाक उन्होने ऐसी छानी कि क्या कोई छानेगा ?"

मुशीजी शायर, विद्वान होनेके अतिरिक्त मनुष्योचित गुणोसे परिपूर्ण थे। बातहजीब, सजीदा, नेक, हमदर्द, बाअदब, और बाहया थे। धार्मिकतापूर्वक सादा और सरल जीवन व्यतीत करते थे। कभी किसीकी हिजो नही लिखी और न एक शब्द मुँहसे ऐसा निकाला जिससे किसीका दिल दुखे। हर एकसे बडी मुहब्बत और इज्जतसे पेश आते थे। निष्पक्ष ऐसे कि अपने बडे-से-बडे प्रतिद्वन्द्वीके कलामकी मुक्तकण्ठसे सराहना करते थे। दाग जैसे प्रतिद्वन्द्वीका भी अत्यन्त आदर और सन्मान करते थे। उनके साथ जितना सौजन्यता और प्रेमपूर्ण व्यवहार करते थे, वह अनु-

---

[1]इन्तकादियात, भाग २, पृ० १४६

करणीय है। उनका एक पत्र मिर्ज़ा दाग के नाम लिखा हुआ हम 'शेरो-शायरी' मे दे चुके है। केवल दो घटनाओका उल्लेख यहाँ किया जाता है।

रियाज खैराबादी मुर्शीजीके सर्वप्रिय और योग्य शिष्य थे। उनकी शोहरत काफी फैल चुकी थी। नवाब रामपुरके बार-बार आग्रह करनेपर मुर्शीजीने इन्हे रामपुर बुलवाया। इस घटनाका उल्लेख करते हुए मुर्शीजीके पौत्र 'तसनीम' मीनाई लिखते है—"रियाज़ जिस दिन रामपुर पहुँचे, अमीर मीनाई दूसरे रोज़ या उसी रोज उनको मुसाहब मज़िल ले गये। वहाँ हस्बदस्तूर अरबाबे कमालका जमघटा था। अमीर मीनाईने रियाज को अहले बज्मसे मुतअर्रिफ कराया और खुद खुल्द आशियाँ (नवाबका आदर सूचक नाम) के पास रियाजकी आमदकी इत्तला करने चले गये। यहाँ नवाब मिर्ज़ा दागने मजाहन (हँसीमे) रियाजको छेडनेके लिए कहा कि 'अरूवाह! आप ही है सैयद रियाज अहमद 'रियाज', अमा तुमको तो यारोका शागिर्द होना चाहिए था। कहाँ इन फिरगी मुहल्लीके मौलवी साहबके फन्देमे फँसे हो?' अशआरे रियाज़की शोखी और बेसाख्तगी उस वक्त भी मशहूरे खलायक (प्रसिद्ध) हो चुकी थी और दागका यह खास मैदान था। इसी मुनासबतके खयालसे उन्होने यह फिकरा कहा। मगर रियाज़को कहाँ ताब थी? यह सुनते ही चरागपा हो गये और कहा—'जनाब, वे मेरे उस्ताद है, उनका जिक्र ही क्या? आपको दावा हो तो मुझ हेचदा (तुच्छ) से ही दो-दो हाथ हो जाएँ। बिस्मिल्लाह कलम-दावात मँगवाइये, यहाँ सब अहले कमाल जमा है। सबके सामने जमीन मुतईन (समस्यापूर्ति) हो जाये। हम आप इसी वक्त गजल कह ले। देखे कौन बाजी ले जाता है'। नवाब मिर्जाखाँ बेचारेने महज़ मजाहन एक बात कही थी, उसका बतगड बन गया. रियाज़के जवाबपर वह ज़र्द होकर चुप हो गये। पास ही मौलवी अब्दुलहक खैराबादी बैठे थे। रियाजके हमवतन, अजीज, बुजुर्ग और रियाज़से कही अधिक आतिशखू और गोलामिज़ाज (आग्नेय स्वभावी)।

उन्होंने रियाज़को डाँटा—'दिमाग खराब हो गया है क्या ? मालूम है किससे मुखातिब हो, तुम्हारे उस्तादके मुहब्बेखास, मुआसर, बिरादर बजा बराबर। इनका अदब और अहतराम करना तुमपर उसी तरह फर्ज़ है, जिस तरह अपने उस्तादका। माफी माँगो'। रियाज़की क्या मजाल थी कि मौलवी साहबके सामने दम मारते। सिर्फ इस कदर कहा—'हज़रत ! पहले तो इन्हीने छेड की, मैंने तो सिर्फ जवाब दिया है।' मगर मौलवी साहब कहाँ मानने वाले थे। उसी वक्त रियाज़से माज़रत कराई और मामला रफा-दफा हो गया। अमीर मीनाई जब अन्दरसे वापिस आये तो उनको इसका इल्म न हो सका। घर पहुँचकर पता चला। उनकी पाकीज़ा-नफ्सी देखिये। उसी वक्त सवारी मँगाकर रियाजको ले नवाब मिर्ज़ाखाँके यहाँ पहुँचे। रियाज़से मुकर्रर माफी मँगवाई और खुद भी माजरत की कि मेरे शागिर्दने यह गुस्ताखी की। मेरा सर शर्म और नदामतसे खम है। तुम मुहब्बेखास हो, मुझे भी माफ करो।' अल्लाह-अल्लाह क्या लोग थे ! साहबे कमाल, साहबे तौकीर, मगर शकिस्तगी-को किसीकी रवा नही रख सकते थे "[1]

दूसरी घटना इस प्रकार है—

"एक मर्तबा नवाब मिर्ज़ाखाँ दागकी नई गजल किसी सिलसिलेमे अमीर मीनाईकी नजरसे गुज़री—

बुतानें माहवश उजड़ी हुई मज़िलमें रहते हैं।
यह जिसकी जान लेते हैं, उसीके दिलमें रहते हैं॥

अमीर मीनाईके शागिर्दों और बेटो सबने इसरार किया कि हज़रत इस ज़मीनमे गज़ल कही जाय। लेकिन अमीर मीनाईने किसी सूरतसे हामी नही भरी। यही जवाब दिया कि दागने ज़मीनको मिटा दिया,

---

[1]मयखानयेरियाज, पृ० ४६–४७

अब मेरे फिक्र करनेका मौका नही। यह मसलक-ओ-मशरब था अमीर मीनाईका अपने मुआसरीन (समकालीन, बराबरवालो) के मुताल्लिक। तो ज़ाहिर है कि कदमा और मुतवस्सतीन (प्राचीन और मध्यवर्ती पूर्वज शायरो) की कद्रो-मजिलतका उनके दिलमे क्या मुकाम होगा ? शागिर्दोंका इसरार रायगाँ (व्यर्थ) गया। सबने आपसमे सलाह की, रियाज़ आये हुए है, वोह हजरतके बहुत चहेते और मुँह चढे हुए ह, उनको हमवार करना चाहिए। रियाजसे मशवरा हुआ। वोह (रियाज) एक काइयाँ। दूसरे सब शागिर्दोके इस बाबमे कान काटे। शागिर्दोंने तो इसरार करनेकी फर्माइश की थी। ये हजरत बाकायदा रूठ गये, और रातको जब अमीर मीनाईने खानेपर याद किया तो उन्होने साफ कह दिया कि 'हजरत जबतक नासिखकी जमीनमे गज़ल न होगी, मैने कसम खाई है कि निवाला मुँहमे न रखूँगा।' अब हजरत लाख-लाख समझा रहे है, इसरार कर रहे है, खाना खराब हो रहा है, भूखसे हज़रतका और दूसरे शागिर्दो और अज़ीजोका बुरा हाल है, और खुद बानिये साजिश (रियाजको भरेंपै चढानेवाले) हजरत भूखसे घबराके रियाज़को समझा रहे है, मगर यह हजरत है कि टससे मस नही होते। आखिरकार दस्तरख्वान बढा दिया गया और अमीर मीनाई और दूसरे सब लोग भूके ही उठ खडे हुए। मगर रियाज थे कि अकडे बैठे रहे। गर्मियोका ज़माना था। अमीरमीनाई सहनमे इस्तराहत फर्माते थे। गिर्द खास शागिर्द और अज़ीज़ मूढोपर बैठे थे। खादिमने चप्पी शुरू की और अमीर मीनाईने कहा—'लाओ भई, कागज-पेसिल लाओ रियाजकी फर्माइश पूरी की जाय।' अब रियाज़ खुश-खुश दूसरे शागिर्दोके साथ कागज पेसिल हाथमे लिये पास आकर बैठ गये। मिसरा दुहराया गया। घण्टे सवा घण्टेमे दो गज़ले पूरी हुई, और अमीर मीनाईने मक्ता लिखवाकर रियाज़से कहा—'लो मियाँ, अब तो खाना खाओ, सब तुम्हारी वजहसे भूके है।' मगर रियाज़ने कहा कि 'हज़रत ! आस्तीनका काफिया गज़लमे नही है।

मै आस्तीनके काफियेमे शेर लिखवाये बगैर खाना न खाऊँगा'। अमीर मीनाईने कहा कि—'भई, रियाज़ तुम बहुत सताते हो। तुम्हारा शौक पूरा तो हो गया, अब ज़िद न करो, मगर रियाज कहाँ मानने वाले थे। फिर उठकर बैठ गये और जब अमीर मीनाईने तग आकर कदरे ताम्मुलके बाद यह शेर लिखवाया—

क़रीब है यार रोज़े महशर छुपेगा कुश्तोका खून क्योंकर ?
जो चुप रहेगी ज़बाने खंजर लहू पुकारेगा आस्तीं का ।।

तो उछल पडे। अमीर मीनाईके कदमोपर हाथ रख दिये और रोने लगे।"[१]

उक्त दो घटनाओसे अमीर मीनाईकी सौजन्यता, नम्रता, भद्रता और शिष्यस्नेहका परिचय मिलता है। आपके सैकडो शिष्योमेसे कुछ निम्न लिखित थे—

नाज़िम, नवाब, सफदर, जाह, जलील, रियाज़, बरहम, ज़ाहिद, कौसर, हैरान, मुहसन, आबिद, रज़ा, दिल, करार, साकिब, असगर, मुज़तर, सरशार, हफीज़, आह, अख्तर, कमर वगैरह। इनमे जलील, रियाज़, दिल, साकिब, हफीज़, सरशार, आदिने काफी शुहरत पाई है। इनका उल्लेख शेरो-सुखनके दूसरे भागमे वर्तमान युगीन शायरोमे किया जायगा।

हमारी प्रबल अभिलाषा थी कि अमीर मीनाईके गज़लोंके चारो दीवानोको अध्ययन करके उनके अशआरका सकलन करे और उनके प्रतिद्वन्द्वी दागके कलामसे तुलना भी करे, किन्तु खेद है कि बार-बार प्रयत्न करनेपर भी उनके दीवान प्राप्त नही हो सके। लाहौर, लखनऊ, दिल्ली सभी जगह जाकर स्वय तलाश किये। आखिर उनकी प्रारम्भिक

---

[१] मयखानये रियाज़, पृ० ४३–४५

गजलोका लखनवी रगका दीवान 'मिरातुल गैब' हमे अपने प्रिय मित्र सुमत साहबके यहाँसे प्राप्त हुआ। अमीर जैसे ख्याति प्राप्त शायरका कलाम केवल उनकी प्रारम्भिक गजलोसे चयन करना, उनके साथ अन्याय करना है, परन्तु मजबूरीका उपाय भी क्या? भारतके बटवारेसे उर्दूका साहित्य अब मिलता ही कहाँ है? जो भी प्राप्त है उसीको गनीमत समझिये।

'मिरातुलगैब' चूंकि शुरू-शुरूकी गज़लो और लखनवी रगका मजमूआ है, इसलिए इसमे वे सब अयूब मौजूद है, जो नासिखके रगके लिए मखसूस है। मुसन्निफ, तारीखेअदबे उर्दू लिखते है—"जा बजा रियायते लफ्जी, इब्तजाल, रकीक और बदनुमा तशबीहे, औरतोके लिबास और सामाने ज़ीनत, मसलन—अगिया, कुरती, कघी, चोटी, वगैरह। इसमें कोई बात नई नही है। बल्कि वही पुराने फर्सूदा मज़ामीन है, जो उलट-पलटकर रगीन इबारतमे बयान किये गये है। अलबत्ता उनका दूसरा दीवान 'सनमखानये इश्क' उनके बडे हरीफ और मुआसिर (समकालीन प्रतिद्वन्द्वी) दागकी तर्जपर है, और इसमे आला तखैय्युल, सलासत, रवानी और दिलकश आशिकाना तरकीबे बकसरत मौजूद है। अमीरकी नातिया गज़ले भी बहतरीन है। मुशीजीको गज़ल, कसीदे, रूबाई, मुखम्मस, मुसद्दस, वगैरह पर अबूर हासिल था।"[1]

मिरातुलगैबमें तकरीबन ६१८० अशआर है, जिनमेसे चन्द नमूने पेशेनज़र है। अश्लील, चुम्बन, और अमरद परस्तीके अशआर चुननेसे गुरेज़ रखा है।

---

[1]तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ४२२–२३

ज़ाहिद ! लिहाज़ रख कि न गुल हो चिरागेज़ुहद[1]।
झोंका न आने पाये हवाएग़रूरका ॥
क्या डर जो किल्लेउफ़्[2] मुकामेबुलन्द है।
जीना लगाके पहुँचूँगा उज़रे गुनाहका ॥
या रब ! अकेले रहनेकी आदत नहीं मुझे।
जमघट रहे मज़ारपै ग़िलमानो हूरका ॥

मिरे ही सामने दामन उठाकर नाज़से चलना।
मुझीसे फिर गिला उलटा मेरे चाकेगरेबाँका[3]॥

कहाँ सामाँ था वहशतमें कि नामा[4] यारको लिखता।
दिया क़ासिदको पुर्ज़ा फाड़कर मैंने गरेबाँका ॥
किया इज़हारे दर्देदिल तो खींचा म्यानसे ख़ंजर।
नया नुस्ख़ा निकाला आपने यह दर्देहिजराँका[5] ॥
कहाँ जायेंगे उड़कर यह परीरू[6] मेरी चालोंसे।
मज़ावर[7] मैं बनूँगा जाके दरगाहे सुलेमाँका ॥
लबेबाम उस परीने बाल क्या ज़हरेसे सरकाये।
उठाकर अब्रके[8] परदेको गोया बर्कने[9] झाँका ॥
ज़रा-सी छेड़में क्यों फूट बहते हो तुम ऐ छालो।
इसीसे छेड़ता है तुमको हर काँटा बयाबाँका ॥

---

[1]संयमका दीपक, [2]क्षमा मन्दिर;
[3]कुरता, अंगरखाका गला फाड़नेकी शिकायत,
[4]पत्र, [5]विरहव्यथा मिटानेका, [6]परीसूरत, हसीन;
[7]कब्रका रक्षक, [8]वर्षारूपी घूघटको, [9]बिजलीने।

फाड खाता है जो गैरोको झपटकर सगेयार[1] ।
मैं यह कहता हूँ "मिरे शेर, तेरा क्या कहना" ॥
दमे आखिर तो बुतो ! यादे खुदा करने दो ।
जिन्दगी भर तो किया मैंने तुम्हारा कहना ॥
शौक काबे लिये जाता है हविस जानिबेदैर ।
मेरे अल्लाह बजालाऊँ मैं किसका कहना ॥

गोर भी बेगोरकन[2] तामीर हो सकती नहीं ।
कौनसे घरमे गुजर होता नहीं मजदूरका ॥

वोह मस्त हूँ नसीब मुझे तब कफन हुआ ।
जब रहन मयफरोशके घर पैरहन हुआ ॥
वाइजका था लिहाज तो फस्ले खिजाँ तलक ।
लो आ गई बहार, मैं तौबा शिकन हुआ ॥

शेख काबेसे गया उसतक बिरहमन दैरसे ।
एक थी दोनोकी मजिल फेर था कुछ राहका ॥
कुछ न समझे हो न बूझे हो कि वह क्या चीज है ?
नाम तुमने सुन लिया है जाहिदो ! अल्लाहका ॥

है किश्वरे अदममे खुदा जाने सैर क्या ।
आया न फिरके मजिले हस्तीसे जो गया ॥
पीरीमे आई मौत, जवानी गुजर गई ।
जागा तमाम शब मैं दमे सुबह सो गया ॥
मातम किया किसीने न मेरा तो क्या हुआ ?
अब्र आके खाकेगोरपै[3] हर साल रो गया ॥

---

[1]प्रेयसीका कुत्ता, [2]कब्र खोदने वालेके बिना, [3]कब्रकी धूलपै ।

हया तो उसको बिठाये हज़ार पर्देमें।
मगर जो बैठने दे शौक ख़ुदनुमाईका[1] ॥
सम्भलके देखो अगर देखते हो आईना।
फिसल न जाये कहीं पाँव ख़ुदनुमाईका ॥
वोह नातवाँ[2] हूँ अगर नब्ज़को हुई जुम्बिश।
तो साफ़ जोड़ जुदा हो गया कलाईका ॥

ग़ैरने उस गुलके बालोंमें कभी कघी जो की।
मिस्ले सम्बुल[3] तार-तार अपनां गिरेबाँ हो गया ॥

क्या बला थी निगहे होश रुबा साकीकी।
उठ गई आँख तो कोसो कोई हुश्यार न था ॥
बात रख ली मेरे कातिलने गुनहगारोंमें।
इस गुनहपै मुझे मारा कि गुनहगार न था ॥

वाकिफ वोह हालसे हो जो रखता हो कुछ ग़रज़।
क्या जाने हम बुख़ील[4] कि हातिम[5] करीम[6] था ॥

राज़दारियेमुहब्बतका[7] मैं क्या दावा करूँ।
जिस कदर महरम[8] हुआ उतना ही ना महरम हुआ ॥

लज़्ज़तेशर्मेगुनह थी कब फरिश्तोंको नसीब।
यह मज़ा चखनेको पैदा ख़ल्कमें आदम हुआ ॥

वोह कौन था जो ख़राबातमें ख़राब न था।
हम आज पीर हुए क्या कभी शबाब न था ॥

---

[1]आत्मविज्ञापनका, [2]निर्बल,
[3]एकप्रकारकी सुगन्धित बनस्पति, जटामासी,
[4]कजूस, [5]एक प्रसिद्ध दानी [6]दानी, दयालु,
[7]प्रेमके भेद जाननेका, [8]परिचित।

न पूछ ऐश जवानीका हमसे पीरीमें।
मिली थी ख्वाबमे वोह सल्तनत शबाब न था॥
कलीम[1] ! शुक्र करो हश्रतक न होश आता।
हुई यह ख़ैर कि वोह शोख़ बेनकाब न था॥
यह बार-बार जो करता था ज़िक्रेमय वाइज़।
पिये हुए तो कहीं ख़ानुमा ख़राब न था?
कहा जो मैंने कि यूसुफको यह हिजाब[2] न था।
तो हँसके बोले "वोह मुँह काबिले नकाब न था"॥
मेरे जनाज़ेपै अब आते शर्म आती है।
हलाल करनेको बैठे थे जब हिजाब न था॥
दुआए तौबा भी हमने पढी तो मय पीकर।
मज़ा ही हमको किसी शैका बेशराब न था॥
वे बैठे-बैठे जो दे बैठे कत्लेआमका हुक्म।
हँसी थी उनकी, किसीपर कोई अताब[3] न था॥
जो लाश भेजी थी कासिदकी, भेजते ख़त भी।
रसीद वोह तो मेरे ख़तकी थी, जवाब न था॥

कहाँका काबा है, दैर कैसा, बताओ कूचेका उसके रस्ता।
मैं पूछता हूँ पता कहीका, निशान देते हो तुम कहींका॥

जो बगोला दश्तेगुरबतमें[4] उठा, समझा ये मैं।
करते हैं तामीर दीवाने मेरे घरका जवाब॥
शेख़ कहता है बिरहमनको, बिरहमन उसको सल्त।
काबओ बुतख़ानेमें पत्थर है पत्थरका जवाब॥

---

[1]हजरतेमूसा, [2]लाज,
[3]क्रोध, [4]प्रवासमे जगलमे।

मेरे चेहरयेज़र्दके अक्ससे।
हुई साकिया ज़ाफरानी[1] शराब॥

दिल शिकस्ता मे वोह हूँ ख़त जो कबूतरको दिया।
गिर पडा उडते ही टूटे हुए परकी सूरत॥
बॉध रख कसके गिरहमें कि बहुत थोडी है।
आबरू है जो ख़ुदादाद गुहरकी सूरत॥
रात-दिन काबये दिलमें है बुतोका मजमा।
क्यासे क्या हो गई अल्लाहके घरकी सूरत॥

काज़ी बरहना[2] सर है तो ज़ख्मी है मुहतसिब[3]।
शायद कि पी गये है बहुत बादाख़ार[4] आज॥

हमारे रोनेपै आती नहीं किसे रिक़्कत[5]।
हुबाब[6] रोते है आँखोपै रखके दामने मौज॥

तुम तो आते ही कयामत करते हो साहब बपा।
दिलमें आते हो तो आओ घरमें आनेको तरह॥
दरसे काबेके नही उठता सर अपना इसलिए।
इसमें भी कुछ-कुछ है तेरे आस्तानेकी तरह॥

पूछो न कुछ जवानी ओ पीरीकी सरगुज़िश्त[7]।
यह माजराए शाम है वोह माजराए सुबह॥

---

[1]केसरिया, [2]नगे सर,
[3]आचरणका निरीक्षण करनेवाला कर्मचारी,
[4]शराबी, [5]तरस,
[6]पानीके बुलबुले,
[7]बीती हुई बाते।

छनता है नूर[1] आरिजे गुलगूँसे इस क़दर।
हो जाती है सफेद भी उसकी नकाब सुर्ख़ ॥

है वसीयत मेरी मरकदपै[2] यह लिख दे अहबाब।
"कि करे कोई किसीसे न वफा मेरे बाद" ॥
शुक्र है कुछ तो मुहब्बतमें हुआ रगे असर।
तीन दिन उसने लगाई न हिना[3] मेरे बाद ॥

ढीली है कमर, कसके ज़रा बाँध दुबारा।
गिर जाये न ख़त खुलके कही राहमें कासिद !

आशिकोमाशूक अपने-अपने आलममें है मस्त।
वाँ नज़ाकतपै तो याँ है नातवानीपर[4] घमड ॥

काटकर राह मेरे घरकी चले और तरफ।
यह तरीका नही मुझको किसी दस्तूर पसन्द ॥

मेरे रोनेने फुरकतमें रुलाया एक आलमको।
बहाये अब्रने[5] दरिया मेरे एक-एक आँसूपर ॥

सदफकी[6] क्या हकीकत है अगर उसमे न हो गौहर[7]।
न क्योकर आबरू हो आँखकी मौकूफ आँसूपर ॥

वे करते है बाते अजब चिकनी-चिकनी।
यह मतलब कि चौपट हो कोई फिसलकर ॥

---

[1]सौन्दर्यरूपी रग,
[2]समाधिपर,
[3]मुहदी,
[4]निर्बलतापर,
[5]मेहने, वर्षाने,
[6]सीपकी,
[7]मोती।

यही सोज़ेदिल[1] है जो महशरमें जलकर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगलकर॥
यह मेरी तरफ पॉव महफिलमें कैसे?
ज़रा आदमीयतसे बैठो सम्हलकर॥
'अमीर' अहले मस्जिदसे इज़हारेतकवा[2]!
अभी आये हो मयकदेसे निकलकर॥
इरादा है ख़ुद उनसे पूछूँ मैं चलकर।
"यह ख़त तुमने फाड़ा कि कासिदने जलकर"॥
जो बरसातमें तादरेयार[3] पहुँचे।
बहाना किया ख़ुद गिरे हम फिसलकर॥
तवक्कोह है धोकेमें आकर वोह पढ़ लें।
कि लिक्खा है नामा[4] उन्हें ख़त बदलकर॥
थके मुद्दतों राहमें जिनकी चलकर।
वे दरतक भी आये न घरसे निकलकर॥
उठा ऐ दिल! आँखोसे इतना न तूफाँ।
कुए बैठ जाते हैं अक्सर उबलकर॥

मयसे कपडे जाहिदाने ख़ुश्कके क्या तर किये।
जलके हमने आग रख दी जुब्बहोदस्तारपर[5]॥

मर्तबा पेशे ख़ुदा होता है उतना ही बुलन्द।
जिस कदर चलता है इन्सानसे इन्सां झुककर॥
है यह ईमाँ कि चला चाहते हैं ज़ेरे ज़मीं।
चलते हैं मौसमेपीरीमें जो इन्सां झुककर॥

---

[1]दिलकी डाह, [2]सदाचार का वर्णन, [3]प्रेयसीके दर्वाज़े तक; [4]पत्र, [5]पगडीपर।

वोह नातवाँ हूँ जो लेटा कभी मैं बिस्तरपर।
गुमाँ हुआ कि शिकन पड गई है चादरपर॥
किया उदूने जो गेसूए यारमे शाना[1]।
हुआ यह रश्क कि आरे चले यहाँ सरपर॥

बोला वोह बुत सिरहाने मेरे आके वक्तेनजअ[2]।
"फरियादको हमारी चले हो खुदाके पास?"

जेबा हो खाक! इश्कका जामा रकीबको।
क्योकर खुश आये मर्दका पहने जो जन लिबास॥

नजर आ जाये जो वह मुसहफेरुख[3]।
हिन्दुओको भी हो इस्लामकी हिर्स॥
हिजोए[4] मयकश[5] है लबेवाइजपर।
दिलमें पोशीदा मय-ओ-जामकी हिर्स॥

तुम्हारी जातसे मतलब है दीनो दुनियाँमें।
न कुछ यहाँसे गरज है न कुछ वहाँसे गरज॥

तौबा सौबार मै कर लूँगा कुछ इन्कार नहीं।
मयकशीसे तो जरा हो मुझे फुरसत वाइज!
काँपता खौफसे मस्तोका है रूआँ-रूआँ।
कुछ जबाँसे नही तौबाकी जरूरत वाइज!
तू जो रिन्दोंकी हकीकत नही समझा, न समझ।
रिन्द समझे है तेरी खूब हकीकत वाइज!

---

[1]कधी, [2]मृत्युके समय,
[3]कुरान-जैसी किताबी सूरत, [4]बुराई,
[5]शराबियोकी।

जामेमय देखके जामेसे हुआ तू बाहर।
पीले दो घूँट तो क्या हो तेरी सूरत वाइज़ !
देख मयख़ानेमे घनघोर घटा छाई है ॥
सरपै मस्तोके है अल्लाहकी रहमत वाइज़ !
ऐसे पढनेसे तो अच्छा था कि जाहिल रहता।
न हुआ तुझमें है बाकी न मुरव्वत वाइज़ !

फूल गर मुरझाएँ तो मुझसे न करना कुछ गिला।
ऐ सबा ! चलनेको मै चलता हूँ गुलशनकी तरफ ॥

लागिर[1] हूँ इस कदर मुझे पहचानती नही।
रह-रहके देखती है कज़ा सरसे-पाँवतक ॥

गश आया है मुझे मस्जिदमे बे मय।
चलो लेकर मुझे पीरेमुगा[2] तक ॥

हो गये मुर्दा हिज्रेयारमें हम।
घरमें अपने है या मज़ारमें हम।
कौन पूछेगा हम गरीबोको।
रोज़ेमहशर है किस शुमारमे हम* ॥

शबेविसाल सरेशामसे वोह कहते है।
कि आज क्यो नही होती सहर[3], नही मालूम ॥

---

[1]निर्बल, [2]मधुशालाके स्वामी,

* ऊँचे-ऊँचे मुजरिमोकी पूछ होगी हश्रमें।
कौन पूछेगा मुझे ? मै किन गुनहगारोमें हूँ ?

—अज्ञात

[3]सुबह।

मुहतसिबके[1] लाख-लाख अहसाँ कि खोशेकी[2] तरह ।
काटकर मस्तोके सर लटका दिये अंगूरमें ॥

जमा-माल, इन्साँ तो क्या, हैवाँको करता है तबाह ।
शहद दिलवाता है आतिश[3], खानये जम्बूरमें[4] ॥

दुनियासे हाथ धोके चलें कूए यारमें ।
जाइज नहीं कि तोफे हरम बेवजू करें ॥
दीवानगीका सिलसिला ताअतमें[5] भी न जाय ।
पहले पढ़ें नमाज तो पीछे वजू करें ॥
जाहिद तेरे फरिश्तोको यह दिन नही नसीब ।
जन्नतसे हूर आयें जो हम आरजू करें ॥

घबराके जब फिराकमें माँगी दुआए वस्ल ।
आई सदा "यही तो मुकाम इन्तहाँके है" ॥
मरकर भी हमको मयसे तअल्लुक़ वही रहा ।
तख्ते लहदमें[6] पीरेमुगाँकी[7] दुकाँके है ॥

निहाँ रहता है आईनेसे वोह बेगानाख़ू[8] बरसो ।
हया देखो, नहीं आता है अपने रोबरू बरसो ॥
सरापा जुर्म हूँ लेकिन वोह रिन्दे पाकतीनत हूँ ।
किया जाहिदने मेरे आबेखिजलतसे[9] वजू बरसो ॥

---

[1] आचरण निरीक्षकके,
[2] गुच्छोकी,
[3] आग,
[4] मधुमक्खियोके छत्तेमे,
[5] उपासनामे,
[6] कब्रमे,
[7] मधुशालाकी,
[8] स्वभावत उपेक्षा रखनेवाला,
[9] शर्मके पसीनेसे ।

मै उल्फतके वोह हुस्नके जोशमें ।
न मैं होशमें हूँ न वोह होशमें ।।
न उठो अभी बज्मसे मयकशो !
हमें भी तो आ लेने दो होशमे ।।

समझा यह मैं, जो निकले शाखोसे गुल चमनमें ।
सूफी निकलके बैठे खिलवतसे[1] अजुमनमें[2] ।।

साफ कह दो नही दीदार दिखाना है अगर ।
काबा-ओ-दैरमें दौड़ाते हो क्यो तुम मुझको ।।

आज महफिलसे तुम आये हो उठाने हमको ।
हाय ! वोह दिन कि जो उठते थे बिठाने हमको ।।*

बुलहविस[3] और दुआए सोज़ेइश्क[4] ।
दाग खानेको कलेजा चाहिए ।।

यह वजह है जो आरिज़ेजानाँपै है नकाब ।
करती है जिल्द खूब हिफाजत किताबकी ।।

देखो तो इत्तहाद जरा हुस्नोइश्कका ।
बुलबुलके आँसुओमे है खुशबू गुलाबकी ।।

तुम चौधवीका चाँद हो तो अपने वास्ते ।
क्या फायदा, किसीको किसीके कमालसे ।।

---

[1]एकान्तसे, [2]महफिलमे,

* वोह जो उठते थे बिठानेके लिए ।
आज बैठे है उठानेके लिए ।।
—अज्ञात

[3]विषयलोलुपी, [4]सच्चे प्रेमकी प्रार्थना ।

मेरे घरकी तरफ भी आलमेमस्तीमे आ निकले ।
तरग ऐसी कभी या रब ! मिजाजेयारमे आये ॥

है नमाज उन जाहिदोकी जोफे ईमॉपर दलील ।
सामने अल्लाहके जाते है उठते-बैठते ॥
खुदनुमाईकी बदौलत कितने ओच्छे है हसीन ।
मँहदी मलते है तो इतराते है उठते-बैठते ॥

यकी हुआ जो गिरा दॉत कोई पीरीमें ।
कि आज खुल गई खिड़की कजाके आनेकी ॥

बाद मुर्दन भी मेरे जोफकी कूवत न घटी ।
खाक उठी भी तो चकराके वही बैठ गई ॥
इन दिनो दुख्तरेरिजका[1] नही मिलता है पता ।
कही काजीके तो घर जाके नही बैठ गई ॥

वाइजा समझा है तू दोजख जिसे ।
कुछ शरर है आहेआतिश बारके ॥

लिया जो ख्वाबमे बोसा तो यार जाग उठा ।
तमाम उम्रका हम एतबार खो बैठे ॥
बलाएँ लेते ही वोह और हो गया वहशी ।
हम अपने हाथोसे अपना शिकार खो बैठे ॥

हजारो खार, लाखो फूल, उस गुलशनमें है लेकिन ।
न तुम-सा नाजनीं कोई, न हम-सा नातवॉ कोई ॥

नसीहत करनेवालोको अगर कुछ भी समझ होती ।
जो समझाते है मुझको वोह मेरे दिलबरको समझाते ॥

---

[1]अगूरकी बेटी (शराब) का ।

भारी बहुत है लाऊँगा रोज़े जज़ामें रिन्द !
रखवाके सरपै शेख़के गठरी गुनाहकी ॥

हुरमतमें दुख़्ते-रिज़की इसरार है जो इतना ।
यह बात क्या है रिन्दो ! वाइज़ पिये हुए है ?

न तड़पा चारागरके सामने ऐ दर्द ! यूँ मुझको ।
कहीं ऐसा न हो ये भी तकाज़ाए दवा ठहरे ॥
ख़याले यार आ निकला मेरे दिलमें तो यूँ बोला ।
"यह दीवानोकी बस्ती है यहाँ मेरी बला ठहरे" ॥

वाइज़ किताबे वाज़ लिये है तो क्या हुआ ?
बोतल शराबकी भी तो पिन्हाँ बगलमे है ॥

७ नवम्बर १९५०

८८

जलाल

[१८३३–१९०९ ई०]

सैयद जामिनअली 'जलाल' हकीम असगरअली दास्तानगोके पुत्र थे और १८३३ ई० मे उत्पन्न हुए थे। अरबी-फारसीकी स्कूली शिक्षा समाप्त करके खान्दानी पेशा हकीमी शुरू किया। तत्कालीन वातावरणके अनुसार इन्हे भी शायरीका शौक बचपनसे था। धीरे-धीरे इस ओर इतनी रुचि बढी कि हिकमत छोड़कर आजीविकाका साधन भी शायरीको बना लिया। प्रारम्भमे अमीर अलीखाँ हिलाल' से इसलाह लेते रहे। जब कलाममे कुछ पुख्तगी आगई तो हिलालकी इच्छासे उनके उस्ताद 'रश्क' से मशवरये सुखन लेने लगे।

रश्ककी उन दिनो बहुत शुहरत थी। और वे नासिखके शिष्योमे सर्व श्रेष्ठ थे। रश्क जब ईराकके सफरको गये तो वे जलालको अपने गुरुभाई 'बर्क' के सुपुर्द कर गये। जिनकी शायरीका उन दिनो जोर-शोर था।

१८५७ के विप्लवके बाद लखनवी मुशायरे दरहम-बरहम हो गये। जलाल भी अपने खान्दानी पेशेकी ओर प्रवृत्त हुए, किन्तु मन न लगा। आखिर नवाब यूसुफअलीखाँ रामपुरकी गुणज्ञताके कारण यह भी रामपुर चले गये। वही पर इनके पिता किस्से कहानियाँ कहनेके लिए मुलाजिम थे। नवाब यूसुफअली खाँके बाद नवाब कल्बअलीखाँ शासनारूढ हुए तो, इनका बाकायदा सौ रुपये मासिक वेतन नियत कर दिया गया। अपने स्वाभिमानी स्वभावके कारण कई बार रामपुर छोडनेका प्रयत्न

किया, किन्तु नवाबकी गुणग्राहकता और उदारताके कारण वही रहनेको वाध्य रहे। रामपुरमे २० वर्षके लगभग रहे। इसी ज़मानेमे मिर्ज़ा 'दाग', 'अमीर' मीनाई, और 'तसलीम' भी रामपुरमे कयाम फर्माते थे, और चारो उस्ताद मिसरा-तरही मुशायरोमे गजल पढते थे।

नवाबकी मृत्यु होनेके बाद रियासतमे 'कौसिल आफ रीजेन्सी' कायम होनेके कारण जलाल लखनऊ वापिस चले गये। फिर काठियावाड इलाकेकी एक छोटी-सी रियासत मगलोरके नवाबने इन्हे अपने यहाँ रखना चाहा, किन्तु दूर होने तथा स्वास्थ्यके अनुकूल न होनेके कारण चन्द ही दिनमे वहाँसे भी लखनऊ चले आये। फिर भी नवाव साहब इनको २५ रु० मासिक और हर कसीदेपर १०० रु० भेजते रहे। ७६ वर्षकी आयुमे १९०९ ई०मे लखनऊमे इन्तकाल हुआ।

अल्लामा नियाज फतहपुरी अपने किसी मित्रको पत्रोत्तर देते हुए लिखते है—

"लखनऊके दौरे मुताख्खरीनमे 'जलाल' का-सा अन्दाजे बयान 'अमीर' का क्या जिक्र है, मुतवस्सतीनमे 'आतिश' को भी नसीब न हुआ। और इस हैसियतसे कि खारजी-ओ-दाखिली दोनो रग उसके यहाँ पूरी तरह रचे हुए है, मुझे तो देहलीमे भी कोई नजर नही आता। वोह न सिर्फ फनका बादशाह था, बल्कि जज्बात निगारीका मालिक था। यकीनन उसमे न मोमिन का रग है, न गालिबके-से तेवर, न आतिश का-सा जोशोखरोश है, न मुसहफीकी-सी हलावत, न हसरत और जुरअतका सा खुल-खेलना है, न मीरो दर्दकी-सी उफतादगी। लेकिन फिर भी एक चीज ऐसी है जो थोडी देर के लिये उन सबको भुला देती है। इसमे शक नही कि लखनऊका खारजी रग उसमे पूरी तरह पाया जाता है। लेकिन उसका असलूबे बयान एक ऐसी दिलकश बैकग्राउण्ड पैदा कर देता है कि गहराइयोकी जुस्तजू करनेवाले भी एक बार सतहपर ठहरकर महव हो जाते है। रही ज़बानकी सेहत और पाकीज़गी। सो इस बातमे उसकी एहतयातसे

कौन वाकिफ नही ? उसके यहाँ यकीनन मुहब्बतकी कोई टीस नही है, कोई तड़पा देनेवाला दर्द नही है, कोई ऐसा नश्तर नही है जो दिलमे पैवस्त हो जाये । उसके यहाँ तमाम बाते वही है, जो आँख लडाने और आँख लग जानेके सिलसिलेमे पैदा होती है । वही घाते और लगावटे है, जो मुहब्बतकी अदना किस्ममे पाई जाती है । यानी उसका कलाम जो फिजा पेश करता है, वोह वही 'जहरेइश्क' वाली फिजा है कि —

जिस मुहल्लेमें था हमारा घर ।
वही रहता था एक सौदागर ॥

"उस (सौदागर)की एक माहेजबी लडकी थी । जिससे आँख लड गई । आपसमे खतोकिताबत हुई । मिलनेके बहाने ढूँडे गये । कभी कामयाबी हुई, कभी नाकामयाबी । कामयाबी हुई तो सरशारिएवस्लकी लज्जतोका जिक्र होने लगा । नाकामी हुई तो गिला-शिकवा शुरू हो गया । चन्द दिन यह हगामा रहा और आखिरकार जब मुहब्बतके हौसले निकल गये या महबूबा कही चली गई या मर गई तो सब्र करके बैठ गये ।

"जाहिर है मुहब्बतकी इस दुनियामे जो जज्बात पैदा होगे, उनमे कोई गहराई न होगी और न वोह शायरीमे कोई मुस्तकिल नक्श छोड जाएँगे । लेकिन जलालका कमाल यही है कि उसने इसी फिजाकी शायरीमे महज अपने अन्दाजे बयानसे वोह बाते पैदा की है कि हम उसकी दाद देनेपर मजबूर होते है" ।[1]

जलालकी गजलोके चार दीवान मिलते है । इनके अतिरिक्त ७–८ ग्रन्थ अन्य विषयोपर लिखे है । अल्लामा नियाज फतहपुरी लिखते है— "जलालके कलामकी खसूसियत यह है कि बावजूद लखनऊमे नश्वोनुमा

---

[1]मक्तूबाते नियाज, भाग दूसरा, पृ० १५०–५१

पाने (शिक्षित-दीक्षित होने) के उन्होने देहलवी रगे तगज्जुलको पसन्द किया।"[१] लखनवी शायरीका उल्लेख करते हुए आगे लिखते है—लखनवी शायरीका यह बदनुमा दोर 'अमीर' मीनाईके वक्त तक रहा। लेकिन इसके बाद शागिर्दाने भोमिन-ओ-गालिबका कलाम फिर मकबूल होने लगा, और खुद अहले लखनऊने भी आखिरकार इसको महसूस किया कि शायरी नाम जिला जुगतका नही बल्कि वारदाते कल्बसे बहस करनेका है। सबसे पहले यह अहसास जलालको हुआ और इसके बाद जब शुअराये देहलीने रामपुर पहुँचकर लखनवी शुअराको मुतास्सिर (प्रभावित) किया तो रफ्ता-रफ्ता वोह तमाम नकाइस व मुआइब (नुक्स और ऐब) दूर होने लगे। हत्ताकि इस वक्त कोई एक भी काबिले जिक्र शायर लखनऊका ऐसा नही है, जो देहली स्कूलका पैरो न हो।"[२]

शायरे इन्कलाब जोश मलीहाबादी लिखते है—"हजरत जलालको मैंने अपने लडकपनमे देखा था। उस वक्त बहुत ही जईफ (वृद्ध) हो चुके थे और दमेकी पुरानी शिकायतने उनकी जिस्मानी हालतको और भी अबतर कर रक्खा था। जवानीमे उनका शुमार खूबसूरत लोगोमे होगा। क्योकि इस उम्रमे भी वोह सुर्खी-सफेद और खुशरू थे। दमेकी वजहसे वोह ऊभ-ऊभ कर बाते करते थे। लेकिन उसमे एक दिलकशी थी। उनकी आँखोमे जहानतका फरोग था और कलामे फनका गरूर। उनके कलाममे देहली और लखनऊका गगा-जमुनी रग था। उनकी गजले धूप-छाँव होती थी। वे फन्ने शेरके बहुत बडे माहिर और तानीस-ओ तजकीर और अलफाजकी तहकीकके नब्बाज (शब्दोकी प्रामाणिकताके डाक्टर) थे, और मतरूकातमे उन्हे गुलो (वहिष्कृत

---

[१]इन्तकादियात, भाग २, पृ० १५१

[२]इनाकादियात, भाग २, पृ० २००

शब्दोसे बचनेकी प्रवृत्ति) शायद जरूरतसे ज्यादा, और जबानके हकमे नुक्सॉ रसॉ हद तक (हानिकी परिधि तक) गुलो था। हमारे मुतकद्दमीनकी बिसात (पुरातन शायरो रूपी शतरज) के वे आखिरी मुहरे थे।

"अमीर-दागके बाद मेरे वालिदेमाजिद उनसे मशवरये सुखन करते थे। वे वालिदके पास अक्सर तशरीफ लाया करते थे, और कभी-कभी वालिदके हमराह, कभी-कभी तनहा, मै भी हजरते जलालके यहॉहाजिरी दिया करता था। उस जमानेके तीन काबिले जिक्र वाकयात मुझे याद है। बातें छोटी-छोटी है, मगर उनसे उस जमानेके मिजाजपर रोशनी पडती है।

१—एक रोज मै हजरते जलालके यहॉ पहुँचा। सुबहका वक्त था। वे ड्योढीकी दहलीजपर जनानेकी तरफ मुँह किये खडे अपनी बीवियोको जो आपसमे नजाएलफ्जी (गाली-गलौज) कर रही थी, डॉट रहे थे। लेकिन गुस्सेकी आवाजको दबा-दबाकर, ताकि कोई और न सुन ले। अपना दुबला-पतला हाथ किस बेकसीसे उठा-उठाकर कह रहे थे कि—'अरे कम्बख्तो 'मुझ मुर्देको जीने भी दोगी कि नही ?' कि मेरी चाप सुनकर वोह झटसे चुप हो गये। शर्माकर फर्शपर बैठ गये और मेरा सलाम लेकर बडे इत्मीनानके साथ बोले कि 'मियॉ बडी खैर हुई, तुम तो खैर अपने बच्चे हो। अगर इस वक्त कोई और आ जाता तो जलाल मुँह दिखानेके काबिल न रहता।' फिर थोडी देर खामोश रहकर कहने लगे—'देखो बेटे ! एक नसीहत करता हूँ, उसे गिरहमे बॉध लो। इस दुनियामे जो जीमे आये करना, लेकिन दो बीवियॉ न करना। हरगिज-हरगिज न करना। जलालकी कितनी गज़ले हलाल (स्वाहा) करके रख दी है, इन चुडैलोकी तू-तू मै-मै ने।'

२—एक रोज शाहपीर मुहम्मदके टीलेकी तरफसे ले मेरे वालिदके साथ गाडीमे गुजर रहे थे कि टीलेकी मस्जिदपर नजर पडी। उन्होने

मस्जिदकी तरफ हाथ उठाकर वालिदसे कहा—'खाँ साहब बहादुर ! यह क्या चीज है ?' वालिदने हैरतसे कहा—'मस्जिद ! भला मीर साहब ! यह भी कोई पूछनेकी बात है ?' जलालने पुरजलाल अन्दाजसे आँख उठाई और मस्जिदकी तरफ इशारा करते हुए बडे तमतराकसे कहा—'खाँ साहब ! इस मस्जिदकी हुरमतकी कसम खाकर कहता हूं कि जलालका-सा शायर न अब तक पैदा हुआ है न आइन्दा पैदा होगा ।' वालिदने फौरन ताईद फरमाई । लेकिन मेरे मुंहसे निकल गया—'उफ' इतनी बडी बात ।' जलालने या तो सुना नही या सुनी-अनसुनी करके वालिदसे पूछने लगे 'खाँ साहब ! साहबजादेके तेवर बता रहे है कि इन्हे चश्मेबद्दूर मेरा यह दावा गिराँ गुजरा ।' वालिदने बडी लजाजतसे बात काटकर कहा—'तौबा-तौबा मीरसाहब ! इसकी क्या मजाल है कि इसे नागवार गुजरे । जलाल फर्ते गरूरसे मुस्कराने लगे ।

३—वालिदकी यह आदत थी कि हिन्दोस्तानके अहबाबको बिल-अमूम और लखनऊके अहबाबको बिलखसूस फल, गल्ला, घी, वगैरह हमेशा रवाना करते थे । चुनाँचे हस्बदस्तूर हजरत जलालकी खिदमतमे घी रवाना किया गया । लेकिन खिलाफ दस्तूर वह वापिस आ गया । एक हफ्तेके बाद जब वालिद लखनऊ तशरीफ ले गये तो सवारी भेजकर हजरत जलालको तलब फरमाया और पूछा—'कि भला मीर साहब ! यह इस बार खिलाफे आदत घी क्यो वापिस फरमा दिया ?' यह सुनते ही जलाल-के चेहरेपर खुशूनतो कुन्न (क्रोध और घमड) के आसार पैदा हो गये । और कहने लगे—'खाँ साहब ! इस मर्तबा आपने यह किस गँवारको मेरे पास भेजा था ? इस्तगफर अल्लाह ! मै घरमे बैठा हुआ था कि दरवाजेपर किसी मर्दकने आवाजे देना शुरू कर दी—'जलाल होत, जलाल होत,' यह सुनकर मुझपर बिजली-सी गिर पडी । मबहूत होकर रह गया । मै और 'जलाल होत' से पुकारा जाऊँ ? मेरी बडी बीवीने उस मर्दककी तीसरी 'जलाल-होत' आवाजपर बिलबिलाकर मुझसे कहा—'है ! क्या

सोच रहे है आप ? जल्दी उठिये और इस मुएकी जबानको बन्द कीजिये। नही तो हम मुहल्लेमे मुँह दिखानेके काबिल नही रहेगे।' चुनाँचे हाँफता-काँपता मै जल्दी-जल्दी दरवाजेपर आया। उस गँवारने मेरी तरफ घीका ज़र्फ (बर्तन) बढाया और मैने झुझलाकर कहा—'ले जाओ वापिस, ले जाओ, यह जलाल होत वाला मरदूद घी। इसी वक्त वापिस ले जाओ। मै नही लूगा, नही लूँगा, नही लूँगा।'

"यह थे हजरत जलालके तेवर, यह थी कदमाकी वजअदारियाँ, अब न वोह रख रखाव है न वोह आन-बान, लद गये वे जमाने, निकल गये वोह कारवाँ और उजड गई वोह बस्तियाँ, रहे नाम अल्लाहका।"[1]

जलालके शिष्योमे—जलालके पुत्र 'कमाल', मीर ज़ाकिर हुसेन 'यास', 'आरजू' लखनवी, 'एहसान' शाहजहाँपुरी, प्रसिद्ध है। इनका परिचय वर्तमानयुगीन गजलगो शायरोमे शेरोसुखनके दूसरे भागमे दिया जायगा।

---

[1] 'आजकल', अप्रेल १९५० ई०

न जीते जी मिली राहत न बादेमर्ग उल्फतमें ।
फलककी क्या शिकायत ? हमको पीसा की जमी बरसो ।।

आये थे लाख दिलसे तेरी अजुमनमें[1] हम ।
जाते हैं अपने घर अजब इक बेदिलीके साथ ।।

उठ देर न कर कहती है वोह सीधी निगाहें ।
"जल्द आके लिपट, देख जमाना न पलट जाय" ।।

यह अश्केहसरत[2] जो गिर पडा है तुम्हारे आगे अभी टपककर ।
इसीने आँखोमें सुबह करदी बहुत-सी रातें खटक-खटककर ।।

एक अपनी आरज़ हो, तो बताएँ ऐ फलक !
झगड़े लगे हुए हैं, हजार आदमीके साथ ।।
बाँधो कमर बदीपै दिया था दिल इसलिए ?
नेकी कोई जहाँमें करे क्या किसीके साथ ?।।

जलवा किसीका देखके आँखें-सी खुल गईं ।
परदे जो ग़फलतोके पडे थे उलट गये ।।

सितम है तेरा लुत्फसे पेश आना ।
यही मार रखता है, कातिल यही है ।।

बहसने आया जो तुमसे आईना, आने भी दो ।
ख़ैर, तुम अपनी तरफ देखो, चलो, जाने भी दो ।।

रुखेरोशनसे किसने उलटी नकाब ?
जल उठे दाग इक बुझेदिलके ।।

---

[1]महफिलमे, [2]अभिलाषाका आँसू ।

जब जख़ुद रफ्तगीसे[1] आँख खुली।
सामने ही खडे थे मंजिलके॥

काबिले लुत्फ कोई और सही।
ख़ैर हमपर जफाओ जौर सही॥

अबतक है जोशे आह वही, कुछ कमी नही।
कल रातसे चली है जो आँधी, थमी नही॥

वादा क्यो बार-बार करते हो।
ख़ुदको ऐतबार करते हो॥

फाँस होती है दिले आशिककी क्या कम्बख़्त फाँस।
रह गई तो जान ली, निकली तो रुसवाई हुई॥

गुज़र गया तेरी फुरक़तमें यूँ शबाब अपना।
कि जैसे वस्लकी शब ऐ निगार! जाती है॥

निजात हो गई नासहसे उम्रभरके लिए।
उसीको भेज दिया यारकी ख़बरके लिए॥

हमसे उकबा न बनाई गई ज़ाहिदकी तरह।
कोई मज़दूर न थे रोज़ जो मेहनत होती॥

वस्लमें मना मयकशी! आपकी है ज्यादती।
हाँ यह कहेंगे, शेख़जी! हिज्रमें मय हराम है॥

शबको मय ख़ूब-सी पी सुबहको तौबा करली।
रिन्दके रिन्द रहे हाथसे जन्नत न गई॥

किसकी महशरमें हम करें फरियाद।
दादरेहश्र[2] हो तुम्हीं न कहीं॥

---

[1]तन्मयतासे, [2]हश्रमे न्याय करनेवाला, न्यायाधीश, खुदा।

बेहिजाबाना वोह शक्ल अपनी दिखाते भी नहीं ।
और मुँह देखनेवालोसे छुपाते भी नही ।।

ग़ज़बका सामना है हश्रमें भी ।
नक़ाब उठती नहीं शरमा रहे है ।।

नीची नज़रें ऊँची अब हो या न हो ।
ख़ाकमें मिलना था जिसको मिल गया ।।

वोह हाथ रखके दिले बेकरारपर बोले--
"जो यूँ भी इसको न आया क़रार, क्या होगा ?"

तुम्हारी मेहर्बानी ग़ैर ही को बस मुबारिक हो ।
हमें तो इक नज़र तुम देख लो नामेहर्बाँ होकर ।।

कह रही है कि ज़रूर आयेगा बेदर्द कोई ।
यह तरक़्की तेरी ऐ दर्दे जिगर आजकी रात ।।

बिलफर्ज़ मुज़दा दे भी अगर कोई वस्लका ।
दिल लाइये कहाँसे जिसे शाद कीजिये ।।

जहाँ-जहाँ हमें गुज़री है बेख़ुदी लेकर ।
बता न सकते अगर आपमें भी आ जाते ।।

आजकल, अप्रेल १९५०

तगाफुलके गिले सुनकर झुका ली तुमने क्यों आँखें ?
मेरे शर्मिन्दा करनेको ज़रा बेबाक होना था ।।

अगर्चे एक भी तसकीनका जवाब न था ।
मगर कुछ आते ही क़ासिदके इज़्तराब न था ।।
किसे ख़बर ? जो हुई मुझमें यारमें बातें ।
यहाँ ख़िताब न था कुछ वहाँ जवाब न था ।।

गिला है हमसे कि तुम जब्ते गिरया कर न सके ।
हँसी जब आ गई उनको कब अख्तियार रहा ।।

कब आयगा कोई मुझतक जवाब देता जा ।
तसल्लियाँ भी तो ऐ इज्तराब देता जा ।।

मेरी दास्ताने फिराकने शबेवस्ल तुर्फा मजा दिया ।
कभी मैंने रोके हँसा दिया, कभी उसने हँसके रुला दिया ।।

न खौफे आह बुतोंको न डर है नालोका ।
बडा कलेजा है इन दिल दुखानेवालोका ।।

हश्रमें छुप न सका हसरते दीदारका राज ।
आँख कम्बख्तसे पहचान गये तुम मुझको ।।

इन्तकादियात, भाग २, पृ० १०१

खूबरूओके बिगड़नेमें भी है लाखो बनाव ।
कही अच्छोकी कोई बात बुरी होती है ?

एक-सी शोखी खुदाने दी है हुस्नोइश्कमें ।
फर्क बस इतना है वोह आँखोमें है यह दिलमें है ।।

आँसू रुके तो क्या ? नहीं छुपनेका राजे इश्क ।
हसरत टपक पडेगी हमारी निगाहसे ।।

इन्तकादियात, भाग २, पृ० १५१

कह दें तुमसे कौन है, क्या है, कहाँ रहते है हम ।
बेखुदोको अपने जब तुम होशमें आने भी दो ।।

चौंका रहा हूँ वस्लकी शब, चौंकते नही ।
कुछ नींद है शबाबकी, कुछ ख्वाबेनाज है ।।

तुम्हारी बज़्ममें हम ख़ुद सम्भल जाते यह मुश्किल था।
तुम्ही बेताब करते थे, तुम्ही फिर थाम लेते थे॥

हम फिर उनके रूठ जानेपर फिदा होने लगे।
फिर हमें प्यार आगया, जब वोह ख़फा होने लगे॥

हाय! कातिलने हमीको न किया कत्ल 'जलाल'!
मुजरिम आख़िर वही ठहरा जो गुनहगार न था॥
मकतूबातेनियाज़, दूसरा हिस्सा, पृ० १५३

वोह दिल नसीब हुआ जिसको दाग भी न मिला।
मिला वोह गमकदा जिसमें चराग भी न मिला॥
गई थी कहके मैं लाती हूँ ज़ुल्फ़ेयारकी बू।
फिरी तो बादेसबाका दमाग़ भी न मिला॥
असीर करके हमें क्यो रिहा किया सैयाद?
वोह हमसफीर भी छूटे वोह बाग भी न मिला॥
बुतोके इश्कमें क्या होती हमसे यादे ख़ुदा?
कि दिल भी था न ठिकाने फराग भी न मिला॥
ख़बरको यारकी भेजा था गुम हुआ ऐसा।
हवासेरफ़्ताका अबतक सुराग़ भी न मिला॥
दिखाएँ यारको क्या जिस्मे दागदारकी सैर।
नज़रफरेब हमें एक दाग भी न मिला॥
भर आये महफिले साकीमें क्यो न आँख अपनी।
वोह बेनसीब हूँ ख़ाली अयाग भी न मिला॥
चराग लेके इरादा था बस्त ढूंढेंगे।
शबे फिराक थी कोई चराग भी न मिला॥

'जलाल' बागेजहाँमें वोह अन्दलीब हूं हम।
चमनको फूल मिले, हमको दाग भी न मिला॥

दागपर मेरे पडी मुरग़ाने गुलशनकी जो आँख।
सबने मिनक़ारोमे ले-लेकर गुलेतर रख दिया॥

अन्दाज़े, पृ० ८५

१४ नवम्बर १९५० ई०

८६

निज़ाम

[१८१६ से १८६६ ई० तक]

मियाँ निजामशाह 'निजाम' के पिता अहमदशाहका शुमार रामपुर रियासतके भद्र व्यक्तियोमे था। निजामने अरबी-फारसीकी शिक्षा प्राप्त की थी। जब इन्होने होश सम्भाला तो रामपुरमे शेरोसुखनकी चर्चाएँ आम थी। इनका भी कुदरती झुकाव इस ओर था। प्रारम्भमे शेख अलीवख्श 'बीमार' से मशवरये सुखन लिया। लेकिन उस्ताद-शागिर्दकी तबियते जुदागाना थी। 'बीमार' मोमिनके शिष्य थे और उन्हे देहलवी-दाखिली रग पसन्द था, निजाम लखनवी रगके दिलदादा थे और उन्हे जुरअतका रग रुचिकर था। इसलिए 'बीमार' के बजाय उन्होने अहमद अलीशाहसे इसलाह लेना अधिक उपयुक्त समझा।

जब इनकी ख्याति नवाब युसुफअली खा 'नाजिम' तक पहुँची तो उन्होने इन्हे अपना दरबारी शायर नियत कर दिया। नवाब स्वय बहुत अच्छे शायर थे और फन्ने शायरीपर उस्तादाना अधिकार रखते थे। अत 'निजाम' दरबारी शायर नियुक्त होनेके बाद नवाबसे भी कवितामे सशोधन लेने लगे।

निजामने अपने कलामको सुरक्षित और सकलित रखनेका कभी भी प्रयत्न नही किया। उनकी इस उपेक्षाके कारण उनका श्रेष्ठतम कलाम अब प्राप्त नही है। अपनी स्मरण शक्तिके बलपर निजामकी मृत्युके बाद मुशी कुदरतअली 'कुदरत' ने २७७ पृष्ठका दीवान प्रकाशित कराया था। जिसकी एक जिल्द इत्तफाकसे अल्लामा नियाज़ फतहपुरीके

हाथ रामपुरमे लग गई। उनका कहना है कि "इस दीवानमे मुश्किलसे सौ शेर ऐसे नज़र आते है, जिन्हे निगाहे इन्तखाब पसन्द कर सके, और मै इसे भी मिया निजामशाहका कमाल समझता हूँ कि इस मजमूएमे से जो उनके नज़दीक बिलकुल बेकार और कलमजदा (व्यर्थ) कलामका मजमूआ है, इतने अशआर निकल सके। निजामके रगके मुताल्लिक आमतौरपर यही मशहूर है कि वोह अदाबन्दीके बडे मश्शाक थे। चुनाचे वोह खुद भी एक जगह लिखते है––

हाल्लिया शेर सुनके मेरे कहते है 'निज़ाम' !
अब फ़न्ने शायरीमें तुझे भी कमाल है ॥

'हालिया' शायरीसे उनकी मुराद गालिबन 'मुआमला बन्दी' है। और इसमे शक नही कि उनपर यही रग गालिब था। वस्ल-ओ-हिज्रकी कैफियात, माशूकाना अदाओका बयान, महबूबकी कज अदाइयाँ, अगियारके साथ उसकी वफादारियाँ, वगैरह, यह वोह मुबाहिस है जिनपर आमतौर पर मामलाबन्दीके तहतमे खामा फरसाईकी जाती है और इनके यहाँ भी यह ब-कसरत नजर आते है। चुनाचे इसीलिए इन्हे सोज़ और जुरअतका मुकल्लद (अनुकरण करनेवाला) कहा जाता है। लेकिन मेरे नजदीक मुसव्वरीके लिहाजसे यह बाज मुकामातपर जुरअतसे भी बढ जाते है और जज्बात-निगारीकी हैसियतसे तो खैर इनका मर्तबा इस कदर बुलन्द है कि जुरअतका ख्याल भी वहाँ तक नही पहुँच सकता।

"मामलाबन्द शुअराके यहाँ सबसे ज्यादा उरियाँ (नग्न) मजामीन वस्ल और मुतल्लकातेवस्ल (वस्ल सम्बन्धी) के हुआ करते है और मियाँ निजामशाहने भी बाज़ जगह बहुत उरयानीसे काम लिया है––

ऐसेको शबे वस्ल लगाये कोई क्या हाथ ।
हरबार झटककर जो कहे "टूटे तेरा हाथ" ॥

उस दस्तेनिगारींको जरा मैंने छुआ था ।
किस नाजसे कहने लगे "उफ छोड, गया हाथ" ।।

लेकिन इस नोअ (विषय) के अशआर उनके यहाँ इस कदर कम है कि मुश्किलसे सारे दीवानमे ३०–४० से जाइद न मिल सकेंगे। इसमे शक नही कि यह रग भी एक हदतक पायएतहजीब (सभ्यता) से गिरा हुआ है और जौके सलीम (सुरुचि) पर ऐसे अशआरका सुनना बार (भार) होता है। लेकिन न इस कदर कि उसे सनअत (कला) की हदसे अलहदा समझा जाय। मगर जिन शुअराको इस तरफ गलू (आकर्षण) हो जाता है, आखिरकार वोह मुब्तजलनिगारी (अश्लील, घटिया शायरी) पर उतर आते है और उनका शुआर (रुचि) सिर्फ बेहूदा गोई हो जाता है। जुरअतके यहाँ ऐसी मिसाले ज्यादा मिलेगी, लेकिन 'निजाम'के यहाँ शायद दो-तीन ही शेर ऐसे नजर आएँगे––

'निजाम' आती है उस मुँहसे क्या दमे बोसा ।
वोह कुछ तो पानकी बू और कुछ शराबकी[1] बू" ।।

निजामके यहाँ इस तरहके गिरे हुए शेर बहुत कम है। उनके यहाँ ऐसे शेर अधिक है, जो 'अदानिगारी'[2] और 'मुआमलाबन्दी'[3] के अन्तर्गत आ सकते है––

अदानिगारी––

बिगड़कर वोह उसका इधर देखना ।
सितम वोह भी फिर इक नजर देखना ।।

---

[1]इन्तकादियात, भाग १, पृ० ७–८

[2]माशूककी अदाओ, बेवफाइयो, और अगियारके साथ उसकी वफादारियोका बयान करना अदानिगारी है।

[3]इश्केमजाजीकी हकीकी वारदातका बयान करना मुआमलाबन्दी है।

वोह यूँ मुसकराकर न मुँह फेरते ।
न मजूर होता अगर देखना ॥
वोह चल-चलके रुकना किसीका गजब ।
वोह फिर-फिरके अपनी कमर देखना ॥

अन्दाज अपना देखते हैं आईनेमे वोह ।
और यह भी देखते है कोई देखता न हो ॥

उसका कहना वोह शबेवस्ल 'निजाम' !
"हाथ मुझको न लगाये कोई" ।

अँगडाई भी वोह लेने न पाये उठाके हाथ ।
देखा जो मुझको, छोड़ दिये मुसकराके हाथ ॥
बे साख्ता निगाहे जो आपसमें मिल गईं ।
क्या मुँहपर उसने रख लिये आँखें चुराके हाथ ॥
वोह जानुओमे सीना छुपाना सिमटके हाय !
और फिर सम्भालना वोह दुपट्टा छुड़ाके हाथ ॥
देना वोह उसका साग़रेमय याद है 'निजाम' !
मुँह फेरकर इधरको उधरको बढ़ाके हाथ ॥

मामलाबन्दी—

मामलाबन्दीके अन्तर्गत ऐसे समस्त शेर आ सकते है, जिनमे प्रेमी-प्रेमिकाके एकान्त सबध, बातचीत, छेड-छाड, रूठना-बिगडना, हँसी-मजाक आदिका उल्लेख हो और जिनका सम्बन्ध उच्चभावो और सभ्य विचारोसे न हो । जैसे कि अदानिगारीके शेर देनेसे पहले नमूनेके तीन शेर दिये गये है ।

किन्तु यही मामलाबन्दी शायरी जब कलापूर्ण ढगसे सीधे-साधे शब्दोमे हृदयके सही भावोमे व्यक्त की जाय तो इसके शेर भी बुलन्द हो

उठते है और उनमे एक विशेष्ता आ जाती है। इसी तरहकी कलापूर्ण अदानिगारी और मामलाबन्दी शायरीको निजामने 'हालिया' शायरी कहा है। इस बदनाम रगमे लिखते हुए भी निजामने क्या खूब शेर कहे है—

खुदा जाने मुझको दिखायेगा क्या ?
यह छुप-छुपके अपना उधर देखना ॥

वोह हाय बिगड़कर उसका जाना।
रोना वही ज़ार-ज़ार मेरा ॥

तुम्हे यह भी कहीं खयाल आया।
कि कोई राह देखता होगा ॥

गो न किया अर्ज़े तमन्नाये दिल।
मुँहको वोह लेकिन मेरे देखा किया ॥

मुझको सुना-सुनाके वोह कहना किसीका हाय।
"जिससे कि जीमें रंज हो उससे कलाम क्या" ॥

मुँह फेरकर हँस-हँसके वोह इकरारकी बातें।
इस तौरसे करते है कि बावर नहीं होता ॥

"कह, 'निज़ाम' अब तेरे क्या जीमें है कह दे मुझसे"।
हाय पूछे वोह कभी मुझसे यह तनहा होकर ॥

ऐ जान ! कहो फिर इस अदासे—
"मै आज 'निज़ाम' से खफा हूँ" ॥

अबस यह हर दमका चौंकना है अबस यह उठ-उठके देखना है।
भला वोह ऐसे हुए थे किस दिन वही तो वादा वफा करेगे ॥

यूँ वोह उठ जाएँ सम्भाले हुए दामन अपना ।
और मेरे हाथ दुपट्टेका न आँचल आये ॥

यूँ तो रूठे है, मगर लोगोसे ।
पूछते हाल है अक्सर मेरा ॥

अहद किया था अभी कैसा 'निज़ाम' !
फिर वही जानेका इरादा किया ॥
तौबा वाँ जानेसे करते हो 'निज़ाम' !
क्या करोगे वोह अगर याद आया ॥

बे वहाँ जाये भला हमसे रहा जाये कहाँ ?
दिलसे उस बज्ममें जानेका मज़ा जाये कहाँ ?

फिर उसीसे तू जा मिलेगा 'निज़ाम' !
तेरी तौबाका एतबार नहीं ॥

अब हमारा न हाल पूछो 'निज़ाम' !
क्या कहे कुछ कहा नही जाता ॥

अब हाले 'निज़ाम' कुछ न पूछो ।
गम होगा तुम्हे भी गर कहूँगा ॥

आजकल आपसे[1] बाहर है 'निज़ाम' !
कही महफिलमें न बुलवाइयेगा ॥

अब हम उनकी गजलोके चन्द शेर 'इन्तकादयात' से और पेश करते है—

---

[1]आपेमे नही ।

एकदम दिलसे भुलाया नही जाता तुमको ।
कुछ ख़ुदा जाने कि किस हाल मे देखा है तुम्हे ।।

चैन मिलता नही ज़रा दिलको ।
तुमसे मिलकर यह क्या हुआ दिलको ।।
किसी चर्चामे जो नही लगता ।
या इलाही यह क्या हुआ दिलको ।।

क्या कहें आपके नज़दीक ही रहता है 'निज़ाम' ।
रोज़ पिछलेको जो रोनेकी सदा आती है ।।

उनको मैं किस तरह भुलाऊँ 'निज़ाम' !
याद किस बातपर नही आते ।।

किया कहर वादेने वर्ना शबेहिज्र ।
मुझे ग़म तो होता पर इतना न होता ।।

तुझसे कुछ कहनेको था, भूल गया ।
हाय क्या बात थी, क्या भूल गया ।।

जो दिलमें आये किसीके वोह कुछ कहे मुझको ।
मुझे तो नाज़ है इस दर पै जिबहसाईका[1] ।।

'निज़ाम' उनको तो आदत कभी सितम की न थी ।
ख़याल आगया क्या उल्फत आज़माईका ।।

यूँ आप तो कहूँगा न रंजिशका माजरा ।
पूछोगे तुम तो मुझसे छुपाया न जायगा ।।

---

[1]नतमस्तक होनेका ।

सच है 'निज़ाम' याद भी उसको न होगे हम।
पर क्या करे वोह हमसे भुलाया न जायगा॥

कहनेसे न मना कर, कहूँगा।
तू मेरी न सुन, मगर कहूँगा॥
तुझसे ही छुपाऊँगा ग़म अपना।
तुझसे ही कहूँगा, गर कहूँगा॥

कहा क्यो दोस्तो तुमने ख़ुदा जाने वोह क्या समझें?
हमारा हाल उनपर आप ही इज़हार हो जाता॥

ख़ुदा ही जाने कि क्या दिल पै चोट लगती है।
तुम्हारे पास जो आया वोह दर्द मन्द हुआ॥

मैंने जो तुझसे कहा था वोह तो तूने कह दिया।
नामाबर! मुझसे न कहना उस सितमगरका जवाब॥

वोह झरोकेसे जो देखें तो मैं इतना पूछूं।
बिस्तर अपना पसेदीवार करूँ या न करूँ॥
तू भी उस शोख़से वाकिफ है बता कुछ तो 'निज़ाम'!
मुझसे दिल माँगे तो इनकार करूँ या न करूँ॥

लपेटे मुँह पडे रहना तेरी कुछ याद ला-ला कर।
बनाया करते है अब दिलसे हम दो-दो पहर बातें॥

क्या कहे यह कि "कब उन तक है रसाई अपनी?"
पूछनेवालोसे कहते है कि "हाँ मिल आये"॥

बातें थी दिलमें क्या-क्या कहनेको थे न क्या कुछ।
मुँहसे न उसके आगे कुछ भी कलाम निकला॥

हैरानसे रह जाते हैं हम सामने उसके।
हमसे तो 'निज़ाम' उससे गिला हो नही सकता ॥

मुझे उम्मीदेवफा तुमसे, तुम्हे दुश्मनसे।
यह अगर जब्त है तो, मुझसे ज्यादा है तुम्हे ॥

कलका वादा किया फिर उसने आज।
और भी एक दिन जिये ही बनी ॥

तेरा मिलना तो एक आफत है।
गैरका हाल क्या हुआ होगा ॥
आप ही आप ऐसे रोये 'निज़ाम' !
दिलमे कुछ ध्यान आ गया होगा ॥

जो मेरे देखनेको आता है।
फिर वोह बारे दिगर नही आता ॥

वॉ जानेसे फायदा तो मालूम।
दिल और भी बेकरार होगा ॥

वोह मुझको 'निज़ाम' क्यो मनाते ?
क्या जानिये यह भी क्या महल था ॥

हम तो कह गुज़रे हाले दिल अपना।
नहीं मालूम उसने क्या जाना ॥

जुज़ उस गलीके दिल नही लगता कही 'निज़ाम' !
सौबार हमतो साकिने दैरो हरम हुए ॥

सब कहते हैं मुझको नही बचनेका 'निज़ाम' अब।
"किस वास्ते मरता है ?" तुम इतना नही कहते ॥

हमदम ! न कह वोह बात जो दिलको बुरी लगे ।
उस बेवफासे गो मेरी रजिश हज़ार है ॥

रूठकर बैठे हो उनसे किस तवक्कोह पर 'निज़ाम' !
होशमे आओ, वोह आएँगे मनानेके लिए !

यह बात पूछते हैं उनके जानेवालो से ।
हमारे बाबमे वोह कुछ कहा भी करते हैं ?

शिकवा उस बुतका हर किसीसे 'निज़ाम' !
उससे कहदे खुदा करे कोई ॥

कही उस बज़्मतक रसाई हो ।
फिर कोई देखे अहतमाम मिरा ॥

२१ दिसम्बर १९५०

६०

जावेद

[हि० स० १२८० से १३४० तक]

सैयद मुहम्मद काजिम साहब 'जावेद' हिजरी सन् १२८० के लगभग लखनऊमे उत्पन्न हुए और ६० वर्षकी अवस्थामे वही जन्नत नशीन हुए। जावेदके दादा बादशाही जमानेमे जजीके पदपर नियुक्त थे और पिता सैयद मुहम्मदजफर अल्लाह, 'उम्मीद' उपनामसे शायरी करते थे। आपको बचपनसे ही शायरीका शौक था। प्रारम्भमे अपने पितासे और बादमे खुरशीद लखनवीसे मशवरये सुखन लिया। सुना जाता है आपने अपने कलामके दो अप्रकाशित सकलन छोडे, किन्तु उन्हे आपके एक सम्बन्धी उठाकर ले गये, जिनसे फिर वे वापिस नही मिले। 'आसी' गाज़ीपुरी और 'तमन्ना' लखनवी (जावेदके भाई) से चन्द अशआर अल्लामा नियाज फतहपुरीको किसी तरह दस्तयाब हो सके थे। उनमेसे चन्द यहाँ साभार दिये जा रहे है। जावेद लखनवी रगके बहुत अच्छे शायर थे।

यह अपने चाहनेवालोसे आपका बर्ताव ?
यहाँतक आती है आवाज़ लनतरानीकी ॥
जो बचपना है तो मेरी तरफसे फेरलो मुँह ।
यह कोई खेल नहीं मौत है जवानीकी ॥
हमारी उम्रसे कुछ रोज़ घटते जाते है ।
कसम हुज़ूर न खाया करे जवानीकी ॥

अब इक बोसे पै इतनी बहस जेबा है न शायां है ।
निगाहे नीची कर लो, ख़ैर, अच्छा, ले लिया होगा ॥
अभी तो आग-सी दिलमे कही कम है कही ज़ाइद ।
अगर मिल जायेंगे आपसमें सब छाले तो क्या होगा ॥

कफन पहने हुए ख़ुद चान्दनी आई मेरे घरमें ॥
खुदा आलम न दिखलाये शबेमहताब हिजराँका ॥
उदासी चारागरके मुँहपै जब आती हुई देखी ।
मै समझा यह कि टूटा ज़ख़्मके मेरे कोई टांका ॥

मिला शबाबमे जो दिल बुझा वोह पीरीमें ।
चिराग़े सुबह था अब उसका एतबार न था ॥

मरनेकी इक उम्मीद पै जी जाएँ बेनसीब ।
तुम भी किसीके गममें अगर सोगवार हो ॥

कहते है देखकर मेरी सूरत यह उनसे गैर ।
अब उसके रंजकी न कोई बात कीजिये ॥

हम जिसको उम्र समझे मुद्दत ही उसकी क्या थी ।
इतना न कहने पाये किस फित्नागरने मारा ॥

अब कहाँ या मैं जो देता उस मुहब्बतका जवाब।
जिसकी तुरबत देखली मुझको सदा देने लगे॥

अरे यह हश्र है, है सैकड़ो तेरे मुश्ताक ।
यहाँ पै हम भी है राज़ी नकाब डालके चल॥
कही यह तफरका अन्दाज़ चर्ख़ देख न ले ।
न इस तरीक़से बाहे गलेमें डालके चल॥

कल भी गर पहचानिये तो मान लू।
देखली है आज सूरत आपने॥

इक जमाही-सी उसे महफिलमें आकर रह गई।
मैं यह समझा इक कली थी मुसकराकर रह गई॥

शबेतारीक हिज्र आती है 'जावेद'।
सबेरेसे चरागोको जलालो॥

रातको दरियामे मोजे किसतरहसे चैन लें।
इक किनारे चान्द है और इक किनारे आप है॥

जमा आँखोमे है इतने कि खटक होती है।
कुछ तो आँसू मिरी आँखोसे निकल जाने दो॥

२५ दिसम्बर १९५०

उत्तरार्द्ध युगीन देहलवी शायर

जौकके शिष्य—

६१

ज़फ़र

[१७७५ से १८६२ ई०तक]

बहादुरशाह 'जफर' मुगलिया सल्तनतके अन्तिम बादशाह थे। बादशाह इन्हे इस दृष्टिसे कहा जा सकता है कि इन्होने भी बादशाही खान्दानमे जन्म लिया, लालकिलेमे पले-पोसे और उस राज्यासनपर बैठनेका अवसर मिला, जिसपर बैठकर इनके पूर्वज हुक्मरानी किया करते थे। वर्ना इनकी सामर्थ्य तो शतरजके बादशाह जितनी भी न थी जो अपनी सुरक्षाके लिए इधर-उधर इच्छानुसार चल तो सकता है। इन्हे उतनी भी स्वतत्रता प्राप्त नही थी। एक पेन्शनयाफ्ता रईसकी-सी हैसियत रखते थे, और लालकिलेकी परिधि भी इनकी हुक्मरानीके लिए जरूरतसे ज्यादा समझी जाती थी।

इसमे जफरका कोई दोष नही था। जिस समय (१८३७ ई०मे) ये राज्यासीन हुए, उस वक्त मुगलराज्यकी स्थिति ऐसी ही शोचनीय थी। मुगलराज्यके पतनका श्रीगणेश औरगजेबके ही शासनकालमे प्रारम्भ हो गया था। जाहिरामे वह दिन-रात राज्य विस्तार कर रहा था और विद्रोहियोका दमन कर रहा था, किन्तु उसके इसी राज्यविस्तार और दमनके खाद-पानीसे पतनके अकुर फूट निकले थे। उसके असहिष्णु स्वभाव, शक्की मिजाज और धर्मोन्मादने अपने-पराये, हिन्दू-मुस्लिम, सभीको विद्रोही बना दिया था। उसके जीवनकालमे प्रान्त-प्रान्त और ज़िले-

जिलेमे विद्रोहाग्नि सुलग चुकी थी। उसने इस आगको यथा शक्य बुझाने-का प्रयत्न किया, किन्तु उसके उत्तराधिकारी इस बढते हुए सैलाबको न रोक सके। अत दिन-रातके घरेलू झगडे और बाहरी आक्रमणोने मुगल-राज्यकी जडे हिला दी। मुगल बादशाहोकी भोगलिप्सा और अकर्मण्यताने इन हिली जडोमे घुन लगा दिया।

मुहम्मदशाह रगीलेके शासनकालमे मुगलराज्य डगमग-डगमग हिलने लगा था और उसके हरवक्त गिर पडनेकी आशका बनी रहती थी कि १८५७ की विप्लवकी आँधीमे वह सदैवको धराशायी हो गया।

सन् १७७५ ई० मे 'जफर' का जन्म हुआ। इनके पिता अकबरशाह (द्वितीय) इनसे सदैव अप्रसन्न रहे। वे अपने अन्य पुत्रको उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे, किन्तु वास्तविक हकदार जफर अपनेको समझते थे। अपने हकमे अग्रेजो द्वारा उत्तराधिकारका निर्णय दिये जानेपर भी पिताके जीते जी सुख-चैनसे जीवन नही बिता सके, और सारी जिन्दगी बडी बेमजे कटी।

जफर जब ६२ वर्षके बूढे हो गये, तब कही पिताकी मृत्यु हुई और १८३७ मे उन्हे शतरजी बिसातके बादशाह बननेका अवसर प्राप्त हुआ। बादशाह बननेके बाद भी मनकी अभिलाषाएँ क्या खाक पूर्ण होती, वे तो अतृप्त ही नष्ट हो चुकी थी। जवानीमे सिर्फ ५०० रु० मासिक गुजर औकातको मिलते थे। उसीमे चार रुपये माहवार अपने उस्ताद जौक को भी देने पडते थे, और जब राज्य प्राप्त हुआ तो मनके वलवले सब किरकिरे हो गये थे। इस आयुमे गुलछर्रे उडाना तो कुजा, ईश्वरीय उपासनाकी भी शक्ति नष्ट हो गई होगी।

जफरकी बडी अभिलाषा थी कि अच्छे-अच्छे कलाकारोसे अपने दरबारकी जीनत बढाएँ, किन्तु किस बिरतेपर तत्ता पानी? राज्य-कोष सब रिक्त हो चुका था। बादशाह होनेपर अपने उस्तादको ही २५ रुपयेसे अधिक मासिक नही दे सके और री-री करके उनके अन्तिम दिनोमे १०० रु० मासिक देकर अपना हौसला निकाल सके थे।

जफर ने बादशाहोके उपयुक्त शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की, लालकिलेकी 'उर्दूएमोअल्ला' (टकसाली, प्रामाणिक, लालित्यपूर्ण उर्दू) विरासतमे मिली। तबियतका रुझान कुदरती शायरीकी तरफ था। गालिब या मोमिन जैसे साहिबे कमाल उस्ताद नसीब हुए होते तो आज इनका भी शायरीमे एक विशेष स्थान हुआ होता, किन्तु दुर्भाग्यसे इन्हे शाह 'नसीर' जैसे उस्ताद मिले। जो कि मुश्किल जमीनो, अटपटे काफियो, रदीफोमे गजल कहना कमाले शायरी समझते थे। वे नासिख जैसी खारजी शायरीके दिलदादा थे।

जफरके कलामके अध्ययनसे विदित होता है कि उनकी तबियत रगीन थी, और इशा और जुरअत जैसी शायरीकी तरफ उनका रुझान था। यदि उन्हे इस रगका अच्छा उस्ताद मिला होता तो यकीनन उनका कलाम 'जुरअत' और 'इशा' से बुलन्द होता। न तो उन्हे अच्छा उस्ताद ही मिला और न उनकी अभिलाषाएँ पूर्ण होनेसे उनके मनकी भूक मिटी। मानसिक भूकको किसी तरह शायरी द्वारा पूर्ण करनेका प्रयत्न किया है, किन्तु उसमे भी सफलता नही मिली।

जफरकी शायरीमे दिल्ली स्कूलका न तो सोजोगुदाज आ पाया है, न लखनऊ स्कूलकी रगीनी। बल्कि उनकी शायरी अफसुर्दा-सी होकर रह गई है। हाँ यदि उन्हे किसी भी रगका उस्ताद अच्छा मिला होता तो वे भी आज आस्माने शायरीपर चमकते हुए होते।

'नसीर' के बाद उन्हे बुढापेमे उस्ताद जौक मिले भी। परन्तु वे अब इस योग्य नही रहे थे कि उनका जौके सलीम बदला जा सके। मोमिन तो दरबारमे जाते ही न थे। हाँ चाहते तो गालिबसे मशवरये सुखन लिया जा सकता था! परन्तु उनकी तबियतका रुझान गालिबकी शायरीके उपयुक्त नही था। वोह जिस साँचेमे ढाले गये थे, उसके लिये जौक ही उपयुक्त हो सकते थे। क्योकि वे भी शाह 'नसीर' के शिष्य रह चुके थे। अत ज़फरके मनोभावोको समझने और उन्हे शेरमे व्यक्त करा सकनेमे जौक ही उपयुक्त हो सकते थे।

'जफर' बहुत ज्यादा शेर कहते थे। और उनके पास काम भी क्या था ? उनके जीवनकालमे ही नवलकिशोर प्रेससे मुद्रित चारो दीवान हमारे समक्ष है। दूसरे और चौथे भागके अन्तिम पृष्ठ फटे हुए होनेके कारण पृष्ठोकी सही सख्या नही दी जा सकती। फिर भी इन फटे हुए चारो भागोकी पृष्ठ सख्या १०२६ है, और हर पृष्ठमे ३० के लगभग शेर है। इस हिसाबसे अन्दाजन ३६७८० अशआर होगे।

दीवान पुराने ढगके छपे हुए है। हाशिये तक पर शेर लिखे हुए है। कागजका जरा-सा हिस्सा भी कोरा नही रहने दिया गया है। पढते हुए ऐसा मालूम होता है कि चिरायतकी घूँट भरी जा रही है। इतने बडे जखीरेमे सुरुचिपूर्ण शेर, आटेमे नमककी तरह मिले हुए है। फिर भी उनको अपनी शायरीपर बडा नाज था, सैकडो गजलोमे इसका उल्लेख किया है--

जफर सुखनका अपने 'जफर' बादशाह है।
उसके सुखनसे यॉ न किसीका सुखन लगा॥

× × ×

कोई गजलपर अपनी जो नाजॉ आगे तेरी गजलके हो।
शेर सुनादे उसको 'जफर' इक इसमेका इक उसमेंका॥

और सचमुच 'जफर' का कलाम इसी तरहका है, कि कोई शेर इस दीवानमेसे ढूँढलो और कोई उस दीवानमे से खोज निकालो। जफरको शाह 'नसीर' की तरह मुश्किल-से-मुश्किल जमीन और अटपटे-से-अटपटे काफिये, रदीफोमे शेर कहनेका बडा चाव था। और इसमे कमालका अभ्यास भी था। चन्द नमूने मुलाहिज़ा हो--

कहूँ क्या रग उस गुलका अहा, हा-हा अहा, हा-हा।
हुआ रगीं चमन सारा अहा, हा-हा, अहा, हा-हा॥

दाग कब दिलको ऐ निगार ! लगा ।
इश्कके घरपै इश्तहार लगा ॥

तू आ इसदम कि है वक़्तेसहर[1] ऐ गुलबदन ! ठडा ।
ज़मीं ठडी, हवा ठडी, मकाँ ठडा, चमन ठडा ॥

'ज़फर'का रेख्ता गर वोह सुने तो बन जावे ।
हरेक शायरेनाज़ुकदमाग पत्थरका ॥

फलकने[2] तेरे सरका अम्मामा[3] मजनूँ !
जुनूको[4] लगाकर उछाला-बिगाड़ा ॥

तेरे दामनसे जो टपका खूं शहीदेनाज़का[5] ।
खूब गहरा दामनेमहशर[6] गुलाबी हो गया ॥

खुदाने जब कि जमालेबुताँ[7] बनाया था ।
मज़[8]को तीर, भवोको कमाँ बनाया था ॥

वस्ल ज़ाहिर तो न होता था हमे उसका नसीब ।
ख्वाबमे वोह छुपके आया यूँ न था तो यूँ हुआ ॥
देके उस बेदर्दको दिल, हूँ 'ज़फर' मै दर्दमन्द ।
वाह दु ख बैठे बिठाये यूँ न था तो यूँ हुआ ॥

तूने क्यो डोरेसे पेटी बाँधी ऐ सैयाद ! वाह ।
बाँधनी बुलबुलकी थी तारेरगेगुलसे[9] कमर ॥

---

[1]प्रात समय,
[2]आकाशने,
[3]साफा,
[4]उन्मादको,
[5]प्रेममे मरनेवालेका,
[6]प्रलय-स्थान,
[7]प्रेयसीका रूप,
[8]मिज़गाका सक्षिप्त, पलकोको;
[9]फूलकी रगसे ।

कभी तो आओ हमारे घरमें सुनो हमारी भी चार बातें ।
अजब है शिकवा[1] रकीबका, याँ हज़ार मुंह हैं हज़ार बातें ॥
चढ़ा है कोठेपै कौन अपने कि देखनेको अब आह जिसके ।
बगोला बनकर यहाँ फलकसे करे है अपना गुबार बातें ॥
गये 'ज़फर' कल जो उसके घर हम, खुला यह शिकवेका आगे दफ्तर ।
गुज़र गई शब[2] तमाम, तिसपर न हो चुकी ज़ीनहार[3] बातें ॥

यूँ तो अफसाना मेरा वोह नही सुनता ऐ दिल !
उससे यह किस्सा दमेख्वाब कहे तो कह दूँ ॥

एक-दो सागरसे क्या होता है हम तो खुमके खुम ।
बैठकर साकीके सब जानू ब जानू पी गये ॥

की सहर[4] हमने तडपकर हिज्रकी शब[5] महजबीं[6] !
रातभर सोया किये तुम माहताबीमें[7] पड़े ॥
गर न खाये साथ अपने वोह, नही खानेका लुत्फ ।
है मज़ा जब हाथ दोनोका रकाबीमें पड़े ॥
ऐ 'ज़फर' ! जाने वोह कैफीयत निगाहेमस्तकी ।
आँख उस मयकशकी[8] जिसपर बेहिजाबोमें[9] पड़े ॥

यूँ है तबीयत अपनी हविसपर[10] लगी हुई ।
मकड़ीकी जैसे ताक मगसपर[11] लगी हुई ॥

---

[1]शिकायत, [2]रात्रि, [3]कदापि,
[4]सुबह, [5]विरहरात्रि, [6]चन्द्रमुखी,
[7]बरसाती कमरेमे, [8]मद्यपकी, [9]बेपर्दहालतमे,
[10]तृष्णा, सुखभोगकी अभिलाषाओपर,
[11]मक्खीपर ।

आजाद कब करे हमे सैयाद देखिये।
रहती है आँख बाबेकफसपर[1] लगी हुई॥

इसी तरह—दिलबर गाँठा, मिजगाँ टाँका, इक इसमेका इक उसमेका, गिलाफतग, हँसौडकी एक, फौलादकी नौक, सगतडक, कातिलके चार पाँच, कलकलसे कमर, घरमे सलाख—जैसे अनोखे और विचित्र-विचित्र काफियोमे गजले कही है, और यह शौक इतना गालिब रहा है कि समूचे कलामका पौन हिस्सा इसी तरहका है। इस तरहकी ऊबड-खाबड जमीनो-मे वही शेर लिखेगा, जिसे अपनी शायरीका जोरे पहलवानी दिखाना इष्ट हो, अन्यथा मनोभाव तो व्यक्त हो ही नही सकते। महज ऊटपटाँग काफिये रदीफोको बाँधनेके लिए जो शेर कहा जाय वह उटपटाँगके सिवा और हो भी क्या सकता है।—

'जैसी गन्दी देवी वैसे ऊत पुजारी'

जफरकी शायरी वही पुराने ढर्रेकी शायरी है। उसका माशूक बाजारी भी है और मद्यप भी है। उसके कलाममे वही वस्लकी ख्वाहिश, गिले-शिकवे, हिज्रके सदमे, बोसे बाजी, चूमा-चाटीके शेर कसरतसे है। जफरकेदीवानमे नासिख की खारजी शायरी, जुरअत की मुआमले बन्दी, और अमरदपरस्तीके अशआरकी भरमार है। कही-कही नीतिपूर्ण और तसव्वुफके भी शेर मिलते है—

गर फिक्रमे हो राहके तोशेका[2] करो फिक्र।
ऐ गाफिलो! नजदीक है रोजेसफर[3] आया॥

न दरवेशोका खिरका[4] चाहिए ना ताजेसुलताना।
मुझे तो होश दे इतना रहूँ मै तुझपे दीवाना॥

---

[1] पिंजरेके दर्वाजेपर, [2] यात्राके सामानका,
[3] मृत्यु यात्राका दिवस, [4] फकीरोका लिबास।

न देखा वह कही जलवा जो देखा ख़ानये दिलमे ।
बहुत मस्जिदमे सर मारा बहुत-सा ढूँढा बुतख़ाना ।।

न थी हालकी जब हमे अपनी ख़बर, रहे देखते औरोके ऐबोहुनर ।
पडी अपनी बुराइयोपर जो नजर तो निगाहमे कोई बुरा न रहा ।।
'जफर' आदमी उसको न जानियेगा वोह हो कैसा ही साहबेफहमोजका ।
जिसे ऐशमे यादे ख़ुदा न रही, जिसे तैशमें खौफे ख़ुदा न रहा ।।

नीचे कुछ चुने हुए शेर दिये जा रहे है--

किसीने उसको समझाया तो होता ।
कोई याँतक उसे लाया तो होता ।।
मजा रखता है जख्मे खजरे इश्क ।
कभी ऐ बुलहविस[1] खाया तो होता ।।
न भेजा लिखके तूने एक परचा ।
हमारे दिलको परचाया तो होता ।।
जो कुछ होता सो होता तूने तकदीर !
वहाँतक मुझको पहुँचाया तो होता ।।

क्या जानें बनी कैसपै[2] क्या दश्ते जनूँमें[3] :
जो ख़ाकबसर आज बगोला नजर आया ।।

गुलसे भी नाजुक बदन उसका है लेकिन दोस्तो !
यह ग़जब क्या है कि दिल पहलूमें पत्थर-सा बना ।।

चारागर[4] भर न सके मेरे जिगरके नासूर ।
एक गर बन्द किया दूसरा रोजन[5] निकला ।।

---

[1]कामान्ध, [2]मजनूपै, [3]दीवानगीमे;
[4]चिकित्सक, [5]सूराख ।

पहले तो दिलमे मुहब्बतका शजर[1] पैदा हुआ।
फिर लगे हसरतकेगुल[2] गमका समर[3] पैदा हुआ॥
सोजिशेदागेअलमसे[4] पहले भेजा जल गया।
बाद उसके दिल जला और फिर कलेजा जल गया॥
उफ! मिरे मजमूने सोजे दिलमें भी क्या आग है।
खत जो कासिद उसको मैंने लिखके भेजा जल गया॥

मेरी आँख बन्द थी जबतलक वोह नजरमे नूरेजमाल था।
खुली आँख तो न खबर रही, कि वोह ख्वाब था कि खयाल था॥
मेरे दिलमे था कि कहूँगा मैं जो यह दिलपै रजोमलाल है।
वोह जब आ गया मेरे सामने, न तो रज था न मलाल था॥

उसको इन्साँ मत समझ हो सरकशी जिसमे 'जफर'!
खाकसारीके लिए है खाकसे इन्साँ बना॥

उडाकर आशियाँ सर-सरने मेरा।
किया साफ इस कदर तिनका न पाया॥
उसे पाना नही आसाँ, कि हमने
न जबतक आपको खोया, न पाया॥

तुझे भी खबर है कि ओ गैरतेगुल[5]!
कोई हो गया गममे घुल-घुलके काँटा॥

है इश्ककी मजिलमे यह हाल अपना कि जैसे।
लुट जाये कही राहमे सामान किसीका॥

---

[1]वृक्ष, [2]अभिलाषाओके फूल,
[3]फल, [4]व्यथा-पीडाकी आगसे,
[5]अपने सौन्दर्यसे फूलोको लज्जित करने वाले।

यह आस्माँ गुलाम है किस महजमालका[१] ?
पहने फिरे है कानमें बाला हिलालका[२] ॥

दे दिया दिल और नही अब याद यह किसको दिया ।
इश्कको खोदे खुदा जिसने जहाँसे खो दिया ॥
ख्वाह वह दागेजुनूँ हो ख्वाह कोई अश्केखूँ ।
हमने सर आँखोपै रक्खा, इश्क तूने जो दिया ॥

कसम खुदाकी तुझे क़ासिदा कि यह पैगाम ।
कहा है यारने या तूने अपने जीसे कहा ॥

दन्दाँकी[३] ताब देखके अजुम[४] हुए खिजल[५] ।
वोह महजबी[६] जो शबको लबेबाम[७] हँस पडा ॥
क्या बात याद आ गई उसको कि ऐ 'ज़फर' !
वह यकबयक जो सुनके मिरा नाम हँस पडा ॥

कूचेमे तेरे तनहा हर शब मुझे हो जाना ।
दो-चार घडी अपना दिल खोलके रो जाना ॥

हमने कहके अपना हालेदिल दिया सबको रुला ।
हर तरफ रूमालपर रूमाल तर होने लगा ॥
कूचये जानाँमे जाना ही पड़ेगा, हो सो हो ।
क्या करूँ बेताब दिल फिर ऐ 'ज़फर'! होने लगा ॥

---

[१]चन्द्रमुखीका,
[२]दोजके चान्दको बालीकी उपमा दी है,
[३]दन्तपक्तियोकी,
[४]नक्षत्र, [५]लज्जित,
[६]चन्द्रमुखी, [७]कोठेपर ।

आपकी ख़ातिरसे हम करते थे जब्ते इज़्तराब[1] ।
देखकर बेताब हमको और घबरायेंगे आप ॥

दर्दमन्दाने मुहब्बतका तबीबोसे इलाज ?
किस तरहसे हो सके यारो यह बीमारी है और ॥
मयकदेमे इश्कके जो लोग हैं काफिर तो है ।
लेकिन उनके कुफ़्रमे अन्दाज़े दीदारी है और ॥

जब कि पूछे यार मुझसे "शेफ्ता[2] है किसपै तू" !
मुँहसे मै अपने कहूँ क्योकर, कहो तो क्या करूँ ?
अपना अहवालेमुहब्बत[3] सामने उसके 'ज़फर' ।
आप मै लिखकर पढ़ूँ क्योकर, कहो तो क्या करूँ ?

सब्र मुश्किल है न कर सब्रका दावा हरगिज़ ।
इश्कमे तुझसे 'ज़फर' ! यह कभी होनेका नही ॥

तुम नज़र आ जाओ शायद इस हविसमें[4] आज हम ।
सुबहसे ताशाम सूएरहगुज़र[5] देखा किये ॥
गर नही है रब्त कुछ बाहम तो फिर महफिलमे शब
तुम उन्हें और वोह तुम्हे क्यो ऐ 'ज़फर' देखा किये ॥

नही है ताकतेपरवाज़[6] आह ऐ सैयाद !
खुदा करे कि तू अब वा दरेकफस[7] न करे ॥
जो उसकी जानपै गुज़रे है, वोही जाने है ।
खुदा किसीको जहाँमे किसीके बस न करे ॥

---

[1]सन्तोष, धैर्यधारण,
[2]आसक्त,
[3]प्रेमवर्णन,
[4]आशामे,
[5]मार्गकी ओर,
[6]उडनेकी शक्ति,
[7]पिजरेका दर्वाजा न खोले ।

बात करनी मुझे मुश्किल कभी ऐसी तो न थी।
जैसी अब है तेरी महफिल कभी ऐसी तो न थी॥
ले गया छीनके कौन आज तेरा सब्रोकरार।
बेकरारी तुझे ऐ दिल कभी ऐसी तो न थी॥

हाथको हाथपै तू रखके लगा जब चलने।
हाथ हम मलते थे दिल था कि मला जाता था॥
आँख चाहतकी 'जफर' कोई भला छपती है।
उससे शरमाते थे हम, हमसे वोह शरमाता था॥

मैं उसको देखके यह महव हूँ कि हैरॉ हूँ।
जो कुछ वह पूछेगा मुझसे जवाब क्या दूँगा॥
न पूछ मुझसे 'जफर' तू मेरी हकीकते हाल।
अगर कहूँगा अभी तुझको मैं रुला दूँगा॥

न पहुँचा तू, न पहुँचा तालिबेदीदारतक[1] अपने।
तेरी तकते ही तकते राह वक्ते वापिसी पहुँचा॥

'जफर' १७७५ ई० मे उत्पन्न हुए, १८३७ ई० मे ६२ वर्षकी आयुमे नाममात्रके बादशाह कहलाये। २० वर्ष बादशाह बने रहनेके बाद अग्रेज़ो द्वारा बन्दी बनाकर १८५७ मे रगून भेज दिये गये, और १८६२ ई० मे रगून मे ही मृत्यु हुई।

'जफर' को जिस अग्रेजने कैद किया, वोह उर्दूशायरीका भी शौक रखता था। 'जफर' को देखकर चिढानेकी गरजसे यह शेर पढा—

दम-दमेमे दम नही, अब खैर माँगो जानकी।
ऐ 'जफर' बस हो चुकी शमशीर हिन्दुस्तानकी॥

---

[1]दर्शनाभिलाषी तक।

'जफर' न जो फिलवदी जवाब दिया वोह स्वराज्यके इतिहासमे स्वर्गाक्षरोमे लिखने योग्य है—

हिन्दयोमे बू रहेगी जबतलक ईमानकी।
तख्तेलन्दनपर चलेगी तेग हिन्दुस्तानकी॥

'जफर' का तमाम दीवान नष्ट भी हो जाय, तो भी केवल उनका यही शेर उनकी ख्यातिके लिए काफी है। जफर बहुत नेक और भद्र थे। हिन्दू-मुसलमानोको एक दृष्टिसे देखते थे। उनमे मनुष्योचित अनेक गुण थे। सुना है बन्दी होनेके बाद उनकी शायरीमे बहुत परिवर्तन हो गया था। दिल्ली स्कूलकी परिपाटीके अनुकूल उनके अशआर व्यथा-पीडामे डूबे हुए होते थे, परन्तु खेद है कि उनका वह कलाम दस्तयाब नही है। जिनमे न तहजीब है, न अदब है, न शऊर है, ऐसे पढेलिखे लोगोके लिए जफरने क्या खूब फर्माया है—

न हो जिसमे अदब, और हो किताबोसे लदा फिरता।
'जफर' उस आदमीको हम तसव्वुर बैल करते है॥

१४ दिसम्बर १९५०

९२

आज़ाद

[१८२९ से १९१० ई० तक]

मौलाना मुहम्मद हुसेन 'आजाद', 'जौक' के परम श्रद्धालु और ख्याति-प्राप्त शिष्य हुए हैं। १८५७ के विप्लवकी लूट-मारमे भरा घर छोड, केवल उस्तादका हस्तलिखित कलाम बगलमे छुपाकर, बीबी-बच्चोको लेकर भाग निकले थे।

तत्कालीन रिवाजके अनुसार प्रारम्भमे आपने भी गजले कही, किन्तु बहुत शीघ्र आपका मन इस इश्किया शायरीसे उचाट हो गया और विचारोमे अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया। परिणामस्वरूप गजल कहना तर्क कर दिया और नज्म लिखने लगे। नज्मकी ओर स्वय ही प्रवृत्त नही हुए, अपितु १८६७ ई० मे 'अजुमने उर्दू' नामक समिति स्थापित करके, उसके द्वारा नज्म लिखनेका खूब प्रचार किया, और बहुतसे शायरोको इस ओर प्रेरित किया। परिणाम इसका यह हुआ कि वर्तमानमे नज्म साहित्य काफी समृद्ध बन गया है और उसपर प्रत्येक उर्दू-साहित्यिक गर्वका अनुभव करता है।

आजाद जो दिलो-दमाग लेकर उत्पन्न हुए थे, उसके लिए शायरीका सीमित क्षेत्र उपयुक्त नही था। उन्हे एक विशाल और खुले हुए मैदानकी आवश्यकता थी, जहाँ उनके मनोभाव मनमानी कुलाचे भर सके। अत उन्होने जनतामे नज्मकी रुचि उत्पन्न करनेके बाद स्वयको गद्यकी ओर प्रवृत्त किया, और गद्यमे—आबेहयात, दरबारे अकबरी, निगारस्ताने फारस, सुखनदानेफारस, सैरेईरान, आदि जैसी अमर कृतियाँ देकर उर्दू-

साहित्यका मस्तक ऊँचा किया। आजादका गद्य क्या है, मालूम होता है प्रत्येक अक्षर पर मोती टॉक दिये है।

आजादकी रगीन उर्दूका क्या कहना, एक-एक वाक्यपर दिल लहालोट होने लगता है। आपके 'आबेहयात' को पढे बगैर अब उर्दू-शायरीका इतिहास लिखा नही जा सकता। किस बॉकपन और सुघडताके साथ आपने शायरोका परिचय दिया है कि मालूम होता है हम स्वय उनके जबाने मुबारिकसे कलाम सुन रहे है, और शाने-ब-शाने उनके साथ चल फिर रहे है। यदि आपने 'आबेहयात' न लिखा होता तो आज बहुतसे शायरोका इतिहासके पृष्ठोमे अस्तित्व नही होता। आपने आबेहयात (अमृत) पिलाकर सचमुच उन्हे अमर कर दिया है।

'आजाद' गजलगो शायर नही थे। इसीलिए हम उनके कलामका नमूना पेश नही कर रहे है। हमने आपका परिचय नज्मगोकी हैसियतसे 'शेरोशायरी' मे दे दिया है। चूँकि जौकके आप प्रसिद्ध शिष्य हुए है, इसलिए उनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक था।

आजादके पौत्र आगामुहम्मद अशरफ भा अत्यन्त योग्य और विचारक विद्वान है। आप और हमारे अनन्य मित्र सुमत साहब एक साथ मिशन कॉलेजमे पढते रहे है। उन्हीके साथ बीसोबार हमे भी मुलाकातका शर्फ हासिल हुआ। बडे ही जिन्दा दिल, बामजाक और मिलनसार है। बात-बातमे हँसीकी ऐसी भीनी-भीनी फुलझडियाँ छोडते है, ऐसा चुस्त और सुथरा फिकरा कसते है कि दिल बाग-बाग हो उटता है। एम० ए० करनेके बाद सन् १९३५-३६ मे आलइण्डिया रेडियोके प्रोग्राम डायरेक्टर रहे, फिर १९३९ मे लदन विश्व विद्यालयके हिन्दुस्तानी जबानके प्रोफेसर होकर लन्दन चले गये। फिर बी० बी० सी० वालोने आपकी खिदमात चाही तो 'चचा अशरफ' के नामसे आपने भारतीय बच्चोके लिए, बहुमूल्य लन्दन रेडियो स्टेशनसे सन्देश प्रसारित किये। वहाँ

रहकर आपने अनेक बडे-बडे व्यक्तियो—बादशाह, सेनापति, प्रधानमत्री, भारतमत्री, आदिसे मुलाकाते की और वे सब अपनी लच्छेदार भाषाका परिधान पहनाकर जनताके समक्ष पेश की। लडाई समाप्त होनेके बाद आप भारत आये, किन्तु भारत विभाजन होनेके बाद पाकिस्तान चले गये और वहाँ सम्भवत आपको शिक्षा विभाग सौपा गया है।

१२ सितम्बर १९५० ई०

६३

दाग़

[सन् १८३१ से १९०५ ई० तक]

नवाब मिर्जा खाँ 'दाग' २५ मई १८३१ ई० मे दिल्लीके चाँदनी चौकमे उत्पन्न हुए। इनके पिता नवाब शम्शउद्दीन खाँ, लुहारू रियासतके अधिपति नवाब जियाउद्दीन खाँ 'नैयर' के बडे भाई थे। छ वर्षकी आयुमे ही दागके सरसे पिताका साया जाता रहा। तब इनकी माताने बहादुरशाह बादशाहके पुत्र मिर्जा मुहम्मद सुलतान उर्फ 'फखरू' से पुनर्विवाह कर लिया और 'शौकतमहल' खिताब पाया।

माँके साथ दाग भी लालकिलेमे रहने लगे। वहाँ इनको शाहजादो-के साथ शिक्षा-दीक्षा मिली। आवश्यक अरबी-फारसीका ज्ञान प्राप्त करनेके अतिरिक्त शाही ढगसे सैनिक शिक्षा और घुडसवारी भी सीखी। उन दिनो शेरोसुखनकी महफिले खूब गरम रहती थी। गालिब, मोमिन और जौक जैसे अमर शायरोसे बज्मे अदबमे चार चाँद लगे हुए थे। क्या बादशाह, क्या रैयत, सभी इस समये महफिलके परवाने बने हुए थे। बेगमात भी गिर्वीदा थी और शायरी करती थी[1]। तब दाग कैसे अछूते रह सकते थे? अभी १० वर्ष के होने भी न पाये थे कि इन्होने भी मुस्कराते हुए बज्मे अदबकी चौखटपर पाँव रख दिया।

इनके बाबा बादशाह 'जफर' और पिता 'फखरू' तो जौकके शिष्य

१—बेगमातो, शहजादियो और अन्य महिला शायराओका परिचय 'शेरोसुखन' के किसी अन्य भागमे देनेका हमारा विचार है।

थे ही, स्वयको भी उनके शिष्य होनेका गौरव प्राप्त हुआ। बचपनसे ही शेरोशायरीके वातावरणमे रहे, और स्वयकी प्रवृत्ति भी शायराना थी। अत थोडेसे ही अभ्यास और परिश्रमसे शायरीमे उरूज हासिल कर लिया। अभी शायराना शबाब पूरे जौबन पर आने भी न पाया था कि १८५६ मे इनके द्वितीय पिता मिर्जा फखरूका अचानक देहान्त हो गया, और १०–११ माहके पश्चात ही १८५७ का विप्लव उठ खडा हुआ।

२५–२६ वर्षकी आयुमे दाग आश्रयहीन हो गये और अन्य लोगोकी तरह इन्हे भी दिल्ली छोडनी पडी। कुछ दिन विपदा झेलनेके बाद सपरिवार रामपुर पहुँच गये, और वहाँ नवाब यूसुफअलीखाँकी कृपासे सुख-शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। प्रारम्भमे कल्ब अलीखाँ युवराजके मुसाहब नियत हुए और उनके शासनाधिकार प्राप्त कर लेनेपर अस्तबल और फराशखानेके दारोगा मुकरर्र हुए।

दागने २४ वर्ष रामपुरमे आदर-सत्कार पूर्वक कयाम किया। उन्होने नवाबकी कद्रदानियो और मेहर्बानियोका मुक्तकठसे अक्सर उल्लेख किया है। वे रामपुरको आरामपुर कहा करते थे।

रईसे मुस्तफा आबादके नौकर हुए जब से।
बताएँ 'दाग' क्या आराम हमने किस कदर पाया॥

१८८६ ई० मे नवाब कल्बअली खाँकी मृत्युके बाद दागको रामपुर परित्याग करके पुन दिल्ली आना पडा। यहाँ चन्द रोज रहनेके बाद—लाहौर, अमृतसर, किशनगढ, अजमेर, आगरा, अलीगढ, मथुरा वगैरह भी गये, परतु कही भी आजीविकाका प्रबन्ध न हो सका। रात-दिन परेशानियोमे व्यतीत होते थे। कही चैनसे बैठना नसीब न होता था। १८८८ ई० मे वे हैदराबाद भी पहुँचे, परन्तु वहाँ भी सफलता न मिली और वहाँके खर्चसे घबराकर चन्द माहमे ही फिर दिल्ली चले आये।

दो वर्ष निरन्तर चिन्ताओमे ग्रसित रहनेके बाद भाग्योदय हुआ तो

जिस हैदराबादमे उनको किसीने न पूछा था, उसी हैदराबादके निजामका ७ अप्रेल १८८८ को निमत्रण पाकर दाग दुबारा वहाँ पहुँचे, और साढे तीन वर्ष प्रतीक्षा करनेके बाद निजाम के गुरु होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रारम्भमे ४५० रुपया मासिक वेतन नियत हुआ और तीन वर्षतक यही मिलता रहा। जिसमे प्रतीक्षाकाल भी सम्मिलित था।[1]

तीन बरसके बाद ५५० रु० वेतन वृद्धि हुई, यानी १००० रु० वेतन मिलने लगा, और इस एक हजारका हिसाब भी प्रतीक्षाकालसे यानी हैदराबाद पहुँचनेकी तारीखसे लगाया गया। जिसकी सख्या ४०—४१ हजारके अनुमान हुई। इस वेतन वृद्धिपर दागने यह तारीख कही—

'—इस प्रतीक्षा-कालकी चिन्ताओ और नौकरी मिलनेकी परेशानियो का उल्लेख 'दाग' अमीर मीनाईको पत्र लिखते हुए इस प्रकार करते है—"यार हम नौकर तो हो गये, मगर दुआ करो कि उजरा भी जल्द (काम भी शीघ्र चालू) हो। सख्त परेशान हूँ। यह तीन बरस आखिर उम्रके बहुत बेमजा गुजरे।"

"यहाँ मुफस्सलात और सीगेजातमे गरीबुलवतन (सरकारी महकमोमे गैरहैदराबादी) को नौकरी मिलनी उनका सिफत (असम्भव) है। यहाँके लोग अहले हिन्दको (उत्तरभारतके निवासियोसे तात्पर्य है। आज भी दिल्ली और यू० पी० वाले अन्य प्रान्तोमे हिन्दुस्तानी सम्बोधित किये जाते है) मिटानेपर आमादा हुए है। खुदाने हुजूर पुरनूरको मेरा कद्रदान बिलजात कर दिया। तीन बरसकी जाँफिशानी और दस हजारके खर्चके बाद यह सूरत पैदा हुई है। खुदा करे करिश्मा भी जल्द हो। निहायत मकरूज (ऋणग्रसित) हो गया हूँ।"

(निगार, नवम्बर १९५०)

हो गया मेरा इज़ाफा आज दूनेसे सिवा ।
यह करम अल्लाहका है यह इनायत शाहकी ।।
इस इज़ाफेकी कहो ऐ 'दाग़' यह तारीख़ तुम ।
इब्तदासे अपनी साढे पानसौ नकदी बढी ।।

थोडे दिनके बाद १५०० रु० वेतन हो गया । जो अन्तिम समयतक मिलता रहा । वेतनके अतिरिक्त इनाम-खिलअत आदि भी समय-समयपर मिलते रहे । एक गॉव भी जागीरमे मिला । नवाबके कविता-गुरुके पदपर प्रतिष्ठित होनेके बाद दागको निम्न उपाधियॉ प्राप्त हुई[१]—

जहॉउस्ताद, नवाब फसीहउल्मुल्क, नाजिमयारजग दबीरुद्दौला'

---

[१]—इन उपाधियोके सम्बन्धमे मिर्जा 'दाग' अपने एक पत्रमे—'अमीर' मीनाईको लिखते है—

"दाग नाचीजका जो एजाज (आदर-सत्कार) व—इनायत इलाही यहॉ हुआ, किसी परदेशीको कहॉ नसीब ? अक्सर उमरा और रऊसा मुल्की भी हनूज महरूम (परदेशी तो छोडिये यहॉके जागीरदार और धनिक भी इन उपाधियोको प्राप्त नही कर सके) है । चुनॉचे सरूरजग, महबूबजग, अफसर जग, वगैरह-वगैरह अभी जगसे आगे नही बढे । और बहुत लोग सौ-सौ बरससे इस तमन्नामे है, बल्कि मर गये । मुझको खुदावन्द आलमने एक ही बार सब खिताबोसे सरफराज फरमाया । खिताबके लिहाज़से कमोबेश एजाज (दरबारी मानप्रतिष्ठा) मे जरूर फर्क होता है । खसूसन दरबारके मौकेपर । मुगली दरबारमे सालहाएदराज़ (अनेक वर्षो) से बजुज (सिवाय) आठ-नौ सरदारोके कोई नही बैठ सकता । बडे-बडे राजा, बडे-बडे नवाब, दस्तबस्ता (हाथ बान्धे) खडे रहते है । मुझको ऐसे दरबारमे भी बैठनेकी इजाजत हुई, जो महसूदे आलम (लोगोके ईर्ष्या-योग्य) होनेका बाइस हुआ । जिसको जगका खिताब भी होता है, ज़रूर है कि उसके खिताबके साथ लफ्ज़ नवाब-ओ-बहादुर लिखा जाये ।

मिर्जा दागकी इस प्रतिष्ठा आदिके बारेमे 'चकबस्त' लिखते है—

"दाग देहलवी ऐसा खुशकिस्मत शायर हिन्दोस्तानमे कम पैदा हुआ होगा। जौक मरहूम शहन्शाहे देहलवीके उस्ताद थे। मगर तीस रुपये माहवारका वजीफा उनके लिए मैराजेतरक्की होकर रह गया। गालिबकी रग-रगमे आबाई रियासतका नाज खूनके साथ शामिल था। मगर इस आली हौसला और जिन्दादिल शायरकी जिस शकिस्ता हालीमे बसर हुई, सबपर ज़ाहिर है। आतिशके कमालपर गौर करो और फिर यह देखो कि खाकके बिछौनेके सिवा बोरिया भी उसे मयस्सर न हुआ, और अक्सर इस शहन्शाहे सुखनके तीन-तीन दिन फाकेसे गुज़र गये। नासिख की जरूर किसी कदर फारिग उलबाली (बेफिक्री) मे गुजरी। लेकिन वह शानो शौकत उनको भी नसीब न हुई जो कस्सामेअजल (विधाता) ने 'दाग' देहलवीके लिए मखसूस कर रक्खी थी। इस माल-ओ-दौलतके अलावा अगर शुहरतपर नजर डालो तो जो नाम आज दागका है, उसपर हर फरदो बशरको नाज़ हो सकता है। हिन्दोस्तानमे आज कौन शहर ऐसा है, जहाँके कूचओ बाजारमे दागकी गजले अरबाबे-निशातके दिलोको न गरमाती हो[1], और रगीन तबअ सामईनको

'दौला' और 'मुल्क' का रुतबा तो बडा है। अलावा मन्सबे जलीलए-उस्तादी (उस्तादीके महान प्रतिष्ठित पद) के अब मै स्टाफखासमे भी दाखिल हुआ, इसकी तनख्वाह दो हजार रुपयेसे कम नही होती। लोग मुबारिकबाद दे रहे है। मै समझता हूँ कि जो कुछ मुझे मिला है, यही मेरी लियाकतसे ज्यादा है। मुझमे तो दस रुपये माहवारकी भी लियाकत नही।"

—(निगार, नवम्बर १९५० ई०)

[1]यह मजमून चकबस्त ने दागकी मृत्युके बाद तत्कालीन लिखा था। दाग के जीवनमे ऐसी ही शुहरत थी, परन्तु अब वह शुहरत कहाँ ?

(रगीन मिजाज-श्रोताओ) को वज्दमे न लाती (आत्म विभोर न कर देती) हो।"[1]

मिर्जा दागके शिष्य अहसन माहरहरवी लिखते है—

"मिर्जा दाग खुशपोशाक, खुश-खुराक और खुशमिजाज आदमी थे। नफासत और सफाईको बहुत पसन्द करते थे। उनका दस्तरख्वान बहुत वसीअ था। कभी तनहा नही खाते थे। चन्द शागिर्द और हाशिया नशीन अहबाब जरूर शरीक होते। खुश मिजाजीका यह आलम था कि किसी वक्त किसीसे मजाक करनेमे न रुकते थे। बूढा, जवान, बच्चा, औरत, मर्द, सब उनकी जराफत और खुशमिजाजीसे लुत्फ अन्दोज होते। उनके अन्दाजे कलाम और शराबके मजामीनको पढकर अक्सर अशखास इस गलत फहमीमे मुब्तला है कि वोह शराबी थे। लेकिन राकिम अपनी चन्दसाला हाजिरबाशी (यह तुच्छ शिष्य कुछ वर्षोकी उपस्थिति) और रात दिनके मुशाहिदो (देखभाल) की बिनापर शाहिद (साक्षी) है कि उन्होने कभी शराबको मुँह नही लगाया। अकसर फर्माया करते थे कि—मै मौलवी अब्दुलहक और मुशी 'अमीर' मीनाईका ममनून हूँ कि इन दोस्तोकी बदौलत इस बलामे मुब्तिला नही होने पाया। वे आशिक मिजाज थे और ऐय्याश भी, मगर शराबख्वार हरगिज न थे। चुनाँचे खुद कहते है—

गो है आशिक मिज़ाज-ओ-शाहिद बाज़।
'दाग़' लेकिन शराब ख़्वार नहीं॥[2]"

मिर्जा दाग अपने इष्ट-मित्रोका तो स्नेह और आदर-सत्कार करते ही थे। अपने समकालीन और प्रतिद्वन्द्वी—जलाल, अमीर, तसलीम,

---

[1]मज़ामीने चकबस्त, पृ० ६६

[2]मुन्तखिबेदाग—मुकदमा

ज़हीर, वगैरहसे भी उनके मैत्री सम्बन्ध थे। हर शायर अपनी-अपनी शायरीके जौहर दिखानेमे तो एक दूसरेसे आगे बढनेका प्रयत्न करते थे, परन्तु मित्रतामे कडवाहट नही आने देते थे। परस्पर अत्यन्त आदर और प्रेमका व्यवहार करते थे। दागने कभी किसीकी हिजो नही कही और न अपने समकालीन शायरोसे लडे-झगडे।

राम बाबू सक्सेना लिखते है—"दाग अपने जमानेके बहुत मशहूर शायर थे। उनकी ज़बानमे फसाहत (खुशबयानी), सादगी और बयानमे एक खास किस्मकी शोखी और बाँकपन है। जिसकी वजहसे वोह अपने मआसरीन (समकालीन) अमीर, जलाल, तसलीम, वगैरहसे ज्यादा मशहूर हुए। उनका तर्ज आमपसन्द और बहुत दिलचस्प है। इसी वजहसे उनके मुतबईन (अनुयायी) कसरतसे है। मशहूर है कि उनके शागिर्दो की तादाद १५०० से मुतजावज (अधिक) है। यही शुहरत व इज्जत और शागिर्दोकी कसरत उनके जौहरे जाती (प्रभावशाला व्यक्तित्व) और शायराना काबलियतपर दाल है। दागने एक बाज़ाब्ता दफ्तर खोल दिया था। जिसके कारकुन बाज़ उनके शागिर्द और अक्सर तनख्वाहदार मुशी भी थे। इस दफ्तरमे इसलाहेकलाम (कविता-सशोधन) का काम जारी था"।[1]

मिर्जा दागके कविता सशोधनका वर्णन उन्हीके शिष्य आगाशायर[2] देहलवीकी जबानसे सुनिये—

---

[1]तारीख़े अदबेउर्दू, पृ० ४३०

[2]इन बुजुर्गवार शायरकी ज़बाने मुबारिकसे बीसो बार मुशायरोमे गजले सुननेका लेखकको सौभाग्य प्राप्त हुआ है। ये दिल्लीके ख्याति प्राप्त शायर थे और बर्क देहलवीके उस्ताद थे। खेद है इनका भी स्वर्ग-वास हो गया है। इनका परिचय हम दाग़के अन्य शिष्योके साथ इस पुस्तकके दूसरे भागमे देगे।

"मै उस्तादकी खिदमतमे इस तरह हाजिर होता था जैसे गुलाम आका (स्वामी) के सामने, या गुनहगार हाकिमे वक्तके रोबरू। लरजता, काँपता, थर्राता और कभी बजुज जरूरत के (आवश्यकताके अतिरिक्त) कोई कलमा मेरी जबानसे न निकलता। जो कुछ पूछना होता पूछा, जो पूछा वह अर्ज किया। बाकी वक्त खामोश—और यही हाल उनका था। वे भी मुझे शेरकी निगाहसे देखते थे। मै हाजिर हुआ हूँ, कमरेमे कहकहे उड रहे है, और जहाँ मैने अन्दर कदम रक्खा, लबे फर्श पहुँचकर आदाब बजा लाया और सबसे फर्दतर बैठ गया। अब वही मुकाम इस तरह सुन सान और खामोश था, जैसे वहाँ कोई जीरूह (कोई भी प्राणी) नहीं। मेरी इसलाह क्या होती थी, गोया जगेअजीम (महासमर) का एक अल्टीमेटम होता था। उधर हजार गोशबर आवाज (सैकडो सुननेवाले उपस्थित) इधर मै खौफसे लरजाँ और लब कुश्तये मतालिब (ओठ मनकी बात कहनेमे असमर्थ), उधर उस्तादको मामूलसे ज्यादा कावशेमतलूब (आवश्यकतासे अधिक मतलबकी बात सुननेकी जल्दी), त्यौरी चढी हुई है, एक भौ माथेतक खिचकर जा पहुँची है, और जितना बुलन्द-से-बुलन्द शेर होता था, बिगड-बिगडकर फर्माते—'आगे चलो जी' और जहाँ जरा-सा भी सुकम (नुक्स) नजर आगया बस बरस पडे, कयामत कर दी। 'यह क्या साहब! यह क्या? जरा फिर इनायत कीजिए। माशा अल्लाह! सुभान अल्लाह!! यह आपने लिखा है?' गरज जान छुडानी मुश्किल हो जाती। इस सरजनिश (मलामत, तम्बीह) और मुआसरीन (समकालीन अन्य शिष्यो) की मौजूदगीका इस दर्जा खौफ होता था कि एक-एक मिसरेपर जान लगा देनी पडती थी। तब जाकर वोह फर्माते थे कि—'आगे चलो, आगे चलो।' हाँ, अलबत्ता जिन मिसरोपर मिसरा लगाना मेरे बसका रोग न होता, वह बेशक मै चुनकर ले जाता था, और बाज औक़ात उन्हीकी इसलाहमे उन्हें सख्त काविश करनी पडती थी, और उन्ही पर वे अक्सर मुनगज

(अप्रसन्न) भी हो जाते थे। बार-बार पहलू बदलते। 'इधर तकिया लगाओ, फिर पढो, और फिर पढो, क्या मिसरा बका है? क्या लग्व (व्यर्थ) बन्दिश है? यह हमारे पास इसलाह लेने थोडे ही आते है, यह तो हमारा इम्तहान लेने आते है साहब!'

बाहरके शागिर्दोके कलामकी इसलाह देनेकी सूरत इस तरह बयान करते है—"आप पलगडी पर लेटे है या गावतकियेसे लगे बैठे है। चारो तरफ तलामजा (शिष्यो) का झुरमुट है, और एक साहब गजलोका थब्बा (दण्डल) सामने रखे कलम हाथमे लिये एक-एक गजल पढते जाते है। हाजरीन (उपस्थित शिष्य समूह) हर शेरको गौरसे समाअत फर्माते (सुनते) है, और मुनासिब मौकेपर अपनी-अपनी राय भी देते जाते है। अगर इस मशवरेसे उस्तादकी रायको भी इत्तफाक हो गया तो वही अल्फाज उस गजलमे बना दिये गये, वर्ना जो उस्तादने बतौर खुद ईमा फरमाया बजिन्सही (हू-ब-हू) वोह उस मुकामपर जड दिया गया। इस तरह इस्लाहकी इस्लाह हो जाती थी और आपसके तबादलए खयालातसे मालूमातका दायरा भी वसीअ हो जाता था"।[1]

दागके एक दूसरे शिष्य अहसन माहरहरवी फर्माते है—"जिस जमानेमे राकिम (लेखक) हैदराबाद गया और चन्दसाल मुसलसल (बराबर) खिदमतमे हाजिर रहा, उस जमानेमे रोजाना १५—२० गजले इसलाह होकर डाकमे भेजी जाती थी। इनके अलावा मुकामी शागिर्द और बाहरसे आये हुए तलामजा सुबहोशाम हाजिर रहते और इसलाह लिया करते। आलाहजरत (निजाम हैदराबाद) की गजल अमूमन कोई शाही चौबदार लाता। जिसको वह खुद देखते और अक्सर खिलवत (एकान्त) मे देखते और जल्दसे जल्द इस्लाहके बाद वापिस कर दी जाती"।[2]

---

[1]नक्दो नजर, पृ० २१२—१३, [2]मुन्तखिबेदाग—मुकदमा।

इन सशाधनोसे तग आकर दाग अपने पत्रमे अमीर मीनाई को लिखते है—

"आप यह जानते होगे कि दागकी मश्क बढी हुई है। 'महताबे-दाग' (दागका दीवान) को छपे दो बरसका जमाना गुजरा। इन दो बरसमे बीस गजले कही है। क्या इसका नाम मश्क है? हर महीनेमे दो-चार नये खत वास्ते दुआए शागिर्दी (शिष्य बननेकी प्रार्थनाके) आते रहते है। दुहाई देता हूँ कि फुरसत नही, सेहत नही, नौकर हूँ, आजाद नही। मुसन्निफ अमीरूललुगात (अमीरमीनाई) के पास कलाम भिजवाओ। वे उस्ताद मुसल्लिमउलसबूत (प्रामाणिक विद्वान और श्रेष्ठ गुरु) है। कोई कमबख्त नही सुनता। गजलोसे कसीदोका नम्बर बढा, कसीदोसे दीवानका नम्बर आया। अब दीवानके दीवान चले आते है। छ महीनेके सफरमे तीन सौ गजले मैने बनाकर भेजी है। हजार आठसौ इस वक्त बाकी है। अगर आपको फुर्सत हो तो भेज दूँ? मगर आपके पास क्या इससे कम होगी।"[1]

दागके ख्याति प्राप्त शिष्योमेसे कुछ नाम ये है—नवाब मीर महबूब अलीखाँ 'आसफ' (निजाम हैदराबाद), सर 'इकबाल', नवाब 'साइल' देहलवी, 'बेखुद' देहलवी, आगाशायर देहलवी, अहसन माहरहरवी, 'बेखुद' बदायूनी, 'नूह' नारवी, 'सीमाब' अकबराबादी 'नसीम' भरतपुरी, 'जिगर' मुरादाबादी आदि।

दागके उक्त शिष्योका परिचय 'शेर-ओ-सुखनके दूसर भागमे दिया जायगा। दागकी ख्याति और प्रतिष्ठाके कारण अनेक ईर्षालु और आलोचक भी उनके जीवन-कालमे ही हो गये थे, और उनपर फब्तियाँ कसने और कीचड उछालने लगे थे। इन कटु आलोचनाओके निम्न तीन कारण थे—

---

[1] निगार, नवम्बर १९५०।

१—दागके शिष्यो और प्रशसकोने उनकी महत्ताका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन करते हुए पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोसे उन्हे श्रेष्ठ सिद्ध करनेका कुछ इस प्रकार प्रयत्न किया कि पूर्ववर्ती और समकालीन शायरोके अनुयायियोको कुछ चुनौती-सी मालूम दी। इसलिए फिर उन्होने भी नहलेपर दहला लगाना उचित समझा।

२—दागकी बढती हुई कीर्ति और ख्यातिको ईर्ष्यालु सहन न कर सकनेके कारण मनमाने छीटे उडाने लगे।

३—कुछ ऐसे निष्पक्षपाती साहित्यिक जो दागकी शायराना हैसियत-से अवगत थे, दागकी अनावश्यक कीमत बढते देख वास्तविक मूल्य बतानेको मजबूर हुए। ताकि जनता भ्रममे न पड जाए।

अब हम तीनो प्रकारके आलोचकोका सक्षिप्तमे सार देनेका प्रयत्न करेगे। जहाँ दागके प्रशसक यह कहते हुए नही थकते कि दागकी कमाल-शायरीके समक्ष आतिश, नासिख, गालिब, और मोमिन भी फीके पडत है। वहाँ ईर्ष्यालु यह कहनेसे बाज नही आते कि अमीर मीनाई के अक्सर शागिर्द दागसे अच्छा कहते है।[1] दागके शिष्य अपने उस्तादको सदाचारी और सयमी घोषित करते है तो विरोधी 'हिजाब' वेश्याके सम्बन्धका ढिढोरा पीटते है। यदि दागके प्रशसक उनको खुशरू और खुशरग सिद्ध करते है तो विरोधी जवाबमे स्वय दागका यह मिसरा पेश करते है—

"जिसे दाग कहते है दोस्तो ! इसी रूसियाहका नाम है।"

जब दागके अनुयायी कहते है कि रामपुरमे जो कद्र दागकी हुई, वह किसीकी न हुई, तब ईर्ष्यालु जवाब देते है कि दाग रामपुरमे सिर्फ ५० रु० माहवारपर अस्तबलके दारोगा थे, और पुष्टिमे किसी बेअदबका यह शेर पेश करते है—

---

[1] मजामीने चकबस्त, पृ० ६८।

आया दिल्लीसे एक नया मुश्की।
आते ही अस्तबलमे दाग हुआ॥

दागके भक्त कहते है कि रामपुरके मुशायरोमे जब दाग गजल पढ चुकते थे तो आधे लोग उठ जाते थे और मुशायरा बर्ख्वास्त होनेपर हजरत अमीर आडमे खडे होकर यह देखते थे कि लोगोकी जबानपर किसका शेर है, तो अक्सर दागका ही शेर जबानजद पाते थे। विरोधी इसकी काट इस बेरहमीसे करते है कि—'गुलजारे दाग' जो उनकी श्रेष्ठ रचना है, उनकी अपनी कृति नही है। अपितु उसका श्रेष्ठ अश जौक का कहा हुआ है और असीर अमीरने उसका सशोधन किया है। दाग दूसरोके कलामकी बदौलत प्रसिद्ध है।[1] इसी प्रकार दागकी जबानपर, महावरोपर उपमाओ और बन्दिशोपर, पक्ष-विपक्षकी ओरसे बहुत कुछ कहा गया है।

दागकी शायरी

दागके शिष्य अहसन माहरहरवी लिखते है—

"दाग न सूफी थे, न मुफ्ती। सिर्फ एक शायर थे और शायर भी गजलके और गजल भी ऐसी जिसमे शोखी शरारत, जलीकटी, ताने, रश्क, बदगुमानी, छेड-छाड, लाग-डाट, छीन-झपट, और उरियानीके सिवा कुछ नही। कहा जाता है कि उनकी शायरी ऐय्याशाना शायरी है, उनकी जबान बाजारी जबान है, उनका बयान आमयाना (सर्वसाधारणके अनुकूल) बयान है, और उनके अशआरसे वे बुलन्द जज्बात (भाव) जोशमे नही आते, जिनका ताल्लुक हुस्नोइश्कके आला मफहूमसे है। बल्कि उनका कलाम उस नफ्सयाती ख्वाहिश (इन्द्रिय विषय वासनाओ) को बरअगेख्ता (प्रज्वलित) करता है, जो महज हैवानी जज्बात (केवल पशु-भावो) से वाबिस्ता (सम्बधित) है। दाग का माशूक बाजारी

---

[1] मजामीने चकबस्त, पृ० १०१।

माशूक है, और दागके नज़दीक इश्क, नफ्स परस्ती (काम-लोलुपता) का दूसरा नाम है।"[1]

अहसन माहरहरवी साहबने आलोचकोका उक्त मत देनेके बाद चन्द सम्मतियाँ दागके पक्षमे लिखकर उक्त दागोको दामने दागसे धोनका प्रयत्न किया है, किन्तु ईमानकी बात तो ये है कि उनके चारो दीवान इन्ही खयालातोसे भरे पडे है। चन्द शेर बतौर नमूना पेश किये जाते है—

हरजाई और बाजारी माशूक—

है मुझको खबर रातको जो तेरे करी था।
मै गर्चे न था पास, मगर दिल तो वही था॥

छुपकर कहाँ गये थे वोह शबको कि मेरे घर।
सौ बार उनका आके निगहबान फिर गया॥

तुम्हारा घर, तुम्हारा घर नही, मेहमान हो गोया।
कही है दख्ल दुश्मनका, कही कब्जा है दरबाँका॥

तुम पारसा सही, मगर इतना तो सोच लो।
कुछ देख ही लिया था जो दिल बदगुमाँ है अब॥

आज क्या है जो निकलवाये गये घरसे रकीब।
और दरबानोके फिकवा दिये बिस्तर बाहर॥

इलाही क्यो नही उठती कयामत माजरा क्या है?
हमारे सामने पहलूमे वोह दुश्मनके बैठे है॥

खुमार आलूदा आँखें, बल जबीं पर, दर्द है सरमे।
रहे तुम रात भर बेचैन किस कम्बख्तके घरमें?

---

[1]—मुन्तखिबे दाग-मुकदमा।

ख़ुश हूँ मैं जबसे सुना है वोह हुए हरजाई ।
मेरे घर देखिये किस रोज़ करम करते हैं ॥

ग़ैरके मिलनेसे दुनियाँमे हुई बदनामी ।
तुमने आलममे बडा नाम उछाला अपना ॥

यह सुना है कि अब वोह हरजाई ।
सुबह आता है शामका निकला ॥

उसके तो निगहबान मजे लूट रहे हैं ।
तनहा नही आता, कभी तनहा नही जाता ॥

घरसे निकलें न कभी पूछ न लें वोह जब तक ।
जमा दस-बीस ख़रीदार हुए है कि नही ॥

आपकी बज़्म मुहब्बतकी अदालत ठहरी ।
रोज़ दो-चारके इज़हार हुआ करते है ॥

कहाँ थे रातको हमसे ज़रा निगाह मिले ।
तलाशमें हो कि झूठा कोई गवाह मिले ॥

दागका माशूक तो बाज़ारी एव हरजाई है ही, खुद भी कुछ कम हरजाई नही । वे अन्य उर्दू शायरोकी तरह किसी एक पर ही जान फिदा नही करते, अपितु भौरेकी तरह लोलुप नज़र आते है—

अच्छी सूरतकी रहा करती थी अवसर ताक-झाँक ।
रह गई आँखें, मगर वह देखना जाता रहा ॥

इक न इक हम लगाये रखते है ।
तुम न मिलते तो दूसरा मिलता ॥

'दाग़' ने देखे हज़ारो है हँसी ।
आपने किस शख़्ससे दावा किया ?

इलाही आशिकीमे हम बड़ी तकदीर वाले है
सुने है खुशगुलू क्या-क्या, चुने है खूबरू क्या-क्या ।।

हाय वह दिन कि मयस्सर थी हमे रात नई ।
रोज माशूक नया रोज मुलाकात नई ।।

कहाँ तक उठाये यह नाजुक मिजाजी ।
किसी और की अब गुलामी करेंगे ।।

है तबियत भी अपनी हरजाई ।
किस जगह यह, कहाँ नही आई ?

दागके इस दागको धोनेके लिए उनके प्रशसक—मीर, दर्द, आतिश, गालिब, जैसे उच्चकोटिके शायरोके कलामसे इस तरहके उद्धरण पेश करके यह सिद्ध करते है कि यह तो उर्दू शायरीका आम रिवाज है, दाग ही ने सिर्फ इस कूचेमे अकेले कदम नही रक्खा है ।

दलील मुनासिब और वजनी है क्योकि उर्दू शायरोने अमरद परस्ती और विषय वासनाके बडे घिनावन अशआर कहे है, परन्तु वे शेर उनकी शायरीके पृष्ठपर बदनुमा धब्बे है । वे इस तरहकी ऐय्याशाना शायरीके कारण प्रसिद्ध नही है । अपितु पाक और अछूती इश्किया शायरीकी वजहसे मशहूर हुए है । इश्क (प्रेम) और ऐय्याशी (विषयवासना) मे पृथ्वी-आकाशका अन्तर है । उन्होने इश्कका वर्णन जिस ऊँचाईपर किया है, दागके यहाँ उसका अभाव है ।

चश्मे नामहरमको बर्क़ेहुस्न कर देती थी बन्द ।
दामने अस्मत तेरा आलूदगीसे पाक था ।।

—आतिश

मै ऐसे साहिबे अस्मतपरी पैकर पै आशिक़ हूँ ।
नमाजें पढती है हूरें हमेशा जिसके दामन पर ।।

—जौक

हाय ! कहना वह किसी बुतका दमे नज्जारा।
"आँख भर कर जो हमे देखे तो बस अंधा हो"।

—दाग

वातावरणसे प्रभावित होनेपर या किसीकी फर्माइशपर अथवा मुँहका जायका बदलनेको पूर्ववर्ती शायरोने भी ऐय्याशाना शेर कहे है, परन्तु वह आटेमे नमकके समान, और इन शेरोमे उनकी कीर्तिमे कलक ही लगा है। उन्होने न कहा होता तो उर्दू-शायरी आज इन घिनावने विचारोसे अछूती मिली होती ! परन्तु दागकी शायरी तो ऐसे ही भावोसे भरपूर है। इसलिए उनकी शायरीको लोग इश्किया शायरी न कहकर ऐय्याशाना शायरी कहते है। चकबस्त दागपर आलोचना करते हुए लिखते है—

"अक्सर हजरात फर्माते ह कि दागका कलाम दिलमे चुटकी लेता है, यह बात आतिश, जौक और गालिब वगैरहको नसीब नही। मगर इन हजरातको यह खयाल कर लेना चाहिए कि दागका कलाम किस किस्मकी चुटकी लेता है। यानी किस किस्मकी तासीर पैदा करता है ? अगर कोई हसीन व हयापरवर सरत नजर आये या किसी शादाब चमन या दिलफरेब मजरकी सैर नसीब हो तो इन्सानके दिलको एक रूहानी सरूर हासिल होता है। इसका नाम भी तासीर है, और मै कहूँगा कि जौक आतिश, वगैरहकी शायरी इसी किस्मकी तासीरसे मालामाल है। बरक्स इसके, अगर कोई चरबाँक औरत बाँका दुपट्टा ओढकर सामनेसे निकल जाये, तब भी दिलमे एक खास कैफियत पैदा होती है। इसको भी तासीर कहेगे। दागका कलाम सुननेसे इसी किस्मकी तासीर दिलमे पैदा होती है—

दर्दे दिलके वास्ते पैदा किया इन्सानको।
वर्ना ताअतके लिए करोंबयाँ कुछ कम न थे॥

—जौक

जौकका यह खयाल कि इन्सान दर्दे दिलके वास्ते पैदा हुआ है, यानी गैरोंसे हमदर्दी पैदा करनेके लिए । न कि महज अपने भलेके लिए इबादत करनेको । यह वोह पाकीजा खयाल है जिसको तहजीबे इन्सानीका मियार (मानव सभ्यताका आदर्श) समझना चाहिए, और चूँकि यह खयाल इस शेरमे शायराना लताफतके साथ नज्म किया गया है, लिहाजा इसके पढने-सुननेसे बुलन्द-हिम्मती और हमदर्दीके जज्बातेआली जोशमे आते हैं । दागने भी इसी तर्जका एक शेर कहा है—

पिन्दे वाइज सुनते-सुनते कान अपने भर गये ।
क्या इबादत को हमी हैं, सब फरिश्ते मर गये ।।

इस शेरका मफहूम यह है कि हम क्यो इबादत करने लगे ? यह काम तो फरिश्तोका है । अन्दाजे बयानमे एक जरीफाना शोखी है, जो दिलमे चुटकी जरूर लेती है । मगर किसी जज्बये आलीको जोशमे नही लाती । वोह बात कहाँ ?'''

दागका प्रतिद्वन्द्वी

चकबस्त लिखते हैं—"दागके मुकाबिलमे यूँ तो बहुतसे हजरात आस्तीन चढाया किये । लेकिन अगर मैदाने सुखनमे इसका कोई काबिले वकअत मुद्दई था, तो वह लखनऊका चिराग अमीर मीनाई था । गोकि अमीरको दागके बराबर शुहरत हासिल नही हुई थी । लेकिन खास-खास तबकोमे अमीरका नाम हमेशा दागके मुकाबिलेमे लिया गया । इसमे शक नही कि अमीरकी मुश्किल पसन्द तबियतने अक्सर ऐसे जौहर दिखाये, जिसकी बदौलत इस पहलवाने सुखनको जमानेसे उस्तादीकी सनद मिली । लेकिन अमीरकी तबियतको शायरीसे वह अजली (कुदरती) मुनासबत नही है, जो दागका हिस्सा है । यह जरूर है कि दागका

'मजामीने चकबस्त, पृ० ७६—७७ ।

मजाके सुखन आला दर्जेका नही है । लेकिन उसके कुदरती शायर होनेमे कलाम नही । यह और बात है कि उसकी निगाह बुलन्द-बीनी (उच्च दृष्टि) के एवज माइल ब-पस्ती (गिरी हुई) हो और कुदरतके वसीअ मैदानसे कतअ नजर करके एक खास दायरे तक महदूद हो । मगर इससे कोई इन्कार नही कर सकता कि यह निगाह शायरकी निगाह है । दागके सीनेमे शायरीकी आग रोशन है । लिहाजा उसका कलाम गरमिये तासीरसे मालामाल है । अमीरका कलाम इस कैफियतसे खालो है । उनकी शायरी मसनूई (बनावटी) शायरी है । उन्होने शायरीको मश्क (अभ्यास) के जरिये हासिल किया है । वोह अस्ल जौहरे शायरी, जो कुदरती शायर अपने साथ लेकर पैदा होता है, अमीरकी तबियतका हिस्सा नही । यही वजह है कि दागके अन्दाजे कलाममे जो पुख्तगी है, उसका निशान अमीरके तर्जेसुखनमे नही मिलता । दागका कलाम शुरूसे आखिर तक उसकी तबियतके कुदरती रगमे डूबा हुआ है । इसका शेर जबाने हालसे पुकारकर कहता है कि मै दागका शेर हूँ । वह किसीका मुकल्लद (अनुयायी, नकलची) नही है । वोह एक खास तर्जका मालिक है । जिसको एक हदतक उसीकी ईजाद समझना चाहिए । अमीरके साथ किसी तर्जेखासको खसूसियत नही है । उनके दो दीवान है और दो रगके । 'मरातुलगैब' मे मीर-ओ-नासिखकी शायरीका उतरा हुआ चेहरा नजर आता है और 'सनमखानये इश्क' मे कदीमी मतानत (पुरानी सजीदगी) को बालायेताक रखकर दागकी शोखीका चर्बा (प्रतिलिपि) उतारनेकी कोशिश की गई है । अमीरके कलामकी दो रगी इस बातकी शाहिद (साक्षी) है कि उनकी तबियत कुदरती तौर पर शायराना वाकअ नही हुई थी । क्योकि असली शायर अपनी तबियतका रग नही बदल सकता ''[१]

---

[१]—मजामीने चकबस्त, पृ० ९०–९१ ।

दागके—गुलज़ारेदाग, आफताबेदाग, महताबेदाग, यादगारेदाग चार दीवान है। जिनमे १६१६२ शेर गजलोके है। उनमे बहुत अधिक अश्लील और चूमा-चाटीके है। दागका माशूक बाजारी और खुदका इश्क भी बाजारी है। दागका माशूक कसाइयोका सिरमौर, धोकेबाजोका उस्ताद, बेअदबोका मास्टर मालूम होता है। उसकी शायरी जुरअत जैसी चुम्बन, कधी-चोटीकी शायरीसे ओत-प्रोत है। आटेमे नमककी तरह इस प्रकारके भी सुभाषित कही-कही नजर आते है—

आशिकीसे मिलेगा ऐ जाहिद !
बन्दगीसे नही खुदा मिलता ॥

तकलीदसे जाहिदकी हासिल हमे क्या होता ?
इन्साँ न मलिक बनता, बन्दा न खुदा होता ॥

यह तीरह खाकदा भी है काजलकी कोठरी।
आया जो रूसपेद यहाँ, रूसियह गया ॥

न बदले आदमी जन्नतसे भी बेतुलहजन अपना।
कि अपना घर है अपना, और है अपना वतन अपना ॥

मौतसे गाफिल न रहना चाहिए।
देखो इस सैयादकी है ताक क्या ॥

यह काम नही आसा इन्सानको, मुश्किल है।
दुनियामें भला होना, दुनियाका भला करना ॥

अल्लाहका घर काबेको कहते है व लेकिन।
देता है पता और वोह मिलता है कही और ॥

फलक देता है जिनको ऐश उनको गम भी होते है।
जहाँ बजते है नक्कारे वहाँ मातम भी होते है ॥

गर फरिश्तावश हुआ कोई तो क्या ?
आदमीयत चाहिए इन्सान मे ॥

वोह आदमी कहाँ है वोह इन्सान है कहाँ ।
जो दोस्तका हो दोस्त उदूका उदू न हो ॥

दिल दे तो इस मिज़ाजका परवर्दिगार दे ।
जो रजकी घडी भी खुशीसे गुज़ार दे ॥

हौसला चाहिए इन्सानको पाये जो उरूज ।
पस्त हिम्मतको बुलन्दी भी जो है पस्ती है ॥

न इतराइये, देर लगती है क्या ?
ज़मानेको करवट बदलते हुए ॥

गुरबतके रज, फाकाकशीके मलाल खीच ।
ऐ दाग ! पर ज़मानेसे दस्ते सवाल खीच ॥

खूबियाँ लाख किसीमे हो तो ज़ाहिर न करे ।
लोग करते है बुरी बातका चर्चा कैसा ?

क्या गज़ब है कि नही इन्साको इन्सानकी क़द्र ।
हर फरिश्तेको यह हसरत है कि इन्सां होता ॥

गुज़र गये है जो दिन फिर न आयेंगे हरगिज़ ।
कि एक चाल फलक हर बरस नही चलता ॥

कहा गुचेसे मुरझाकर यह गुलने ।
"हमेशा कब रहा जोबन किसीका" ॥

दागकी ज़बान देहलीकी टकसाली ज़बान है। उन्होने अरबी फारसीके कठिन शब्दो और दुरुह उपमाओ अलकारोसे बचनेका सफल प्रयत्न किया है। उनकी ज़बान खालिस उर्दू है, फर्माते है--

कहते है उसे ज़बाने उर्दू ।
जिसमे न हो रग फारसीका ।।

नही खेल ऐ 'दाग' यारोसे कहदो ।
कि आती है उर्दू ज़बाँ आते-आते ।।

उर्दू है जिसका नाम, हमी जानते है 'दाग' ।
सारे जहाँ मे धूम हमारी ज़बाँकी है ।।

अब हम दागके १६, १२० शेरोमे-से कुछ नमूने पेश करते है—

निगह पटके ही देती है, तो दिल फेके ही देता है ।
तुम्हारे घर ठिकाना कौन-सा हम बेसहारो का ?

दुश्मनके आगे सर न झुकेगा किसी तरह ।
यह आस्माँ जमीसे मिलाया न जायगा ।।
ऐ 'दाग' ! तुमको रिज्कको ख्वाहिश है चर्खसे ।
इतना यह गम खिलायगा, खाया न जायगा ।।

आलममे एक तू नजर आया नजर फरेब !
आलम तमाम अपनी नजरसे निकल गया ।।
काहीदगीने फेक दिया दूर इस कदर ।
कोसो मै आप अपनी नजरसे निकल गया ।।

न रोना है तरीक़ेका न हँसना है सलीकेका ।
परेशानीमें कोई काम जीसे हो नही सकता ।।

रूपोश हुआ सुनते ही पैगाम हमारा ।
ढूँडे कोई कासिदको, अभी तक तो यहीं था ।।

जान जाती दिखाई देती है ।
उनका आना नजर नहीं आता ।।
इश्क दर परदा फूँकता है आग ।
यह जलाना नजर नहीं आता ।।

तेरी उल्फतकी चिंगारीने जालिम इक जहाँ फूँका ।
इधर चमकी उधर सुलगी यहाँ फूँका वहाँ फूँका ।।

गैरके साथ दिलमें भी देखा ।
कभी तनहा नज़र नहीं आता ।।

मुझसे बहतर मेरा मलाल रहा ।
कि तेरे दिलमें महजमाल रहा ।।

जहाँमें क्या न ढूँडा क्या न पाया ।
मिज़ाज उनका, दमाग़ उनका न पाया ।।
तिरी जानिब ही फिर जाती ख़ुदाई ।
मगर काफिर तुझे इतना न पाया ।।
ख़ुशी मिलती तो क्या मिलती अज़लमें ।
ग़नीमत है कि ग़म थोड़ा न पाया ।।
क़यामतका किया है उसने वादा ।
क़यामत है अगर तनहा न पाया ।।

देखा है मयकदेमें जो, ऐ शेख़ ! कुछ न पूछ ।
ईमानकी तो ये है कि ईमान तो गया ।।

मुझ-से मयकशको कहाँ सब्र कहाँकी तौबा ।
ले लिया दौड़के जब सामने साग़र आया ।।
ग़ैरके रूपमें भेजा है जलानेको मेरे ।
नामाबर उनका नया भेस बदलकर आया ।।

क्या कहूँ तेरे तग़ाफ़ुलने, हयाने क्या किया ।
इस अदाने क्या किया और उस अदाने क्या किया ।

कहा ज़ालिमने मेरा हाल सुनकर—
"वोह इस जीनेसे मरजाये तो अच्छा" ।।

गिरियेने एक दममें बना दी वह घरकी शक्ल।
मेरी नज़रमें साफ बयाबान फिर गया।
लाये थे कुए यारसे हम 'दाग' को अभी।
लो उसकी मौत आई, वोह नादान फिर गया॥

हम तो उस मुद्दआके कायल हैं।
जो ज़बॉसे निकल नही सकता॥

सुन-सुनके तेरे इश्कमें अगियारके ताने।
मेरा ही कलेजा है कि मै कुछ नहीं कहता॥
ख़तमे मुझे अव्वल तो सुनाई हैं हजारो।
आख़िरमे यह लिखा है कि मै कुछ नहीं कहता॥
तुमको यही शायॉ हैं कि तुम देते हो दुश्नाम।
मुझको यही जेबा है कि मै कुछ नही कहता॥

दुनियामे मजा इश्कसे बहतर नही होता।
यह जायका वोह है कि मयस्सर नही होता॥
बेदाद तेरी देखके यह हाल हुआ है।
आशिक कोई दुनियामे किसीपर नही होता॥

उनकी शुहरत भी मिटी जाती है।
कुछ ठिकाना मेरी रुसवाईका?

न मयस्सर हुई कही ख़िलवत।
कुछ हमें भी कलाम करना था॥

ग़ज़ब किया तेरे वादेका एतबार किया।
तमाम रात क़यामतका इन्तज़ार किया॥

यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई।
गोया कि लबसे होके कुछ इरशाद रह गया॥

नासहका दिल चला था हमारी तरफ मगर ।
उलफ्तकी देख-देखके उफ्ताद रह गया ।।
है तेरे दिलमें सबके ठिकाने बुरे-भले ।
मैं खानुमाँ खराब ही बर्बाद रह गया ।।

देखना हश्रमें जब तुमपै मचल जाऊँगा ।
मैं भी क्या वादा तुम्हारा हूँ कि टल जाऊँगा ।।

तेरे वादेपर सितमगर अभी और सब्र करते ।
अगर अपनी जिन्दगीका हमें एतबार होता ।।

नामाबर कहता है मुझको क्या करामत है तुम्हें ।
जो वोह लिखते वह भी तुमने खतमें लिखकर रख दिया ।।
जिबह करते ही मुझे कातिलने धोये अपने हाथ ।
और खूँ आलूदा खंजर गैरके घर रख दिया ।।
शामसे ही लोटना है मुझको अगारो पै आज ।
इसलिए मैंने अलग तह करके बिस्तर रख दिया ।।

मेरे सवालके मानी वोह मुझसे कह देते ।
मगर सवालका मेरे कोई जवाब न था ।।
हजारो परदेमें मुश्ताक देख लेते हैं ।
उसे हिजाब था मूसाको तो हिजाब न था ।।
पयाम्बर ! तुझे लाखो सवाल करने थे ।
न था हजारमें इक बातका जवाब न था ।।
अगर्चे बादाकशी थी गुनाह ऐ जाहिद !
जो तुमसे छीनकर पीता तो कुछ अजाब न था ।।
सुना कलाम जो रिन्दोंका शेख घबराया ।
वहाँ तो बातका छोटा भी बेशराब न था ।।

ले लिया हाथोमें मुझको देखकर बेअख़्तियार।
आज उनका पासबाँ मेरा निगहबाँ हो गया॥

चुप रहेंगे हयासे वे कबतक?
गुस्सा इलज़ामसे तो आयेगा॥

ऐ 'दाग़'! क्या बताएँ मुहब्बतमें क्या हुआ?
बैठे बिठाये जानको आज़ार हो गया॥

ग़श आजाता है उसको आँखसे जब आँख मिलती है।
निगहबाँ और पैदा कीजिए अपने निगहबाँका॥
अदममें ले गया मुझको फरिश्ता, मैं यह समझा था।
बुलानेको कोई आया है मुझको आदमी वाँ का॥

कुछ तो है आराम उस कूचेमें हम जो जा रहे।
वर्ना क्या रहनेको अपने, अपना काशाना न था?

मर गये हम तो वज़अदारीमें।
दोस्तीके निबाहने मारा॥

ईमान कुछ वज़ू तो नहीं है जो टूट जाय।
ऐ शेख़! क्या हुआ जो मैं तौबाशिकन हुआ॥

रोज़ जाता हूँ नये रूपसे उसके दर पर।
रोज़ रखता हूँ नया नाम बदलकर अपना॥

मैं बदगुमान उससे ज़ियादा ख़ुदाकी शान।
है ऐतबार उसको मेरे ऐतबारका॥

निकली पयाम्बरकी ज़बाँसे न कोई बात।
कमबख़्त उसके सामने थम होके रह गया॥

दिल चुराकर आप तो बैठे हुए हैं चैनसे।
ढूँढ़ने वालेसे पूछे कोई, क्या जाता रहा॥

बुतोंने होश सम्भाला जहाँ शऊर आया ।
बड़े दमाग, बड़े नाज़से गरूर आया ।।
उसे हया इधर आई, उधर गरूर आया ।
मेरे जनाज़ेके हमराह दूर-दूर आया ।।

दुआ माँगलो तुम भी अपनी ज़बाँसे ।
कि "पूरा हो जो मुद्आ है किसीका" ।।
मिरी इल्तजापर बिगड़कर वोह बोले—
"नही मानते ! इसमे क्या है किसीका ?"
सुना करते हैं छेड़कर गालियाँ हम ।
वगर्ना कोई सर फिरा है किसीका ?

यूँ हो गई निजात, यह तदबीर बन पडी ।
नासेहको हमने गैरके पीछे लगा दिया ।।
इन्सान जानते तो न लिखते वोह यह जवाब ।
क्या जाने नामाबरने मुझे क्या बता दिया ।।

फिर बुलाया फिर कहा कुछ, फिर उसे रुख़सत किया ।
नामाबर जब हसरतोका मेरी दफ़्तर ले चला ।।

ख़तकी लूँ नक़्ल कि क़ासिदकी उतारूँ तसवीर ।
यह भी गुम होगा मेरा नामा भी खो जायेगा ।।
वस्लके बाबमें की अर्ज़ तो हँसकर बोले—
"क्यों मरे जाते हो, हो जायेगा, हो जायेगा" ।।

बुराईमें भी होगा कोई मतलब ।
वे करते ज़िक्र क्यों बेकार मेरा ।।
मुझे कोसें बलासे गालियाँ दें ।
मगर वोह नाम लें हर बार मेरा ।।

कयामत है सुनें वोह सर झुकाये ।
ख़ुदाके सामने इजहार मेरा ।।

इन्कार तो करते हो मगर यह भी समझ लो ।
बे वजह किसीसे कोई साइल नही होता ।।

मेरे ही दमसे जिन्दा है आजार इश्कका ।
मै मर गया अगर तो यह आजार मर गया ।।

तरीका खूब है यह उम्रके बढानेका ।
कि मुन्तजिर रहूँ ताहश्र उनके आनेका ।।
चढाओ फूल मेरी कब्रपर जो आये हो ।
कि अब जमाना गया तेवरी चढानेका ।।
समाएँ अपनी निगाहोमे ऐसे-वैसे क्या ?
रकीब ही सही, हो आदमी ठिकानेका ।।

ऐ काश ! अब हम ठोकरे खाकर ही सम्भलते ।
सर मिलते है उस कूचेमें पत्थर नही मिलता ।।

शौक ऐसा कि तेरी राहमे मरकर भी चलूँ ।
जौफ ऐसा कि नही जानसे जाया जाता ।।

नामाबर देखके तेवर उन्हे खत देना था ।
बातो-बातोमे फकत काम निकाला होता ।।

दिए जा ऐ फलक ! पूरा ही आजार ।
न हो क़िस्मतसे कम हिस्सा हमारा ।।
तेरे आलमको जबसे हमने देखा ।
तमाशाई है इक आलम हमारा ।।

अपने दिलको भी बताऊँ न ठिकाना तेरा ।
सबने जाना, जो पता एकने जाना तेरा ।।

इस सलीकेकी अदावत कहीं देखी न सुनी ।
तू जमानेका उदू, दोस्त जमाना तेरा ।।

किस्मत उसकी है कि जिसने उसे पाया तनहा ।
ख्वाबमें भी तो न आया मेरे डरसे तनहा ।।
साथ लाकर वोह रकीबोको यह फर्माते है ।
"क्या सबब था जो मुझे तूने बुलाया तनहा ?"

जब यह सुना कि 'दाग' का आजार कम हुआ ।
जानू पै हाथ मारके बोले "सितम हुआ" ।।
अफसोस है रकीबने की आपसे दगा ।
मुझको भी रज आपके सरकी कसम हुआ ।।

यह मै हजार जगह हश्रमे पुकार आया ।
कि "और भी कोई मुझ-सा गुनाहगार आया" ।।
जो वजह देरकी पूछी कहा ये कासिदने—
"गुजारने थे मुसीबतके दिन, गुजार आया" ।।
उड़ाये है मलिकुलमौतने भी तेरे ढग ।
हजार बार बुलाया तो एक बार आया ।।
खुदाके वास्ते झूठी न खाइये क़स्में ।
मुझे यकीन हुआ, मुझको एतबार आया ।।

तौबाके बाद भी खाली-खाली ।
कोई सागर नहीं देखा जाता ।।
मुख़्तसर ये है कि अब 'दाग़' का हाल ।
बन्दापरवर नहीं देखा जाता ।।

दोस्तोसे तो कुछ न निकला काम ।
कोई दुश्मन ही कामका मिलता ।।

सुनकर फसाना क़ैसका ज़ालिमने यह कहा –
"आशिक़ ख़राबख़स्ता रहे पेश्तर भी क्या ?"

तगाफुलसे बढ़कर भी क्या और होगा ?
सितम हो चुका या अभी और होगा ?
न आशिकको शिकवा न माशूक़ सरकश ।
इलाही वोह-क्या अहद क्या दौर होगा ?

तुम्हारे ख़तमें नया इक सलाम किसका था ?
न था रकीब तो आखिर वह नाम किसका था ?
वोह कत्ल करके मुझे हर किसीसे पूछते है––
"यह काम किसने किया है, यह काम किसका था ?"
"वफा करेंगे, निबाहेंगे, बात मानेंगे––"
तुम्हें भी याद है कुछ, यह कलाम किसका था ?

शिकायत सुनी आज क्या-क्या तिरी ।
कि दुश्मन मुझे अपने घर ले गया ।।

हो गई चूक हमसे ऐ नासेह !
तुझको अपना पयाम्बर न किया ।।

बिगड़के जाएँ तो नादान बनके आएँ हम ।
कि है रवा उन्हें दुश्मनको दोस्त कर लेना ।।
अबस निबाहके वादेसे तुम तो डरते हो ।
यह कौन बात है इक दिन बिगाड़ कर लेना ।।
हमें तो शौक है बेपरदा तुमको देखेंगे ।
तुम्हें है शर्म तो आँखों पै हाथ धर लेना ।।

गुलशनमें तेरे लबोने गोया ।
रस चूस लिया कली-कलीका ।।

न सीधी चाल चलते हैं न सीधी बात करते हैं ।
दिखाते हैं वोह कमज़ोरोको तनकर बाँकपन अपना ।।

दुश्नामकी भी आपसे किसको उम्मीद थी ।
हमने तो इसपै सब्र किया जो अता हुआ ।।

ऐसे नशेके क्यो न हो कुरबान ।
हाथ उनका मेरी कमरमे पड़ा ।।
नामाबरका तो कुछ पता न मिला ।
नामा पाया है रहगुज़रमें पड़ा ।।

ख़ुदाके वास्ते करलो मुआमला दिलका ।
कि घरके घर ही में हो जाय फैसला दिलका ।।
शबाब आते ही ऐ काश मौत भी आती ।
उभारता है इसी सिनमें वलवला दिलका ।।

इधर देख लेना उधर देख लेना ।
कनखियोसे उसको मगर देख लेना ।।
कही ऐसे बिगड़े सँवरते भी देखे ।
न आएँगे वोह राहपर देख लेना ।।
तग़ाफुलमें शोख़ी निराली अदा थी ।
गज़ब था वोह मुँह फेरकर देख लेना ।।

अपनी तसवीर वोह खिचवाये यह मुमकिन ही नहीं ।
जिसने आईनेमें भी अक्स न डाला अपना ।।
ख़ाक किस-किसकी ख़ुदा जाने हुई दामनगीर ।
तुमने चलते हुए दामन न सम्भाला अपना ।।

वस्लकी उनसे हो गई उम्मीद।
सिलसिला जब कलामका निकला ॥
गालियाँ सुनते है दुआ देकर।
ख़ूब पहलू कलामका निकला ॥

आकबत पाक है मयख्वारकी, सुन रख ज़ाहिद !
यह तो मयख़ानेसे अल्लाहके घर जायेगा ॥

हँसी आती है अपने रोनेपर।
और रोना है जग हँसाईका ॥

तुझे नामाबर कसम है युँही दिनसे रात करना।
कोई एक बात पूछे तू हज़ार बात करना ॥
नही और ख़ौफ कासिद ! मगर एक बात करना।
जो रकीब भी वहाँ हो, बहुत इल्तफात करना ॥

सुनता हूँ कि नासहकी ज़बाँ बन्द हुई है।
हर रोज़की झक-झकसे मेरा नाकमें दम था ॥

जाके पी आये वहाँ, आते ही तौबा करली।
इस कदर दूर है मस्जिदसे ख़राबात ही क्या ॥

बेकार मुफ्त ख़ाक उड़ाती फिरी सबा।
गोशा उलट दिया न किसीकी नकाबका ॥
साकी तो मुझको चाट लगाकर अलग हुआ।
धो-धोके पी रहा हूँ पियाला शराबका ॥
रोज़ा रखें, नमाज़ पढ़ें, हज अदा करें।
अल्लाह यह सवाब भी है किस अज़ाबका ॥
जब मै करूँ सवाल तो कहते है "चुप रहो"
क्या बात है ! जवाब नही इस जवाबका !!

ख़ुशबू वही, वही है नज़ाकत, वही है रग।
माशूक क्या है फूल है तू भी गुलाबका॥

आस्माँ दूरसे करता है तुझे झुकके सलाम।
कोई तुझ-सा सितम ईजाद न देखा न सुना॥

नाज़ ये है न किया कतअ ताल्लुक हमने।
वोह जताते है जफा करके भी अहसा उल्टा॥

बेडिया डालके गर दफ़न न करते अहबाब।
ऐ जुनू! लाशा मेरा कब्रके अन्दर फिरता॥

गया काफिला छोडके मुझको तनहा।
ज़रा मेरे आनेका रस्ता न देखा॥

यह भी है नई उनको नज़ाकतकी शिकायत।
कहते है—"तेरे दिलको सताया नही जाता"॥

आता है अब तो जौफमें आँसू भी इस तरह।
जैसे मुसाफिर आये थका माँदा राहका॥

परी हो, हूर हो, यूसुफ हो, आखिर क्या कहे तुमको।
किसीको हुस्नपर अपने गरूर ऐसा नही होता॥

गैरकी शक्ल दिखाई न ख़ुदाने मुझको।
शुक्र है आज उसे ख्वाबमें तनहा देखा॥

वोह छलावा इस आनसे निकला।
"अल अमाँ" हरज़बानसे निकला॥
आगया गश निगाह देखते ही।
मुद्दआ कब ज़बानसे निकला॥
वहम आते है देखिए क्या हो।
वोह अकेला मकानसे निकला॥

हम खड़े तुमसे बात करते थे।
गैर क्यो दरमियानसे निकला ?

वोह दुनिया थी कि हमको देखकर तुम मुँह छुपाते थे।
यह महशर है यहाँ आशिकसे परदा हो नहीं सकता॥
इलाही क्या कयामतमे बनेगी दादख्वाहो पर ?
वोह फर्माते है—"क्या दावे पै दावा हो नही सकता ?"
पडा था गैरकी गर्दन में क्या, कुछ हमसे तो कहिये।
यह कैसा दर्द है, क्यो हाथ सीधा हो नहीं सकता॥
हमें भी नामाबरके साथ जाना था, बहुत चूके।
न समझे हम कि ऐसा काम तनहा हो नही सकता॥

आने पाता नही कोई आशिक।
खूब महफिलका इन्तजाम किया॥
बात तुझसे करे तो हम जाने।
जिसने अल्लाहसे कलाम किया॥
भेजकर खत यह मुझको आया रश्क।
उसने कासिदसे क्यो कलाम किया॥

तुम्हारा दिल मेरे दिलके बराबर हो नहीं सकता।
वोह शीशा हो नहीं सकता, यह पत्थर हो नही सकता॥
जफाएँ 'दाग़'पर करते है, वोह यह भी समझते है।
कि ऐसा आदमी मुझको मयस्सर हो नही सकता॥

रूठेको मनाते है वोह प्यारसे यह कहकर—
"तेरी तो यह आदत है नाहकका गिला करना"॥

आये थे अयादतके लिए गैरको लेकर।
पछताये वोह मेरा जो बुरा हाल न निकला॥

अब दमाग उनका आस्मॉ पर है।
क्यो मेरे मुँहसे मुद्आ निकला ॥
'दाग' को लोग रिन्द कहते हैं।
वोह हकीकतमे पारसा निकला ॥

ले जाएँगे फरिश्ते मुझे जो अज़ाबके।
रहमत कहेगी "लाओ गुनहगार, क्या हुआ ?"

गैरकी तारीफ लिक्खी सारे ख़तमें और मुझे—
यह भी लिखते है कि लिक्खो मेरे दफ्तरका जवाब ॥

क्यो कहा यह किसीसे "क्या मतलब" ?
इसी कहनेसे खुल गया मतलब ॥
बात पूरी नही कही मैंने।
कि वोह तर्रार ले उड़ा मतलब ॥

उसको भी मेरी वजहसे है बदगुमानियॉ।
जो हमनशी मिरा है, तेरा पासबॉ है अब ॥

सलाम मैंने किया रखके हाथ सीने पर ॥
वोह जानते है मुझे देखकर छुपाई चोट ॥

उम्मीद यह कहती है वोह आते है ठहरजा।
है यासकी ताकीद कि दुनियासे गुज़र आज ॥

ऐ बेखुदी ! वोह आएँ तो मै होशमें न आऊँ।
वोह भी तो मेरी तरह करें इन्तज़ार आज ॥

कहते है जब वो मुझसे—"तुझे हम करेंगे कत्ल"
कहता हूँ हाथ बान्धके "जो आपकी सलाह" ॥

आँसू गिरा जो आँखसे तकदीरने कहा—
"मिलते है देख ख़ाकमें यूं आबरू पसन्द" ॥

दरबानके झगडेने बडा काम निकाला ।
घबराके वोह निकले इसी तदबीरसे बाहर ॥

नही है होशसे खाली हमारी बेहोशी ।
कि बेख़ुदीमें गिरे भी जो हम तो सागर पर ॥

मेरे दिलको बातोमें बहलाये रखना ।
कयामत करेगा यह फित्ना मचलकर ॥

मुहतसिब ! तोड़के शीशा न बहा मुफ्त शराब ।
अरे कमबख्त ! छिडकदे इसे मयख्वारो पर ॥

मेरे दिलको देखकर, मेरी वफाको देखकर ।
बन्दापरवर मुन्सिफी करना ख़ुदाको देखकर ॥
दिलरुबा हैं शर्म भी, शोख़ी भी, दिल किस-किसको दूँ !
इस अदाको देखकर या उस अदाको देखकर ॥

मुझसे कहते हैं कि पहचानो यह ख़त ।
हाथ रखकर वोह उडूके नाम पर ॥

दिल्लीसे चलो 'दाग' करो सैर दकनकी ।
गौहरकी हुई कद्र समन्दरसे निकलकर ॥

दिल मर गया है जबसे हमारा यह हाल है ।
तारी हो जैसे सोग किसी सोगवार पर ॥
पैगाम्बर रकीब बने यह ख़बर न थी ।
दुनियाके काम होते है सब एतबार पर ॥

घरसे निकलो तो सही, आँखसे देखो तो सही ।
उकरुबा आये है आशिकका जनाजा लेकर ॥

देखते ही मुझे महफिलमें, उन्हे ताब कहाँ ।
ख़ुद खड़े हो गये कहते हुए "बाहर-बाहर" ॥

आबाद मयकदा हो कि मस्जिद हो देखिये ।
तामीर साथ-साथ हुए दोनो पास-पास ॥

करता है सजदे हूरकी हसरतमे शेख़ तू ।
अल्लाहकी नही तुझे ऐ बेख़बर तलाश ॥

वोह नीम वादा करते ही दिलमे पलट गये ।
आधी क़सम सही थी और आधी कसम गलत ॥

देखा न हमने रश्कसे अगियारकी तरफ ।
मुँह फर बैठे बज़्ममें दीवारकी तरफ ॥

"दुबारा हमको कभी भूलकर न लिखना ख़त" ।
यह शर्त है मेरे ख़तके जवाबमें दाख़िल ॥

कै दिन हुए है हाथ में सागर लिए हुए ।
किस तरह तौबा कर लें इलाही अभीसे हम ॥

ख़ुदा करे कि न वोह आएँ फातहा पढने ।
तड़प-तड़पके निकल आएँगे मज़ारसे हम ॥

राहपर उनको लगालाए तो है बातोमें ।
और खुल जाएँगे दो-चार मुलाकातोमें ॥

भवें तनती है, खजर हाथमें है, तनके बैठे है ।
किसीसे आज बिगड़ी है जो वह यूँ बनके बैठे है ॥
फ़सू है, या दुआ है, यह मुआम्मा खुल नही सकता ।
वोह कुछ पढ़ते हुए आगे मेरे मदफनके बैठे है ॥
यह उठना-बैठना महफ़िलमें उनका रग लाएगा ।
क़यामत बनके उट्ठेंगे भभूका बनके बैठे है ॥

तमाम रात वोह जागें, वोह सोयें सारे दिन ।
ख़बर है क्या उन्हें क्योंकर कटे हमारे दिन ॥

उन्होने वादा किया आजकी शब आनेका ।
खुशी तो जब है खुदा खैरसे गुजारे दिन ।।

मैंने मरकर हिज्रमें पाई शफा ।
ऐसे अच्छेका वोह मातम क्या करें ।।
एक सागर पर है अपनी जिन्दगी ।
रफ़्ता-रफ़्ता इससे भी कम क्या करे ।।

साफ कब इम्तहान लेते है ।
वोह तो दम देके जान लेते है ।।
यूँ है मंजूर खाना वीरानी ।
मोल मेरा मकान लेते है ।।
अपने बिस्मिलका सर है जानू पर ।
किस मुहब्बतसे जान लेते है ।।
वोह झगड़ते है जब रकीबोंसे ।
बीचमें मुझको सान लेते है ।।

जमीपर पॉव नखवतसे नहीं रखते परी पैकर ।
यह गोया इस मकाँकी दूसरी मंजिलमें रहते है ।।
हमारे सायेसे बचता है हरइक बज्ममें उनकी ।
हमें देखो कि हम तनहा भरी महफिलमें रहते है ।।

यह क्या कहा कि दागको पहचानते नहीं ।
वोह एक ही तो शख्स है, तुम जानते नहीं ?

क्या-क्या फ़रेब दिलको दिये इज्तराबमें ।
उनकी तरफ़से आप लिखे खत जवाबमें ।।

तुमपर आशिक न हो तो किसपर हों ?
तुममें जो बात है वोह है किसमें ।।

गर कहा "तुम गलेसे मिल जाओ"।
मिल गया ज़हर कौन-सा इसमे ?

ज़बाँसे गर किया भी वादा तूने तो यकी किसको।
निगाहे साफ कहती है कि देखो यूँ मुकरते है॥
कोई कह दे कि तुमने दिल लिया, फिर देखिये क्या-क्या
उचटते है, उखडते है, पलटते है, मुकरते है॥

कब किसी दरकी जिबहसाई की।
शेख़ साहब नमाज़ क्या जाने ?
जिनको अपनी ख़बर नही अबतक।
वोह मेरे दिलका राज़ क्या जाने ?
जो गुज़रते है 'दाग'पर सदमे।
आप बन्दानवाज़ क्या जाने ?

क्या चोर है जो हमको दरबाँ तुम्हारा टोके।
कह दो कि यह तो जाने पहचाने आदमी है॥
नासहसे कोई कहदे कीजे कलाम ऐसा।
हज़रतको ताकि कोई यह जाने आदमी है॥
मै वोह बशर कि मुझसे हर आदमीको नफरत।
तुम शमअ़ वोह कि तुमपर परवाने आदमी है॥

लगाके बातोंमे ले आये हम उन्हें घरतक।
हज़ार हमपै हुए गो अताब रस्तेमें॥
वोह रस्ता काटके चलते है इसलिए मुझसे।
कि कुछ कहे न यह ख़ानाख़राब रस्तेमें॥

दिलमें समा गई है क़यामतकी शोख़ियाँ।
दो-चार दिन रहा था किसीकी निगाहमें॥

उस तौबापर है नाज़ तुझे ज़ाहिद ! इस कदर ।
जो टूटकर शरीक हो मेरे गुनाहमें ॥
आती है बात-बात मुझे याद बार-बार ।
कहता हूँ दौड़-दौड़के कासिदसे राहमे ॥

उड़ गई यूँ वफा ज़मानेसे ।
कभी गोया किसीमें थी ही नही ॥
दिल लगी दिल्लगी नही नासह !
तेरे दिलको अभी लगी ही नहीं ॥

पड़ा फलकको अभी दिलजलोसे काम नहीं ।
अगर न आग लगा दूँ तो 'दाग' नाम नही ॥

वैरसे काबेको डरते हुए हम जाते है ।
देख लेता है जो कोई वही थम जाते है ॥

इन्हीं लोगोके आनेसे तो मयख़ानेकी इज्ज़त है ।
कदम लो शेख़के तशरीफ़ लाये बादा ख़्वारोमे ॥

नही जानते इसका अजाम क्या है ।
वोह मरना मेरा दिल्लगी जानते है ॥
समझता है तू 'दाग'को रिन्द ज़ाहिद !
मगर रिन्द उसको वली जानते है ॥

नासहोसे कलाम कौन करे ?
अपनी ऐसोंसे गुफ़्तगू ही नहीं ॥

ख़ुदा करे कि मजा इन्तज़ारका न मिटे ।
मेरे सवालका वोह दें जवाब बरसोमें ॥

उसे लाएँ, मुझे ले जाएँ, या पैग़ाम पहुँचाएँ ।
यह क्या करते है सब बैठे हुए ग़मख़्वार पहलूमें ॥

जन्नतसे आर, हूरकी सुहबतसे इज्तनाब।
क्या जाने बन्दगीका सिला मुझको क्या मिले॥
यह भेद क्या है मुझसे मिला आज यूँ रक़ीब।
जिस तरह आइनासे कोई आइना मिले॥

आये हमसायेमे वोह गो न यहाँतक आये।
आज मकबूल हुई मेरी दुआ थोड़ी-सी॥

ले ही तो लेंगे गुनहगारोके होते जाहिद!
ये तो दोज़ख़के भी काबिल नही जन्नत कैसी॥
बेमहल बात भली भी तो बुरी होती है।
शुक्र करते हुए डरता हूँ, शिकायत कैसी?

है यह अब बेअसरी, ग़ैरके ताने कैसे?
हमपर आवाज़े हमारी ही फ़ुगाँ कसती है॥

मेरे कत्लके रोज़ मेला लगेगा।
यह जलसा वोह इक धूम-धामी करेगे॥

कयामत है बाँकी अदाएँ तुम्हारी।
इधर आओ ले लूँ बलाएँ तुम्हारी॥

परदे-परदेमे गालियाँ देकर।
मुझसे वोह पूछते है, "क्या समझे?"

इस तजाहुलका क्या ठिकाना है।
जानकर जो न मुद्दआ जाने॥

सम्भलकर ज़रा पाँव रखिये ज़मींपर।
अगर चाल बिगड़ी तो बिगड़ा चलन भी॥

ख़ुदाकी देन है ग़म हो कि शादी।
यह बन्दे लाये है क्या अपने घरसे?

निराली वज़्अ ज़ाहिदने बनाई।
ये है इन्सान क्या जाने किधरसे॥

चुटकीमें उनकी तीर निगाहों मे उनके कहर।
क्या जाने कितनी देर हमारी कज़ामे है॥

ख़ुदाके सामने, जब आपकी तलब होगी।
वहाँ भी आप निगहबान लेके जाएँगे?

करता है इमाम आज बहुत सहवके[1] सजदे।
पोशीदा जमाअ़तमे वोह काफिर तो नही है!

हमको हासिल क्या हसीनोमे हो गर तुम आफताब।
शबको हाथ आते नही, रहते हो दिनभर सामने॥
या इलाही ख़ैर हो बैठे है वोह यूँ बज़्ममे।
तेग रक्खी है बराबर और ख़ज़र सामने॥

बना है मुद्दई पैगाम्बर भी।
जड़ी है जब मेरी खोटी जड़ी है॥

रो-रोके कह रहे है वोह मुर्देपै गैरके--
"किसकी बुरी नज़र तुझे ऐ नौजवाँ लगी?"
बेताब मुझको देखके वोह पूछते है 'दाग'।
"कम्बख़्त! तेरे चोट बता तो कहाँ लगी"?

कहते है "क्यो ख़ुदाको किया याद हिज्रमे,
फुर्सत बड़ी मिली तुझे मेरे ख़यालसे"॥

दिलमें भी आये, तसव्वुरमें भी आये बेहिजाब।
उनको ज़ाहिरमें फक़त आँखोंका परदा हमसे है॥

---

[1]गलत, भूल भरे।

तू मेरे सरपर खड़ी रहती है हरदम ऐ अजल !
और फिर सारा जहाँ कहता है हरजाई तुझे ॥
बेहिजाबीका बहाना कोई तुझसे सीख जाय ।
गैरके आते ही ज़ालिम आई अँगड़ाई तुझे ॥

तुरबतमे मेरी डाल दें उसकी गलीकी ख़ाक ।
हाजत नही है इसके लिये कफ़नपोशकी ॥
ज़ाहिदकी सुर्ख आँखोसे मालूम हो गया ।
रिन्दोसे जो बची थी सो हज़रतने नोश की ॥

सहमे जाते है, डरे जाते है, वोह आशिकसे ।
कमसिनी है अभी इस सिनमें झिझक होती है ॥

इस नज़ाकतपै सुने क्या वोह हमारी फरियाद ।
गुंचा चटके तो कहे "सरमें धमक होती है" ॥

पीकर न तौबा की हो तो वाइज़ ज़बाँ जले ।
यह ऐतराज़ क्या है कि मयख्वार क्यो हुए ॥

मुहतसब आ गया तो ऐ साकी !
हम अज़ाँ देंगे उठके महफिलसे ॥

कहते है मुझसे—"मर न गये मेरे नामपर—
क्या चाहमें वह चाह जो मुँह देखकर हुई" ॥

कासिद भी उसको देखके दीवाना हो गया ।
पूछी ज़मीनकी तो कही आस्मानकी ॥
सर काटकर लगाते है गरदनके साथ फिर ।
कुछ रह गई है उनको हविस इम्तहानकी ॥

उनसे निगाह मिलते ही दिलपर लगी वोह चोट ।
बिजली-सी अपनी आँखोके नीचे चमक गई ॥

दिलको चुरा लिया है निगाहोसे, और फिर ।
आँखोमें बैठते है, ढिटाई तो देखिये ।।

जो घड़ी ऐशकी गुज़रे वोह गनीमत जानो ।
ज़िन्दगानीका मेरी जान भरोसा क्या है ।।

मेरे दिलमे बर्छी चुभोकर कहा--
"ख़बरदार तूने अगर आह की" ।।

यह क्या कहा कि मेरी बला भी न आयगी ।
क्या तुम न आओगे तो क़ज़ा भी न आयगी ।।
कासिदका इन्तज़ार अबस, यह यकीन है ।
मुझ तक तो उस तरफकी हवा भी न आयगी ।।

आँखे ख़ुदाने दी है मुरव्वतके वास्ते ।
यह क्या ख़बर थी तुझको हया भी न आयगी ।।

आने-जाने न दो रकीबोको ।
कहीं बाज़ार घर न हो जाये ।।

करीनेसे अजब आरास्ता कातिलकी महफिल है ।
जहाँ सर चाहिए सर है, जहाँ दिल चाहिए दिल है ।।
भरोसा है ख़ुदापर ! नाख़ुदासे इल्तजा कैसी ?
मेरी किश्ती ही साहिल है, मेरी किश्तीमें साहिल है ।।
उठाया शौकने उट्ठे, बिठाया ज़ोफने बैठे ।
यही रस्तेका रस्ता है यही मज़िलकी मज़िल है ।।
तेरी तलवारके क़ुर्बान ऐ सफ़्फाक ! क्या कहना ?
इधर कुश्ते पै कुश्ता ह उधर बिस्मिल पै बिस्मिल है ।।
सितम भी हो तो मुझपर हो, जफा भी हो तो मुझपर हो ।
मुझे इस शकने मारा वोह क्यो आलमका कातिल है ।।

मेरी तसवीरसे यूँ छेड़की बातें वोह करते हैं।
"ज़रा कम्बख्त मुँहसे बोल, तू किस बुतपै माइल है" ॥

अपने दीवानोंको देखा तो कहा घबराकर—
"यह नई बलाअकी किस मुल्कसे ख़लक़त आई" ॥

वोह मुझको देते हैं गाली सलामसे पहले।
सलाम करती है दुनिया कलामसे पहले ॥

आगया है भूलकर ख़त इस तरफ।
वोह तो आशिक़ है मेरे हमनामके ॥
हाथसे सैयादके गिरकर छुरी।
कटगये हलके हमारे दामके ॥

कासिदोके मुन्तज़िर रहने लगे।
पड गये उनको मज़े पैगामके ॥
अब उतर आये हैं वोह तारीफपर।
हम जो आदी हो गये दुश्नाम के ॥

उनके दर्वाज़ेकी ज़ंजीर लगी हो न कही।
कुछ पसीजा तो है दरबान बड़ी मुश्किलसे ॥

यह है बिजली भी ये है तलवार भी।
बचते रहना तुम हमारी आहसे ॥

जहाँ देखो हसीनोंका है मजमा आकबतमें भी।
न जन्नत उनसे ख़ाली है न दोज़ख उनसे ख़ाली है ॥

लड़े मरते हैं आपसमें तुम्हारे चाहने वाले।
यह महफिल है तुम्हारी या कोई मुर्गोंकी पाली है ॥

जो दिखाने की न हो चीज़ें दिखाएँ किस तरह।
उसने चेहरे ही की खिचवाई फक़त तसवीर भी ॥

ख़ुदाके वास्ते नासेह इलाजकर अपना।
हमेशा अक़्लमें तेरी फतूर रहता है॥
ख़ुदा न डाले किसी बदमिज़ाजसे पाला।
कि पासबान भी अब उनसे दूर रहता है॥

ख़ाक इसलिए उडाई कि देखे न कोई गैर।
परदा किया यह कैसने महमिलके सामने॥

हज़ारो आते-जाते है किसीसे कुछ नही मतलब।
फकत इक चौकसी करता है उनका पासबाँ मेरी॥

सरूरो ऐशो निशात कैसे, बदल गये रग ही जहाँके।
सुना न कानोसे था जो हमने, वोह आँखसे इन्कलाब देखा॥

शबे हिजराँसे मौत बहतर है।
ख्वाब आरामसे तो आयेगा॥

की तर्के मय तो माइले पिन्दार हो गया।
मै तौबा करके और गुनहगार हो गया॥
इक हर्फे आरज़ू पै वोह मुझसे ख़फा हुए।
इतनी-सी बात कहके गुनहगार हो गया॥

हम एक कहके सुनते है मुंहसे तेरे हज़ार।
लपका पडा हुआ है यह गुफ़्तोशुनीद का॥

क़तरये खूने जिगरसे की तवाज़ा इश्क़ की।
सामने महमानके जो था मयस्सर रख दिया॥

कीजिए इश्के बुताँमें भी खुदाको शामिल।
क्या रहा ख़ौफ़ जब अल्लाह मददगार रहा॥

गये होश तेरे ज़ाहिद! जो वोह चश्मे मस्त देखी।
मुझे क्या उलट न देती जो न बादाख़्वार होता॥

डरता हूँ देखकर दिले बे आरजूको मैं।
सुनसान घर यह क्यो न हो, मेहमान तो गया॥

छूटकर कुंजे कफससे भी यह खटका न गया।
जब सबा आई तो जाना वही सैयाद आया॥
दी मुअज्जनने शबेवस्ल अजां पिछली रात।
हाय! कम्बख्तको किस वक़्त ख़ुदा याद आया॥

जो अर्ज़े तमन्नापर ज़ालिमने कहा मुझसे।
अबतक न मिला होगा साइलको जवाब ऐसा॥

मुद्दआ यह था कि हम देखें तुझे।
वर्ना क्यो नूरे नज़र पैदा किया॥

गुज़ार दी शबे वादा इसी तवक़्क़ोह पर।
मेरे बुलानेको अब आदमी ज़रूर आया॥
वहीसे 'दागे' सियह बख़्तको मिली ज़ुल्मत।
जहाँसे हज़रते मूसा के हाथ नूर आया॥

मज़मूने शौक छुप न सका इसको क्या करूँ?
गो मैंने ख़त रकीबके ख़तमें मिला दिया॥

मौतका मुझको न खटका शबे हिजराँ होता।
मेरे दर्वाज़े पै गर आपका दरबाँ होता॥

जा चुकें ख़ुल्दमें कि दोज़ख़में।
तूले रोज़े हिसाबने मारा॥

गो नज़अकी हालत है मगर फिर यह कहूँगा।
कुछ तुमने मेरा हाले परीशा नही देखा॥

महजूब कर न जुर्मे फुगाँपर कि लुत्फ क्या ?
शर्मे गुनाहसे जो गुनहगार मर गया ॥

अहसाने अफवेजुर्मसे वोह शर्मसार हूँ।
बख्शा गया मै तो भी गुनहगार ही रहा ॥

बे असर हो तो भी तूफाँ हो नही, दरिया तो हो।
हसरत उस आँसू पै है जो कतरये शबनम हुआ ॥

गुबार आलूदा है पाये हिनाई।
मिटाकर आये हो मदफन किसीका ॥

ऐ नजाकत तेरे कुर्बान कि वक्ते रुखसत।
वोह कहें "हमसे तो घरतक नहीं जाया जाता" ॥

तू खुदा तो नही ऐ नासहे नादाँ ! मेरा।
क्या खता की जो कहा मैने न माना तेरा ॥
काबओ दैरमें या चश्मो दिले आशिकमें।
इन्हीं दो चार घरोमें है ठिकाना तेरा ॥

वादये हश्र पे बेसाख्ता दिल लोट गया।
अहदका अहद, बहानेका बहाना तेरा ॥

मँगाई थी खाके दरेयार आज।
चुराकर मेरा चारागर लेगया ॥

यह कहनेको मुझे जालिम सरे मजार आया—
"मेरे बगैर तुझे किस तरह करार आया" ?
डरे जो हश्रमें वोह मुझको देखते ही कहा—
"मेरा रफ़ीक़, मेरा 'दाग' जाँ निसार आया" ॥

फरहाद जूए शीरसे मशहूर हो गया।
आता है काम वक़्तपर अदना हुनर भी क्या !

या रब ! शबे फिराक बसर हो चुके कहीं ।
नाज़ुक ख़राम उसकी तरह है सहर भी क्या ।।

साकी तेरी महफिलमें चरचा ही नहीं मयका ।
इससे तो यह बहतर था कुछ ज़िक्रे खुदा होता ।।
महफिलमें सुनाया था अफसानये गम मैंने ।
इल्जाम यह रक्खा है ख़िलवतमे कहा होता ।।

हाल कुछ ऐ दावरे महशर न पूछ ।
हाल मुझमें अब कहाँ बाकी रहा ।।

न देना ख़ते शौक घबराके, पहले—
महल-मौका ऐ नामाबर ! देख लेना ।।

मिट गई रस्मो राह भी उनसे ।
यह नतीजा पयामका निकला ।।

मकतलमे वोह सफ़ाक जो मसरूफे सितम था ।
आगे सफे उश्शाक़से अपना ही कदम था ।।

वोह हाल है मेरा कि मिरे कातिबे ऐमाल ।
लिखते हैं मगर उनसे भी लिक्खा नही जाता ।।

हाय मेरी ख़स्तगी-ओ मान्दगी ।
चल दिया सब काफिला मै रह गया ।।
'दाग़' से उट्ठा न इक रश्के रक़ीब ।
जो सितम सहनेके थे सब सह गया ।।

हम मिट गये मगर ख़लिशे दिल न मिट सकी ।
काँटे हमारे हकमें तेरा इश्क बो गया ।।

हम तो वहशतमें चले दीवारे ज़िन्दाँ फान्दकर ।
जिसको रहना हो, रहे वोह मुन्तज़िर मीयादका ।।

चलते-चलते यह ख़िज़ाँसे कह गई बादेसबा—
"ख़ाक़में मिलना न देखा जायगा औलादका" ॥
कोहमें जब शोर हो, तो गूँज उठता है पहाड ।
यह असर बाकी है अब तक मातमे फरहादका ॥
दावरे महशरके आगे उसने घबराकर कहा—
"'दाग' कोताही न कर यह वक़्त है इमदादका" ॥
दिल देंगे हम तो हज़रते नासेह ! हज़ार बार ।
देना नही है आपके कुछ किबलागाहका ॥
बाइसे शुहरत हमारा इश्क़ है ।
नाम दुनियामे तुम्हारा हो गया ॥
बाकी है आधी रात मगर इसका क्या जवाब ।
घबराके वोह यह कहते है "वक़्ते अज़ाँ है अब" ॥
बन्देसे है क्यो पुरसिशे एमाल इलाही ।
इन्सानको रहती है कहाँ अपनी खता याद ॥
उस्तादने अच्छा सबके इश्क़ पढाया ।
जब इसको भुलाता हूँ यह होता है सिवा याद ॥
मै दावरे मशहरमें बहुत दाद तलब था ।
वह डांट गये मुझको बराबरसे निकलकर ॥
इस वहमसे वोह 'दाग' को मरने नही देते ।
माशूक न मिल जाये उसे ज़ेरे ज़मीं और ॥
आये वोह बेवफा यहाँ उसकी बलाको क्या गरज़ ।
जाये दरे क़बूल तक मेरी दुआको क्या ग़रज़ ॥
जोशे रहमतके वास्ते ज़ाहिद !
है ज़रा-सी गुनाहगारी शर्त ॥

३० नवम्बर १९५०

६४

ज़हीर

सैयद जहीरुद्दीन 'जहीर' सैयद जलालुद्दीनके पुत्र और देहलवी थे। शेरोसुखनका बचपनसे ही शौक था। १४ वर्षकी अवस्थामे ही जौकके शिष्य हो गये। १८५७के गदरके उपद्रवोके कारण दिल्ली छोडनेपर मजबूर हुए। झज्जर, सोनीपत, नजीबाबाद, बरेलीकी खाक छाननी पडी। बरेलीसे लखनऊ जाकर ४ वर्ष रहे। वहाँसे दिल्ली चले आये और चुगीमे नौकरी कर ली। थोडे अर्सेके बाद बुलन्दशहरसे प्रकाशित होनेवाले 'जलवयेतूर'के सम्पादक नियत हुए। उक्त पत्रके लेखोसे प्रसन्न होकर अलवर-नरेश शिवध्यानसिहने इन्हे अपने यहाँ बुला लिया। किन्तु रियासती साजिशोसे तग आकर ये चार वर्षके बाद फिर दिल्ली चले आये और नवाब 'शेफ्ता'की सिफारिशसे जयपुर रियासतमे पुलिस विभागमे जगह मिल गई। वहाँ १९-२० वर्ष रहे होगे कि जयपुर-नरेश-का देहान्त होनेसे इनकी नौकरी जाती रही। चन्द रोज़ परेशान रहनेके बाद टौकके नवाबने इन्हे अपने पास बुला लिया और बहुत इज़्जत और आबरूसे रक्खा। वहाँ १५-१६ वर्ष रहनेके बाद हैदराबाद जानेका शौक हुआ। वहाँ ८ माहके बाद बमुश्किल नवाबसे मुलाकातकी नौबत आई, अभी वेतन निश्चित भी न हुआ था कि मृत्युने झपट्टा मारकर सारी चिन्ताओसे मुक्त कर दिया। हैदराबादमे महाराजा सर किशनप्रसादने इनकी काफी सहायता की। इनके तीन दीवान छप चुके है, चौथा दीवान तीन सौ गजलोका उनके नवासेके पास हस्तलिखित मौजूद है।

ज़हीर अपने युगके प्रसिद्ध शायर थे। जौकके शिष्य होते हुए भी

मोमिनके रगको पसन्द करते और उसीमे कहते थे। इनके मशहूर शागिर्द नजीमुद्दीन अहमद 'साकिब' बदायूनी है जो 'पहलवानेसुखन'के लकबसे मशहूर है।

जहीरके कलाममे मोमिन जैसी लतीफ तरकीबे, दिलनशी-अत्फाज और रगीन कनाये पाये जाते है। दिल्ली स्कूलके ये आखिरी यादगार थे, इनके साथ ही ये रग हमेशाको खत्म हो गया।

फ़कत एक सादगीपर शोख़ियोंके है गुमाँ क्या-क्या!
निगाहे शरमगीसे है निहाँ क्या-क्या, अयाँ क्या-क्या!

तसव्वुरमें विसाले यारके सामान होते है।
हमें भी याद है हसरत की बज्म आराइयाँ क्या-क्या?

ऐजाजे दिल फरेबिये अन्दाज देखना।
हर-हर अदापै मुझको गुमाने नजर रहा॥
परहेजे इश्कसे मुझे बहशत फजूँ हुई।
मैं कुछ दवासे और भी रजूरतर रहा॥

क्या बुरी शै है मुहब्बत भी इलाही तौबा।
जुर्म ना करदा खतावार बने बैठे है॥

—इन्तकादियात, भाग २, पृ० १४०

१२ अगस्त १९५०

९५

अनवर

सैयद शुजाउद्दीन 'अनवर' जहीरके छोटे भाई थे, और जौकके शिष्य थे, जौककी मृत्युके बाद गालिबसे मशविरा लेते थे। उदीयमान कवि थे, किन्तु ३८ वर्षकी आयुमे ही परलोक सिधार गये। इनके समकालीन इन्हे बडी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखते थे। इनके दो दीवान नष्ट हो गये, किन्तु ला० श्रीराम साहब (खुमखानये जावेदके प्रसिद्ध लेखक)ने अत्यन्त परिश्रम और खोज करके एक दीवान प्रकाशित कराया है। अनवर—जौक, गालिब और मोमिन इन तीनो ही के रगमे कहते थे।

न हम समझे न आप आये कहीसे।
पसीना पूछिये अपनी जबीसे॥

मैंने कहा कि गैरसे परदा नही हुआ।
कहने लगे कि "आपको फिर क्या? नही हुआ"॥

बदमस्तियोका रंग है जोशे शबाबमें।
गोया कि वे नहाये हुए है शराबमें॥

इधर लाओ जरा दस्ते हिनाई।
पकड़ लें चोरका दिल हम यहीसे॥

फेकिये क्यो मये नाकिस साकी।
शेख़ साहबकी जियाफत ही सही॥

—इन्तकादियात, भा० २, पृ० १४६

१३ अगस्त १९५०

मोमिनके शिष्य

९६

शेफ़्ता

नवाब मुस्तफाखाँ 'शेफ्ता' के पिता अजीमुद्दौला सरफराजुल्मुल्क नवाब मुर्तजा खाँ बहादुर मुजफ्फरजग बंगश थे, और माता जरनैल इस्माइल बेग हमदानीकी साहबजादी अकबरी बेगम थी। 'शेफ्ता' के बाबा वलीदाद खाँ बगसात (कोहाट सरहदी इलाके) से किस्मत आज़माई-के लिए इधर आये और फरुखाबाद रहने लगे। मुगलिया सल्तनतके जवालके बाद शेफ्ताके पिता महाराजा जसवन्तराय होलकरके लश्करमे शामिल हो गये, जहाँ एक पल्टनकी कमान उनके सुपुर्द हुई। इन दिनो लार्ड लेक होलकरसे उलझा हुआ था। नवाब मुर्तजाके प्रयत्नसे यह लडाई सुलह सफाई पर खत्म हुई। या यूँ कहिये कि नवाबने अपने स्वामी होलकर महाराजको धोका देकर लार्ड लेककी सहायता की। जिससे प्रसन्न हो कर १८१३ ई० मे दिल्लीके समीप गुडगाँवे जिलेके पलवल और होडल दो कसबे तीन लाख सालाना आमदनीके जागीरमे दिये। एक वर्ष बाद यू० पी० के बुलन्दशहर ज़िलेमे जहाँगीराबाद उन्होने स्वय खरीद लिया था, जोकि उनके वशजोके पास अबतक विद्यमान है।

नवाब मुर्तजाके मरते ही अग्रेज सरकारने अपनी दी हुई जागीरे पल-वल और होडल वापिस ले ली। केवल २० हजार रुपये वार्षिककी पेन्शन भरण-पोषणके लिए पुरानी सेवाओकी स्मृति स्वरूप बान्ध दी।

शेफ्ता १८०६ ई० मे दिल्लीमे उत्पन्न हुए। अरबी-फारसीमे पूर्ण पाण्डित्य यही प्राप्त किया। इसलाम धर्ममे भी पूर्ण योग्यता

प्राप्त की। युवावस्थामे ये भी उन कमज़ोरियोसे अछूते न रह सके थे, जो उन दिनो नवाबो-रईसोकी खास खूबियाँ समझी जाती थी, परन्तु जल्दी ही सम्भल गये और तौबा करली[1]। १८३८ ई० मे हजको गये थे और वहीसे अपने मृत्युकालक लिए कफन भी आबे जमजममे भिगोकर ले आये थे, और १८४० ई० मे भारत आकर धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगे थे। शायरीका शौक भी तर्क कर दिया था। बुजुर्गाने दीनकी खिदमतमे दिन गुजारते थे। बहुत कम शेर कहते थे।

१८५७ के विप्लवमे जहाँगीराबादको अरक्षित समझकर ये खानपुर रियासतमे चले गये थे। शान्ति होनेके बाद अग्रेज सरकारने इनपर मुकदमा चलाया कि ये क्यो उस जागीरको अरक्षित दशामे छोड गये, और क्यो बागियोको उसका उपयोग करने दिया। कोर्टने जागीर जब्त कर ली और सात सालकी सजा दी। फिर नवाब भोपालके प्रयत्नसे आधी जागीर मिली और सजा माफ हो गई।

शेफ्ताके मिर्जा गालिबसे बहुत गहरे ताल्लुकात थे, और गालिबको भी उनपर नाज था। वे शेफ्ताकी शायराना रायको खास वकअतकी नजरसे देखते थे और उनकी सुखन-फहमीके प्रशसक भी थे। मिर्ज़ा गालिबको १८४७ ई० मे जब कर्जके सम्बन्धमे छ माहके लिए जेल जाना पडा तो इन्होने उनकी हर तरहसे सहायता की।

शेफ्ता उर्दू-फारसी दोनोमे शेर कहते थे। उर्दूमे 'शेफ्ता' तखल्लुस था और मोमिनसे इसलाह लेते थे। फारसीमे उपनाम 'हसरती' था

---

[1]—इस तौबाके बाद एक रोज शेफ्ता रातको गालिबसे मिलने गये तो मिर्ज़ा उस वक्त सागरो-मीनासे शौक फर्मा रहे थे। शेफ्ताको भी दावत दी तो इन्होने कहा—"हजरत! मैंने तो तौबा करली है।" गालिब मुस्कराकर बोले—"अरे गजब किया, क्या जाडोमे भी।"

९६

शेफ्ता

नवाब मुस्तफाखाँ 'शेफ्ता' के पिता अज़ीमुद्दौला सरफराजुल्मुल्क नवाब मुर्तजा खाँ बहादुर मुजफ्फरजग बगश थे, और माता जरनैल इस्माइल बेग हमदानीकी साहबज़ादी अकबरी बेगम थी। 'शेफ्ता' के बाबा वलीदाद खाँ बगसात (कोहाट सरहदी इलाके) से किस्मत आज़माई-के लिए इधर आये और फरुखाबाद रहने लगे। मुगलिया सल्तनतके ज़वालके बाद शेफ्ताके पिता महाराजा जसवन्तराय होलकरके लश्करमे शामिल हो गये, जहाँ एक पल्टनकी कमान उनके सुपुर्द हुई। इन दिनो लार्ड लेक होलकरसे उलझा हुआ था। नवाब मुर्तजाके प्रयत्नसे यह लडाई सुलह सफाई पर खत्म हुई। या यूँ कहिये कि नवाबने अपने स्वामी होलकर महाराजको धोका देकर लार्ड लेककी सहायता की। जिससे प्रसन्न हो कर १८१३ ई० मे दिल्लीके समीप गुडगाँवे ज़िलेके पलवल और होडल दो कसबे तीन लाख सालाना आमदनीके जागीरमे दिये। एक वर्ष बाद यू० पी० के बुलन्दशहर ज़िलेमे जहाँगीराबाद उन्होने स्वय खरीद लिया था, जोकि उनके वशजोके पास अबतक विद्यमान है।

नवाब मुर्तज़ाके मरते ही अग्रेज सरकारने अपनी दी हुई जागीरे पल-वल और होडल वापिस ले ली। केवल २० हज़ार रुपये वार्षिककी पेन्शन भरण-पोषणके लिए पुरानी सेवाओकी स्मृति स्वरूप बान्ध दी।

शेफ्ता १८०६ ई० मे दिल्लीमे उत्पन्न हुए। अरबी-फारसीमे पूर्ण पाण्डित्य यही प्राप्त किया। इसलाम धर्ममें भी पूर्ण योग्यता

प्राप्त की। युवावस्थामे ये भी उन कमज़ोरियोसे अछूते न रह सके थे, जो उन दिनो नवाबो-रईसोकी खास खूबियाँ समझी जाती थी, परन्तु जल्दी ही सम्भल गये और तौबा करली[1]। १८३८ ई० मे हजको गये थे और वहीसे अपने मृत्युकालक लिए कफन भी आबे जमजममे भिगोकर ले आये थे, और १८४० ई० मे भारत आकर धार्मिक जीवन व्यतीत करने लगे थे। शायरीका शौक भी तर्क कर दिया था। बुज़ुर्गाने दीनकी खिदमतमे दिन गुजारने थे। बहुत कम शेर कहते थे।

१८५७ के विप्लवमे जहाँगीराबादको अरक्षित समझकर ये खानपुर रियासतमे चले गये थे। शान्ति होनेके बाद अग्रेज सरकारने इनपर मुकदमा चलाया कि ये क्यो उस जागीरको अरक्षित दशामे छोड गये, और क्यो बागियोको उसका उपयोग करने दिया। कोर्टने जागीर जब्त कर ली और सात सालकी सजा दी। फिर नवाब भोपालके प्रयत्नसे आधी जागीर मिली और सजा माफ हो गई।

शेफ्ताके मिर्जा गालिबसे बहुत गहरे ताल्लुकात थे, और गालिबको भी उनपर नाज था। वे शेफ्ताकी शायराना रायको खास वकअतकी नजरसे देखते थे और उनकी सुखन-फहमीके प्रशसक भी थे। मिर्जा गालिबको १८४७ ई० मे जब कर्ज़के सम्बन्धमे छ माहके लिए जेल जाना पडा तो इन्होने उनकी हर तरहसे सहायता की।

शेफ्ता उर्दू-फारसी दोनोमे शेर कहते थे। उर्दूमे 'शेफ्ता' तखल्लुस था और मोमिनसे इसलाह लेते थे। फारसीमे उपनाम 'हसरती' था

---

[1]—इस तौबाके बाद एक रोज़ शेफ्ता रातको गालिबसे मिलने गये तो मिर्ज़ा उस वक्त सागरो-मीनासे शौक फर्मा रहे थे। शेफ्ताको भी दावत दी तो इन्होने कहा—"हज़रत! मैंने तो तौबा करली है।" गालिब मुस्कराकर बोले—"अरे ग़ज़ब किया, क्या जाडोमे भी।"

और गालिबसे मशवरए सुखन लेते थे। १८५७ के गदरमे उस वक्त तकका लिखा समस्त कलाम नष्ट हो गया। उसके बादका कलाम निजामी प्रेस बदायूँसे १९१६ मे उनके साहबजादेने प्रकाशित कराया है।

शेफ्ता बहुत अच्छे समालोचक भी थे। उनकी "गुलशने बेखार" एक आलोचनात्मक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है, जो कि काफी प्रसिद्ध है। शेफ्ताके तीन लडके और दो लडकियाँ थी। इनमेसे एककी शिक्षाके लिए 'हाली' नियत हुए थे। १८६९ ई० मे ६३ वर्षकी आयुमे दिल्लीमे इन्होने समाधि पाई।

शेफ्ता ऊँचे पायेके शायर थे। वे अपने उस्ताद मोमिनकी तरह सिर्फ गजल कहते थे, और अपने उस्तादके रगमे ही लिखते थे, और तगज्जुलमे उनको कमाल हासिल था। यह भाग्यकी बात है कि वे ऐसी युगमे उत्पन्न हुए कि जब केवल जौककी तूती बोल रही थी, और गालिब -ओ-मोमिन जैसे अमर शायर भी मान्द पडे हुए थे। तब शेफ्ताको कौन पूछता ?

किसलिए लुत्फकी बातें है फिर ?
क्या कोई और सितम याद आया ?

'शेफ्ता' जब्त करो ऐसी भी क्या बेताबी ?
कोई भी हो, तुम्हें अहवाल सुनाना दिलका ।।

न दिया हाय मुझे लज्जते आजारने चैन ।
दिल हुआ रजसे गर खाली तो जी भर आया ।।

वह मुझसे खफा है तो उसे यह भी है जेबा ।
पर 'शेफ्ता' मैं उससे खफा हो नही सकता ।।

याससे[1] आँख भी झपकी तो तवक्कोसे[2] खुली ।
सुबहतक वादयेदीदारने[3] सोने न दिया ।।

मुहब्बत न हरगिज़ जताई गई ।
रहा जिक्र कल और हर बातका ।।

हम तालिबेशुहरत[4] है हमे नगसे[5] क्या काम ?
बदनाम अगर होगे तो क्या नाम ना होगा ।।

सब बातें उन्हीकी है ये, सच बोलियो क़ासिद !
कुछ अपनी तरफसे तो तसर्रुफ[6] नहीं करता ।।

क्या हाल तुम्हारा है हमें भी तो बताओ ।
बेवजह कोई 'शेफ्ता' उफ-उफ नही करता ।।

---

[1]निराशासे, [2]आशासे,
[3]दर्शनोके वायदेने, [4]प्रसिद्धिके इच्छुक,
[5]बदनामीसे, [6]बयान ।

इज़हारे इश्क़ उससे न करना था 'शेफ़्ता' !
यह क्या किया कि दोस्तको दुश्मन बना दिया ।।

हसरतसे[1] उसके कूचेको क्योंकर न देखिये ।
अपना भी इस चमनमें कभी आशियाना[2] था ।।

यादने जिसकी भुलाया सब कुछ ।
उसकी मैं याद भुलाऊँ क्योकर ।।

ऐ ताबेबर्क[3] थोडी-सी तकलीफ और भी ।
कुछ रह गये हैं ख़ारोख़शेआशियाँ[4] हनूज़[5] ।।

आरामसे है कौन जहानेख़राबमें[6] ?
गुलसीना चाक[7] और सबा इज़्तराबमें[8] ।।

क्या जाने गुज़री ग़ैरपै क्या उसकी बज़्ममें ।
आये वे इस तरह कि मुझे प्यार आ गया ।।

तूफानेनूह लानेसे ऐ चश्म ! फायदा ?
दो अश्क भी बहुत है अगर कुछ असर करें ।।

वोह 'शेफ़्ता' कि धूम थी हज़रतके ज़ुहदकी[9] ।
मैं क्या कहूँ कि रात मुझे किसके घर मिले ।।

शायद इसीका नाम मुहब्बत है 'शेफ़्ता' ।
इक आग-सी है सीनेके अन्दर लगी हुई ।।

---

[1]अभिलाषासे,
[2]घर, घोसला,
[3]बिजलीके करिश्मे,
[4]घोसलेके तिनके और काँटे;
[5]अभीतक;
[6]दुःखी संसारमे,
[7]फूलका सीना फटा है,
[8]विकलतामे, बेचैनीमे,
[9]धार्मिकताकी ।

कुछ इन्तज़ार मुझको नहीं मय,[1] न साज़का[2] ॥
नाचार हूँ कि हुक्म नहीं कश्फ़ेराज़का[3] ॥

हमसे पूछें कि इसी खेलमें खोई है उम्र ।
खेल जो लोग समझते हैं लगाना दिलका ॥

अभी ऐ 'शेफ़्ता' ! वाकिफ नही तुम ।
कि बातें इश्कमें होती है क्या क्या ॥

दुश्मनके फेलकी तुम्हें तौज़ीह[4] क्या ज़रूर ।
तुमसे फक़त मुझे गिलए दोस्ताना था ॥

अर्ज़े तमन्नासे रहा बेकरार ।
शब वोह मुझे, मै उसे छेडा किया ॥
गैरको ही चाहे है अब 'शेफ्ता' !
कुछ तो है जो यारने ऐसा किया ॥

कम-रगबतीसे[5] लेते है दिल, होशयार है ।
बढता है मोल, शौक़े ख़रीदार देखकर ॥

है जॉ-ब-लब[6] किसीकी इशारतकी देर है ।
देखे है उस निगाहको क़ज़ा और कज़ाको हम ॥

बचते है इस कदर जो उधरकी हवासे हम ।
वाकिफ है शेवए दिले शोरिश अदासे हम ॥

---

[1]शराब,
[2]मगीतका,
[3]भेद खोलने का,
[4]स्पष्टीकरण,
[5]उपेक्षासे, बेपरवाहीसे,
[6]मरणासन्न ।

कम इल्तफातियोंका[1] है बहम अहले बज़्मको ।
शर्मिन्दा हो गये तेरी शर्मो-हयासे हम ।।

गह हममे ख़फा वो है गहे उनसे ख़फा हम ।
मुद्दतसे इसी तरह निभी जाती है बाहम ।।

अहले ज़माना देखते है ऐब ही को बस ।
क्या फायदा कि 'शेफ़्ता' ! अर्ज़े हुनर करे ।।

कहता हूँ जो "गैरसे न मिलिये" ।
कहता है कि "क्या मै बेवफा हूँ ?"

जो हाल पूछना है तुम उससे ही पूछ लो ।
मुझको दमाग़ेकिस्सये ग़महाये दिल नहीं ।।

हम आजतक छिपाते है यारोंसे राज़े इश्क़ ।
हालाँकि दुश्मनोसे यह क़िस्सा[2] निहाँ नहीं ।।
लग जाये शायद आँख कोई दम शबेफिराक ।
नासेहको ही ले आओ गर अफसानाख्वाँ नहीं ।।

कहते है तुमको होश नहीं इज़्तराबमें ।
सारे गिले तमाम हुए इक जवाबमें ।।
इस नौबहारे हुस्नको बदनाम मत करो ।
थी 'शेफ़्ता'के पहले ही शोरिश दमाग़में ।।

दोनोंका एक हाल है यह मुद्दआ हो काश !
वो ही ख़त उसने भेज दिया क्यों जवाबमें ।।

अफसुर्दा खातिरी वोह बला है कि 'शेफ़्ता' !
ताअ़तमें कुछ मज़ा है न लज़्ज़त गुनाहमें ।।

---

[1]कृपाओंका; [2]छुपा हुआ ।

है दिलको शुक्रेवफ़ाएउदूसे बेताबी।
करूँ मैं कुछ गिलएलुत्फ़ गर अताब न हो॥
—शायर, जनवरी १९४९ पृ० ४६

हाय वोह 'शेफ़्ताकी' बेताबी।
थाम लेना वोह तेरे महमिलको॥

इतनी भी बुरी है बेकरारी।
अब आपसे उन्स कम करेंगे॥

न पूछो 'शेफ्ता' का हाल साहब!
यह हालत है कि अपनेमें नहीं है॥
—निगार, अक्तूबर १९४६, पृ० ५९

७ अगस्त १९५०

९७

तसकीन

मीर हुसेन 'तसकीन' मीर अहसनके पुत्र थे और दिल्लीमे उत्पन्न हुए थे। प्रारम्भमे शाह नसीरसे कविता सशोधन कराते थे। उनकी मृत्युके बाद मोमिनके शिष्य हुए। मोमिनके शिष्योमे ये बडे पायेके शायर थे। इन्होने मोमिनका ठीक-ठीक अनुसरण किया। गुरु-शिष्यके कलाममे इतना साम्य है कि दोनोका कलाम खलत-मलत कर दिया जाय तो किसका कौन-सा कलाम है, फिर यह पहचानना दिक्कत तलब हो जायगा।

आजीविकाकी खोजमे लखनऊ और मेरठ गये, फिर रामपुर गये। वहाँके नवाब यूसुफ अलीखाँने इनकी अच्छी प्रतिष्ठा की। ५० वर्षकी आयु पाकर सन् १८४९ मे वही समाधि पाई। इनके पुत्र मीर अब्दुल रहमान 'आसी' रामपुरमे नवाब कल्ब अली खाँके समय तक रहे। ये भी अच्छे शायर थे।

जिस वक्त नजर पड़ती है उस शोखपै 'तसकीन'!
क्या कहिये कि जीमें मेरे क्या-क्या नही आता॥

कूचये यारमें 'तसकीं' मैंने।
पाँव रक्खा था कि सर याद आया॥

यह तो सच है कि जो तुम चाहोगे कर गुजरोगे।
पर यह मुमकिन नही हमपर कभी बेदाद न हो॥

अभी इस राहसे कोई गया है।
कहे देती है शोखी नक़्शे पाकी॥

—इन्तकादियात, भाग २, पृ० १४५

नसीम

मिर्जा असगर अलीखाँ 'नसीम' नवाब आकाअलीखाँके पुत्र थे। १७९४ ई० मे दिल्लीमे उत्पन्न हुए। पिताकी मृत्युके बाद भाइयोसे अनबन होनेके कारण वाजिदअलीके जमानेमे लखनऊ जाकर बस गये थे। समस्त जीवन भरण-पोषणकी चिन्ताओमे व्यतीत हुआ, किन्तु कभी किसीसे सहायताकी याचना नही की। अत्यन्त स्वाभिमानी, धार्मिक और सहिष्णु थे। गदरके बाद मुशी नवलकिशोर प्रेसमे 'अलिफ लैला'के अनुवादककी हैसियतसे नौकर हो गये थे, परन्तु एक भागका अनुवाद करके ये वहाँसे पृथक हो गये। लखनऊमे उन दिनो लखनवी रग बहुत गहरा छाया हुआ था। फिर भी इन्होने देहलवी रगमे शायरी करके बडी ख्याति और सफलता प्राप्त की। ये बहुत अधिक कहते थे, परन्तु कलामको सम्भालकर नही रखते थे। इसलिए बहुत-सा कलाम नष्ट हो गया। इनके शिष्य अब्दुलवाहिदने किसी तरह कलाम सकलन करके एक दीवान छपवाया भी तो ये उसे अपनी प्रतिष्ठाके अनुकूल नही समझते थे। इनके कलामको मिर्जा गालिब भी पसन्द करते थे।

नसीमको दिल्लीकी भाषा और अपने देहलवी होनेपर नाज़ था। ये देहलवी रगके और भाषाके प्रबल अनुयायी थे। फिर भी कई अहले लखनऊ उनके शिष्य थे। जिनमे—अब्दुल्लाखाँ 'महर', अशरफअली 'अशरफ' और अमीर अल्लाह 'तसलीम' प्रसिद्ध है।

कहे देती है ये नीची निगाहे।
कि बालाए ज़मीं क्या-क्या न होगा॥

नाम मेरा सुनते ही शरमा गये।
तुमने तो ख़ुद आपको रुसवा किया॥

हाथमें ख़ंजर कमरमें तेग़ नेज़।
यह इरादे एक मुश्ते ख़ाक़ पर॥

आँखोमें है लिहाज तबस्सुम फिज़ा है लब।
शुक्रे ख़ुदा कि आज तो कुछ राह पर आप है॥

इन्तका०, भा० २, पृष्ठ १३८

६६

सालिक

[स० १८६३ ई०]

कुरबान अली, 'सालिक' नवाब मिर्ज़ा आलमके पुत्र थे और हैदराबादमे उत्पन्न हुए थे, किन्तु परवरिश देहलीमे हुई। पहले मोमिनके फिर ग़ालिबके शिष्य रहे। गदरके बाद पहले अलवर गये और वहाँसे हैदराबाद चले गये थे। इनका कलाम भी मोमिनका अनुसरण है।

ऐतबारे निगहेनाज़ है क्या-क्या उनको।
क़त्लको आते है और हाथमें शमशीर नहीं[1] ॥

तुम भी वही कहो तो कहे इक जहाँ बजा।
मैं भी वही कहूँ तो कहे इक जहाँ ग़लत[2] ॥

फिरते है दादख़्वाह तेरे हश्रमें ख़राब।
तू पूछता नहीं तो कोई पूछता नही ॥

नहीं इकबार भी अब सुननेकी ताक़त दिलमें।
पहले सौ बार तेरा नाम लिया करता था ॥

—इन्तकादियात, भाग २, पृ० १४१

१० अगस्त १६५०

---

[1]इस सादगीपै कौन न मर जाय या ख़ुदा!
लडते है और हाथमें तलवार भी नहीं ॥ —ग़ालिब

[2]जबमैं चलूँ तो साया भी अपना न साथ दे।
जब तुम चलो ज़मीन चले, आस्माँ चले ॥ —जलील

गालिबके शिष्य

१००

हाली

[१८३७—१९१४ ई०]

ख्वाजा अलताफहुसेन 'हाली' १८३७ मे दिल्लीसे ४०–५० मीलके अन्तरपर पानीपतमे एक दरिद्र परिवारमे उत्पन्न हुए। ९ वर्षके भी न होने पाये थे कि माँ-बाप इस असार ससारसे कूच कर गये। भाई-बहनोके आश्रयमे १६ वर्षकी आयुतक रहना पडा। कुरान बचपनमे ही कण्ठस्थ कर लिया था, और १६ वर्षकी उम्रमे फारसीकी अच्छी योग्यता प्राप्त करली थी। अभी आपने अरबीका अभ्यास प्रारम्भ ही किया था कि अभिभावकोने १७ वर्षकी आयुमे बलात् शादीके बन्धनमे बाँध दिया, परन्तु आप उस बन्धनसे भाग निकले और १॥ वर्ष तक अज्ञातवास करके दिल्लीमे अरबी-फारसीका अभ्यास करते रहे।

१८५६ ई० मे हिसार जिलेके कलेक्टरके आफिसमे एक घटिया-सी नौकरी मिली, परन्तु वह भी १८५७ के विप्लवके कारण छोडनी पडी और ५–६ वर्ष पानीपतमे बेकारीके काटने पडे। १८६३ ई० मे जहाँगीरावादमे नवाब शेफ्ताके पुत्रके अध्यापनका कार्य मिला।

नवाब शेफ्ता उर्दू-फारसीके मँजे हुए शायर और आलोचक थे। उनके सत्सगसे हालीको भी शायरीका शौक हो गया।

प्रारम्भमे हाली शायरीमे शेफ्ताके ही शिष्य हुए, फिर मिर्ज़ा गालिबके शिष्य होनेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ, किन्तु गालिबकी मुश्किल

पसन्दी और दार्शनिकताके कारण हाली शेफ्तासे ही अधिक मशवरये मुखन लेते थे। स्वय हालीने लिखा है कि मुझे "गालिबके मशवर-ओ सलाहकी निसवत नवाब साहबकी सुहबतसे ज्यादा फायदा हुआ है।"

हाली सुखनमे 'शेफ्ता'से मुस्तफीद हूँ।
'गालिब'का मौतकिद हूँ, मुकल्लद हूँ 'मीर'का ॥[1]

नवाब शेफ्ताकी ८ वर्ष मुलाजमतके बाद मुशी प्यारेलाल 'आशोब' देहलवी (मीर मुशी गवर्नर पजाब) की सिफारिशपर हाली गवर्नमेण्ट बुक डिपो लाहौरमे नियुक्त किये गये। अग्रेजीसे अनुदित उर्दू पुस्तकोके सशोधनका उत्तरदायित्व आपको दिया गया। जिसे आपने अत्यन्त परिश्रम और योग्यतासे निभाया। वहाँ रहकर आपको यूरोपियन साहित्यकी गति-विधिका काफी परिचय मिला। उसकी प्रगति और शैलीसे प्रभावित होकर आपने उर्दू-शायरीमे भी परिवर्तन आवश्यक समझा, और उसे प्राकृतिक और कौमी रगसे सज्जित किया।

१८७४ ई० मे कर्नल हालेण्ड (डाइरेक्टर शिक्षाविभाग पजाब) ने लाहौरमे नवीन ढगके मुशायरोका प्रचलन किया। इन मुशायरोमे मिसरा तरहपर गजल न कहकर भिन्न-भिन्न उपयोगी विषयोपर कविताएँ पढी जाती थी। इन्ही मुशायरोकी नीवपर वर्त्तमान नज्मका महल निर्माण हुआ।

हालीने भी बडे उत्साहसे इनमे भाग लिया और इश्किया शायरीको सलाम करके जीवन पर्यन्त कौमी नज्मे लिखते रहे।

कुछ अर्सेके बाद हालीकी नियुक्ति दिल्लीके अरबिक स्कूलमे हुई। यह उनके लिए स्वर्णयुग सिद्ध हुआ। वहाँ उनका मुसलमानोके परम-हितैषी अलीगढ यूनिवर्सिटीके जन्मदाता सर सैयद अहमदसे परिचय

---

[1]—शायरीमे 'मोमिन' से लाभान्वित हूँ 'गालिब' का श्रद्धालु हूँ और 'मीर'का अनुयायी हूँ। यानी रग मुझे मीरका पसन्द है।

हुआ, और यही परिचय शनै शनै मित्रतामे परिणत हो गया। १८८८ ई० मे हैदराबादके प्रधान मत्री अलीगढ यूनिवर्सिटी आये, तभी सर सैयद अहमदके अनुरोधपर हालीको ७५ रु० मासिककी वृत्ति बाँध दी, जो बादमे १०० रु० कर दी गई।

हाली सन्तोषी जीव थे। वृत्ति बन्धते ही स्कूलकी नौकरी छोडकर पानीपत चले गये और वही रहकर जीवन पर्यन्त उर्दू-साहित्यकी सेवा करते रहे। भारत सरकारने भी आपकी साहित्यिक सेवाओके फलस्वरूप 'शम्शुलउलमाँ' जैसी सर्वोच्च पदवीसे विभूषित किया। ३० सितम्बर १९१४ को आपकी मृत्यु हुई।

हालीकी मृत्युसे उर्दू ससारमे कोहराम मच गया। पत्रोके विशेषाक निकाले गये। स्मृति स्वरूप पानीपतमे 'हाली मेमोरियल हाई स्कूल' की स्थापना की गई। १९३५ म उनकी बडे-बडे शहरोमे शताब्दि मनाई गई। पानीपतमे उनकी समाधिपर बृहत मुशायरेका आयोजन किया गया। जिसके सभापति नवाब-भोपाल थे।

हाली मृदु और मितभाषी थे। कभी किसीकी कटु-आलोचना या बुराई नही करते थे। सदाचारी और धार्मिक थे। गरीबोकी सहायताको सदैव प्रस्तुत रहते थे। भद्रता, सच्चाई, सादगी, सरलता, नम्रता, सतोषके मूर्तिवान रूप थे। उनके व्यवहार और व्यक्तित्वसे लोग प्रभावित होते थे। उनके हृदयमे किसी सुनयनाके तीर टीस नही पहुँचाते थे, वे अपनी कौमकी दुर्दशाके कारण विकल रहते थे।

हालीकी प्रकृति गज़लके अनुकूल नही थी। तगज्जुलके लिए जिन तन्तुओकी आवश्यकता होती है, वे उनमे नही थे। वे स्वभावत धर्मभीरु और क़ौमी खिदमतगार थे। हुस्नोइश्कसे उन्हे कोई लगाव न था। शराब छूते न थे, परन्तु तत्कालीन वातावरण ही ऐसा था कि हाली तो [illegible]किनार कुँजडे, बिसाती भी उन दिनो शायरीके रगमे सराबोर रहते

लखनऊमें आतिश और नासिखके मुशायरोंने आस्मान सरपर उठा रक्खा था। देहलीमे ज़ौक ग़ालिब और मोमिन की खुशअलहानियाँ कयामत ढा रही थी। उन दिनो शेरो-शायरीके चर्चे आम थे। गली-गली और कूचे कूचेमें मुशायरे होते थे। जिसे देखो उसीके सरपर शायरीका भूत सवार था। हर तबकेमे शायरोकी आवभगत होती थी। इसी वातावरणमे हालीकी जवानीने अँगडाई ली, और सयोगसे उन्हे मुलाज़मत भी नवाब 'शेफ्ता' के यहाँ मिली। जो बहुत अच्छे शायर होनेके अतिरिक्त शेरोसुखनके बडे माहिर थे। उन्हीके सत्सगसे हालीकी भी इस ओर प्रवृत्ति हुई और परम्पराके अनुसार गज़ल कहने लगे, परन्तु तगज्जुलका रग पक्का नही चढा था। वे कब तक नकली आशिक और मसनूई शराबी ने रहते? रग असल और गहरा होता तो उम्रभर इस कूचेकी खाक छानते। कच्चा रग था, एक छीटेमे ही धुल गया।

गदरके बाद जो मुसलमानोकी स्थिति हुई, उससे हाली अधिक दिन तक आँखे बन्द किये न रह सके। मुगलबादशाही और अवधकी नवाबी जिस बेरहमीसे अग्रेज़ोने समाप्त की थी, उसका अक्स हालीके दिलपर मौजूद था। बेगमात—बावर्चिन, टहलनी और रखैल बन गई, शहज़ादे ठेला जोतने और भीख माँगने लगे। नवाबज़ादे जूतियाँ चटखाते घूमने लगे, और निराश्रित कलाकारोका जो हश्र हुआ, उसे महसूस करके हालीके हृदयमे हूक उठती थी, परन्तु परिस्थिति ऐसी थी कि कुछ कर नही सकते थे।

हालीकी मसे अभी भीग भी न पाई थी कि इतना बडा इन्कलाब आँखोके सामनेसे गुज़र गया। यह आश्चर्यकी बात है कि जो शायर इन बादशाहो-नवाबोसे वाबिस्ता थे, वे उनके मिट जानेपर और खस्ता-खराब हो जानेपर भी 'गमेजाना' के मर्सिये पढते रहे। घरमे धू-धू करके आग जलती रही, मासूम बच्चो और अबलाओका करुण क्रन्दन सुनते रहे, फिर भी [illegible]

किये पडे रहे। जब अबेका अबा ही ऐसा था, तब हाली ही क्या करते ? और क्या करना चाहिए और क्या नही, यह सोचनेका शऊर भी तब हालीको कहाँ था ? अत वह भी नकली आशिक बने उस उजडे दयारमे मसनूई आहे भरने लगे, परन्तु ये आहे उन्हे अधिक दिन नही भरनी पडी और गवर्नमेण्ट बुकडिपो लाहौरमे नियुक्ति हो जानेसे उन्हे जल्दी ही छुटकारा मिल गया।

लाहौर आकर हालीने उस बहरूपिये स्वागको उतार फेका और वे अपने वास्तविक रूपमे आ गये। वे शायरके बजाय चारण बन गये। और घर-घर अलख जगा दी। हर मस्जिद-ओ-खानकाहमे अजान देनी प्रारम्भ कर दी। उनका एक-एक पल मुसलमानोको जाग्रत करनेमे व्यतीत होने लगा।

हालीने गद्य और पद्य द्वारा मुसलमानोमे जीवनज्योति जलादी। सर सैयदकी सुहबतने और भी चार चाँद लगा दिये।

हमे अपनी प्रथम पुस्तक 'शेरो शायरी' मे हालीका उल्लेख एक नज्मगो शायरकी हैसियतसे करना था। तब उनका 'मुसद्दसे हाली' हमारे सामने था, और उनकी गज़लोका दीवान हमने देखा नही था। केवल 'मुसद्दसेहाली' देखकर यह अनुमान कर लिया था कि "हाली ऊँचे पायेके शायर नही थे। यदि वे केवल गज़ल लिखते रहते तो उनका स्थान कही भी न होता। मीर, गालिब, मोमिन, और ज़ौक तो कुजा उनके शिष्योंकी श्रेणीमे भी स्थान न मिलता, परन्तु नज्मगोईकी बदौलत उसी बज्मेअदबमे वे मसनदके सहारे बैठे हुए है।"

और यह हमारा अनुमान निराधार नही था। हालीके समकालीन दाग और अमीरका उन दिनो बोलबाला था, और हालीकी आवाज उनके आगे नक्कार खानेमे तूतीकी आवाज होकर रह गई थी। हालीकी यह गज़ल—

है जुस्तजू कि ख़ूबसे है ख़ूबतर कहाँ ?
अब ठहरती है देखिये जाकर नज़र कहाँ ?

या रब ! इस इख़्तलातका अंजाम हो बख़ैर ।
था उसको हमसे रब्त मगर इस कदर कहाँ ?

इक उम्र चाहिए कि गवारा हो नेशे इश्क ।
रक्खी है आज लज़्ज़ते ज़ख़्मे जिगर कहाँ ?

हम जिसपे मर रहे है, वोह है बात ही कुछ और ।
आलममें तुझसे लाख सही, तू मगर कहाँ ?

'दाग' के इस चुलबुले शेरके सामने फीकी पड़ गई—

मयख़ानेके करीब थी मस्जिद भलेको दाग़ ।
हर एक पूछता है कि "हज़रत इधर कहाँ ?"

और हालीका यह शेर —

उसके जाते ही हुई क्या मेरे घरकी सूरत ?
न वोह दीवारकी सूरत है न दरकी सूरत ॥

दागके इस शेरके आगे जनताको पसन्द न आया—

बज़्मेदुश्मनमें न खिलना गुलेतरकी सूरत ।
जाओ बिजलीकी तरह आओ नज़रकी सूरत ॥

परन्तु उनकी गज़लोका दीवान देखकर अब हमारी धारणा बदल गई है । यद्यपि हमारा आज भी यही विश्वास है कि हालीको शायरीसे कुदरती लगाव नही था, वे तत्कालीन शेरो-सुखनके आम चर्चोंसे प्रभावित होकर और शेफ्ता की सुहबत पाकर इस ओर प्रवृत्त हुए थे । फिर भी हम यह नि सकोच कहेंगे कि अगर वे नज़्मके बजाय गज़ल ही कहते रहते तो भी उनका मर्तबा दाग और अमीर से ऊँचा होता । आम जनताकी रुचिसे कलाकी परख नही की जा सकती । आम जनताकी राय का क्या मूल्य ?

वह गालिब और मोमिनके होते हुए ज़ौकको, मुसहफीके समक्ष इशा और जुरअतको तरजीह देती रही है। वर्तमानमे भी आम जनताकी नज़रो-मे फिल्मी गायकोके समक्ष वास्तविक कलाकारोका क्या मूल्य है?

मुसद्दसे हालीके बीसो सस्करण प्रकाशित हुए है और होते रहेगे, उसकी बदौलत उन्हे अमर ख्याति प्राप्त हुई। पर यह ख्याति हालीकी शायरीकी ख्याति नही, उनके मुस्लिम-हितैषी भावोकी ख्याति है। लोग उन्हे शायराना तख़ैयुलकी वजहसे नही, कौमीसेवककी हैसियतसे जानते है। हालीका कवित्व मुसद्दसमे नही, उनकी गज़लोमे बोलता है। यह दूसरी बात है कि उनका मुसद्दस आज भी हर मुस्लिम घरकी आल्मारीमें रखा हो, परन्तु मजनूं गोरखपुरीके शब्दोमे—"बमुश्किल दो-चार ऐसे निकलेगे जो उसे पढते भी हो।"[१]

मुसद्दसको पढकर मुसलमानोकी तत्कालीन स्थितिका तो दिग्दर्शन होता है, परतु उस कवित्व शक्तिका आभास नही मिलता, जो नज़्म कहने से पहले उनकी गज़लोमे प्रस्फुटित हुई थी। हालाँकि उन्होने बहुत थोडी गज़ले कही थी, परन्तु जो भी कही थी उनको शायराना अज़मतके लिए काफी थी।

हालीका गज़ल गोई छोडकर नज़्मगोई अख्तियार कर लेना बहुतसे उर्दू-साहित्यिकोको पसन्द नही आया, वे इसे उर्दू शायरीकी बहुत काफी हानि समझते है। उनके इस परिवर्तनको हिकारतसे देखते है और उन्हें 'क़ौमी भाट' या 'वाइज़े शायर' कहकर उनका मज़हका उडाते है, और सर सैयद अहमदकी सुहबतको तो हालीके पतनकी चरम सीमा समझते है।[२]

---

[१]—तनकीदी हाशिये, पृ० २३६

[२]—मजनूं गोरखपुरी लिखते है—'मुश्किलसे कोई इस खयालसे मुत्मानसत पैदा कर सकता है कि हाली 'कौमी भाट' या 'वाइज़े शायर' के

सर सैयदकी सुहबतसे हाली शायर नही रहे, वे वाइज़ और नासेह (व्याख्याता, उपदेशक) बन गये। उनके इस युगके कलाममे वोह शीरीनी और चमक कहाँ जो इससे पहलेके अशआरमे पाई जाती है। हाली स्वय फर्माते है—

बुलबुलकी चमनमें हमज़बानी छोड़ी।
बज़्मे शुअरामें शेरख्वानी छोड़ी॥
जबसे दिले ज़िन्दा तूने हमको छोडा।
हमने भी तेरी रामकहानी छोड़ी॥

यानी वे खुद तस्लीम करते है कि दिले ज़िन्दा न रहनेके सबब शेरख्वानी छोड दी, और दिलेज़िन्दा मौलवियतमे रहता नही। बकौल जोश मलीहाबादी—**"मौलवियत है मौतसे बदतर"**। दिल है तो जहान है[1]।

अलावा कुछ और भी थे। यह भी ज़मानेका कितना बडा ज़ुल्म है, कि हाली जैसा शायर सर सैयदका 'तावअमुहमिल' (मूक सेवक) या ज्यादा से ज्यादा ज़मीमा (पत्ती) होकर रह जाये और सज्जाद हुसेन मरहूमके तम्मखरेका निशाना बने—

सैयदकी सरगुज़िश्तको हालीसे पूछिये।
ग़ाज़ीमियाँका हाल डफालीसे पूछिये॥
—तनकीदी हाशिये, पृ० २३७

[1]—मौलाना अब्दुलकलाम आज़ाद 'गुबारे खातिर' मे एक जगह लिखते है—

"मैं आपको बतलाऊँ मेरी कामरानियोका राज़ क्या है? मै अपने दिलको मरने नही देता। कोई हालत हो, कोई जगह हो, उसकी तडप कभी धीमी नही पडेगी। मै जानता हूँ कि जहाँने ज़िन्दगी (ससारी जीवन) की

मुझे यह डर है दिलेज़िन्दा ! तू न मर जाए ।
कि ज़िन्दगानी इबारत है तेरे जीनेसे ॥

—अज्ञात

सारी रौनके इसी मयकदये खिलवत (मधुशाला) के दमसे है । यह उजडा तो सारी दुनिया उजड गई । . बहारके सारे साज़ोसामाने इशरत (सुख ऐश्वर्यके साधन) मुझसे छिन जॉये, लेकिन जब तक यह नही छिनता मेरे ऐशोतरबकी सरमस्तियॉ कान छीन सकता है ?" (पृ ९०)

"लोग हमेशा इस खोजमे लगे रहते है कि जिन्दगीको बडे-बडे कामोके लिए काममे लाएँ। लेकिन नही जानते कि यहाँ सबसे बडा काम खुद ज़िन्दगी है । यानी ज़िन्दगीको हँसी-खुशी काट देना । यहाँ इससे ज्यादा सहल-काम कोई नही हुआ कि मर जाएँ और इससे ज्यादा मुश्किल काम कोई नही हुआ कि ज़िन्दा रहिये । जिसने यह मुश्किल हल कर ली, उसने ज़िन्दगीका सबसे बडा काम अजाम दे दिया ।" (पृ० ९३)

"खुश रहना महज एक तबई अहतयाज (प्राकृतिक सुरक्षा) ही नही है बल्कि एक अखलाकी ज़िम्मेदारी है । हमारी हर हालतकी छूत दूसरोको भी लगती है । इसलिए हमारा अखलाकी फर्ज़ हुआ कि खुद अफसुर्दा खातिर होकर दूसरोको अफसुर्दा खातिर (मनहूस शक्ल) न बनाएँ । हमारी ज़िन्दगी एक आईनाखाना है । यहाँ हर चेहरेका अक्स बयक वक्त (एक साथ) सैकडो आइनोमे पडने लगता है । अगर एक चेहरेपर भी गुबार आ जायगा तो सैकडो चेहरे गुबार आलूदा हो जायेगे ।" (पृ० ९४)

"यह अजीब बात है कि मज़हब, फलसफा और इखलाक तीनोने ज़िन्दगीका मसला हल करना चाहा, और तीनोमे खुद जिन्दगीके खिलाफ रुझान पैदा हो गया । आमतौरपर समझा जाता है कि एक आदमी

क्या वजह थी कि हालीका दिल ज़िन्दा नही रहा और वे नग्मा सराई करते-करते ये नासिहाना बोल बोलने लगे—

सुख़नपर हमें अपने रोना पडेगा।
यह दफ़्तर किसी दिन डुबोना पडेगा॥
हुए तुम न सीधे जवानीमें 'हाली'।
मगर अब मिरी जान होना पडेगा॥

और क्यो वे सायए ज़ुल्फे बुतोंसे भाग खडे हुए ?

अब भागते हैं सायएज़ुल्फे बुतोंसे हम।
कुछ दिलसे हैं डरे हुए कुछ आस्मोंसे हम॥

और क्यो वे भरी जवानीमे बूढेहोकर विगत जवानीको निराशाभरी नजरोंसे झाँकनेको मजबूर हुए ?

गो जवानीमें थी कजराई बहुत।
पर जवानी हमको याद आई बहुत॥

इन सबका उत्तर यही है कि हाली १८५७ के बाद हुई मुसलमानोंकी शोचनीय स्थितिको नजरन्दाज़ नही कर सके। वोह उपलेकी आगकी तरह उनके हृदयमे बेमालूम सुलगती रही।

कर्नल हालेण्डके लाहौरी मुशायरोने उसे और भी कुरेद दिया।

जितना ज्यादा बुझा दिल और सूखा चेहरा लेकर फिरेगा, उतना ही ज्यादा मजहबी, फलसफी और इखलाकी किस्मका होगा। गोया इल्म और तकद्दस दानोंके लिए यहाँ मातमी ज़िन्दगी ज़रूरी हुई। मज़हब और रूहानियतकी दुनियामे ज़ुहदे खुश्क (नीरस धार्मिकता) और तबए खुनक (शीतल स्वभाव) की इतनी गरम बाज़ारी हुई कि अब ज़ुहद मजाज़ी और हक आगाही (धार्मिक और सत्यनिष्ठ) के साथ किसी हँसते हुए चेहरेका तसव्वुर ही नही किया जा सकता।" (पृ० ६५)

वहाँ गवर्नमेण्ट बुक डिपोमे रहकर यूरोपियन साहित्यके परिशीलनसे उनका अध्ययन बढा और दृष्टि व्यापक हो गई। वे तगज्जुलके सीमित क्षेत्रमे भाग निकले—

हाली ! अब आओ पैरवीए मगरबी करे।
बस इब्तदाए 'मुसद्दसी' ओ 'मीर' कर चुके॥

सर सैयद अहमदकी सुहबतने उस आगको और भी भडका दिया। स्वय तो तगज्जुलके सीमित और इश्किया बन्धनसे भागे ही दूसरोको भी बा-आवाज बुलन्द भाग निकालनेकी तरगीब देने लगे—

कुछ कर लो नौजवानो ! उठती जवानियाँ है।

हालीने गद्य और पद्य द्वारा मुस्लिम कौम और उर्दू-साहित्यकी चिर-स्मरणीय सेवा की है। वे शायरकी हैसियतसे नही, अपितु एक कौमी नेता और साहित्यस्रष्टाके नाते प्रसिद्ध है। उनकी अमूल्य रचनाएँ ७ गद्यमे और ७ पद्यमे है। जिनके कई-कई सस्करण हो चुके है—

हालीके महत्वपूर्ण ग्रथ

१—**तिरियाके मसमूम**—इमामुद्दीन ईसाईके एतराजोके जवाबमे १८६७ ई० से पूर्व लिखी गई।

२—**मजालिसउलनिसा**—१८६३ ई० मे लाहौरमे छपी। इस पुस्तक-पर कर्नल हालेण्डने दिल्लीके एक शिक्षा सम्बन्धी दरबारमे हालीको चारसौ रुपये पुरस्कार दिलाये। यह दो जिल्दोमे है। इसमे स्त्रियोकी भाषा और मुहावरे बरते गये है।

३—**मजामीने हाली**—धार्मिक, समालोचनात्मक और शिक्षा सम्बन्धी लेखोका सग्रह है।

४--हयाते सादी--१८७२ के करीब लिखी गई। इसमें फारसी-के प्रसिद्ध कवि 'शेख सादी' का जीवन चरित्र, कलाम आदिका विस्तृत वर्णन है।

५--मुकदमए शेरोशायरी--जिस तरह हालीने उर्दू नज्ममें मुसद्दस लिख कर हिन्दुस्तानके मुसलमानोंकी मजहबी और कौमी जिन्दगीमें एक महान परिवर्तन कर दिया, उसी तरह गद्यमें यह पुस्तक लिखकर उर्दू-शायरीमें एक हलचल पैदा कर दी।

६--यादगारे गालिब-- हालीने अपने उस्ताद मिर्जा गालिबके सम्बन्धमें अनेक महत्वपूर्ण बातें--उनकी जीवनी, संस्मरण, पत्र, कलाम आदि बड़े आकर्षक पूर्ण ढगसे बयान की है।

७--हयातेजावेद-- एक हजार पृष्ठकी इस पुस्तकमें सर सैयद अहमदके सम्बन्धमें विस्तृत वर्णन है।

८--मसनवियात-- १८७४ ई० में ये मसनवियाँ लाहौरके मुशायरोंमें पढी गई।

९--मनाजातेबेवा-- इसमें अत्यन्त व्यथा पूर्ण ढगमें विधवा स्त्रियोंकी शोचनीय स्थितिका नज्ममें वर्णन किया है।

१०--चुपकी दाद-- इसमें स्त्रियोंकी खूबियों और उनके कर्तव्योंका उल्लेख नज्ममें किया है।

११--शिकवए हिन्द-- इसमें इस्लामके भूतकालीन गौरव और वर्तमान पतनका नज्ममें दिग्दर्शन कराया गया है।

१२--मुसद्दसे हाली-- इसमें मुसलमानोंके भूतपूर्व वैभव और

वर्तमान स्थितिका अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढगसे नज्ममे उल्लेख किया है ।

१३--दीवाने हाली-- इसमे हालीकी गज़लो, रूबाइयो, कसीदो मर्सियो आदिका सग्रह है ।

१४--रूबाईयात-- इस पुस्तकका अग्रेज़ीमे भी अनुवाद छपा है ।

हालीके गजलोके दीवानमे उनकी ११६ गजले मिलती है । जिनमे १३०० के करीब शेर होगे । उनके पुराने और नये खयाल दोनोको मिलो-जुली गजले है । पैरविये मगरबी करनेसे पहले हाली तगज्जुलके रगमे फर्माते थे--

दिल न ताअतमे लगा जब तो लगाया ग़मे इश्क़ ।
किसी धन्देमे तो आखिर यह लगाया होता ।।

इश्क सुनते थे जिसे हम, वोह यही है शायद ।
खुदबखुद दिलमे है इक शख्स समाया जाता ।।

वही हाली फिर इस तरहके बोल बोलने लगे--

ऐ इश्क ! तूने अक्सर कौमोको खाके छोड़ा ।।

नज्मगोई अख्तयार करनेके बाद हालीने गजले लिखना एक तरहसे बन्द कर दिया था । किसीके बहुत आग्रह करनेपर लिखते भी थे तो, उसमे इश्किया रगके बजाय ईश्वरीय या नसीहत आमेज़ रग होता था। गजलका प्रत्येक शेर एक दूसरे शेरसे अर्थमे कोई वास्ता न रक्खे, इस पुराने रिवाज-को तोडकर उन्होने ऐसी गजले भी कही, जिनके शेर परस्पर सम्बन्धित थे । हम यहाँ उनके नये और पुराने ख्यालके दोनो किस्मोके मिले-जुले गगा-जमनी शेर दे रहे है । ताकि पाठक अपनी बुद्धि बलसे उन्हे चुन सके--

बशरसे कुछ हो सके न 'हाली' तो ऐसे जीनेसे फायदा क्या ?
हमेशा बेकार तुझको पाया, कभी न सरगर्मेकार[1] देखा ॥

ऐ इश्क ! तूने अक्सर कौमोंको खाके छोडा ।
जिस घरसे सर उठाया, उसको बिठाके छोडा ॥
अबरार[2] तुझसे तरसाँ अहरार[3] तुझसे लरजाँ ।
जो जद[4]पै तेरी आया उसको गिराके छोड़ा ॥
रावोंके[5] राज छीने, शाहोंके ताज छीने ।
गर्दनकशों[6]को अक्सर नीचा दिखाके छोडा ॥
क्या मुग़नियोंकी[7]दौलत, क्या जाहिदोंका तकवा[8] ।
जो गज[9] तूने ताका उसको लुटाके छोडा ॥
जिस रहगुज़रपै[10] बैठा तू गौलेराह[11] बनकर ।
सनआँ-से[12] रास्तरौंको[13] रस्ता भुलाके छोडा ॥

मयख़ानेकी ख़राबी, जी देखके भर आया ।
मुद्दतके बाद कल वाँ जा निकले थे कज़ारा[14] ॥

---

[1]व्यस्त, काममे लीन, [2]नेक लोग, [3]सभ्य मनुष्य,
[4]समक्ष, [5]राजाओंके,
[6]घमण्डियोंको, [7]पेशेवर सगीतज्ञोंकी,
[8]सयम, [9]खजाना, [10]मार्गपर,
[11]वोह जिन, जो जगलोमे मुसाफिरोंको भटका देते है,
[12]एक वयोवृद्ध सयमी फकीर जिसके सात सौ भक्त थे । इश्ककी चपेटमे आकर एक ईसाई लडकीपर आशिक हो गया, जिसके परिणाम स्वरूप उसे सूअर चराने-जैसा निकृष्ट कार्य करना पडा,
[13]सीधी राहपर चलनेवालेको, सयमीको, [14]सयोगसे ।

देख ऐ उम्मीद ! कीजो हमसे न तू किनारा ।
तेरा ही रह गया है ले-देके इक सहारा ।।
इक शरूसको तवक्को बलिशशकी बे अमल है ।
ऐ जाहिदो ! तुम्हारा है इसमे क्या इजारा ।।
दुनियाके खरख़सोसे चीख़ उठे थे हम अव्वल ।
आख़िरको रफ्ता-रफ़्ता सब हो गये गवारा ।।
फिरते इधर-उधर हो किसकी तलाशमे तुम ।
गुम है तुम्हीमे यारो बागेइरम तुम्हारा ।।

तुम किस चीजकी तलाशमे इधर-उधर भटक रहे हो ? तुम्हारी खोई हुई दौलत खुद तुम्हीमे मौजूद है । पानी तुम्हारे प्रयत्नसे, परिश्रममे वह तुम्हे फिर प्राप्त हो सकती है । बागेइरममे तात्पर्य यहाँ आत्माकी शान्तिमे है ।

यारब ! तलबेवस्ल हो या हो तरबे वस्ल
जिस दिनको यह दोनो न हो वह दिन न दिखाना ।।
अफसोस कि गफलतमे कटा अहदे जवानी ।
था आबे बका घरमे मगर हमने न जाना ।।
ली होशमे आनेकी जो साक़ीसे इजाज़त ।
फर्माया "ख़बरदार कि नाजुक है ज़माना" ।।

ईश्वर ! या तो मुझे तुझसे मिलनेकी अभिलाषा (तलबे वस्ल) रहे या मिलनेके आनन्द (तरबे वस्ल) मे रहूँ । इसके अतिरिक्त मुझे अन्य अवस्था न देखनी पडे ।

अफसोस कि जवानीका जमाना गफलतमे गुजर गया । आबेबका जिसके पीनेसे इन्सान हमेशा जिन्दा रहता है (यहाँ तात्पर्य शुभ परिणाम और चरित्रसे है) खुद हमारे पास मौजूद था । लेकिन हमने उसको इस्तेमाल नही किया ।

मुरशिदे कामिल (साकी) की हिदायत है कि शराबे मारफत (आत्म-ध्यान) के नशेमे चूर रहो। वह होशमे आनेकी इजाजत इसलिए नही देता कि होशमे आनेपर मद्यपके मुँहसे ऐसे शब्द निकलेगे, जिनसे दुनिया उसकी विरोधी हो जायगी।

जहाँमे 'हाली' किसीपै अपने सिवा भरोसा न कीजियेगा।
यह भेद है अपनी जिन्दगीका बस इसकी चर्चा न कीजियेगा॥
इसीमें है खैर हजरतेदिल! कि यार भूला हुआ है हमको।
करे वोह याद इसकी भूलकर भी कभी तमन्ना न कीजियेगा॥
कहे अगर कोई तुमसे वाइज! कि कहते कुछ और करते हो कुछ।
जमानेकी खू है नुक्ताचीनी, कुछ इसकी परवा न कीजियेगा॥

ऐ इश्क! दिलको रक्खा, दुनियाका और न दीका।
घर ही बिगाड डाला तूने बना-बनाया॥

एक आलमसे वफाकी तूने ऐ 'हाली' मगर।
नफ्सपर अपने सदा जालिम जफा करता रहा॥

नसीहत बेअसर है, गर न हो दर्द।
यह गुर नासहको बतलाना पडेगा॥
बहुत याँ ठोकरे खाई है हमने।
बस अब दुनियाको ठुकराना पडेगा॥
बशर पहलूमें दिल रखता है जबतक।
उसे दुनियाका गम खाना पड़ेगा॥

शबको जाहिदसे न मुठभेड़ हुई खूब हुआ।
नशः जोरोंपै था शायद न छुपाया जाता॥
लोग क्यों शेखको कहते है कि ऐय्यार है वोह।
उसकी सूरतसे तो ऐसा नही पाया जाता॥

दिल न ताअ्रतमे लगा, जब तो लगाया रामे इश्क़ ।
किसी धन्धेमें तो आख़िर यह लगाया होता ।।*

इश्क सुनते थे जिसे हम वोह यहो है शायद ।
खुदबखुद दिलमे है इक शख़्स समाया जाता ।।
अब तो तकफीरसे[1] वाइज़ नही हटता 'हाली' ।
कहते पहलेसे तो दे-लेके हटाया जाता ।।

मिलते ही उनके भूल गई कुलफतें तमाम ।
गोया हमारे सरपै कभी आस्माँ न था ।।
कुछ मेरी बेख़ुदीसे तुम्हारा ज़ियाँ नही ।
तुम जानना कि बज़्ममें एक ख़स्ता जाँ न था ।।
था कुछ न कुछ कि फाँस-सी इक दिलमें चुभ गई ।
माना कि उसके हाथमें तीरो सनाँ न था ।।†
जानी न क़दरेरहमते हक पारसाने कुछ ।
ठहरा क़ुसूरवार, अगर बेक़ुसूर था ।।‡

---

* अपना नहीं ये शेवा कि आरामसे बैठें ।
उस दरपै नहीं बार तो काबे ही को हो आये ।।

—ग़ालिब

[1]कुफ्रका फतवा देनेकी आदतसे, जाति वहिष्कृत करनेकी मनोवृत्तिसे ।

†तुफ़गो तीर तो ज़ाहिर न था कुछ पास क़ातिलके ।
इलाही फिर जो दिलपै ताकके मारा तो क्या मारा ।।

—ज़ौक़

‡मौक़ूफ जुर्म ही पै करमका ज़हूर था ।
बन्दा अगर क़ुसूर न करता क़ुसूर था ।।

कलक और दिलमे सिवा हो गया।
दिलासा तुम्हारा बला हो गया॥
नही भूलता उसको रुखसतका वक़्त।
वोह रह-रहके मिलना बला हो गया॥

जो करेगे, भरेगे खुद वाइज़!
तुमको मेरी खतासे क्या मतलब?
जिनके माबूद हूरो गिलमाँ है[1]।
उनको ज़ाहिद! खुदासे क्या मतलब॥

मुझमे वोह ताबेज़ब्ते शिकायत कहाँ है अब।
छेडो न तुम कि मेरे भी मुँहमे ज़बाँ है अब॥
आने लगा जब उसकी तमन्नामें कुछ मज़ा।
कहते है लोग जानका इसमें ज़ियाँ है अब॥

छेडकर वाइज़को 'हाली' खुल्दसे—
बिस्तरा क्यो अपना फिकवाते है आप॥
आ रही है चाहे यूसुफसे सदा।
"दोस्त याँ थोड़े है और भाई बहुत"॥

यूसुफका उनके भाइयोने ईर्ष्यावश कुएं (चाह) मे डाल दिया था। शायरका इस शेरसे तात्पर्य यही है कि जो मुसीबतमे फँसादे, ऐसे भाई तो बहुत, परन्तु मुसीबतोसे छुटकारा दिलानेवाले दोस्त बिरले ही होते है।

कर दिया चुप वाक़यातेदहरने[2]।
थी कभी हममें भी गोयाई[3] बहुत॥

---

[1]स्वर्गके सुखो और अप्सराओकी अभिलाषाके लिए उपासना करना, ईश्वरभक्ति नही, दुकानदारी है।

[2]संसारकी स्थिति बोलने, [3]बोलनेकी शक्ति।

उनके जाते ही यह क्या हो गई घरकी सूरत ।
न वोह दीवारकी सूरत है न घरकी सूरत ।।
किससे पैमाने वफा बाँध रही है बुलबुल !
कल न पहचान सकेगी गुलेतरकी सूरत ।।

ऐ बुलबुल ! तू क्या समझकर फलसे वफादारीके वायदे ले रही है ? इसका सौन्दर्य तो क्षणभगुर है । कलतक यह इतना कुम्हला जायगा कि तू पहचान भी न सकेगी ।

देखिये शेख़ ! मुसव्वरसे खिचे या न खिचे ।
सूरत और आपसे बेऐब बशरकी सूरत ।।
वाइजो ! आतिशे दोज़खसे जहाँको तुमने ।
वह डराया है कि खुद बन गये डरकी सूरत ।।
अपनी जेबोसे रहे सारे नमाज़ी हशयार ।
इक बुजुर्ग आते है मस्जिदमे खिज़िरकी सूरत ।।

मस्जिदमे एक बुजुर्ग निहायत दीनदारीकी वज़्अ-कतअ बनाये चले आ रहे है । तमाम नमाजियोको चाहिए कि वे अपनी जेबोकी हिफाज़त करे । क्योकि वे किसी न किसी सूरतसे उनकी जेबोसे रुपया उडानेकी कोशिश करेगे । मुमकिन है जेब काट ले । या चन्दा ही मागने लगे ।

उनको 'हाली' भी बुलाते थे घर अपने महमाँ ।
देखना आपकी और आपके घरकी सूरत ।।

आन निकले थे कभी मस्जिदमे हम ।
तूने जाहिद ! हमको शरमाया बहुत ।।

बज्मेमय अच्छी है, जो दुनिया है ऐ मयख्वार ! हेच ।
यों समझ लेते तो है दुनियाको दमभर यार ! हेच ।।

काटिये दिन जिन्दगीके उन यगानोकी तरह ।
जो सदा रहते है चौकस पासबानोकी तरह ॥
मजिले दुनियामे है पादररकाब[1] आठो पहर ।
रहते है महमाँ सरामे[2] मेहमानोकी तरह ॥
शादमानीमे गुजरते अपने आपेसे नही ।
गममे रहते है शगुफ्ता शादमानोकी तरह ॥

मयेमुगाका है चस्का अगरे बुरा ऐ शेख !
तू ऐसी ही कोई चाट और दे लगा ऐ शेख ॥
रियाको सिद्कसे[3] ह जामेमय बदल देता ।
तुम्हे भी है कोई याद ऐसी कीमिया ऐ शेख !

दरगुजर गर नही करता वोह गुनहगारोसे ।
तो तेरा और कोई होगा खुदा ऐ जाहिद !

एक रजिशमे भुला देते है सब ।
हो किसीके हमपै लाख अहसाँ अगर ॥
ऐब कुछ गिनते नही इस ऐबको ।
जिससे हो अपने सिवा सब बेखबर ॥

घर है वहशतखेज और बस्ती उजाड ।
हो गई इक-इक घडी तुझ बिन पहाड ॥
ईद और नौरोज है सब दिलके साथ ।
दिल नही हाजिर तो दुनिया है उजाड ॥
तुमने 'हाली' खोलकर नाहक जबाँ ।
कर लिया सारी खुदाईसे बिगाड ॥

---

[1]घोडेकी रकाबमे पाँव डाले हुए, [2]ससार रूपी सराय मे
[3]फरेब मक्कारीको, [4]सच्चाईसे, साफदिलीसे, [5]अक्सीर ।

यॉ दे चुकी जवाब उमीदे जवाबे ख़त ।
वॉ नामाबरने बार भी पाया नही हनूज़ ।।

इश्क भी ताकमे बैठा है नज़रबाज़ोकी ।
देखना शेरसे आँखे न लडाना हरगिज़ ।।
ज़ालकी[1] पहली ही रुस्तमको नसीहत ये थी--
"जदमें तीरेसफेंमिज़गॉकी[2] न जाना हरगिज़" ।।

हाथ मलने न हो 'पीरीमे अगर हसरतसे ।
तो जवानीमे न यह रोग लगाना हरगिज़ ।।
जितने रस्ते थे तेरे हो गये वीरॉ ऐ इश्क !
आके वीरानोमे अब घर न बसाना हरगिज़ ।।
हमको गर तूने रुलाया तो रुलाया ऐ चर्ख !
हम पै गैरो को तो ज़ालिम न हँसाना हरगिज़ ।।

इक पतेकी जो हमने कह दी आज ।
रग वाइज़का कर गया परवाज़[3] ।।

यह गम नही है वोह जिसे कोई हटा सके ।
गमख्वारी अपनी रहने दे ऐ गमगुसार ! बस ।।
दें गैर दुश्मनीका हमारी ख़याल छोड ।
यॉ दुश्मनीके वास्ते काफी है यार बस ।।

काफिले गुज़रे वहॉ क्योकि, सलामत वाइज़ !
हो जहॉ राहज़न और राहनुमा एक ही शख्स ।।

ऐ वाइज़ ! जहा रहनुमा (पथ-प्रदर्शक, नेता) ही रहज़न

---

[1] रुस्तमके पिताकी,
[2] नयन बाणोके समक्ष,
[3] उड गया ।

(डाकू) बनकर काफिलेको लूट लेते हो, वहासे काफिलो (यात्रीदल) का सही सलामत गुजरना नामुमकिन है।

हाजियो ! है हमको घरवालेसे काम।
घरके महराबो सुतूँसे क्या गरज ॥

ऐ हाजियो ! तुम शौकसे काबेके महराब और खम्बो (सतू) को मजदा करते रहो। हमे तो इस घरके मालिक खुदाकी तलाश है।

यादमे तेरी सबको भूल गये।
खो दिये एक दुखने सब अमराज ॥

गुञ्चा चटका और आ पहुँचो लिज़ाँ।
फस्ले गुलकी थी फकत इतनी बिसात ॥

छुपे है हरीफोमे[1] अहरार[2] वाइज़ !
बुरा कह न रिन्दोको ज़िनहार वाइज़ !

कोई बात देखी नही तुझमे लेकिन।
सुना है कि होते है ऐय्यार वाइज़ ॥
हमे और भी तुमसे करते है बदज़न।
यह जुब्बह,[3] यह रीश[4] और यह दस्तार[5] वाइज़ !

आ लगा 'हाली' किनारेपर जहाज़।
अलविदा ऐ ज़िन्दगानी ! अलविदा !!

कल कबकसे[6] चमनमे यह कहता था एक ज़ाग़[7]।
"देख इस खिरामेनाज़पै[8] इतना न कर दमाग ॥

---

[1]शत्रुओमे, [2]भद्रपुरुष, हरगिज,
[3]पोशाक लिबास, [4]सफेद दाढी, [5]पगडी,
[6]चकोरसे, [7]कागा, [8]अठखेलियोपै, चालपै।

है ताकमे उक़ाब[1] तो शहबाज़[2] घातमे ।
हमलेसे यों अजलके[3] नही एक दम फराग" ।।

इक सम्भलते हम नज़र आते नही ।
वर्ना गिर-गिरकर गये लाखो सम्भल ।।
कबतक आख़िर ठहर सकता है वह घर ।
आ गया बुनियादमे जिसकी ख़लल ।।

हम न थे आगाह[4] वाइज़ ! जुस्तजूईसे तेरी ।
आदमी तुझको समझकर पास आ बैठे थे हम ।।

गो भलाई करके हमजिन्सोसे[5] ख़ुश होता है जी ।
तहनशीं[6] इसमे मगर दुर्देरिया पाते है हम ।।

दर्देफिराक रश्केउदू तक गराँ नही ।
तग आ गये है अपने दिले शादमाँसे हम ।।

फज़्लो हुनर बडोके गर तुममें हो तो जाने ।
गर यह नही तो बाबा, वोह सब कहानियाँ है ।।

जबसे सुनी है तेरी हकीकत चैन नही इक आन हमे ।
अब न सुनेगे जिक्र किसीका आगेको हो गये कान हमे ।।

है अगर बेदर्दियाँ अपनोकी दिलको नागवार ।
नागवार उनसे सिवा गैरोकी है गमख्वारियाँ ।।

---

[1]गिद्ध, [2]बड़ा बाज, मौतके,
[4]चैन, फुरसत, [5]परिचित, भिज्ञ,
[6]बदमाशीसे, असभ्य व्यवहारसे, [7]अपने जैसोके साथ, मनुष्योमे,

जीस्त[1] बेअक़्लोंको हो जाये बसर करनी मुहाल।
इतनी भी ऐ आकिलो ! अच्छी नहीं हुशयारियाँ ॥

कमसे-कम वाज़में इतना तो असर हो वाइज़ !
बोल क़व्वालके जो दिलमें असर करते हैं ॥
ज़ुहदो ताअ़तका[2] सहारा नहीं जबसे ज़ाहिद !
याद अल्लाहको हम आठ पहर करते हैं ॥
ऐब ये है कि करो ऐब, हुनर दिखलाओ।
वर्ना याँ ऐब तो सब फ़र्दोबशर करते हैं ॥
इक यहाँ जीनेसे बेज़ार हमी हैं या रब !
या इसी तरहसे सब उम्र बसर करते हैं ?

देखना हर तरफ न मजलिसमें।
रखने निकलेंगे[3] सैकड़ों इसमें ॥
की नसीहत बुरी तरह नासह !
और इक बिस[4] मिला दिया बिसमें ॥
हो न बीना[5] तो फ़र्क़ फिर क्या है ?
चश्मे इन्साँ-औ-चश्मे नरगिसमें[6] ॥
जिससे नफ़रत है अहले नअ़मतको[7]।
वही नअ़मत[8] है चश्मे मुफ़लिसमें ॥
हो फ़रिश्ता भी तो, नहीं इन्साँ।
दर्द थोड़ा-बहुत न हो जिसमें ॥

---

[1]ज़िन्दगी, [2]नेकचलनी और उपासनाका, [3]आलोचनाएँ होंगी;
[4]ज़हर, [5]दृष्टि,
[6]नरगिसके फूलमें आँख होती है, परन्तु दृष्टि नहीं होती;
[7]सम्पन्न मनुष्योंको, [8]वैभव स्वरूप।

जानवर आदमी, फरिश्ता, ख़ुदा ।
आदमीकी है सैकडो किस्मे ।।

आदमीकी बेशुमार किस्मे है । मसलन वोह आदमी जो सिर्फ खाना पीना, सोना ही जानता है, जानवर है । जिसे अपने फराइज़ (कर्तव्यो) का अहसास (ध्यान) है, आदमी है । जो गुनाहोसे पाक और साफ हो चुका है, फरिश्ता (देवता) है, और जो रूहानियत (आत्मलीनता) के आखिरी दर्जेतक पहुँचकर ख़ुदामे मिल गया है, ख़ुदा है ।

बुलहविस[1] इश्ककी लज्ज़तसे ख़बरदार नही ।
है मयेनाबके[2] दल्लाल, कदहख़्वार[3] नही ।।
शहरमे उनके नही, जिन्से वफाकी बिकरी ।
भाव है पूछते फिरते यह, ख़रीदार नही ।।
कौन-से वोह गुले रअनापै[4] नवासज नहीं ।
कौन-सी नरगिसे शहलाके वोह बीमार नही ।।
कभी लैलापै है मफ़्तूं[5] कभी शीरीपै फिदा ।
और जो फिर देखो तो दोनोसे सरोकार नही ।।
ऐशमें जान फिदा करनेको तैयार है वोह ।
और जो हो कीलका खटका भी तो फिर यार नही ।।
नित नया ज़ायका चखनेका है लपका उनको ।
दर-बदर झाँकते फिरनेसे उन्हे आर नही ।।
दावये इश्कोमुहब्बतपै न जाना उनके ।
उनमे गुफ्तार ही गुफ़्तार है करदार नही ।।

---

[1] लम्पट, विषयासक्त,
[2] शराबके,
[3] मद्यप (आत्मलीन),
[4] सुन्दर फूल पै,
[5] मधुर भाषी,
[6] मिटे हुए ।

वोह क़ौम जो जहाँमे कल सदरेअंजुमन[1] थी।
तुमने सुना भी ? उसपर क्या गुज़री अंजुमनमें ?

है जुस्तजू कि ख़ूबसे है ख़ूबतर कहाँ।
अब ठहरती है देखिये जाकर नज़र कहाँ ॥

होती नही कुबूल दुआ तर्के इश्ककी।
दिल चाहता न हो तो जबाँमे असर कहाँ ?

पिया हमने न जामे बेकुदूरत बज्मेदौराँमें।
ख़िज़ाँको ले गये हमराह, गर पहुँचे गुलिस्ताँमें ॥
जबाँ तकरीरसे कासिर, कलम तहरीरसे आजिज़
न पूछो हमसे क्या देखा है, हमने बज्मेरिन्दाँमें ॥

अब वोह अगला-सा इल्तफात नही।
जिसपै भूले थे हम वोह बात नही ॥
रज क्या-क्या है एक जानके साथ।
ज़िन्दगी मौत है हयात नही ॥
यूँ ही गुज़रे तो सहल है लेकिन।
फुर्सतेग़मको भी सबात नहीं ॥

हक़ हुआ किससे अदा उसकी वफादारीका।
जिसके नज़दीक जफा बाइसे आज़ार नहीं ॥
कुछ पता मंज़िले मक़सूदका पाया हमने।
जब यह जाना कि हमें ताक़ते गुफ्तार नही ॥

कहता है "ख़ैर हम भी सही दुश्मन आपके"।
शिकवेको ले गया है वह बेदादफन कहाँ !

---

[1]महफिलकी सचालक।

मेरे दिलमें हो, गो मुझसे निहाँ हो।
मुझे भी ढूँड लेना तुम जहाँ हो॥
तकाज़ाए मुहब्बत है वगर्ना।
मुझे और झूठका तुमपर गुमाँ हो॥
एक ही दोस्त और उससे हमें छुडवाते हो।
नासहो अब तुम्हें दुश्मन कहें या दोस्त बताओ?

बढ़ाओ न आपसमें मिल्लत ज़ियादा।
मुबादा कि हो जाय नफरत ज़ियादा॥
तकल्लुफ अलामत है बेगानगीकी।
न डालो तकल्लुफकी आदत ज़ियादा॥
करो दोस्तो पहले आप अपनी इज्ज़त।
जो चाहो करें लोग इज्ज़त ज़ियादा॥
निकालो न रखने नसबमें किसीके।
नही कोई इससे रज़ालत ज़ियादा॥
करो इल्मसे इक्तसाबे शराफत।
नजाबतसे है ये शराफत ज़ियादा॥
फ़रागतसे दुनियामें दम भर न बैठो।
अगर चाहते हो फराग़त ज़ियादा॥
जहाँ राम होता है मीठी ज़बाँसे।
नहीं लगती कुछ इसमें दौलत ज़ियादा॥
मुसीबतका इक-इकसे अहवाल कहना।
मुसीबतसे है ये मुसीबत ज़ियादा॥
फिर औरोंकी तकते फिरोगे सख़ावत।
बढ़ाओ न हदसे सख़ावत ज़ियादा॥
कही दोस्त तुमसे न हो जाएँ बदज़न।
जताओ न अपनी मुहब्बत ज़ियादा॥

जो चाहो फ़कीरीमें इज्ज़तसे रहना।
न रक्खो अमीरोंसे मिल्लत ज़ियादा ॥
है उल्फत भी वहशत भी दुनियासे लाज़िम।
पै उल्फत ज़ियादा न वहशत ज़ियादा ॥
फरिश्तेसे बहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें पड़ती है महनत ज़ियादा ॥

कबक[1]-ओ-क़ुमरीमें[2] है झगड़ा कि चमन किसका है।
कल बता देगी ख़िज़ाँ यह कि चमन किसका है ॥
वाइज़! इक ऐबसे तू पाक है (?) या जाते ख़ुदा।
वर्ना बे ऐब ज़मानेमें चलन किसका है?

रहेंगे न मल्लाह ये दिन सदा।
कोई दिनमें गगा उतर जायगी ॥

हमारे ज़र्फ ही इनआमके काबिल नहीं वर्ना,
लुढ़ाये ख़ुमपै ख़ुम गैरोपै क्यों, मुमसिक[3] हो गर साक़ी ॥

दोस्तगर भाई न हो, दोस्त है तो भी, लेकिन।
भाई गर दोस्त नहीं, तो नहीं कुछ भाई भी ॥

जो कहिये तो झूठी जो सुनिये तो सच्ची।
ख़ुशामद भी हमने अजब चीज़ पाई ॥
हुई आके पीरीमें क़द्रे जवानी।
समझ हमको आई यह ना वक़्त आई ॥

इतनी ही दुश्वार अपने ऐबकी पहचान है।
जिस क़दर करनी मलामत औरको आसान है ॥

---

[1]चकोर; [2]एक पक्षी,
[3]कजूस।

चिउटियोमें इत्तहाद और मक्खियोंमें इत्तफाक ।
आदमीका आदमी दुश्मन ख़ुदाकी शान है ॥

तुममें वह सोज़ है, तुममें है वोह ईमाँ बाक़ी ?
रहगया क्या है अब ऐ गबरु-मुसलमाँ बाकी ?
बज़्मे दावतमे रसाई हुई अपनी उस वक़्त ।
मेज़बाँ जब न रहा कोई न महमाँ बाकी ॥

ऐबजोईसे नही, ख़ल्ककी दमभर फारिग ।
जिनको कुछ काम नही याँ, उन्हें फुरसत कैसी ॥

है लिबासे जिस्म तक मुझपे गराँ ।
दूर जा पहुँची है उरियानी मेरी ॥

परदे बहुतसे वस्लमें भी दरमियाँ रहे ।
शिकवे वो सब सुना किये और मेहबाँ रहे ॥
दैरो हरमको तेरे फसानोसे भर दिया ।
अपने रकीब आप रहे हम जहाँ रहे ॥
यारानें तेज़गामने मज़िलको जा लिया ।
हम महवे नालये जरसेकारवाँ रहे ॥
या खीच लाये दैरसे रिन्दोको अहले वाज़ ।
या आप भी मुलाज़िमे पीरे मुग़ाँ रहे ॥
दरियाको अपनी मौजकी तुगयानियोसे काम ।
कश्ती किसीकी पार हो या दरमियाँ रहे ॥

है कुछ इक बाकी ख़लिश उम्मीदकी ।
यह भी मिट जाये तो फिर क्या चाहिए ॥
दोस्तोकी भी न हो परवा जिसे ।
बेनियाज़ी उसकी देखा चाहिए ॥

शोख़ है उसकी निगह जादू भरी।
सुहबते रिन्दोंसे बचना चाहिए॥

दमेगिरिया किसका तसव्वुर है दिलमें।
कि अश्क-अश्क दरिया हुआ चाहता है॥
ख़त आने लगे शिकवा आमेज़ उनके।
मिलाप उनसे गोया हुआ चाहता है॥

वफा शर्त उल्फत है लेकिन कहाँतक।
दिल अपना भी तुझ-सा हुआ चाहता है॥
बहुत चैनसे दिन गुज़रते है 'हाली'।
कोई फित्ना बरपा हुआ चाहता है॥

बनावटसे नही ख़ाली कोई बात।
मगर हर बातमें इक सादापन है॥

धूम थी अपनी पारसाईकी।
की भी और किससे आशनाई की॥
क्यो बढाते हो इख़्तलात बहुत।
हमको ताकत नही जुदाईकी॥
मुँह कहाँतक छुपाओगे हमसे?
तुमको आदत है ख़ुदनुमाईकी॥
न मिला कोई गारतेईमाँ।
रह गई शर्म पारसाईकी॥

मौतकी तरह जिससे डरते थे।
साअ़त आ पहुँची उस जुदाईकी॥
ज़िन्दा फिरनेकी है हविस 'हाली'।
इन्तहा है ये बेहयाईकी॥

था न जुज़ग़म[1] बिसातेआशिकम[2]।
ग़मको राहतफिज़ा[3] किया तूने॥

कर दिया ख़ूगरे[4] जफा तूने।
ख़ूब डाली थी इब्तदा तूने॥

शेख़! जब दिल ही दैरमें न लगा।
आके मस्जिदमें क्या लिया तूने?
दूर हो ऐ दिले मआलअन्देश[5]।
खो दिया उम्रका मज़ा तूने॥

---

[1]व्यथाके अतिरिक्त,
[2]प्रेमीके भाग्यमे,
[3]आनन्दमय,
[4]अत्याचारका अभ्यस्त,
[5]परिणाममे डरनेवाला।

१०१

मजरूह

(स्वर्गीय १९०२)

मीर महदी 'मजरूह' मीरहुसेन फिगारके पुत्र और दिल्लीके रहने-वाले थे। गालिबके प्रिय और योग्य शिष्य थे। गदरके हगामोमें यह दिल्ली छोडकर पानीपत चले गये थे। उपद्रव शान्त होनेपर पुन दिल्ली वापिस आ गये। फिर आजीविकाकी खोजमे अलवर गये तो वहाँके राजा शिवध्यानसिंहने इनकी अच्छी कद्र की। अन्तिम दिनोमे नवाब साहबकी कद्रदानी और मेहरबानियोसे आकर्षित होकर रामपुर जा बसे थे। 'मजहरे मानी' नामक दीवान वहीसे प्रकाशित कराया।

'मजरूह' की भाषा सरल और मधुर है। छोटी बहरोमे सारगर्भित शेर कहते थे। इनकी शायरी भावोकी मौलिकता या नवीनताकी दृष्टिसे हीन होते हुए भी छन्द शास्त्रके दोषोसे मुक्त है। इनको लिखे हुए मिर्ज़ा गालिबके अक्सर दिलचस्प पत्र 'उर्दूएमुअल्ला' मे छपे है। मौ० हाली भी इनका बहुत आदर करते थे।

१०२

ज़की

[१८३९–१९०३ ई०]

नवाब सैयद मुहम्मद जकरिया खाँ 'जकी' के पिता सैयद मुहम्मद खाँ और नाना भी शायर थे। ये दिल्लीके प्रतिष्ठित वशमे उत्पन्न हुए थे। इनको फारसी और अरबी पर पूर्ण अधिकार था। चिकित्सा, ज्योतिष और सगीत आदिमे भी निपुण थे।

मिर्जा गालिबको अपना कलाम दिखाते थे। मिर्जा इनका बडा खयाल रखते थे, और बहुत मुहब्बतसे पेश आते थे। मुशायरोमे अक्सर शरीक होते थे, और जहाँ भी जाते थे, शेरोसुखनकी महफिल गरमा देते थे। कवितामे गालिबके रगका अनुसरण करते थे। आजीविकाकी तलाशमे इन्हे भी मेरठ, इलाहाबाद, गोरखपुर, बदायूँ आदि जाना पडा। अन्तमे बदायूँमे डिप्टी इन्सपेक्टर स्कूलकी हैसियतसे पेन्शन पाई और वही १९०३ मे अतकाल हुआ। दीवान अपने जीवनमे ही छप गया था। तर्जे-कदीमके उस्ताद माने जाते थे। बहुतसे शागिद थे।

किसने हयासे नीची नजर की कि हो गया––
आसाँ न देखना मुझे दुशवार देखना॥

बढ़ा जौके असीरी, जब उन्होंने,
कहा––"कह दो कि यह कैदी रिहा है"॥

सौ हसरतोसे पूछना मेरा कि 'जाओगे?'
उनका वोह एक नाजसे कहना कि 'हाँ चले'॥

––इन्तकादियात, भा० २, पृ० १४६

१०३

रख़्शां

[१८८३ ई०]

नवाब जियाउद्दीन 'रख्शा' व 'नैयर' नवाब अहमदबख्शखाँ लुहाराके छोटे बेटे थे। ये गालिबके शिष्य और रिश्तेदार भी थे। मिर्जा इन्हे अपना खलीफा (उत्तराधिकारी) कहा करते थे।

रख्शाँ अपने जमानेके प्रतिष्ठित विद्वानो और कवियोमे गिने जाते थे। शेरोसुखनके बडे माहिर और पारखी थे। इतिहासकी ओर भी उनकी बहुत रुचि थी। इनके पुत्र 'साकिब' भी गालिबके शिष्य थे, परन्तु वे १८६९ मे २९ वर्षकी आयुमे ही मर गये। दूसरे पुत्र 'तालिब' अपने बडे भाईके मरनेके बाद 'मजरूह' 'सालिक' और 'हाली' से मशवरए सुखन करते थे।

साकिबके बडे पुत्र 'तावाँ' और छोटे पुत्र 'साइल' दागके नामवर शिष्य हुए है। उनका उल्लेख वर्तमानयुगके गजलगो शायरोमे 'शेरो सुखन'के द्वितीय भागमे किया जायगा, क्योकि दागके शिष्य सभी बीसवी सदीमे हुए है।

इनके अतिरिक्त अलवी, अजीज, मश्शाक, जौहर और हरगोपाल तफ्ता भी गालिबके योग्य शिष्योमे थे। स्थानाभावके कारण सभीका उल्लेख करनेमे असमर्थ है।

३ नवम्बर १९५०

बादशाह और नवाब शायर

उर्दू-शायरीके प्रबल पोषक और शायरोके आश्रयदाता बादशाह और नवाब सुखनफहम तो थे ही, उनमे कितने ही शायरी भी करते थे। इन बादशाहो, नवाबोने उर्दूके प्रसार और शायरोको आदर-सत्कार देकर उत्साह बढानेमे अनुकरणीय कार्य किये है। इस युगमे अब कहाँ है ऐसे पारखी जो गुणियोकी कद्र करे।

१८५७के विप्लवके कारण दिल्लीकी बादशाहत और लखनऊकी नवाबी समाप्त हो जानेसे आश्रित शायर निराश्रय होकर भरण-पोषणकी चिन्तामे अन्य रियासतोमे भटकते हुए पहुँचने लगे। जिन रियासतोसे उर्दू-शायरीको फरोग और शायरोको आश्रय मिलता रहा है, सक्षेपमे उनका भी परिचय दिया जाता है।

दिल्ली दरबार

दिल्लीके बादशाह मुस्लिम सस्कृतिके प्रबल समर्थक और प्रसारक हुए है। इन्होने फारसी, उर्दूके शायरोकी भी बडी कद्र की, और ईमानकी बात तो ये है कि इन्हीके प्रोत्साहनका बल पाकर जनतामे शायरीकी रुचि बढी और दिन-दूने रात-चौगुने शायर और कलाकार बढने लगे। इन बादशाहोमे शाहआलम द्वितीय, अकबरशाह द्वितीय, मिर्ज़ा सुलेमानशिकोह (शाह आलमके तीसरे पुत्र) शायरी भी करते थे। बादशाहोमे अच्छा कहनेवाले अन्तिम सम्राट बहादुरशाह 'ज़फर' हुए है। जिनका परिचय ज़ौकके शिष्योमे पृ० ६१९-३१ पर मिलेगा। अन्य बादशाहोका कलाम मामूली होनेसे देना व्यर्थ समझते है।

लखनऊ दरबार

लखनऊके नवाबोने जिस तन्मयतासे उर्दू-शायरीका लालन-पालन किया और शायरोका आदर-सत्कार किया, उसकी झाँकी प्रस्तुत पुस्तकमे यत्र-तत्र मिलेगी। लखनवी नवाबो और बेगमात शायरोका उल्लेख भी पृ० ३६०-८१ मे दिया गया है। अत यहाँ पुन देनेकी आवश्यकता नही। लखनऊके अन्तिम नवाब बन्दी बनाकर जब कलकत्तेके मटियाबुर्जमे रक्खे गये तो कुछ शायर तो उनके साथ गये ही थे। कुछ शुहरत पाकर बादमे पहुँच गये, और वहाँ लखनऊकी तरह शेरोसुखनकी सुहबते गरम रहने लगी।

"हजारों बन गये काबे जबीं हमने जहाँ रख दी।"

अकबरके दरबारमे नवरत्न थे, तो इनके पास भी मटियाबुर्जमे सप्त-ऋषि नक्षत्र रहते थे। उनको उच्च पदवियाँ देकर नवाबने सम्मानित किया था। इनके अतिरिक्त भी शायर और गुणी रहते थे। इन पुर-लुत्फ मुशायरोमे मिर्जा 'दाग' और 'नज्म' तबातबाई भी पहुँच गये थे। इन सुहबतो और मुशायरोकी वजहसे उर्दू-शायरीका बगालमे भी प्रसार हुआ।

हैदराबाद दरबार

उर्दूशायरीके प्रसार करने और शायरोको आश्रय देनेमे दिल्ली-लखनऊके बाद हैदराबादका नाम आता है। यहाँ भी सैकडो शायरोका जमघट रहा है।

१—नवाब मीर क़मरुद्दीनख़ाँ बहादुर (१६७१-१७४८) ये हैदराबादके प्रथम शासक थे, और 'शाकिर' उपनामसे फारसीमे शायरी करते थे। 'बेदिल' से इस्लाह लेते थे। दो दीवान मिलते है।

बादशाह और नवाब शायर

उर्दू-शायरीके प्रबल पोषक और शायरोके आश्रयदाता बादशाह और नवाब सुखनफहम तो थे ही, उनमे कितने ही शायरी भी करते थे। इन बादशाहो, नवाबोने उर्दूके प्रसार और शायरोको आदर-सत्कार देकर उत्साह बढानेमे अनुकरणीय कार्य किये है। इस युगमे अब कहाँ है ऐसे पारखी जो गुणियोकी कद्र करे।

१८५७के विप्लवके कारण दिल्लीकी बादशाहत और लखनऊकी नवाबी समाप्त हो जानेसे आश्रित शायर निराश्रय होकर भरण-पोषणकी चिन्तामे अन्य रियासतोमे भटकते हुए पहुँचने लगे। जिन रियासतोसे उर्दू-शायरीको फरोग और शायरोको आश्रय मिलता रहा है, सक्षेपमे उनका भी परिचय दिया जाता है।

दिल्ली दरबार

दिल्लीके बादशाह मुस्लिम सस्कृतिके प्रबल समर्थक और प्रसारक हुए है। इन्होने फारसी, उर्दूके शायरोकी भी बडी कद्र की, और ईमानकी बात तो ये है कि इन्हीके प्रोत्साहनका बल पाकर जनतामे शायरीकी रुचि बढी और दिन-दूने रात-चौगुने शायर और कलाकार बढने लगे। इन बादशाहोमे शाहआलम द्वितीय, अकबरशाह द्वितीय, मिर्ज़ा सुलेमानशिकोह (शाह आलमके तीसरे पुत्र) शायरी भी करते थे। बादशाहोमे अच्छा कहनेवाले अन्तिम सम्राट बहादुरशाह 'जफर' हुए है। जिनका परिचय ज़ौकके शिष्योमे पृ० ६१९-३१ पर मिलेगा। अन्य बादशाहोका कलाम मामूली होनेसे देना व्यर्थ समझते है।

लखनऊ दरबार

लखनऊके नवाबोंने जिस तन्मयतासे उर्दू-शायरीका लालन-पालन किया और शायरोंका आदर-सत्कार किया, उसकी झाँकी प्रस्तुत पुस्तकमे यत्र-तत्र मिलेगी। लखनवी नवाबो और बेगमात शायरोका उल्लेख भी पृ० ३६०-८१ मे दिया गया है। अत यहाँ पुन देनेकी आवश्यकता नही। लखनऊके अन्तिम नवाब बन्दी बनाकर जब कलकत्तेके मटियाबुर्जमे रक्खे गये तो कुछ शायर तो उनके साथ गये ही थे। कुछ शुहरत पाकर बादमे पहुँच गये, और वहाँ लखनऊकी तरह शेरोसुखनकी सुहबते गरम रहने लगी।

'हजारो बन गये काबे जबीं हमने जहाँ रख दी।"

अकबरके दरबारमे नवरत्न थे, तो इनके पास भी मटियाबुर्जमे सप्त-ऋषि नक्षत्र रहते थे। उनको उच्च पदवियाँ देकर नवाबने सम्मानित किया था। इनके अतिरिक्त भी शायर और गुणी रहते थे। इन पुर-लुत्फ मुशायरोंमे मिर्जा 'दाग' और 'नज्म' तबातबाई भी पहुँच गये थे। इन सुहबतो और मुशायरोकी वजहसे उर्दू-शायरीका बगालमे भी प्रसार हुआ।

हैदराबाद दरबार

उर्दूशायरीके प्रसार करने और शायरोको आश्रय देनेमे दिल्ली-लखनऊके बाद हैदराबादका नाम आता है। यहाँ भी सैकडो शायरोका जमघट रहा है।

१—नवाब मीर क़मरुद्दीनखाँ बहादुर (१६७१-१७४८) ये हैदराबादके प्रथम शासक थे, और 'शाकिर' उपनामसे फारसीमे शायरी करते थे। 'बेदिल' से इस्लाह लेते थे। दो दीवान मिलते है।

२—**मीर महबूबअलीखाँ** (१८६९-१९११) दागके शिष्य थे। इनके दो दीवान मिलते है।

३—**पर उसमानअलीखाँ**—वर्तमान निजाम है। 'उसमान' उपनामसे शायरी करते है। जलील मानिकपुरीके शिष्य है। इनकी गजलोंका एक दीवान प्रकाशित हो चुका है। यूँ तो हैदराबाद दरबारसे शायरोंको मासिक वृत्तियाँ, सहायता, खिलअत, उपाधियाँ और इनाम-इकराम मिलते ही रहे है, परन्तु इन नवाब साहबने जो कार्य किये है, उनकी भारतमे अन्यत्र मिसाल नही मिलती। इन्होने उस्मानिया यूनिवर्सिटी स्थापित करके उर्दूका बहुत अधिक प्रसार किया है। 'अजुमने तरक्किये उर्दू'ने विदेशी भाषाओके अनेक महत्वपूर्ण ग्रथ प्रकाशित किये है। उर्दूके वृहद्कोश और अनेक मौलिक ग्रथ तैयार कराये है। भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोमे रहनेवाले अच्छे साहित्यिको और शायरोको लाखो रुपया प्रतिमास वजीफा देते रहे है। इनसे बढकर उर्दू-साहित्यका हितैषी और कोई नही है।

महाराजा चन्दूलाल शादाँ—(१७६६-१८४५) एक प्रतिष्ठित खत्रिय वशमे उत्पन्न और हैदराबादके प्रधान मत्री हुए है। ये स्वय शायर होनेके अतिरिक्त बडे गुणज्ञ थे। गुणियोका आदर-सत्कार मुक्त हृदयसे करते थे। इनकी गुणग्राहकताके कारण अनेक बडे-बडे गुणी हैदराबादमे एकत्र हो गये थे। इनके यहाँ प्राय रोज मुशायरे होते थे। कितने ही शायर और कलाकार इन्होने निमत्रण देकर बुलाये थे। उनके स्वाभिमान और प्रतिष्ठाका बहुत ध्यान रखते थे, और तन, मन, धनसे आदर-सत्कार करते थे। उर्दू-फारसी दोनोमे शेर कहते थे। दोनो भाषाओके दो दीवान मिलते है। तीनसौसे अधिक शायर इनके जमानेमे हैदराबादमे परवरिश पाते थे।

राजा गिरधारीप्रसाद 'बाकी'—(१८४०-१९००) कायस्थ थे और सस्कृत, फारसी, उर्दूके विद्वान थे। 'बाकी' उपनामसे शायरी करते

थे। इनकी लिखी १०—१२ पुस्तके मिलती है। ये भी मुक्त-हृदयसे गुणियोका सम्मान करते थे। 'दाग' इन्हीके मन्त्रित्वकालमे हैदराबाद गये थे।

महाराजा सर किशनप्रसाद 'शाद'—ये भी हैदराबादके प्रधान मत्री हुए है। इन्होने ४० पुस्तकोकी रचना की है। शेर भी बहुत अच्छे कहते थे, कई भाषाओमे पारगत थे और परम्पराके अनुसार गुणियोके बडे कद्रदाँ थे। अनेक शायर इनके युगमे हैदराबादसे वृत्ति पाते थे। नामवर शायरो और प्रतिष्ठित उर्दू-साहित्यिकोने इनका बडे सम्मानके साथ अपनी रचनाओ और पत्रोमे उल्लेख किया है।

रामपुर दरबार

रामपुर भी उर्दू-शायरीका बहुत बडा केन्द्र रहा है। यहाँ लखनऊ और दिल्लीसे भी अधिक शायरोके जमघटे रहे है। यहाँके नवाब स्वय अच्छे शायर और साहित्यिक होनेके अतिरिक्त गुणियोके सच्चे कद्रदाँ थे। अच्छे शायरो, गुणियो, विद्वानो, सगीतज्ञो और अन्य कलाकारोकी बडी आवभगत करते थे। उनको मासिक वृत्तियाँ, जागीरे, खिलअत और इनाम इकराम देते रहनेके अतिरिक्त नाजबरदारी भी बहुत करते थे। उनको मुलाजिम न समझकर महमानकी तरह आदर-सत्कार करते थे। उनके स्वाभिमान, प्रतिष्ठा और व्यक्तित्वका पूर्ण ध्यान रखते थे। इसलिए विप्लवके बाद सबसे अधिक शायर इस ओर ही आकर्षित हुए। रामपुर चूंकि दिल्ली और लखनऊ दोनोके नजदीक पडता था और नवाब सच्चे गुणज्ञ थे, इसलिए अन्य रियासतोसे इसीको तरजीह मिली। बहुत बडी-बडी तनख्वाहोके लालचमे भी लोग रामपुर छोडकर अन्यत्र जाना पसन्द नही करते थे, और कोई लाचार चला भी जाता था तो रामपुर भुलायेसे भी नही भूल पाता था।

"बड़ी मुश्किलसे होता है चमनमें दीदावर पैदा।"

नवाब यूसुफअलीखाँ—नवाब मुहम्मद सईदखाँके पुत्र थे। ये बडे गुणज्ञ, कला-पारखी, और सहृदय थे। उर्दू-फारसी दोनोमे शेर कहते थे। 'नाजिम' उपनाम था। साहिबेदीवान हुए है। प्रारम्भमे 'मोमिन' से इस्लाह लेते थे। उनके बाद 'गालिब'से मशवरएसुखन लेते रहे। उनके बाद 'असीर' को कलाम दिखलाते रहे। दिल्ली-लखनऊ-दरबारोके गदरमे उजडनेके बाद अक्सर शायर इन्हीके आश्रयमे आ गये। जिनमे गालिब, मौलाना फजलहक खैराबादी, तसकीन, असीर, वगैरह थे। शायरोके रामपुरमे एकत्र होनेसे उर्दू-शायरीको एक बहुत बडा लाभ ये पहुँचा कि वह अभीतक देहलवी और लखनवी जुदा-जुदा धाराओमे विभक्त थी। यहाँ आकर वह एक हो गई और रामपुर सगम बन गया।

नवाब कल्बअलीखाँ—अपने पिता यूसुफअलीके जन्नतनशीन होनेके बाद १८६५ ई०मे सिहासनारूढ हुए। इनके शासनकालमे पहलेसे भी अधिक उर्दू-शायरीको फरोग मिला। इनका शासनकाल उर्दू-शायरीका निसकोच स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इन्होने इस छोटी-सी रियासतमे भारतके ऐसे सर्वश्रेष्ठ कलाकार एकत्र कर लिये कि जिनके अन्यत्र उदाहरण नही मिलते। शायरोका भी बहुत बडा समूह था, जिनके चन्द नाम ये है—असीर, बहर, अमीर मीनाई, दाग, जलाल, तसलीम, मुनीर, कल्क, उरूज, हया, जान साहब, आगाहिजो शरफ, उन्स, शागल, शादाँ, गनी, जिया, ख्वाजा, मन्सूर, रजा। शायरो और साहित्यिकोके अतिरिक्त सगीतज्ञ, हकीम, ज्योतिषी, चित्रकार आदि भी एक-से-एक बढकर एकत्र किये गये थे।

ये गुणी और कलाकार रियासतके लिए भारस्वरूप न हो जाएँ, इसलिए इनको रियासतके भिन्न-भिन्न पदोपर नियत कर दिया था। योग्यतानुसार अपनी ड्यूटी भी करते थे और अपने विशेष गुणका जौहर भी दिखलाते थे। इस नियुक्तिसे रियासत और गुणियो दोनोको ही लाभ पहुँचा। रियासत तो व्यर्थके व्ययसे बच गई और गुणियोकी स्थिति

चापलूसो, मुसाहबो, टुकडखोंरोकी-सी न रहकर एक कमाऊ व्यक्तिकी हो गई। मुलाज़िमतमे होते हुए भी इन गुणियोके स्वाभिमान और आवश्यकताओका नवाब पूर्ण ध्यान रखते थे। कोई उनके साथ दुर्व्यवहार नही कर सकता था, और हर खुशीके अवसरोपर उन्हे इनाम-इकराम देकर आदर दिया जाता था।

नवाबका गद्य और पद्य दोनोका अभ्यास था। गद्यमे उनकी कई पुस्तके मशहूर है। फारसी-शायरीका दीवान भी है। उर्दूमे 'अमीर मीनाई'से इस्लाह लेते थे। उर्दूमे चार दीवान उनकी योग्यताके परिचायक है। 'नवाब' उपनामसे निहायत उम्दा शेर कहते थे। भाषाकी शुद्धता और सुन्दरताका बहुत खयाल रखते थे।

इनके पिताने देहलवी-लखनवी शायरीकी दो धाराओका एकीकरण करनेके लिए जो सगम निर्माण किया था, इनके युगमे उसपर उत्तरोत्तर यात्री आने लगे, और दोनो धाराओका ऐसा एकीकरण हुआ कि अब उर्दूके सभी शायर बिना किसी भेदभावके इस मिली-जुली गगा-जमनी शायरीके उपासक है। श्री रामबाबू सकसेना लिखते है—

"नासिखका तर्ज उनके शागिर्दोके जमानेमे जो कि अपने उस्तादकी उस्तादाना रविशको कायम न रख सके थे, बदसे बदतर हो गया था। उन लोगोके कलाममे इस तर्जके तमाम अयूब (दोष) तो मौजूद थे, मगर खूबियाँ मफकूद (गायब) थी। इस तर्जके बरतनेवाले रामपुरमे बहर, मुनीर, कल्क और असीर थे। बरखिलाफ इसके तर्जे दिल्लीके पैरो (अनुयायी, समर्थक) दाग और तसलीम थे। इनमे और लखनऊवालोमे जमीनो-आस्मानका फर्क था। उनके (दागके) अशआर बहुत मकबूल हुए। हर शख्स उनके रगका दिलदादा था। तसलीम गो कि लखनऊके थे, मगर रग बिल्कुल दिल्लीका अख्तियार किया था। ये 'नसीम' देहलवी (मोमिनके शागिर्द)के शागिर्द थे। इनपर नासिखके रगका जादू कभी नही चला। वे हमेशा इसको बुरा समझते रहे, और

जहाँ कही रहे, मोमिनो नसीमकी पैरवी (अनुकरण) करते रहे। 'मोमिन' और गालिब थोडे अर्सेतक रामपुर रहे, इस वजहसे उनका असर कुछ ज्यादा न पड सका। लखनऊ और दिल्लीके शायर रामपुरमे लडते-झगडते और मुबहसा करते रहे। जिसका नतीजा शायरीके लिए अच्छा हुआ। यानी 'नासिख'के जमानेसे जो एक बेजा लफ्फाज़ी (शब्दाडम्बर) और तसन्नोह (बनावट, तकल्लुफ, कृत्रिमता)का शौक दाखिल हो गया था, वह जाता रहा। अब लोग शायरीके सही जज्बात (भावो) और उनके मुनासिब अल्फाजसे वाकिफ हो गये। लखनऊके तर्जेकदीम (प्राचीन परम्परा)के शैदाओ (भक्तो)ने देख लिया कि अब इस जदीद रगके सामने उनका रग नही जम सकता। मजबूरन उनको तर्जेदेहलीकी तरफ मुतवज्जह (आकर्षित) होना पडा। चूँकि दागकी मकबूलियत आम हो रही थी, लिहाजा उनके मुआसरीन (प्रतिद्वन्द्विओ)को इसके सिवा कोई चाराकार न था कि पब्लिककी पसन्दका अतवा (खयाल) करते हुए वही तर्ज अख्तियार करे। चुनाचे अमीर जो दागके बडे हरीफ और मद्देमुकाबिल थे, उनको भी इस राय आम्माके सामने सरे तसलीम खम करना पडा, और इसी वजहसे उनका दूसरा दीवान 'सनमखानये इश्क' दागके रगमे है। गो कि कही-कही अपने खास रगमे भी कहे जाते थे। इसी तरह उन्होने 'जौहरे इन्तखाब' और 'गौहरे इन्तखाब' एक 'मीर' और एक 'दर्द'के रगमे कहकर इस बातका सबूत दिया कि वे दिल्लीके रगको लखनऊपर तरजीह देते है। शागिर्दाने अमीर अर्थात् रियाज खैराबादी, जलील मानिकपुरी और हफीज जौनपुरीने एक कदम और बढाया। बल्कि उनके अक्सर अशआर तो ऐसे है, जो दाग और शागिर्दाने दागके कलामसे अलहदा नही किये जा सकते। यही हाल जलालका भी समझना चाहिए। जलाल—रश्क और बर्कके शागिर्द थे, और उनकी नश्वो-नुमा (शिक्षा-दीक्षा) बिल्कुल लखनऊके तर्जपर हुई थी। मगर ताज्जुब है कि उन्होने भी इस रगको

छोडकर दिल्लीका रग अख्तियार किया। चुनाचे उनका एक दीवान बिल्कुल इसी रगका है और इसमे उन्होने मीरकी भी बहुत पैरवी की है, मगर हमारे इस लिखनेसे यह नही समझना चाहिए कि अमीर-ओ-जलाल बिल्कुल अपने रगको भूल गये थे।"[1]

हिज़हाईनेस नवाब सैयद हामिदअलीखाँ—निहायत अच्छे शायर और सुखनफहम थे। अपने पूर्वजोके समान इन्होने भी गुणियोका बहुत आदर-सत्कार किया। वर्तमानमे इनके पुत्र रामपुरके शासक है।

टाँडा दरबार—टाँडा रामपुर और बरेलीके नजदीक है। यह रामपुरके वशजोकी जागीर है। लखनऊके नवाब शुजाउद्दौलाने रामपुरका राज्य जब फैजुल्लाखाँको दिया तो उनके छोटे भाई मुहम्मदयारखाँको भी पचास हजारकी यह जागीर दी थी। मुहम्मदखाँ भी शायर थे। 'अमीर' तखल्लुस रखते थे। ये भी शायरोका आदर-सत्कार करते थे। इन्होने 'सौदा' और 'सोज'को बुलानेका प्रयत्न किया, किन्तु वे लखनऊ चले गये। 'कायम' चाँदपुरीको देहलीसे बुलाकर अपने यहाँ रखा। उन्हे सौ रुपये मासिक देते थे, और उन्हीसे इसलाह लेते थे। 'मुसहफी', 'फिदवी' लाहौरी, मीर मुहम्मद नईम 'परवाना', 'इशरत' आदि इस दरबारसे लाभ उठाते रहे है। यह चित्रकारी अच्छी जानते थे। १७७४ ई०मे जन्नतनशी हुए।

फरुक्खाबाद—फरुक्खाबादके नवाब महरबानखाँ 'रिन्द' अच्छे शायर और सगीतज्ञ थे। मशवरयेमुखन पहले 'सोज'से लेते रहे। फिर 'सौदा'के पहुँचनेपर उनसे भी लेते रहे। जब फरुक्खाबादसे इस वशकी नवाबी समाप्त हुई तो यहाँ शेरोसुखनकी मजलिसे भी समाप्त हो गई।

अज़ीमाबाद—महाराजा शिताबराय बगालके नायब-दीवान थे। स्वय शायर भी थे और शायरोके आश्रयदाता भी। इनकी मृत्युपर

---

[1] तारीखे अदबे उर्दू, पृ० ४१४-१६

१७७३ ई०मे इनके पुत्र राजा कल्याणसिह उसी पदपर नियुक्त हुए। इनका उपनाम 'राजा' था और मीर जियाउद्दीन 'जिया'से इसलाह लेते थे। 'फुगाँ'ने भी मुर्शिदाबाद और फैजाबादसे लौटकर यही सम्मान पूर्वक जीवन व्यतीत किया, महाराजा इनका बहुत आदर-सत्कार करते थे।

मुर्शिदाबाद——मुर्शिदाबादके नवाबोने भी शायरोका उचित स्वागत किया। सोज, कुदरत, अन्तमे वही रहने लगे थे और वही उन्होने समाधि पाई। मिर्जा जहूर अली 'खलील' भी नवाबके निमत्रणपर गये थे। मर्सिया-गो शायर थे। यहाँका वातावरण राजनैतिक षडयन्त्रोसे दूषित और अशात रहता था। इसलिए इस ओर विशेष शायर नही आये।

टौंक——टौकके नवाब सर हाफिज मुहम्मद इब्राहीम अलीखाँ १८६६ ई०मे राज्यासीन हुए। ये 'खलील' उपनामसे शायरी करते थे। 'अमीर' मीनाईके शिष्य 'बिस्मिल' खैराबादी इनके कविता-गुरु थे। जहीर, असद, मुजतर आदि शायर इनके यहाँसे भी सम्मानित हुए थे। 'असद'के यहाँ कई शिष्य थे। जिनमे असगरअली 'आबरू' हबीबुल्ला 'जब्र' प्रसिद्ध है। इन नवाबोके उत्तराधिकारी भी शायरीसे दिलचस्पी रखते है।

अलवर——अलवरके महाराजा शिवध्यानसिह——जहीर, तसवीर, तिश्ना, मजरूह, सालिक आदिके आश्रयदाता थे। 'फसानयेआजाद'के ख्याति-प्राप्त लेखक प० रतननाथ 'सरशार'को भी बुलाकर सम्मानित किया था।

अन्य स्थान——भोपाल, मगलोर (काठियावाड) जयपुर, मालियर कोटला, बहावलपुरके शासक भी शायरोका उचित आदर-सत्कार करते रहे है।

११ अक्टूबर १९५० ई०

समाप्त

जेरे कलम--

शेर-ओ-सुखन

भाग दूसरा

१९०१ से १९५१ तकके वर्तमान युगीन सर्वश्रेष्ठ ७०१
गजलगो शायरोंका परिचय और उनके श्रेष्ठतम
कलामका संकलन तथा वर्तमान शायरीकी
गति-विधि पर सिंहावलोकन

पुरातन शायरीका कायाकल्प किस प्रकार हुआ, कैसे-कैसे अजीबो-गरीब इन्कलाब आये, उर्दू-शायरीने कैसे-कैसे पहलू बदले और कितनी करवटें लीं, बाजारी माशूकसे नफरत, हया परवर शीला नारीका सम्मान, रोने-बिसूरनेकी प्रथा बन्द, व्यक्तिगत दुखोंको भूलकर विश्वके दीन-दुखियोंके गमोंको अपनानेका इतिहास, आलोचनात्मक विवेचन, शायरोंसे साक्षात मिलकर उनके रेखाचित्र, उनके स्वयं पसन्दीदा अशआर, गोयलीयजीकी लेखनीका वास्तविक चमत्कार।

कुछ ख्यातिप्राप्त शायर

पुरानी यादगारें

१ शाद अजीमाबादी
२ नज्म तबा तबाई
३ आमी गाजीपुरी
४ रियाज खैराबादी
५ असगर गोण्डवी
६ फानी बदायूनी
७ जलील मानिकपुरी
८ मफी लखनवी
९ अजीज लखनवी
१० आरजू लखनवी
११ आगा शायर देहलवी
१२ साइल देहलवी
१३ हसरत मोहानी
१४ नातिक गुवालठी
१५ सर इकबाल
१६ सीमाब अकबराबादी
१७ ताजवर नजीबाबादी

जिनका दम गनीमत है

१८ दिल शाहजहाँपुरी
१९ यगाना चगेजी
२० साकिब लखनवी
२१ जिगर मुरादाबादी
२२ हफीज जालन्धरी
२३ सागिर निजामी
२४ जोश मलीहाबादी
२५ लम्भूराम जोश
२६ रघुपति सहाय फिराक
२७ दत्तात्रिय कैफी
२८ हरीचन्द अख्तर
२९ गोपीनाथ अमन
३० नूह नारवी
३१ असर लखनवी
३२ वहशत कलकतवी
३३ रविश सिद्दीकी
३४ हामिद अल्ला अफसर

प्रगतिशील

३५ सरदार जाफरी
३६ न्न-मीम-राशिद
३७ अहमद नदीम कासिमी
३८ सलाम मछलीशहरी
३९ फिक्र तोसवी
४० मनोहरलाल जिया
४१ साहिर लुधियानवी
४२ नरेशकुमार शाद
४३ जगन्नाथ आजाद
४४ बालमुकन्द अर्श
४५ अहसान दानिश
४५ मजाज
४७ फैज
४४ जज्बी
४९ सबा अकबराबादी
५० खुर्शीद फरीदाबादी
मखमूर जालन्धरी

सहायक ग्रंथ-सूची

प्रस्तुत पुस्तकमे इन शायरोका कलाम उनकी निम्न लिखित कृतियोसे सकलित किया गया है--

सौदा

१ कुलियाते सौदा (नवलकिशोर प्रेस कानपुर द्वितीयावृत्ति सितम्बर १८८७ ई०)

मीर

२ कुलियातेमीर (नवलकिशोर प्रेस कानपुर तृतीयावृत्ति जून १८९२ ई०)

३ मजामीर भाग १-२ अमर लखनवी (किताबी दुनिया लि० दिल्ली १९८७ ई०)

दर्द

४ दीवाने दर्द (नवल किशोर प्रेस लखनऊ १९२९ ई०)

रगीन

५ दीवाने रगीन-इशा (निजामी प्रस बदायूँ १९२४ ई०)

दयाशकर नसीम

६ गुलजारे नसीम--चकबस्त (नवलकिशोर प्रेस लखनऊ १९१३ ई०)

जौक़

७ दीवाने जौक--मुहम्मदहुसेन आजाद (आजाद बुकडिपो लाहौर १९३२ ई०)

मोमिन

८ कुलियाते मोमिन--जिया अहमद एम० ए० (शान्ति प्रेस इलाहाबाद १९३४ ई०)

गालिब

९ दीवाने गालिब--जोशमलसियानी (प्रथमावृत्ति, आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली)

अमीर मीनाई

१० मिरातुलगैब

जफर

११ कुलियाते जफर (नवलकिशोर प्रेस कानपुर)

दाग

१२ मुन्तखिबे दाग--अहसन माहरहरवी (प्रथमावृत्ति अनवर अहमदी इलाहाबाद)

हाली

१३ दीवाने हाली--महरूम, जिया (सेठ बुक क० दिल्ली १९७०)

और जिन शायरोकी हमे मूल कृतियाँ प्राप्त न हो सकी, उनका कलाम जिन ग्रथोसे लिया गया है, उन ग्रथोका उल्लेख कलामके अन्तमे प्रस्तुत पुस्तकमे यथास्थान दे दिया मया है, उनमे मुख्य सहायक ग्रथ ये है--

१४ इन्तकादियात भाग १-२--नियाज़ फतहपुरी (अब्दुलहक एकेडमी हैदराबाद दकन १९४३-४४)

१५ आबहयात--मौ० मुहम्मद हुसेन आजाद

१६ तारीखे अदबे उर्दू--रामबाबू सक्सेना--(नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)

१७ तनकीदी हाशिये--नजनू गोरखपुरी (इदारए इशाअत उर्दू हैदरावाद)

१८ अन्दाजे––फिराक गोरखपुरी––(हिन्दुस्तानी पब्लिशिग हाउस, इलाहाबाद)

१९ छानबीन––असर लखनवी––(दानिश महल लखनऊ १९५०)

२० मक्तूबाते नियाज भाग १-२––नियाज फतहपुरी (निगार बुक एजेन्सी लखनऊ १९८३-४४ ई०)

२१ निगार, लखनऊ

२२ आजकल, दिल्ली

इनके अलावा निम्न पुस्तकोमे भी उद्धरण दिये गये है––

२३ हिन्दी काव्यधारा––राहुल सांकृत्यायन (किताब महल इलाहाबाद)

२४ रियाजे रिजवाँ––नियाज अहमद (१९३८)

२५ नक्दोनजर––हामिदहुसैन कादरी (शाह एण्ड क० आगरा १९४२ ई०)

२६ मयखानये रियाज––तस्नीम मीनाई (इदारये इशाअत उर्दू हैदराबाद १९४५ ई०)

२७ मजामीने चकबस्त––प० बृजनारायण 'चकबस्त' (इण्डियन प्रेस प्रयाग १९३७)

२८ मईदी डिक्शनरी––मौ० मुहम्मद मुनीर (मतबये मजीदी कानपुर १९४०)

शेरोसुखनके निर्माणमे अनेक ग्रथोका परिशीलन हुआ है। जिनमे-से कुछकी तालिका शेरोशायरीमे दी जा चुकी है। ऊपर केवल उन्ही ग्रथोकी सूची दी जा रही है, जिनके उद्धरण प्रस्तुत पुस्तकमे दिये गये है। हम उन सभी शायरो, लेखको, सम्पादको और प्रकाशकोके अत्यन्त कृतज्ञ है, जिनकी रचनाओ, सम्पादित ग्रथो और प्रकाशनोमे शेरोसुखनके निर्माणमे सहायता या अनुभूति मिली है।

डालमियानगर (बिहार) ––गोयलीय

१५ जून १९५१

अनुक्रमणिका

शायर, लेखक, विशेष व्यक्ति

अ

अकबर इलाहाबादी १८५, ३९६
अकबर (बादशाह) ४१, ४६
अकबर (नवाब) ४२७
अकबरशाह (बादशाह द्वितीय) ३९३, ६२०, ७४६
अकबरी बेगम ८००
अख्तर २७०, ५७४
अख्तर लखनवी २८० से २९० तक
अच्छन मियाँ 'अश्क' रामपुरी ५०२
अजीज देहलवी ७४५
अजना ३३
अर्जुन ३३, २३७, २४५, २७५
अनवरी १०७, ४०४
अनीस १९३, १९४, २४४, २७८, २८२, ३३२, ३४२, ३४७, ५६७
अनुसूया ३३
अन्दलीब १२५
अफजल २९५
अफसोस १७६
अब्दुलकलाम आजाद ७१९
अब्दुल्ला तानाशाह ५४
अब्दल बेग ४७४
अब्दुलवाहिद ७०९
अब्दुलहक खैराबादी ५७१
अब्दुल्लाखाँ 'महर' ७००
अब्दुलसमद अन्सारी ५६३
अब्दुलरसूल 'निसार' ११९
अमजदअलीशाह ३४८, ३६९, ३७०
अमानत २७४, ५५९
अमीन ५४
अमीर अल्लाह 'तसलीम' ७०९
अमीर अली 'ओस्त' २७१
अमीर ७५३
अमीर खुसरो २२, २४, २७, ७१
अमीर मीनाई १९३, २७२, २७३

५३०, ५६७से ५९२तक ५९४, ५९६, ५९७, ६३७, ६३८, ६४०, ६४१, ६४६, ६५१, ६५२, ७१६, ७५०, ७५२, ७५३, ७५४

अमीर अलीखाँ 'हिलाल' ५९३
अलीबख्श ३११
अलवी देहलवी ७४५
अलाउद्दीन ३९
अलाउद्दीनखाँ अलाई ४८२
अशरफ अली 'अशरफ' ७००
अश्वघोष २०
असर लखनवी ५१, २८०
अमर देहलवी १३६, १३८, १३९, १४६से १५४तक

असगर लखनवी ५७४
गसगर गोण्डवी ३९३, ५४७
असीर २७०, ५५७से ५५८तक ५६२, ५६७, ५७०, ६४६, ७५०

अहसन ८०, ७०८
अहमदहुसेन 'शाद' ३३३
अहमदशाह ६०६
अहमदबख्शखाँ ७४५

आ

आकाअलीखाँ ७०९
आगा मुहम्मद अशरफ ६३३
आगा रिजवी ५५९
आगाशायर देहलवी ६४१ ६४४
आगाहिजो शरफ ३१२, ७५०
आजाद दक्खिनी ५५
आजिज ५५, ६१
आजुर्दा ५५६
अताउल्लाह रहमान २२०
आतिश ३४, १९३, २३१, २४८, २६३, २७१, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २८०, २८२, २९७, २९८, ३११से ३२५तक ३३५, ३३६, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४७, ३४८, ३५६, ३८३, ५६७, ५६९, ५९४, ६३९, ६४९, ७१५

आबरू ६६, ७७से ७८तक ७५४
आबाद ३०१, ३२९
आबिद ५७४
आरजू ७१, ७६, ७७, १०७, ५९९
आलमशाह २५२
अली सबा ३१२

आसफुद्दौला ३५, १००, १०८, १२०, १७०, २०४, २२१, २५६, २७८, ३६०से ३६३तक ३६४, ३६५, ४७४
आसी गाजीपुरी ६१६
आह ५७४
आही ४२७

इ

इकबाल ३९, ५४, २८४, ४७३, ५०२, ५०६, ५२१, ५३८, ५४८, ६४४
इन्शा ३५, ९६, १८५, १८७, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, २०४ से २१० तक २११, २१४, २२५, २२८, २४२, २७२, २७४, २८०, २८१, २८२, २९२, ३११, ३६५, ३८३ ३९४, ३९८, ४००, ४३३, ६२१, ७१८
इब्न निशाती ५४
इब्राहीम आदिलशाह ५३
इमदादअली ५५७
इमामबख्श ३२८
इमाम शहीद ३३२
इश्क २७१
इशरत बेगम ३७७
इशरत ७५३
इलाहीबख्श खाँ मारूफ, ४०

ई

ईमा ६१
ईराकी ६१

उ

उत्तरा ३३
उन्स ७५०
उर्फी ४०४, ४३३
उमराव महल ३७३
उमरावसिंह 'बेसब्र' ४८२
उर्मिला ३३
उरूज ७५०

ए

एकलव्य २३७
एहसान दानिश ५०९
एहसान शाहजहाँपुरी ५९९

औ

औरंगजेब ५१, ५६, ६६, १३७, २५१

क

कर्ण ३२, २७५
कतील २११, २८०, २९२
कद्र ६१
कर्नल ट्रालेण्ड ७१३, ७२१
कबीर २०, २७, ४२, ८६
कमर ७७४
कमान ५९९
कमरुद्दीन खाँ ५५४, ७८७
कल्क ५६०, ७५०
कल्याणसिंह (राजा) ७५८
कल्बअली खाँ ५५७, ५०३, ६३६
करम मुहम्मद ५६७
कगार ५७४
कृष्ण ७१५
कल्ब आबिदखाँ २९६
करेला (भाण्ड) २१४, ३६१
काजमअलीखाँ ३२६
काज़िम बेग खाँ १७७
काज़िमअली ६१, ३९३
कादर ६१
कादरअली रामपुरी ४७०
कायम चान्दपुरी १०६, १३६ से १४५ तक १८४ ३८२, ७५३
कालिदास २०
कालेखाँ २४२
किशनप्रसाद 'शाद' ५६९, ६९७, ७४९
कीचक ३३
कुम्भकर्ण ३३
कुतवी ५४
कुतुब शाह ५३
कुली खा दाउद १००
कुदरत ६०५, ८७८
केशव ५२
कैसर ४२७
कौसर ५७४
कौरव-पाण्डव २३७

ख

ख्वाजा ७५०
खलील २६६, ३१२, ३४२, ३५८ ७५४
खलीलुल रहमान काज़मी २४४, २५४, २७४
खुदावख्श खेमादोज़ २९१, २९४
खुर्शीद फरीदाबादी ४९४
खुर्शीद लखनवी ६१६

ग

गगाप्रसाद कौल ३३६
गनी ७५०
गयासुद्दीन नीसापुरी ३३५
गवाशी ५४
गाजीउद्दीन हैदर २२१, २५२, २८०, २९४, ३६६, ३६७, ३६८
गालिब १५६, १७७, १९३, १९४, २३१, २४२, २४४, २४५, २४६, २४७, २७१, २७२ २७४, २७८, २८०, ३११, ३३२, ३८३, ३८९ ३९०, ३९१, ३९७, ४०१ ४०२, ४०६, ४०७ ४०९, ४११, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२९, ४३०, ४६९ से ५५३ तक ५९६, ६२१, ६३५, ६३९, ६४९, ६९९, ७०१, ७०२, ७०९, ७११, ७१२, ७१३, ७१५, ७१६, ७१८, ७२३, ७२८, ७४३, ७४४, ७४५, ७५०
गिरधारीप्रसाद बाकी ७४८
गुचा १०५, १०६
गुलाम जफर १२९
गुलबदन ११९
गुलामरहीला २५२
गुलामहुमेन 'जाहक' १७०

च

चकबस्त १५०, १५८, ३२७, ३४२, ३७३, ६३९, ६५०, ६५१
चन्दूलाल 'शादाँ' २९४, ७४८

ज

जकी ५६१, ७४४
जनरल लेक ४७४
जयद्रथ ३३
जनरल इस्माइलबेग हमदानी ७००
जलाल २७०, २७१, २७३, ५९३ से ६०५ तक ६४०, ६४१, ७५०, ७५२
जलालुद्दीन ६९७
जलील मानिकपुरी ५७४, ७११, ७४८, ७५२
जहाँगीर ४३३
जहीर ४०४, ७५४
जहूरी ४०४

ज़हूर अल्लखाँ 'नवा' २९२
जहीरुद्दीन 'जहीर' ६९७ से ६९८ तक ६९९, ७५८
जहीरुद्दीन 'हातिम' ७४ से ७५ तक
जवाहरलाल नेहरू ४०१
जसवन्तराव होल्कर ७००
जान साहब ७५०
जायसी २०, २७, ४२, ४६
जावेद ६१६ से ६१८ तक
जाह ५७४
ज़ाहिद ५७४
जिगर मुरादाबादी ५१७, ५४५, ६४४
जिन्ना २०
जिया ६१, १६९, ७५०, ७५४
ज़ियाउद्दीन खाँ अहमद ४८२
ज़ीनत महल ४७८
जुरअत १७८, १८५, १८७, १८८, १८९, १९२, २०८, २११ से २१९ तक २४८, २५६, २७३, २८१, २८२, २९२, ३११, ३१२, ३८३, ३९४, ३९८, ४००, ४३३, ४३४, ५९४, ६०६, ६०७, ६०८, ६२१, ६५३, ७१८
जुलेखा ९७
जोश मलीहाबादी ४१०, ५०६, ७१०
ज़ौक २४२ २८६, २७४, २८१, २८२, ३८३, ३८८ से ४२३ तक, ८०२, ४२९, ४७८, ४७९, ४८१, ५३३, ५३४, ५५६, ५७०, ६१९, ६२०, ६२१, ६३२, ६३५, ६४६
जौहर ४८२ ७४५

त

तमन्ना लखनवी ६१६
तवई ५४
तहसीन ५४
तसकीन ७०८, ७५०
तसनीम मीनाई ५७१
तसलीम ५६३ से ५६६ तक ५९४, ६४०, ६४१, ७५०, ७५१
तसवीर ७५४
तावाँ १३६, १३८, १३९, १५५ से १६२ तक ७४५
तालिब ७४५
ताहिर ३०१

तिश्ना ७५४
तुलसी २०, २१, ४२, ४६, ३९०

द

दधीचि ३२
दर्द ६१, १२५ से १३५ तक
१३६, १३७, १३८, १३९,
१४६, १६६, १६८, १८१,
१८२, १८८, १९२, २३९,
२४०, ३४२, ३८२, ४००,
४३४, ५४८, ६४९, ७५२
दबीर २७८ २८२, ३३२, ५६७
दयाशकर नसीम ३१२ २३६ से
३५५ तक
दरख्शा ५६२
दाऊद ५९
दाग ६१, ४९७, ५६०, ५७०,
५७१, ५७२, ५९४, ५०७,
६३५ से ६९६ तक ७१६
७१८, ७४५, ७४७, ७४८
७४०, ७५०, ७५२
दाम ४२
दिल ५७४
दीहम बेगम ३७८
दुष्यन्त ३३, ९७
दुर्योधन २७५
देव ४२
द्रोपदी ३३
द्रोणाचार्य २३७
दौलत ५५

ध

ध्रुव ९७

न

नजीर अकबराबादी २४७, ४२४
नजीरी २२०, ४०४, ४३३
नज्म ६१
नज्म तबातबाई ७४७
नदीम ८१
नवाब ५७४, ७५१
नल-दमयन्ती ३३
नसरुद्दीन ५६७
नसीम देहलवी ४०७, ५६३,
७०९, ७५१
नसीम भरतपुरी ६४४
नसीर २७२, २८१, २८२, २९८,
२९९, ३८२ से ३८७ तक
३९१, ३९२ ३९३, ३९८,
३९९, ४०१ ४०७, ४२४
४२५, ४७१, ६२१, ६२२
नसीरुद्दीन हैदर ३६८, ३६९

नाजी ६७, ७९
नाज़िम ५७४, ६०६, ७५०
नादर ३०१
नानक ४६
नादिर शाह ६३, ७१, १३७, १७७, २७१ २५२
नासिख १०३, २४२, २५६, २५७, २५८, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २८०, २८१ २८२, २९१, से ३१० तक ३११ ३१३ ३२६, ३२८, ३४२, ३४३, ३४७, ३८३, ४०२, ४११, ४२४, ४२५, ४७१, ५५७, ५५९, ५६१, ५६७, ५८९, ५७५, ५९३ ६३९, ७१५, ७५१, ७५२
निज़ाम ६०६ से ६१५ तक
निजाम हैदराबाद ४७४, ७४७, ७४९
नियाज फतहपुरी ५३, १०७, १०८, १२५, १९५, २१४, २३५, २५२, २७१, २७८, ४२९, ४३३, ५६१, ५६९, ५९४, ५९५, ६०६, ६१६
नूह नारवी ६४४
नूरी ५४
नुसरती ५५
नैयर ४८२, ६३५, ७४५
नौशेरवाँ बादशाह ३२

प

पनाह ६१
पद्माकर ४३
पद्मिनी ३९
प्रह्लाद ९६
पृथ्वीराज चौहान २२
पृथ्वीराज (एक्टर) ३९०
पार्वती ९७
प्यारेलाल 'आशोब' ७१३
प्रेमचन्द १८७

फ

फख्र ६१
फखरू ५७०, ६३५ ६३६
फखरुद्दीन १६६
फलक ३४५
फरहत अल्लावेग ४२७
फरहाद ९७
फसाहत ५५९
फाइज ६६ से ७० तक

फानी बदायूनी २४१, ५०९
फातिमा बेगम ३७७, ४२७
फिदवी २२०
फिदवी लाहौरी ७५३
फिराक १६६, १८२
फिराक गोरखपुरी ४१०, ५०२
फिरदौसी १०७
फुगाँ ८१ से ८२ तक ७५४
फैज ५३१, ५४५
फैज अली ३३२
फैजी ४७५
फैजुल्लाखाँ ७५३

ब

बकावली ३४०
बर्क २७०, ३०१, ३२६ से ३२७, ४७३, ५९३, ७५२
बख्तावरसिह (अलवर नरेश) ४७४
बर्नाडशा ४०२
बदर आलम बेगम ३७४
बयान १३६, १३८, १३९, १७५
बरहम ५७४
बहर २७०, ३०१, ३२८
बहादुरशाह 'जफर' २७८, ३९१, ४०१, ६१७ से ६३६ तक
बाबर ४६
बाबूराम सक्सेना ६४१
बिस्मिल खैराबादी ७५४
बिहारी ४२, ४०१
बीमार ६०६
बुन्देअली ३५९
बेखुद देहलवी २७३, ६४८
बेखुद बदायूनी ६४४
बेदार १३६, १३८, १६६ से १६८ तक
बेदिल ७४७

भ

भागमती ५३
भीम ३३, २४८, २७५
भूषण ४२
भोपाल नवाब ७०१, ७१४

म

मजहर ७२ से ७३, ७७, ८०, १५५, १५७, १५८, १६३, १७५, १८३
मजनू गोरखपुरी १०७, १३६, १३८, १४६, ७१८
मजमून ६७, ७६

मजरूह ८८२, ७७३, ७७५, ७५४
मतिराम ४२
ममनन ५५८, ५५६
मश्शाक ७८५
मयकश ८८२
महरूम ६१
महर ६१
महताब ६१
महात्मा गांधी २३७, २४५, २७८, ८०२
महावीर २१
महदी हुसेन 'फ़राग' २०५
मसऊद हसन खाँ रिजवी ६६
महिबाल ९७
महमूद महल बेगम ३७८
महल आलम बेगम ३७६
माइल ३८२
माघ २०
मीर ७१, १००, १०४, १०५, १०७ से ११९ तक १२८, १२५, १३७, १३८, १३९, १४६, १४७, १५१, १५५, १५७, १५८, १६३, १६७, १७०, १७६, १८४, १९२, १९३, १९६, १९७, २०८, २१२, २१३, २२०, २२३, २२५, २३८, २३९, २४२, २४८, २४७ २५३, २७१, २७२, २७८, २८१ २९२, ३११ ३९० ३८२, ४००, ४०२, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९ ४२५, ४२९, ४३३, ४३४, ४६९ ४७०, ५०९, ५६१, ५७०, ५१८, ६८९, ७१३, ७१७ ७५२
मीरअलीखाँ 'जान' ८९
मीरहसन ७१, २७२, ३३६, ३३७, ३३८, ३८१
मीर महबूब अली ७८८
मीर मुगल ५६२
मीरा ९७
मुहम्मद कुतुबशाह ५८
मुज़तर ५७८, ७५४
मुहम्मद जफर अल्लाह उम्मीद ६१६,
मुजरिम अकबराबादी ५५६
मुजफ्फर खाँ १९६
मुर्तजा खाँ ७००
मुनीर २७०, ३०१, ३३२, ३३३ से ३३४ तक ३९२, ७५०
मुब्तिला ६१

शहीदी २२४
शागल ७५०
शाद 'अजीमाबादी' १९३
शाअँ ७५०
शाहआलम बादशाह १००, १३७, १८४, २०८, २०५, २९८, ३८२, ३८३, ७४६
शाह मलिक ५८
शाही ५८
शाह हातिम १००
शिताबराय १६९ ७५३
शिवब्यासमिश्र (अलवर नरेश) ६०७, ७४३, ७५८
शिवाजी १३८
शीरी ०८
शुजाउद्दौला १७६, २१८, ३११, ५८८
शुजाउद्दीन 'अनवर' ६००
शेख शादी ७२३
शेफ्ता १३६, ३१३, ८०८, ८३७, ८८२, ४५६, ६०७, ७००से ७०७तक ७१२ ७१३, ७१५, ७१७
शैदा बेगम ३७५
शोक ३१२
श्रीराम साहब ६९९, ७५१

स

सआदत अलीखाँ ३६५, ३६६
सज्जाद हुसेन मरहूम ७१९
'सबा' अकबराबादी ४७२, ८७३, ८०८
सबा लखनवी २६७, ३३२, ३४२, ३४५, ३४०, ३५०, ३५१, ३५९
सलिल ८०२
स्वयंभू १९, २०, २१
सदरुन्निसा बेगम ३७६
सर सैयद अहमद ५५६, ७१३, ७१८ ७१९, ७२१, ७२२, ७२३
सरूर २७१
सहगल ३९०
सहर २७०
साहल २७३, ६८८, ७८५
साकिब ५७८, ७८५
साकिब बदायूनी ६०८
सालारजंग १७०
सालिक ८२७, ८८२, ७११, ७४५, ७५४
सावित्री ३३
साहिर लुधियानवी ५३५
सिकन्दर ३७

सिंगिरग ३६६
सिराज ६०
सीताराम ३३
स्त्रीमाव अकबराबादी १२२, ६४४
सुखानन्द 'रकम' ४२७
सुदामा ५१५
सुमत साहब ४०४, ५७५, ६३३
सुरैया ३००
सुलेमान बादशाह ४७६
सुलेमान शिकोह १५७, १८५ १८७ १९१, २०४, २२५, २५२, २१४, ७४६
सेनापति ४२
सोज १२०से १२४तक १३० १७६, १८४, १९२ ३६०, ७५३, ७५४
सोहनी-महिबाल ३९, ९७
ोदराबोरुत्तम ३३
ौदा ३५, १००से १०६तक १०८, १३६, १३७, १५५, १५७, १५८, १६०, १८४, १९२, १९५, २०८, २३८, २४२, २४४, २४७ २५३, २७१, २७२, २७४, २८२

ह

हज़ी १८३
हफीज़ जालंधरी ४५
हफीज ५७४
हबीबुल्ला 'जत्र' ७२४
हमदम ६१
हशमत ६१
हया ४२७, ७५०
हरिश्चन्द्र ३२
हरगोपाल तुफ्ता ४८२, ७४५
हविम २२३
हसन १७०से १७४तक १७८
हसनगू ४०
हसरत १०८से १८०तक २१२, २७६, ५०४
हसरत मोहानी ५१७, ५६३
हसरती ७०
हाफिज़ जौनपुरी १०८, ७५२
हाफिज अनान २११
हाली २४७, ४०० ४७३, ४८२, ७०२, ७१२से ७४२, ७१७, ७३४, ७४५
हाश्मी ४५
हातिम ३२, ३८, ६६, ६७, १५७, १५८
हातिमअली महर ४८२
हाजी ६१
हिजाब बेगम ३७९से ३८१तक

हिदायत १८१
हिदायतुल्लाह १३६
हीर-राँझा ९०
हुमायूँ ४६
हूर बेगम ३७५
हैदरअली 'हैराँ' १७६
हैदरी बेगम ३७७
हैरान ५७४

देश, प्रान्त, शहर

अ

अजमेर ६३६
अज़ीमाबाद १६९, १९१, ८७३
अम्बाला ५६१
अमरोहा १८४
अमेठी ५५८
अमृतसर ६३६
अलवर ६९७, ७०४
अलीगढ ६३६, ७१३, ७१८
अवध २५१, २५३, २७३, २९२ ३२७, ३६०, ३६४, ४३४, ५६१, ७१५
अहमद नगर ४९
आगरा १०७, ३२२, ४७४, ६३६
इलाहाबाद २९४, २९५, २९८, ७४४
उत्तर भारत ६३७
एटा २२
औरंगाबाद ५६, ५८, ६०, २२३
कपूरथला ४२८
कलकत्ता ३२७, २५६, ३६४, ३७१, ७४७
काबुल २९१
काठियावाड ५२४, ७५८
काश्मीर २९१
किशनगढ ६३६
कृर्ग २१
कोटला ७५४
खानपुर ७०१
गोरखपुर ७४४
गोलकुण्डा ४८, ४९, ५३ ५४, ५६
गुडगाँव ७००
चुनारगढ ३३२
जहाँगीराबाद ४२८, ७००, ७०१, ७१२
जयपुर ३६४, ६९७, ७५४
झज्जर ६९७
टौंक ४२८, ६९७, ७५४

टाँडा १८४, ७५३
नगरकोट २१
नजीबाबाद ६१७
पलवल ७००
पानीपत ७१२
पाकिस्तान ४७३
फर्रुखाबाद १००, १२०, ७५३
फ़ैजाबाद १६९, १८०, २२४, २९१, २९२, २९४, ३३१, ३३५, ३६०, ७५४
बडौली ३५८
बदायूँ ७०२, ७४४
बरेली ७५३
बहावलपुर ७५४
बाँसबरेली २२४
बुलन्द शहर ६९७, ७५४
बीजापुर ४८, ४९, ५६
भारत २७, ४७३, ६२४, ७०१, ७१४
भावनगर ५३
भोपाल ४२८, ५५६, ७५४
मथुरा ६३६
मथुरा-बृन्दावन ९७
मंगलोर ५९४, ७५४
मदीना २२४
मिर्ज़ापुर ३३२
मुरादाबाद ५६१
मेरठ २५ २७ ७०८, ७४४
मेवाड ९७
रंगून ६३०
रामपुर ३९, २७१, २७३, ४२८, ५५६, ५५७, ५६१, ५६४, ५६८, ५७१, ५९३ ५९४, ५९६, ६०६ ६०७ ६०८, ६३६ ६३७, ६४९, ७२४, ७५२, ७५३
लन्दन ६३३
लाहौर ६१, २२५, २९९ ५७४, ६३६, ७१३, ७२१, ७२२, ७२३
शिकोहाबाद ३३३
सरधना २२५
सोनीपत ६९७
हिन्द २७
हिसार ७००
हैदराबाद ३९, ५३, १७५, २२५, २९४, ३८८, ३९३, ५६८, ५६९, ६३७, ६९७, ७११, ७१४, ७४७ ७४८, ७४९

दिल्ली-लखनऊका उल्लेख बहुत ही अधिक हुआ है, इसलिए इन दोनों शहरोंकी पृष्ठ-संख्या नहीं दी गई है।

पहाड़-नदी

हिमालय १९
गोदावरी १९
ब्रह्मपुत्र १९
सिन्ध १९

भाषा

अंग्रेजी २८, २०, ३२, ४४
अपभ्रंश १९, २०, २१, २५, २८
आन्ध्र २०
आसामी २०
उडिया २०
कर्नाटकी २० ४९
कैरल २०
खडीबोली २७
गोरखा २०
गुजराती २०
तामिल २०, ४९
तुर्की-इरानी ४१, ४४
तैलगू ४९
द्राविण २०
नागरी २१, २५, २७
परसियन ३०
पजाबी २०
पाली २१
प्राकृत २१, २८
बगला २०
मराठी २०, ४९
राष्ट्र-भाषा १९
सस्कृत १९, २१, २७, ३८, ३८, ४१, ४४, ९८
अरबी-फारसी, हिन्दी-उर्दूके उल्लेखोसे पुस्तक भरी पडी है। अत. इन शब्दोकी पृष्ठ सख्या देना भी उचित नही समझा।

ग्रन्थ

आफताबे दाग ६५३
अलिफ लैला ७०९
अमीरुललुगात ५६८
इन्दरसभा ५५९
इरशादुल सुल्तान ५६७
ईजादेरगी २२६

उर्दूए मुअल्ला ७४३
कुरान ७१७
कोकशास्त्र २२७
खुबाबे खयाल १४६
खुमखानये जावेद ६९९
गुलज़ारे हिन्द १५७
गुलज़ारे नसीम ३३६, ३३७, ३४०, ३४८
गुलज़ारे दाग ६४६, ६५३
गुलबकावली ३३६
गुलशने बेखार ७०२
गुलशने हिन्द १५७, ३६०
गौहरे इन्तखाब ५६८, ५७०, ५७५
चमनिस्ताने शुअरा १३६
चुप की दाद ७२३
जौहरे इन्तखाब ५६८, ७५२
तज़करये हिन्द ६६
तिरियाके ममनून ७२२
दरबारे अकबरी ६३२
दीवाने अगेख्ता २२६
दीवाने आमेख्ता २२६
दीवाने दर्द १८१, १८२
दीवान ज़ाहद हातिम ६६
दीवाने बेख्ता २२६
दीवाने रेख्ता २२६
निगारिस्ताने फारस ६३२
पद्मावत ४६
फारसनामा मुसहफ २२६
फसाने आजाद ७५४
मज़ालिसे रंगीन २२६
मसनवी मज़हरुल अजायब २२६
मसनवी दिलपज़ीर २२६
मसनवी मीर हसन १७०
मज़ालिसउलनिसा ७२२
मज़ामीने हाली ७२२
मरताबे दाग ६५३
मसनवियात ७२३
मुकदमए शेरोशायरी ७२३
मुसद्दसे हाली ७१६, ७१८, ७२३
मिरातुलगैब ५६८, ५७०, ५७५
यादगारे गालिब ७२३
यादगारे दाग ६५३
रामायण २०
रुबाइयात ७२३
शिकवये हिन्द ७२३
शेरोशायरी ५६३, ५१६, ५७१
सनम खानये इश्क ५६८, ५७०, ७५२
सुखन दाने फारस ६३२
सैरे ईरान ६३२
हयाते शादी ७२३
हिदायतुल मुलतान ५६७

लोकमत

पुस्तके हर दृष्टिसे सुन्दर और उपादेय है।

—सम्पूर्णानन्द

ऐसे सुन्दर प्रकाशनके लिए बधाई।

—मैथिलीशरण गुप्त

भारतीय ज्ञानपीठ बहुत अच्छा काम कर रहा है। भगवान् करे आपको खूब सफलता हो।

—सुन्दरलाल

प्राचीन जैन-कहानियाँ और जैन-शासनको मैंने बहुत पसन्द किया।

—वासुदेवशरण अग्रवाल

ज्ञानपीठ द्वारा भारतीय ज्ञानके प्रकाशनमे बहुत उपयुक्त वृद्धि होगी। हमारे देशकी ज्ञान-ज्योतिमे उससे मूल्यवान् वृद्धि होगी।

—जिनविजय मुनि

भारतीय ज्ञानपीठ काशीका सकल्प और जो कृतियाँ प्रकाशनार्थ तैयार हो रही है, उन्हे देखकर बडा सन्तोष हुआ।

—राहुल सांकृत्यायन

प्रकाशन बहुत सुन्दर हुआ है, सामग्री भी स्तुत्य है।

—हीरालाल जैन

इसमे कोई सन्देह नही कि पुस्तकें बहुत उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

ज्ञानपीठके प्रकाशनके दर्शनमात्रसे हृदय प्रफुल्लित हो गया।

—के० भुजबली शास्त्री

आप जिस दृष्टिकोणसे प्रकाशन क्षेत्रमे उतर रहे हैं, उसका हार्दिक स्वागत है।

—रामप्रताप त्रिपाठी

ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित पुस्तके पढकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। पुस्तकोके विषय और उनके सिद्धहस्त अधिकारी लेखक दोनोका समुचित चुनाव ग्रन्थमालाके उत्कृष्ट उद्देश्यके अनुकूल ही हुआ है। साम्प्रदायिक सकुचित भावनाके स्थानमे पुस्तकोका विशुद्ध सास्कृतिक दृष्टिकोण उनकी उपयोगिता और महत्त्वके क्षेत्रको और भी बढा देता है। आशा है यह ग्रन्थमाला राष्ट्रभाषा हिन्दीके लिए एक गौरवकी वस्तु होगी और हिन्दी ससार इसका समुचित आदर करेगा। हम हृदयसे इस योजनाका स्वागत करते हुए उसकी पूर्ण सफलताके लिए शुभ कामना करते हैं।

—मंगलदेव शास्त्री

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि यह ज्ञानपीठ इन तीनो कार्यो (प्राचीन ग्रन्थ सम्पादन, सकलन, लोकोदयकारी नूतन निर्माण) को समान श्रद्धाके साथ करना चाहता है।

—आनन्द कौसल्यायन

इस सस्थाके उद्देश्य बहुत उदार ह। मेरा सद्भाग्य है कि मै अपने जीवनमे ही अपनी इच्छाके अनुरूप इस सस्थाका उदय देख सका।

—नाथूराम प्रेमी

पुस्तकोकी छपाई अतीव सुन्दर और स्वच्छ शुद्ध है। अन्तरग और बहिरग तन-मन-नयनके लिए आनन्दप्रद और शान्तिदायक है।

—शिवपूजनसहाय

आपकी आयोजनासे मुझे पूर्ण सहानुभूति है।

—बच्चन

सभी पुस्तके महत्त्वपूर्ण है। ज्ञानपीठ साहित्यकी बडी सेवा कर रहा है।

—अमरनाथ झा

पुस्तकोकी छपाई सफाईके विषयमे कहना ही क्या है। बहुत ही सुन्दर है। यहाँ तक कि मेरे-जैसे सुसस्कृत कहलानेवाले व्यक्तिको भी ईर्ष्या हो सकती है कि मेरे ग्रन्थ भी इतने ही अच्छे क्यो न छपे। आजकल-के ज़मानेमें जब कागज़की इतनी कमी है, ऐसे सुन्दर प्रकाशनको नज़र लग सकती है।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

[अक्टूबर १९५० मे संशोधित और परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण]

शेर-ओ-शायरी

[उर्दूके सर्वोत्तम १५०० शेर और १६० नज्मे]

प्राचीन और वर्त्तमान कवियोमें सर्वप्रधान
लोकप्रिय ३१ कलाकारोके मर्मस्पर्शी पद्योका संकलन
और उर्दू-कविताकी गति विधिका
आलोचनात्मक परिचय

प्रस्तावना-लेखक—महापण्डित राहुल सॉकृत्यायन—

"शेरोशायरीके छ सौ पृष्ठोमे गोयलीयजीने उर्दू-कविताके विकास और उसके चोटीके कवियोका काव्य-परिचय दिया है। यह एक कवि-हृदय, साहित्य-पारखीके आधे जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। हिन्दी-को ऐसे ग्रन्थोकी कितनी आवश्यकता है, इसे कहनेकी आवश्यकता नही। उर्दू-कविता से प्रथम परिचय प्राप्त करनेवालेके लिए इन बातोका जानना अत्यावश्यक है। गोयलीयजी जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञका ही यह काम था, जो कि इतने सक्षेपमे उन्होने उर्दू छन्द और कविताका चतुर्मुखीन परिचय कराया। गोयलीयजीके मयहकी पक्ति-पक्तिसे उनकी अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मै तो समझता हूँ इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे।"

'कर्मयोगी'के सम्पादक श्री सहगल—"वर्षोकी छानबीनके बाद जो दुर्लभ सामग्री श्री गोयलीयजी भेट कर रहे है, इसका जवाब हिन्दी ससारमे चिराग लेकर ढूंढनेसे भी न मिलेगा, यह हमरा दावा है।"

डॉ० अमरनाथ झा—"शेरोशायरी बहुत अच्छी पुस्तक है। इसके पढनेसे उर्दू-कविताका अच्छा ज्ञान होता है। रचयिता बधाईके पात्र है।"

मूल्य आठ रु०

[अगस्त १९५० मे प्रकाशित]

मिलनयामिनी

श्री बच्चनजीकी नवीनतम कृति

मिलन यामिनीमे जीवनकी एक प्रबल उद्दाम प्रेरणाका कलापूर्ण चित्रण तो है ही, इसमे हमे एक कलाकारके अन्तस्तलकी और विकसित व्यक्तित्वकी निकटतम झाँकी मिलती है। मिलन यामिनीके पीछे एक ऐसे कविका हृदय ह जिसने जीवनके विभिन्न पहलुओको निर्द्वन्द्व होकर अत्यन्त निकटसे देखा है। जिसने ससारकी प्रतिक्रियाओसे सघर्ष किया है, जो प्राप्यके लिए तपा है और खपा है, तथा जिसकी अनुभूतिने सागरकी गहराइयाँ और शिखरोकी ऊँचाइयाँ नापी है। अभिशापको भी वरदानकी तरह झेलता, निशाओको निमत्रण देता, एकान्त सगीतमे अन्तरकी आकुलताको उँडेलता हुआ कवि एक दिन उस मज़िलपर पहुँचा, जहाँ सतरगिनीकी आभा और आकर्षण उसके प्राणोपर छा गये। मिलन-यामिनी उसी जीवन-यात्रा और जीवन-साधनाकी एक परितृप्तिपूर्ण मजिल है।

मूल्य चार रु०

[द्वियीय संस्करण जुलाई १९५० में प्रकाशित]

मुक्तिदूत

श्री वीरेन्द्रकुमार

श्री जैनेन्द्रकुमार—

"कथा अत्यन्त करुण है। लिखा भी उसे उतनी ही आस्था और आर्द्रतासे गया है। इसकी भाषा और वर्णनका वैभव मुग्ध कर देता है। इतना सचित्र और मनोरम वर्णन हिन्दीमे मैने अन्यत्र देखा है, ऐसा याद नही पडता। मोतियोकी लडी-से वाक्य जहाँ-तहाँ मिलते है। मन उनकी मोहकता और कोमलतापर गल-सा आता है। प्रसादजीके बाद यह शोभा और श्री, गद्यमे मैने वीरेन्द्रमे ही पाई। मृदुता और रिजुता बल्कि चाहे कुछ विशेष ही हो। हिन्दीकी ओरसे इस 'मुक्तिदूत' के दानपर मै वीरेन्द्र-का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।"

मूल्य पाँच रु०

[मार्च १९५१ मे प्रकाशित]

गहरे पानी पैठ

[सूक्तिरूपमें ११८ मर्मस्पर्शी कहानियाँ]

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

गुरुजनोके चरणोमें बैठकर जो सुना.
इतिहास और धर्मग्रन्थोमें जो पढ़ा.
और हियेकी आँखोसे जो देखा.

वही जीवनभरका अध्ययन और अनुभव लेखकने कागजपर बखेर दिया है। प्रवचनो और व्याख्यानोमे उदाहरण स्वरूप दी जानेवाली श्रेष्ठतम आख्यायिकाएँ।

मूल्य ढाई रु०

[मार्च १९५१ मे प्रकाशित]

ज्ञानगंगा

[ससारके महान् साधकोकी सूक्तियोका अक्षय भण्डार]

श्री नारायणप्रसाद जैन

इन सूक्तियोको पढकर पता चलता है कि मनुष्यके जागरित मनमे पृथ्वीके विभिन्न खण्डोमे रहकर अनन्त युगोतक जीवनसे जूझकर और जीवनको अपनाकर अपने अनुभव द्वारा सत्यको किस प्रकार प्राप्त किया है और उसे किस अमर वाणीमे व्यक्त किया है। यह मानव-सन्ततिका अक्षय भडार और अखड उत्तराधिकार है। यहाँ देश, काल, जाति और भाषाकी सीमाओसे परे सारा विश्व ज्ञानके प्रकाशसे उद्भासित सत्यके बलसे अनुप्राणित और सौन्दर्यके आकर्षणसे एकाकार प्रतीत होता है। ज्ञानकी यह कितनी बडी करामात है कि वह मानव-मात्रमे भेद ही उत्पन्न नही करता, जीवनकी मौलिक एकताका आधार साक्षर वाणीमे व्यक्त करता है और इतिहासके पृष्ठोपर अमरत्वकी छाप लगा देता है।

मूल्य छ रु०

[फरवरी १९५१ मे प्रकाशित]

पंच-प्रदीप

श्री शान्ति एम० ए०

आमुख-लेखक श्री सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं—"शातिजीका कविहृदय सस्कारत स्वच्छ सुथरे कक्षके भीतर प्रतिष्ठित है, जहाँसे उनकी सहज बोध भावनाके उत्थान-पतनो, सुख-दुखके मधुर-तिक्त सवेदनो तथा बाह्य जगत्के आघातो और विक्षोभोको एक स्वस्थ सयमन तथा आगे बढनेकी प्रेरणा प्रदान करता रहता है। कही भी कवयित्रीकी समर्थ भावना ऊबड-खाबड धरतीकी ठोकर खाकर परास्त होती नही प्रतीत होती, और न वह भावोच्छ्वास मात्र बनकर वाष्पकी तरह हवामे उडती दिखाई देती है। कवयित्रीकी भाषामे स्वाभाविकता, सजीवता, मधुर प्रवाह तथा शक्तिका सन्तुलित सौष्ठव है। वह अपने काव्य-निर्माणमे बच्चन तथा महादेवीजीकी झकारोको आत्मसात् कर उन्हे नवीन रूप प्रदान कर देती है।"

मूल्य दो रु०

[फरवरी १९५१ मे प्रकाशित]

मेरे बापू

श्री हुकुमचन्द्र बुखारिया 'तन्मय'

डा० रामकुमार वर्मा—

"मेरे बापूमे युग पुरुषको कविकी श्रद्धाञ्जलि समर्पित हुई है। इस श्रद्धाञ्जलिमें कविकी अनुभूति और कल्पनाके ऐसे प्रसून है, जिनकी सुगन्धि निरन्तर पूजाकी पवित्रता लिए रहेगी। बापूका व्यक्तित्व ही काव्यका सहज विषय है। कवित्वके इस जागरणमे कविकी लेखनी सदेश-वाहिका बन गई है। ये सन्देश शताब्दियोतक गूंजते रहेगे।

मूल्य ढाई रु०

वैदिक साहित्य

प्रस्तावना लेखक :—श्री सम्पूर्णानन्दजी, शिक्षा-मन्त्री

इसके लेखक वैदिक साहित्यके प्रकाण्ड-विद्वान् श्री प० रामगोविन्द त्रिवेदी है। वैदिक साहित्य का इतना सागोपाग परिचय हिन्दी तो क्या सम्भवतया भारतकी अन्य भाषाओ मे भी उपलब्ध नही है। पुस्तकके लगभग ५०० पृष्ठो में अबतक प्राप्त ११ सहिताओ, १८ ब्राह्मण ग्रन्थो, ९ आख्यायिकाओ और २२० उपनिषदोकी मूलज्ञानराशि और उनके सम्बन्धमे अन्य ज्ञातव्य बातोका विवेचन है।

मल्य छ. रु०